पाठ्यक्रम समिति **MASL- 104**

प्रो0 दामोदर राम त्रिपाठी,गंगानाथ झॉ शोधपीठ,
संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रो0पुष्पा अवस्थी, संस्कृत विभाग
एस0एस0जे0परिसर,कुमॉऊ विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा

डॉ0 ब्रजेश पाण्डेय,एसो0प्रो0
महिला डिग्री कालेज, हल्द्वानी

डॉ0 गोपाल दत्त त्रिपाठी,
संस्कृत महाविद्यालय हल्द्वानी

प्रो0 एच0पी0 शुक्ल,
निदेशक, मानविकी
विद्याशाखा उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य,संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 संगीता बाजपेयी,
अका0 एसोसिएट संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य,संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 संगीता बाजपेयी,
अका0 एसोसिएट संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड एवं इकाई संख्या**
डॉ0देवेश कुमार मिश्र **सहायक आचार्य ,संस्कृत विभाग** उ0मु0वि0वि0	**प्रथम खण्ड**
प्रो0पुष्पा अवस्थी (विभागाध्यक्षा) एस.एस.जे.परिसर कुमायुँ वि0वि0 अल्मोड़ा	द्वितीय खण्ड
डॉ0 राधेश्याम गंगवार एसो0प्रो0 राजकीय महिला महावि0विकास नगर, देहरादून	तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड
डॉ0 डी0एस0 तिवारी राजधानी कालेज , राजा गार्डेन दिल्ली	पंचम खण्ड

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष : 2015, सीमित वितरण

पुस्तक का शीर्षक - नाटक एवं नाट्य शास्त्र **ISBN - 978-93-84632-24-3**

प्रकाशक: (उ0मु0वि0वि0) -263139

मुद्रक:

नोट : - इस अध्ययन सामग्री का प्रकाशन छात्र हित में शीघ्रता के कारण किया गया है सम्पादित संस्करण का प्रकाशन अगले वर्ष सम्भव है। इस सामग्री का उपयोग अन्यत्र कहीं भी उ0मु0वि की लिखित या प्रशासनिक अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

अनुक्रम

प्रथम खण्ड –नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय	पृष्ठ
इकाई1: नाट्यशास्त्र का परिचय	1 से 16
इकाई2: नाट्यशास्त्र के टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का परिचय	17-29
इकाई3: नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य	30-41
इकाई4: नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय पूर्वार्ध (अर्थ एवं व्याख्या)	42- 80
इकाई5: नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय उत्तरार्ध (अर्थ एवं व्याख्या)	81-102
द्वितीय खण्ड –दशरूपक प्रथम एवं द्वितीय प्रकाश	पृष्ठ
इकाई1: रूपक भेद एवं सामान्य परिचय	103-115
इकाई2:नृत्य पंचसन्ध्यंको का विवेचन	116-130
इकाई3: अर्थोपक्षेपक,नायक-नायिका निरूपण	131-153
इकाई4: दशरूपक के अनुसार रस मीमांसा	154-175
इकाई5: दशरूपक प्रथमप्रकाश	176-198
इकाई6: दशरूपक द्वितीय प्रकाश	199-217
तृतीय खण्ड उत्तररामचरितम् का विश्लेषण	
इकाई1: भवभूति एवं उनकी कृत्तियों का सामान्य परिचय	218-231
इकाई2: उत्तररामचरितम् का नाट्यशास्त्रीय मूल्यांकन	232-245
इकाई3: उत्तररामचरितम् के प्रधान एवं गौण रसों की मीमांसा	246-258
इकाई4:उत्तररामचरितम् के पात्रों का चरित्र-चित्रण	259-273
इकाई5: उत्तररामचरितम् की भाषा-शैली	274-285
चतुर्थ खण्ड : उत्तररामचरितम् प्रथम एवं द्वितीय अंक	
इकाई 1: उत्तररामचरितम् प्रथम अंक का पूर्वार्द्ध	286- 305
इकाई2: उत्तररामचरितम् प्रथम अंक का उत्तरार्द्ध	306-328
इकाई3: उत्तररामचरितम् द्वितीय अंक का पूर्वार्द्ध	329-348
इकाई4: उत्तररामचरितम् द्वितीय अंक का उत्तरार्द्ध	349-366
पंचम खण्ड उत्तररामचरितम् तृतीय एवं चतुर्थ अंक	
इकाई 1: उत्तररामचरितम् तृतीयअंक का पूर्वार्द्ध	367- 408
इकाई2: उत्तररामचरितम् तृतीयअंक का उत्तरार्द्ध	409-441
इकाई3: उत्तररामचरितम् चतुर्थ अंक का पूर्वार्द्ध	442-461
इकाई4: उत्तररामचरितम् चतुर्थ अंक का उत्तरार्द्ध	462- 488

इकाई - 1 नाट्यशास्त्र शास्त्र का परिचय

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नाट्यशास्त्र का परिचय
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्नों की उत्तर माला
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पुस्तकें
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित यह पहली काई है इस इकाई को पढने के बाद आप बता सकते है कि नाट्यशास्त्र का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ नाट्यशास्त्र का स्वरूप क्या हैं ? इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे।

नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि है इनके बारें में आप भली - भाँति परिचित होंगे। नाट्यशास्त्र के काल के विषय में अनेंक आचार्यो ने अपना अलग - अलग मत स्वीकार किया है इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे।

इस इकाई के अध्ययन से बाद नाट्यशास्त्र का महत्व क्या है ? इसके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से पश्चात् आप-

- भरतमुनिप्रणीत नाट्य शास्त्र के महत्व को समझ सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र के रचनाकार के बारे में परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के बारें में आप परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के स्वरूप के बारें में आप परिचित होगें।
- नाट्यशास्त्र के समय क्या है? इसके बारे में परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के विभाजन के बारे में परिचित होंगे।
- नाट्यशास्त्र के अध्यायों के विषय क्या है इसके बारे में परिचित होगे।

1.3 नाट्य शास्त्र का परिचय

नट् धातु से नाटय शब्द बना हैं जिसका अर्थ होता है गिरना नाचना कला का उत्कृष्ट रूप काव्य है और उत्कृष्टतम रूप नाटक है भरतमुनि का नाटय शास्त्र सबसे प्राचीन ग्रन्थ है जो अपनी विचारों के साथ साथ व्यापक विषयगत समग्रता से परिपूर्ण है। भारतीय नाटय कला पर विचार करते समय नाटयशास्त्र सदा आगे आ जाता है। यह महान ग्रन्थ नाटयकला के अतिरिक्त काव्य, संगीत, नृत्य, शिल्प तथा अन्य ललित कलाओं का भी विषयगत कोष है। यह नाटयशास्त्र ग्रन्थ ने भारत की रंगमच्चीय कला को शताब्दियों से प्रभावित कर रखा है - क्योकि इस अकेले ग्रन्थ में नाटय विषयक विवरण जितनी तन्मयता के साथ प्रस्तुत हुआ है वह अन्य किसी उत्तरकालीन ग्रन्थ में दुर्लभ ही है

तत्काली न संसार के किसी अन्य ग्रन्थ में भी प्राप्त नहीं होता। इसका कारण यह भी है कि भारतीयनाटयकला की नाट्यशास्त्र को छोडकर कल्पना करना सम्भव ही नहीं हैं और प्राचीन भारत में व्यबहुत नाट्यकला के स्वरूप तत्व तथा प्रकृति को पूर्णतः हृदयअगं करने के लिए एकमात्र नाट्यशास्त्र ही आधार है। इस नाटयशास्त्र में नाटय तथा रंग से सम्बद्ध काव्य, शिल्प, संगी त, नृत्य आदि ललित कलाओं का व्यापक विवरण दिया गया है। तथा अनेक प्रकार की शास्त्रों, शिन्पों, कलाओं, तथा प्रयोगो की चर्चा की गयी है । इस ग्रन्थ की विविधता ने इसे काव्य नाटय शिल्प तथा ललित विधाओं का विश्वकोष बना दिया । इसमें भरतमुनि ने नाटयकला को व्यवस्थित कर जो स्वरूप् प्रदान किया है। वह इतना व्यापक तथा सूक्ष्म तात्विक हुआ कि परवर्ती आचार्यो को इसी के प्रभाव तथा छाया में आकर ही अपना विश्लेषण प्रस्तुत करना पडेगा भरतमुनि के नाटय सिद्धान्तों में मौलिकता एवं व्यापकता का ऐसी बीज है, जिनकी शाश्वती स्थिति आज आज भी देखी जा सकती है। भरतमुनि के नाटयशास्त्र में चतुर्विध अभिनय का सिद्धान्त, गीत, एवं वाद्यविधि, पात्रों की विविध प्रकार की प्रकृति तथा भूमिका आदि का विवेचन विश्व की किसी भी उन्नत नाटय कला से कम नहीं है । भरतमुनि के द्वारा रचित नाटयशास्त्र ने शाश्वत भारत का ऐसा स्वरूप उपस्थित किया जिसमें काव्य, नाटय, सगीत, तथा नृत्य जैसी सुकुमार ललित कलाओं के द्वारा मानव के शाश्वत जीवन की कल्पना की गयी है। नाटयशास्त्र के सागोपाग वर्णन से नाटयशास्त्र को जो अप्रतिम स्वरूप प्रदान किया है। वह आज तक अक्षुण्ण है। भरतमुनि ने भारत की समस्त चेतना कला को अपनी प्रतिभा के द्वारा निर्माण किया था जिसका कीर्तिस्तम्भ नाटयशास्त्र है।

नाटयशास्त्र का स्वरूप

ललित विधाओं के विश्वकोष इस नाटयशास्त्र ने भारत की उदात्त कला को निर्माण किया है भरत ने नाटयशास्त्र को वेद की संज्ञा दी है क्यों कि अन्य वेद केवल द्विजमात्र के लिए है किन्तु नाटय का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति इस आनन्द का अधिकारी माना गया है इसी कारण अन्य शास्त्रकारों ने भी नाटय वेद तथा भरत मुनि को मुनि के रूप में आदर के साथ स्मरण किया है। वर्तमान में नाटयशास्त्र के छत्तीस या कुछ सस्करणों में सैतीस अध्याय उपलब्ध है तथा इस नाटयशास्त्र में छः हजार श्लोक है। इसी तथ्य का संकेत आचार्य अभिनव गुप्त ने अपनी प्रसिद्ध नाटयशास्त्र व्याख्या अभिनव भारती में किया है। शारदा तनय तथा इसके उत्तरवर्ती आचार्यो ने नाटयशास्त्र को दो संस्करणों या पाठों का उल्लेख किया है। इनके अनुसार इनके अनुसार नाटयवंद के वृहद् तथा लधृ दो पाठ थे, जिनमें छः हजार तथा बारह श्लोक थे। म. म. रामकृष्ण कवि ने इस बात को स्पष्ट करते हुए बतलाया कि बारह: हजार श्लोक की संख्या वृद्ध भरत की रचना थी जिस को संक्षेप करते हुए भरतमुनि ने छः हजार श्लोको में नाटय शास्त्र का संकलन किया । प्राचीन नाटय शास्त्र का नाम नाटयवेद था तथा दीर्ध या द्वादश साहसी का पाठ ही प्राचीन पाठ था; जिसके कुछ अंशप्राप्त भी है। अन्य विद्वान श्रीरामकृष्ण कवि ने इन तर्को से सहमत नहीं हे। उनका मत है कि लघु या षट्साहसी संहिता का पाठ ही प्राचीन है जिनमें अन्य प्रक्षेपों तथा विषयों को जोड़कर विस्तृत

बनाना ही उत्तरवर्ती पाठ की स्थिति तथा आयाम को तार्किक सहारा देने योग्य बनाता है। धनज्जय भोज तथा आचार्य अभिनवगुप्त के समय तक दोनों पाठों की परम्पराएँ चल रही थी। धनज्जय ने नाटय शास्त्र के षटसाहसी रूप को आधार माना है तो भोजराज ने द्वादशसाहसी या बृहत् पाठ को रचना का आधार माना था। परन्तु आचार्य अभिनव गुप्त ने अपनी सुप्रसिद्ध अभिनव भारती टीका नाटय शास्त्र के षटसाहसी पाठ पर ही लिखी थी । इन दोनो पाठों का विवरण शारदातनय ने अपने भावप्रकाशन में सविवरण दिया है। तदनुसार मूल नाटयवेद को मनु के आग्रह पर दो रूप् में विभाजित किया गया था जिनमें एक षट्साहसी तथा दूसरी द्वादश साहसी थी। द्वादशसाहसी का पाठ सदाशिव भरत की परम्परा में प्रचलित था। यमलाण्टक तत्र् के अनुसार नाटयवेद का विस्तार छत्तीस हजार श्लोको का था जिसे संक्षेप में द्वादशसाहसी मे प्रतिपादित किया गया परन्तु यह विवरण उत्तर कालीन किसी भी नाटयशास्त्रीय विवरण से मेल नही खाता और नहीं शारदातनय के वर्णन से कहीं समानताप्राप्त करता है अत एव इसे निराधार कल्पना मानकर प्रशन्न हुआ जा सकता है। यदि ’गन्धर्ववेद’ अपने सैद्धान्तिक विवरणों में संगीत रत्नाकर जैसे उत्तरवर्ती ग्रंथों से जहाँ विषयगत समानता रखता हो तो फिर नाटयवेद का विवरण भी इसी परम्परा में होने आवश्यक थे। इस विषय में दूसरा तर्क यह भी है कि वर्तमान नाटय शास्त्र को कही भी षट्साहसी संहिता से यद्यपि अलग नही बताया गया है तथापि धनिक जैसे प्रथितयशस्क आचार्य तथा उत्तरवर्ती अनेक आचार्यो के द्वारा नाटय शास्त्र के जिस विवरण को स्थापित किया गया है वह षटसाहसी संहिता ही है। जो वर्तमान में नाटय शास्त्र का लधुपाठ है पर अन्य का द्वादशसहसी का प्रतिषेधक नहीं मानना चाहिए। इसका कारण यह है कि वहुरूपमिश्र द्वारा रचित दशरूपक टीका में तथा अन्यत्र द्वादशसाहसी संहिता के कुछ उद्धरण मिलता है यह शारदातनय के उस विवरण को पुष्टि देता है कि द्वादशसहसी संहिता का दीर्ध पाठ नाटय शास्त्र का एक बृहद रूप अवश्य था जो प्राचीन काल में विद्यमान था। इन विवरणो पर ध्यान देने से यह भी पता चलजाता है कि इनमें चर्चित ब्रहना, शिव, तथा भरत का व्यक्तित्व नाटय शास्त्र के मुख्य विद्वानों में है। जिनमें बाद में विष्णु तथा तण्डु को भी सयाविष्ट किया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भरतमुनि का नाटयशास्त्र अपने व्यापक विषय विस्तार के कारण पुराण काल से आज तक विवेचक विद्वानों को आकृष्ट करता चला आ रहा है, जो इस बात का सूचक है कि पूरा भारतीय प्रज्ञा ने लोकप्रिय कलाओं को कितने गम्भिर रूप में ग्रहण किया होगा तथा उसे उन्नत स्थान पर स्थापित करवानें में कितना समय तथा श्रय लगाया होगा।

नाटयशास्त्र के रचनाकार

प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटयशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि हैं और सभी विद्वान नाटयशास्त्र के कर्ताभरत पौराणिक व्यक्ति है जिनकी सामर्थ्यता का वर्णन देवलोक से लेकर स्वर्ग लोक तक की गयी है। पुराणादि में अनेक प्रकार के भरत के नामों का उल्लेख मिलता है। जैसे दशरथ के पुत्र भरत, दुष्यन्त के पुत्र भरत, मन्धाता के प्रपौत्र भरत, तथा जड़ भरत । इनमें सभी किसी राजवंश से सम्बन्ध होने या किसी कारणों से उल्लिखित होने से नाटयशास्त्र के लेखक भरत नहीं हो सकते पुराणो में

उल्लेख होने के कारण भरतमुनि को ही ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे यही प्रतीत होता है कि नाटयशास्त्र के लेखक भरतमुनि ही है कोई अन्य भरत नहीं है। नाटयशास्त्र के अनुसार भरतमुनि ने ब्रहा से नाटयवेद का अध्ययन किया तथा अपने एक सौ पुत्रों को नाटयवेद को पढाया जिसमें से अनेक पुत्रों ने बाद में नाटयशास्त्र विषयक ग्रन्थों की रचना की थी। भरत ने भी स्वयं 'महेन्द्रविजय' नामक नाटक त्रिपुरादाह डीम तथा अमृतमन्थन समवकार नामक रूपकों के अभिनय प्रयोगो को विभिन्न अवसरों पर प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त प्रेक्षागृह के रचना के सन्दर्भ में भी भरतमुनि मुनि को श्रेय मिला है। और इसी कारण नाटय मण्डप के आदि प्रवर्तक भी भरतमुनि को माना गया है।

नाटयशास्त्र के अतिरिक्त परवर्तीनाटयशास्त्रीय रचनाओं तथा नाटक आदि के साक्ष्यों से भी नाटयप्रणेता एवं नाटयशास्त्र के निर्माता के रूप में भरतमुनि का नाम प्राप्त होता है। नाटयशास्त्रीय रचनाओं से धनिक एव धनज्जय के दशरूपक, नन्दि के श्वर के अभिनय दर्पण, शारदातनय भावप्रकाशपन, अभिनवगुप्तरचित अभिनवभारती टीका, सिंह भूपाल के रसार्णवसुधाकर तथा सागरनन्दी के नाटक-लक्षण-रत्नकोष आदि सभी नाटयशास्त्रीय रचनाओं में भरतमुनि को बड़े आदर के साथ नाटयशास्त्र के आचार्य के रूप् में वर्णन किया गया है। जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र में पाणिनि को श्रेयष्कर माना जाता है उसी प्रकार नाटयशास्त्र में भरतमुनि को श्रेयष्कर माना जाता है। इसी कारण नाटयशास्त्र का दूसरा नाम भरत सूत्र भी है। सूत्र के रूप् में शास्त्रीय तत्वों की प्रतिपादन की प्रवृत्ति इस ग्रन्थ की मुख्य शैली है। इन्ही कारणों से भरतमुनि ही नाटयशास्त्र रचनाकार सिद्ध होते है। नाटयशास्त्र में भरत शब्द का अभिनेता सूत्रधार आदि के लिए भी प्रयोग मिलने के कारण परवर्ती आचार्यो। में अनेक भरत नामों के होने की आशंका व्याप्त हो गयी तथा इनके आगे वृद्ध तथा आदि भरत जैसे विशेषण लगाये जाने लगे।

आचार्य अभिनवगुंप्त के समय में भी यही भावना व्याप्त हो गयी थी कि नाटयशास्त्र के प्रवर्तक भरत आदि है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इस भावना का खण्डन किया कि नाटयशास्त्र का प्रथम प्रवर्तक भगवान शिव फिर ब्रहना तथा अन्त में भरतमुनि ने किया था। अतः इनके प्रवर्तक क्रमश: भगवान शंकर ब्रह्मा तथा अन्त में भरत थे। शारदातनय के भाव प्रकाशन ग्रन्थ के अनुसार नाटयशास्त्र की द्वादशसाहसी संहिता की रचना आदि भरत या वृद्ध भरत ने की थी। जिसके कुछ गद्यांश भी उसमें उद्धत किये गये है इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि आदि या वृद्ध भरत की रचनायें भरत के उत्तरकाल में प्रचलित हुई। जैसे मनुस्मृति के बाद वृद्धमनु आदि जिनमें भरत शब्द को विशेषण लगाकर नाटय शास्त्रीय ग्रन्थों को निदर्शित किया गया है। इस प्रकार यद्यपि भरत शब्द किसी वंश या जाति परम्परा के लिए प्रयुक्त हुआ हो तो इससे भरतमुनि के व्यक्तित्व में कोई किसी प्रकार की क्षति नहीं हुई हाँ इससे इस बात का संकेत अवश्य मिलता है कि नाटयशास्त्र के अनुशीलन के कारण नाटयाचार्यो तथा भरतों की एक अक्षुण्ण परम्परा प्रवाहमान रही जिन्हें भरत की संज्ञा प्राप्त थी।

नाटयशास्त्र के विवरणों से भरतमुनि के पृथ्वी पर निवास स्थान का भी यत् किंच्चिद्

आभास मिल जाता है। नाटयशास्त्र में हिमालय पर्वत पर स्थित भगवान शिव के आदेश पर तण्डु से ताण्डव का ज्ञान भरतमुनि ने किया था। तथा उन्ही के समक्ष त्रिपुर दाह नामक डिम रूपक को प्रस्तुत भी किया था। नाटयशास्त्र में हिमालय पर्वत पर सहज एव मनोभावन वर्णन के साथ शिव एवं पार्वती के ताण्डव तथा लास्य के विवरणों से यही प्रतीत होता है कि भरतमुनि का निवास हिमालय पर्वत के किसी क्षेत्र में होगा। कुछ आलोचना करने वाले हिमालय के अन्तराल में रहने वाले वृक्षों आदि के सूक्ष्य विवरणों से कास्मीर के अधिक समीप स्थापित करते हुए भरतमुनि का निवास कास्मीर बतलाते है। तथा अन्य तर्क भी देते है। कि कास्मीर में ही नाटयशास्त्र का अध्ययन सर्वाधिक होता था और इसी कारण कास्मीरी विद्वानों में से ही जैसे भटट् लोलट, श्री शंकुक भट्ट नायक तथा अभिनव गुप्तपाद आदि ने ही न नाटयशास्त्र की व्याख्याये लिखी है।

नाटयशास्त्र में नाटय के सहायक तत्वों के रूप् में अलंकार ,छन्द शास्त्र तथा सगीत शास्त्र का भी अधिक विवेचना मिलता हे भरतमुनि नाटयविद्या के साथ साथ अलकांर शास्त्र आदि के प्रथम आचार्य है। यह सभी आलोचनकों ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया हे।

भारतीय एवं विदेशी विद्वानों द्वारा नाटयशास्त्र पर कार्य

विदेशी विद्वान श्री विलियम जोन्स के द्वारा सन् १७८९ में कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित हुआ तभी से विदेशी विद्वानों ने भारतीय रंगमंच की प्रकृति और उसके उत्पत्ति के विषय में रूचिलेना प्रारम्भ कर दिया। इसका परिणाम भी थोड़ा आशाजनक बना। और इसके बाद सन १८२६ में विदेशी विद्वान श्री एच.ए. विल्सन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सैलेक्ट स्पेसीमेन आफ दी हिन्दू थिएटर ' में भरतमुनि के द्वारा रचित नाटयशास्त्र की चर्चा करते हुए लिखा है कि अनेक संस्कृत नाटकों तथा नाटयशास्त्रीय ग्रन्थों में जो भरतमुनि के द्वारा कहा गया नाटयविद्या के सूत्र ग्रन्थ के उद्धरण प्राप्त होते है वह ग्रन्थ न इस समय प्राप्त है और न देखने का अवसर प्राप्त होता है । इस प्रकार युरोपीय विद्वानों में श्री विल्सन के इस विचार से नाटयशास्त्र के विषय में निराशा व्यापत चली थी। इसके बाद लगभग चालीस वर्ष तक नाटयशास्त्र के विषय में (अर्थात सन् १८६५ ई0 तक) कोई बात नही हुई जब तक श्री एल हाल के द्वारा सम्पादित दशरूपक का प्रकाशन (१८६५) नहीं हुआ। धनज्जय द्वारा रचित दशरूपक यद्यपि नाटयशास्त्र मध्यकालीन ग्रन्थ था फिर भी नाटयशास्त्रीय लक्षण ग्रन्थों में सर्वप्रथम उसी का प्रकाशक समभव था। पर्याप्त समय लगा। परन्तु जब यह ग्रन्थ प्रकाशित होने ही वाला था कि श्री हाल को नाटयशास्त्र की एक त्रिटिपूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त हो गयी । हाल ने उसी पाण्डुलिपि के आधार पर दशरूपक के साथ परिशिष्ट के रूप में नाटयशास्त्र के अध्याय १८ से २० तक तथा ३४ अध्यायों को प्रकाषित कर दिया। इस दषरूपक के प्रकाषन के बाद हालम होदय ने नाटयशास्त्र के प्रकाषन का भी विचार किया किन्तु बाद में समग्र पाण्डुलिपि के न मिलने के कारण वे निराष होकर इस विचार को छोड़ दिया इस प्रकार नाटयशास्त्र का प्रथम प्रयास विफल ही था ।

श्री हाल ने नाटयशास्त्र के कुछ अध्यायों के प्रकाशन तथा पाण्डुलिपि की खोज

की जो श्री विल्सन के समय से प्राप्त थी। नाटयशास्त्र के पाण्डुलिपियों के खोज के लिए अनेक विद्वान लग गये। कुछ ही वर्षो बाद नाटयशास्त्र की पाण्डुलिपि की जर्मन विद्वान हँमान ने प्राप्त की तथा नाटयशास्त्र पर एक परिचयात्मक लेख भी (सन् १८७४ मे) प्रकाषित करवाया। इस लेख के प्रकाषन से विद्वानों में और भी अधिक नाटयशास्त्र विषयक रूचि उत्पन्न हुई तथा नाटयशास्त्र के अध्ययन एवं अनुसन्धान करने का अवसर प्राप्त हुआ।

हँमान के इस लेख के प्रकाशन के बाद फ्रांसीसी विद्वान् श्री पी.रेग्नों और उन्हीं के शिष्य श्री जे.ग्रासेटन नाटयशास्त्र के अनुसन्धान को और आगे बढ़ाने का प्रयास किया। श्री पी.रेग्नों ने सन् १८८४ में पन्दहवें, सोलहवें तथा छठे और सातवें अध्याय को सम्पादित कर प्रकाषित करवाया। इस प्रकार नाटयशास्त्र अभी तक कुल आठ अध्याय ही प्रकाशित हो पाये थे। इसके बाद श्री रेग्नों के एक षिष्य श्री जे.ग्रासेट ने अट्ठाइसवे अध्याय को सम्पादित करके प्रकाषित करवाया जिसमें भारतीय सिद्धान्तों का सगीत के सामान्य विवेचना था। पुनः सन् १८९० में भी ग्रासेट ने नाटयशास्त्र की विभिन्न पाण्डुलिपियों को आधार पर नाटयशास्त्र का अध्याय एक से चौदह तक संस्करण तैयार कर प्रकाषित करवाया जो आज एक आदर्ष ग्रन्थ होकर अपना महत्व स्थापित किया हुआ है।

जिस समय विदेश में श्री पी रेग्नों तथा जे0 ग्रासे अपने नाटयशास्त्र की सम्पादन की योजना बना रहे थे। उसी समय भारत में नाटयशास्त्र की पाण्डुलिपियाँ दो विद्वान प्राप्त कर लिये थे तथा उस पाण्डुलिपि के आधार पर एक संस्करण बनाने की योजना बना रहे थे। ये थे श्री षिवदत्त दाधीच तथा पाण्डुरगं परव जिसने समग्र नाटयशास्त्र को दो पाण्डुलिपिया प्राप्त कर उनके आधार पर इस नाटयशास्त्र का सम्पादन किया तथा निर्णय सागर प्रेस मुम्बई से सन् १८९४ में सर्वप्रथम प्रकाषन किया गया। यह कार्य श्री ग्रासेट के अपूर्ण नाटयशास्त्र के तुलनात्मक संस्करण के प्रकाषन के भी चार वर्ष पूर्व ही भारत में प्राप्त हो गया था तथा यह समग्र नाटयशास्त्र का प्रकाषन भी हो गया था।

इसी समय फा्रन्स के प्रथितयषस्क विद्वान प्रो0 सिल्वालेनी ने नाटयशास्त्र के १८ से २२ अध्याय तथा ३४ वे अध्याय का आधार लेकी भारतीय रंगमंच के स्वरूप एवं प्रकृति पर एक विवेचनात्मक ग्रन्थ की रचना की इस ग्रन्थ का नाम था थिएटर इण्डियन जिसका प्रकाषन १८९० में हुआ था और जो श्री रेग्नों के प्रकाषित नाटयशास्त्र से भी पूर्ववर्ती ग्रन्थ लेखन का प्रयास था। इस ग्रन्थ में नाटक के साहित्यिक रूप् में अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया था। और प्रथम बार यहाँ धनञ्जय के दशरूपक तथा विश्वनाथ का साहित्यदर्पण जैसे परवर्ती नाटयशास्त्रीय ग्रन्थों के वचनों की नाटयशास्त्र के आधार पर प्रमाणिकता की समीक्षा की गयी थी। यह नाटयशास्त्रीय ग्रन्थ के सम्पादन या अनुवाद से भिन्न कार्य अवश्य था इस कार्य ने नाटयशास्त्र के महत्व की ओर ध्यान आकृष्ट करने की पर्याप्त सफलता प्राप्त की तथा प्राचीन भारतीय नाटयविद्या के इतिहास को मुख्य बिन्दु तक पहुचाने का कार्य किया। प्रो0 लेवी ने उपरान्त जिसने भी नाटयशास्त्र पर अपने विवेचना या समीक्षाये जो लिखी उसने किसी न किसी अंश में लेवी के ग्रन्थ का आधार अवष्य लिया।

इस समय तक नाटयशास्त्र के अधिक आकर्षक न रहने में बाधा बनी तो इस ग्रन्थ की

दुरूहता क्योकि इसके आषय को हृदयगम करने के लिए किसी न किसी व्याख्यान का अभाव था। यह अभाव अधिक वर्षो तक नही रहा और नाटयशास्त्र के मुम्बई संस्करण के लगभग बीस वर्ष के अन्दर ही मद्रास शासन द्वारा हस्त लिखित ग्रन्थों आदि की खोज के लिए संस्कृत के कुछ अन्वेषक विद्वानों को नियुक्त किया गया। इसमें तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वानों के अतिरिक्त म.म राम कृष्ण कवि भी थे। जो इस दल के मुख्यव्यवस्थापक भी थे। यह व्यवस्था तब की गयी कि जब शासन को यह जानकारी हुई की अनेक महत्वपूर्ण, हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थ मलावार के पुस्तकालयों तथा स्वतन्त्र व्यक्तियों के संग्रह में विद्यमान था। सन् १९१५ ई0 में विद्वानों ने मलावार के पुस्तकालयों में विद्यमान ग्रन्थों में नाटयशास्त्र की अभिनवगुप्त विरचित अभिनपभारती व्याख्या प्राप्त लिये। इनमे तीन ताड़ पत्र पर लिखित ग्रन्थों में अभिनवभारती टीका के अध्याय १ से ३१ तक प्राप्त किये। इन ग्रन्थों के अनुसन्धान के लिए मद्रास शासन के हस्तलिखित पुस्तकालय के द्वारा मंगवाया गया। इसी व्याख्या की दूसरी प्रति भी तावण कोर के राजकीय हस्तलिखित ग्रन्थावार में प्राप्त हो गयी। इस समाचार से अनेक विद्वानों ने इन ग्रन्थों को देखने के लिए इन ग्रन्थों को प्रतिलिपिया करवाकर उन सभी विद्वानों को भेजा गया जो देखना चाहते थे। इन सभी प्रतियों में नाटयशास्त्र के सप्तम अध्याय तथा अष्टम अध्याय का टीका नही थी। इसके अतिरिक्त पच्चम अध्याय के अन्तिम भाग भी दोनों प्रतियों में एक ही स्थान पर अपूर्ण थे। किन्तु षष्ठ अध्याय के अन्तिम भाग शान्त रस का विवेचन दोनो प्रतियों में समान रूप से विद्यमान था। दोनो प्रतियां किसी एक ही मूल प्रति के आधार पर तैयार की गयी थी। यह दोनो प्रतियों के मिलान करने पर निश्चित हुआ। अभिनव भारती के प्राप्ति से नाटयशास्त्र के जो अध्येता को नवीन प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। तथा श्री म0म0 रामकृष्ण कवि ने सन १९२ बड़ौदा से इसी व्याख्या के साथ मूल नाटयशास्त्र का परिश्रम से सम्पादन कर सप्तम अध्याय तक का प्रथम खण्ड फिर क्रमशः सन् १९३६ में अध्याय ८ से १८ तक का दूसरा खण्ड, सन् १९५४ में अध्याय १९ से २६ तक का तृतीय खण्ड तथा सन् १९६४ में अध्याय २८ से ३७ का चतुर्थ खण्ड प्रकाशित हुआ।

नाटयशास्त्र का रचना काल

नाटयशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के व्यक्तित्व की समान नाटयशास्त्र की रचना काल के विषय में भी विद्वानों ने श्रमपूर्वक अन्वेषण किया और उनका यह प्रयास अनेक तर्को के माध्यम से सफल भी रहा । इस क्रम में प्रथम उद्योग नाटयशास्त्र के १ से १४ अध्याय का सम्पादन पी रेग्नों तथा जे ग्रासे ने किया तथा नाटयशास्त्र का रचनाकाल इसके काव्य शास्त्रीय तथा छन्दः शास्त्रीय स्वरूप् कों दृष्टिगत रखते हुए इसने ईसवी सन् से कम से कम एकशती पूर्ण निर्धारित किया। इसके बाद म0 म0 हर प्रसाद शास्त्री ने नाटयशास्त्र के विभिन्न तत्वों को विश्लेषणों के उपरान्त इसका निर्माण काल पी 0 रेग्नों के समान ईशापूर्व दो शती निर्धारित किया। कर्नल श्री जेकबी ने नाटयशास्त्र की प्राकृतभाषा के अंशो का विश्लेषण करते हंए नाटयशास्त्र का रचना कालइशा की तीसरी शाती निर्धारित किया। नाटयशास्त्र के प्रयुक्त कुछ छन्दों के आधार पर नाटयशास्त्र का समय निश्चित करने का प्रयत्न किया है। इनके मत में स्वामी , सुगृहीत नामा, भद्रमुख आदि शब्दों के प्रयोग के आधार

पर नाटयशास्त्र का समय निश्चित किये है, क्योकि स्वामी, भद्रमुख आदि शब्दो का पहपाण तथा चष्टन क्षत्रपों के शिला लेखों में आया हे। इसके अतिरिक्त शक, यवन आदि आक्रमणकारी जातियों का भी नाटयशास्त्र में विवरण मिलता है। अत एव शिला लेखों में प्रयुक्त उपयुर्कत शब्दों के साम्य तथा शक आदि जातियों के उल्लेख के कारण नाटयशास्त्र का रचना काल ईसवी दूसरी शती अर्थात् इन क्षत्रपों के स्थितिकाल के पास का समय है। इसी प्रकार श्री डा0 डी0 सी0 सरकार ने भी प्राचीन शिलालेखों के आधार पर तथा नाटयशास्त्र में प्रयुक्त नेपाल तथा महाराष्ट्र शब्द के आधार पर नाटयशास्त्र का रचना काल दूसरी शती ईशवी के बाद का बतलाया, क्योकि नेपान शब्द का प्रथम उल्लेख समुद्र गुप्त प्रशास्ति में तथा महाराष्ट्र शब्द का महावंश ईशापूर्व पूवी शती, तथा ऐहोल अभिलेख (ई0 ६३४) मे मिनता है । म0 म0 पी0 ही0 काणे नेइस आधार का निषेध करते हुए यह निश्चय किया कि ऐसा क्यों न माना जाय कि इन देशो का प्रथम उल्लेख नाटयशास्त्र में ही हुआ है क्योंकि प्रथम उल्लेख होने से यह निश्चय नहीं हो सकता कि इन देशों के इससे पूर्व में नाम ही नहीं थे तथा इन शिलालेखों में इन देशों के पश्चाद्भावी काल में उल्लेख होने से नाटयशास्त्र का रचना काल आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। प्रवर सेन प्रणीत सेतु बन्धु काव्य में महाराष्ट्री प्राकृत का जिस परिकृत रूप में प्रयोग हुआ है। उससे महाराष्ट्री प्रयोग करने वाले जनपद का इन शिलालेखों के रचना काल के सदियों पूर्व अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। म0 म0 काणे के अनुसार नाटयशास्त्र में उल्लिखित विश्वकर्मा पूर्वाचार्य, कामसूत्र कामतन्त्र, वृहस्पति, नारद, तण्ड, पाशुपत आदि के उल्लेख से नाटयशास्त्र का काल ईसवीं सन् के प्रारम्भ सके पूर्वकाल से अधिक नहीं कहा जा सकता है।

नाटयशास्त्र के संक्षिप्त विषय

यहाँ नाटयशास्त्र का संक्षिप्त विषय दिया जा रहा है। जिसमें अध्याय क्रम काशी के संस्करण के आधार पर दिया जा रहा है।

प्रथम अध्याय

नाटयशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरतमुनि के आत्रेय आदि ऋषियों द्वारा नाटयवेद के विषयों में जिज्ञासा पूर्वक प्रश्न किये गये कि नाटयवेद की उत्पत्ति कैसे हुई? किसके लिए हुई ? इसके कौन कौन अंग है? उसकी प्राप्ति के उपाय कौन से है तथा उसका प्रयोग कैसे हो सकता है ? भरतमुनि ने इस के उत्तर में कहा कि नाटयवेद का ऋग्वेदं से पाठय अंश, सामणेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय अथर्वेवेद से रसों का प्रणयन किया गया है। इसे इस स्वरूप् में निर्मित कर मुनि ने अपने सौ पुत्रों को पढ़ाया

द्वितीय् अध्याय

इस अध्याय में भरतमुनि ने नाटयप्रदर्शन के लिये आवश्यक होने के कारण पेक्षागृह का वर्णन करते हुए उसके तीन प्रकार तथा उनके शिल्प, आकार तथा साधनों का विस्तार से विवेचना किया गया है।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय में नाटयमण्डप में सम्पादित की जाने वाली आवश्यक धार्मिक क्रियाओं का निरूपण करते हुए विभिन्न देवताओ की पूजा तथा उनसे प्राप्त होने वाले फलोंका निरूपण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय

भरतमुनि द्वारा अमृत मन्थन नाटयप्रयोग के देवताओ के सम्मुख प्रस्तुत करने तथा त्रिपुरादाह को महेश्वर के सम्मुख करने तथा महेश्वर के आदेश से तण्ड द्वारा भरत को अंगहार, ताण्डव नृत्य की उत्पत्ति, तथा शिल्प को सांगोपांग विवेचन किया गया है।

पचंम अध्याय

इस अध्याय में नाटयप्रयोग के आरम्भ में प्रस्तुत किये जाने वाले पूर्व रंगविधान नान्दी, प्रस्तावना तथा धुवाओ का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

षष्ठ अध्याय इस अध्याय में रस का सम्यग् रूप से विवेचना किया गया है।

सप्तम अध्याय इस अध्याय में भाव, विभाव, स्थायी तथा सच्चारी या व्यभिचारी भावों का सम्यग् रूप से विवेचन किया गया है।

अष्टम अध्यायइस अध्याय में अभिनय के आंगिक वाचिक आहार्य तथा सात्विक भेद बताकर अभिनय के संगोपांग विवेचना किया गया है।

नवम अध्यायइस अध्याय में आंगिक अभिनय के क्रम को दर्शाते हुए हस्त, कुक्षि, कटि, जानु तथा पाद जैसे शरीर के अंगो का अभिनय विस्तार से निरूपण करते हुए नृत्य में हस्त मुद्राओं की परमोपयोगिता का वर्णन किया गया है।

दशम अध्याय इस अध्याय में वक्ष कटि तथा शरीर के अन्य भागों के परिचालनजन्य पाँच प्रकारों का विवरण देकर उनके विभिन्न अवसरों पर किये जाने अभिनय का प्रयोग बतलाये गये है।

एकादश अध्याय

इस अध्याय में चारों का निरूपण करते हुए १६ प्रकार के भौमी १६ प्रकार के आकाशिकी चारियों के लक्षण तथा प्रयोग को बतलाया गया है तथा खण्ड करण तथा मण्डलों की नाटयोपयोगिता का वर्णन किया गया है।

द्वादश अध्यायइस अध्याय में मण्डलों का लक्षण, संख्या तथा प्रयोग आदि का विशद निरूपण किया गया है

त्रयोदश अध्याय इस अध्याय में गति प्रचार का निरूपण है। इसमे इसादि के अवसरों एवं अवस्थाओं के अनुकूल पात्रों की गति के विवरण बतलाये गये है। इसमे नाटयप्रयोग के आरम्भ में प्रस्तुत होने वाली धुवाओं के गान के समय में होने वाली पात्रों की गति से लेकर देव, राजा मध्यवर्ग के स्त्री पुरूष, निम्न वर्ग के लोगो की गति में लगने वाले समय रौद्र वीभत्स वीर आदि तथा पात्रों के अभिनय करने का विवरण दिया गया है।

चतुर्दश अध्यायइस अध्याय में रंगमच्च पर विद्यमान गृह, उपवन, वन, जल, स्थल आदि प्रदेश को संकेतित करने का निश्चय समय के अनुसार अंगानुसारी विभाजन तथा देश वेषभूषा आधार आदि पर चार प्रकार की प्रवृत्तियों का निरूपण मुख्य रूप से किया गया है।

पंचदश अध्यायइस अध्याय में वाचिकाभिनय प्रारम्भ होता है। इसमें आरम्भ के अक्षरों पर अश्रित वाणी का नाटय के वाचिक अभिनय में उपयोग बताते हुए अक्षरों के स्वर व्यज्जनात्मा विभेद बतलाकर उसके स्थान प्रयत्न का विवरण आदि दिया गया है । अन्त में गुरूलघु तथा यति मात्रा आदि छन्द: शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का सभ्यग रूप से विवेचन किया गया है।

षोडश अध्याय इस अध्याय में भी वाचिकाभिनय में उपयोगी वृत्तों का सोदाहरण निरूपण किया गया है अन्त में सम तथा विषयकृत का वर्णन करके आर्या के प्रभेदों का विवरण दिया गया है।

सत्रहवें अध्यायइस अध्याय में अभिनय के अन्तर्गत काव्य के छत्तीस लक्षणों का विवरण है। इसके उपरान्त उपमा रूपक दीपक तथा यमक नामक काव्य के अलंकार का वर्णन करतें हुए उनके गुण तथा दोषों का वर्णन किया गया है

अठारहवें अध्याय इस अध्याय में नाटकोपयोगी भाषाओं का विवरण देते हुए संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रष्ट या देशी शब्द के उच्चारण भेद द्वारा होने वाले परिवर्तनों का विवरण देकर भाषा एवं विभाषाओं का वर्णन किया गया है।

उन्नीसवे अध्याय इस अध्याय में उच्च नीच्च मध्य वर्ग के पात्रों को सम्बोधन करने की विविध प्रणालियों का निरूवण है। इनके अतिरिक्त वर्गो के पात्रों का नामकरण का उपाय स्वर व्यंजनों के उच्चारण स्थान दुत तथा विलम्बित जैसे अलंकारों का वर्णन किया गया है।

बीसवे अध्याय इस अध्याय में रूपकों के भेद बतलाते हुए नाटयशास्त्र के मुख्य विषय का प्रारम्भ किया गया है। इसमें दशरूपकों के लक्षण का वैशिष्टयबतलाया गया है।

इक्कीसवें अध्याय इस अध्याय में नाटक की कथा वस्तु के आधिकारिक तथा प्रासंगिक भेदों का निरूपण पन्च सन्धियाँ , पाच अवस्थाए पाँच अर्थप्रकृतियाँ तथा सन्धियों के सभी अगों के लक्षण का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

बाइसवें अध्याय इस अध्याय में नाटकोपयोगी वृत्तियों का वर्णन किया गया है। वृत्तियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भगवान विष्णु के द्वारा मधुकैटभ दैत्यों से युद्ध करने तथा वृत्तियों के भेद प्रभेद बताकर विभिन्न रसो के योजना का वर्णन किया गया है।

तेइसवे अध्याय इस अध्याय में आहार्याभिनय का वर्णन किया गया है।

चौबीस अध्याय इस अध्याय में सामान्य रूप से अभिनय का वर्णन किया गया है।

पच्चीसवे अध्याय इस अध्याय में वैशिकपरूष का लक्षण बतलाकर उसके सामान्य गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

छब्बीसवां अध्याय इस अध्याय में चित्राभिनय का वर्णन किया गया है इसमें सामान्य अभिनय के अन्तर्गत जिन आंगिक आदि अभिनयों का वर्णन छूट गया था ऐसे विशिष्ट अभिनयों का वर्णन किया गया है।

सत्ताइसवाँ अध्याय इस अध्याय में सिद्धिव्यन्ज का ध्याय का वर्णन किया गया हे। इस में नाटय-प्रदर्शन में होने वाली देवी तथा मानुषी सिद्धि का सांगोपाग विवेचन करते हुए उनमें होने वाले विध्नों का वर्णन किया गया है।

अटठाइसवे अध्याय इस अध्याय में संगीत शास्त्र का विशेष रूप वर्णन किया गया है।

उन्तीसवे अध्यायइस अध्याय में जातियों के रसाश्रित प्रयोग का विवरण है। वर्ण तथा अलंकारों का भी विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

तीसवें अध्याय इस अध्याय में वाँसूरी के स्वरूप का विवेचन तथा उसकी वादन विधि का वर्णन किया गया है।

इकतीसवे अध्याय इस अध्याय में ताल और लय तथा समयनियमन हेतु ताल विधान को विस्तार से वर्णन किया गया है।

बत्तीसवाँ अध्याय इस अध्याय में ध्रुवाध्याय का वर्णन किया गया है। इसमें पात्रों के प्रदेश आदि अवस्थाओं में गायी जाने वाली धुवावों का वर्णन किया गया है।

तैतीसवाँ अध्यायइस अध्याय को 'वाद्याध्याय' कहते है जिसमे मुदंग आदि अवन वाद्यो का विस्तार से वर्णन किया गया है।

चौत्तीसवाँ अध्यायइस अध्याय में पुरूष एवं स्त्रियों की विविध प्रकृति का निरूपण करने के ही चार प्रकार के नायकों का सलक्षण वर्णन किया गया है ।

पैतीसवां अध्याय इस अध्याय को भूमिका पात्र-विकल्पाध्याय कहते है। इसमें नाटयमण्डली के सदस्यों का विभाजन करते समय उनकी व्यक्तिगत विशषताओं को दर्शाया गया है।

छत्तीसवॉ अध्याय यह अन्तिम अध्याय है इस अध्याय में मुनियों ने भरतमुनि से पृथ्वी पर नाटय के वअतरित होने के विषय में पुनः जिज्ञासा की ? मुनि ने इसके उत्तर में दो आख्यान प्रस्तुत कियें प्रथम में भरत पुत्रों के द्वारा मुनिजनों उपहासकारी नाटय से रूष्ट होकर ऋषियों से शप्त हो जाने की तथा दूसरे में इसी कारण राजा नहुष की प्रार्थना पर स्वर्गस्थ नाटय की भूतल पर अवतरण होने की कथा है।

नाटयशास्त्र में कुछ सस्करणों में ३६ तथा कुछ सस्करणों में ३७ अध्याय है। उसमें नहुष की कथा का वर्णन किया है।

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि नाट्य शब्द किस धातु से बना है ? उसका अर्थ क्या होता है? आप जानते है कि नाट्यशास्त्र भरतमुनि का सबसे प्राचीन ग्रन्थ

है। इस महान ग्रन्थ में नाटयकला के साथ काव्य, संगीत, नृत्य, शिल्प तथा रंगमच्चीय कला का भी विशेष रूप से वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र का रचनाकार कौन है इनके बारे में विशेष रूप से बताया गया है नाट्यशास्त्र उछ अध्यायों में विभाजित किया गया है इसमें नाटय कला सम्बन्धी समग्र विद्याओं का वर्णन किया गया है।

1.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
शिल्प	कारीगर
गृह	घर
नृत्य	नाच
अभिनय	टगों के द्वारा कला का प्रदर्शन
हस्त	हाथ
कुक्षि	पेट
कटि	कमर
जानु	जंघा
पाद	पैर
हस्तमुदा	हाथ का मुद्रा (अर्थात प्रदर्शन)
वक्ष	छाती
गान	गाना
वाणी	वाणी
संगोपाग	सम्पूर्ण
त्रिविध	तीन प्रकार के
निरूपण	वर्णन
मृदंग	ढौलक
वादन	बाद्य
ताल	ताली

पात्र	नाटक करने वाले
नाटयमण्डली	कलाकारों का समूह
अवतरित	पैदा होना उत्पन्न होना
उपहासकारी	हसी मजाक करने वाले
स्वर्गस्थ	स्वर्ग में रहने वाले
भूतल	पृथ्वी
रूष्ट	क्रोध होना

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नाट्यशास्त्र के रचनाकार कौन है ?
2. भरतमुनि कैसा व्यक्ति है ?
3. दशरूपक के लेखक कौन हैं?
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम को अंग्रेजी में अनुवाद किसने किया था ?
5. अभिज्ञान शाकुन्तलम के लेखक कौन है ?
6. थिएटर इण्डियन का लेखक कौन है ?
7. सहित्पदर्पण का लेखक कौन है ?
8. षष्ठ अध्याय में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है?
9. अट्ठाइसवे अध्याय में मुख्य रूप से किसका वर्णन है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. नाटय शब्द किस धातु से बना है -

(क) नट् धातु से (ख) पठ् धातुं से

(ग) गम् धातु (घ) पा धातु से

2. कला का उत्कृष्ट रूप है -

(क) अलंकार (ख) रस

(ग) छन्द (घ) काव्य

3. भरतमुनि का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है -

(क) दशरूपक (ख) शारदातनय

(ग) नाट्यशास्त्र (घ) साहित्यदर्पण

4. नाटयवेद के कितने पाठ थे

(क) तीन (ख) पाँच

(ग) छः (घ) दो

5. प्राचीन नाट्यशास्त्र का नाम था

(क) नाट्यशास्त्र (ख) नाटयवेद

(ग) अभिज्ञानशाकुन्तनम् (घ) दशरूपक

6. नाट्यशास्त्र में कितने अध्याय हैं

(क) चार (ख) तीन

(ग) तीस (घ) छत्तीस

1.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तरमाला

लघु उत्तरीय प्रश्न के उत्तर

1. भरतमुनि
2. पौराणिक
3. धनञ्जय
4. श्री विलयम जोन्स
5. म्हाकवि कालिदास
6. सिल्वालेनी
7. विश्वनाथ
8. रस का
9. संगीत शास्त्र का

बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर माला

1. (क)
2. (घ)
3. (ग)
4. (घ)
5. (ख)
6. (घ)

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 पारसनाथद्विवेदी भरतमुनि नाट्यशास्त्रम् सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी

2 बलदेव उपाध्याय बलदेव उपाध्याय संस्कृतसा. इतिहास चौखम्भा सुरभारती वाराणसी

3 सत्यव्रत सिंह, विश्वनाथ साहित्यदर्पण, चौखम्भा सुरभारती वाराणसी

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1 पारसनाथद्विवेदी भरतमुनि नाट्यशास्त्रम् सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाट्यशास्त्र का स्वरूप एवं उसकी महत्ता के बारे में समझाइयें

इकाई 2. नाट्यशास्त्र के टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 नाटयशास्त्र के टीकाकारों एवं इनके सिद्धान्तों का परिचय
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रष्नो की उत्तरमाला
2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तके
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

नाटयशास्त्र से संबन्धित यह दूसरी इकाई है इस इकाई को पढने के बाद आप बता सकते है कि नाट्यशास्त्र के कितने प्रमुख टीकाकार है। उन टीकाकारों का परिचय आप प्राप्त कर सकेंगे एवं उन टीकाकारों का मत अर्थात सिद्धान्त क्या है उनके बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि के सौ पुत्र थे उन पुत्रों में से कुछ पुत्रों के बारे में ज्ञान भलि भाति प्राप्त कर सकेंगे। भरत पुत्रों में सर्वप्रथम कोहल का नाम आता है नाटयशास्त्र के अन्तिम अध्याय में कोहल आचार्य के रूप में भरत मुनि के उत्तराधिकारी नियुक्त किये है।
इस इकाई के अध्ययन से बाद नाट्यशास्त्र के टीकाकारों में आचार्य अभिनव गुप्त प्रमुख माने गये है इनके बारे में आप भली - भाँति परिचित होंगे।

2 .1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से पश्चात् आप -

- भरतमुनिप्रणीत नाट्य शास्त्र के प्रमुख सोलह टीकाकारों का परिचय एवं इनके सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र के टीकाकार कोहल के बारें में आप परिचित होगें।
- नाट्यशास्त्र के टीकारों में प्रधान टीकाकर आचार्य अभिनव गुप्त के विषय में आप में परिचित होंगे।
- अभिनवगुप्त के माता पिता एवं गुरू के बारे में परिचित होंगे।
- अभिनवगुप्त के 41 ग्रन्थो के विषय में आप परिचित होंगे।
- अभिनवगुप्त को किसके समान तुलना की गयी है उसके बारे में आप परिचित होंगे।

2.3 नाटयशास्त्र के टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का परिचय

कोहल

नाट्यशास्त्र में उल्लिखित भरत के सौ पुत्रों मं सर्वप्रथम कोहल का नाम आता है। जो सर्वाधिक सम्मान पाने वाले आचार्य है। नाटयषास्त्र के प्रथम अध्याय में भरत पुत्रों में कोहल का उल्लेख मिलता है। नाटयशास्त्र के अन्तिम अध्याय में कोहल आचार्य के रूप में भरत के उत्तराधिकारी नियुक्त किये है। आचार्य कोहल ने संगीत, नृत्य तथा अभिनय से संबंध स्वतंत्र ग्रन्थो की रचना की आचार्य अभिनव ने अनेक स्थानों पर कोहल के मत का उल्लेख किया है। तथा कोहल को भरत के समसामयिक आचार्य माना है। इसी कारण आचार्य अभिनव गुप्त ने कोहल के मतों का अनेक

जगह उल्लेख किया है। आचार्य कोहल ने नाटय के अनेक अंगो तथा नृत्य एवं संगीत पर अध्कृित रूप से अनेक रचनायें की थी। जिनके इस समय उद्धरण प्राप्त है। संगीत ग्रन्थों में कोहल विषयक विवरण तथा उनके विस्तृत विवरण शांगदेव के संगीत रत्नाकर एवं एसकी सिंहभूपाल तथा कल्लिनाथ की टीकाओं में प्राप्त होते है। पार्श्वदेव के संगीत समयसार में कोहल के साथ दन्तिल आचार्य का संगीत शास्त्र के आचार्य के रूप् में भी उल्लेंख प्राप्त होता है। मद्रास के शासकीय हस्तलिखित ग्रन्थागार में कोहल प्रोक्त ग्रन्थ का तेरहवा अध्याय विद्यमान है। इसका नाम है ’कोहलरहस्य’ यह ग्रन्थ खण्डित है किन्तु इसमें कोहल का भरतपुत्र के रूप में उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त कोहलाचार्य प्रणीत ’कोहलमतम्’ नामक अन्य ग्रन्थ भी मिलता है। जो बहुत अल्पमात्रा में है। इसमें पुष्पाज का केवल स्वरूप् मात्र बतलाया गया है। एक अन्य ग्रन्थ हैं ’कोहलीयम्’ यह ग्रन्थ लन्दन के इण्डिया आफिस संग्रहालय में विद्यमान है। यह ग्रन्थ ताल पत्र पर लिखित है। आचार्य के ये सभी ग्रन्थ अपूर्ण एवं अप्रकाशित है।

नन्दी या नन्दिन

नन्दी या तण्डु जिनका अन्य अभिधान नन्दि के श्वर भी है। भतमुनि को ताण्डव के रूप में नाट्यशास्त्र में उल्लिखित किया गया है। आचार्य अभिनव गुप्त ने तण्डु शब्द नन्दी या नन्दि के श्वर का ही नाम पर्याय माना है। इससे स्पष्ट होता है कि नन्दी ही तण्ड थे, जिसने भरतमुनि को उस ताण्डव नृत्य का शिक्षण दिया थी जो उन्हे शिव से साक्षात् प्राप्त हुआ था। नन्दी के सुपसिद्ध ग्रन्थ अभिनय दर्पण से इन्हें नाट्यशास्त्र के आचार्य मानने में कोई समस्या नही रह गयी। नन्दिकेश्वर के अन्य ग्रन्थो मकें ’नन्दिभरतोक्त संकर हस्ताध्याय’ नामक ग्रन्थ हस्तलिखित रूप् में अपूर्ण प्राप्त हो रहा है। भरत की नाटय शास्त्र की पुष्पिका मकें नन्दिभरतप्रणीतं संगीत पुस्तकम्’ लिखा मिलता है जो भरत के शिष्य होने या नन्दिमत प्रतिपादित करने वाले ग्रन्थ में नाट्यशास्त्र को संकेतित करता प्रतीत होता है इस प्रकार ननिदकेश्वर का भी नाट्यशास्त्र के निर्माण में महत्व पूर्व योगदान इससे स्पष्ट है।

तुम्बुरूः

रेचक,करण, अगंहार तथा संगीत के प्रसंग तुम्बरू का नाट्यशास्त्र में उल्लेख मिलता है। नन्दी के समान भरतमुनि के समकालीन आचार्य तुम्बरू को भी सिद्ध किया गया है। तुम्बरू नृत्य-सगीतशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य थे तथा प्रत्येंक संगीत के अवसर पर इनका सहयोग प्राप्त होने का उल्लेख पुराणों में मिलता है। इसलिए इनका व्यक्तित्व पौराणिकमाना जाता है।

काश्यप

कोहल के समान काश्यय मुनि भी आचार्य भरत के समान माने जाते थें तथा संगीत एवं नाट्यशास्त्र के टीकाकार थे। आचार्य अभिनव गुप्त भी इनको भरतमुनि के समान प्रतिष्ठित आचार्य मानते थे। काश्यय का लम्बा उदाहरण अभिनव भारती में दिया गया है। इससे हमे ज्ञात होता है कि भिन्न कैशिक टक्क, सौवीर तथा मालव कैशिक जैसे रागों का क्या स्वरूप है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार भरतमुनि के समकालीन शास्त्रकारों को रागों का ज्ञान था।

दत्तिल

दत्तिल या दन्तिल भी भरमुनि के समकालीन टीकाकार थे। दत्तिल नाटय विद्या तथा संगीत विद्या के प्रामाणिक ग्रन्थकार थे। आचार्य अभिनव गुप्त ने इनका उल्लेख संगीत काला प्रतिपादक नाट्यशास्त्र अध्याय 28 की व्याख्या में किया है। भरतमुनि केसौ पुत्रों मे से कोहल के बाद दत्तिल का भी क्रम आता है। नृत्यकला के विषय ' दत्तिलकोहलीयम् ' नामक एक अप्रकाशित पाण्डलिपि तन्जोर ग्रन्थागार में विद्यमान है जिसमे नृत्यकला का विस्तार से वर्णन किया गया है। रसावर्णव सुधाकर आदि ग्रन्थों में दत्तिल का नामोल्लेख मिलता है। म0 म0 रामकृष्ण कणि ने इसके एक अन्य ग्रन्थ गान्धर्व - वेदासार का भी उल्लेख किया गया है । ' दत्तिलम् ' इनका सुपसिद्ध एवं सर्वविदित प्राप्त ग्रन्थ है।

वादरायण तथा शातकर्णी

नाट्यशास्त्र में वादरायण का उल्लेख भरत पुत्र के रूप में किया गया है। नाटकलक्षणरत्नकोष में वादरायण के मतों का तीन स्थ्लों पर उल्लेख होने से ये निश्चित रूप में नाट्यशास्त्र के टीकाकार थे। शतकर्णी का भरतपुत्रों की सूची में शालकर्णी अभिधान भी प्राप्त है। शतकर्णी का उद्धरण मिलता है। नाटक लक्षण रत्नकोष में भी शातकर्णी का मत उद्धृत होने से इनका भी नाटयविद्या का टीकाकार होने का प्रमाण मिलता है। इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में वात्स्य तथा शाण्डिल्य का नाम भरत पुत्र होने के अतिरिक्त नाटयावतरणाध्याय में कोहल के साथ शेष तन्त्र के व्याख्याता आचार्य के रूप में भी किया गया है। यही सिद्धान्त है।

मातृ गुप्ताचार्य

राजतरडिंणी में प्राप्त विवरण के अनुसार मातृ गुप्त कवि भी थे तथा मर्तृमेण्ठ जैसे कवि के समकाली एवं आश्रयदाता भी थे, जिसने श्री हर्ष विक्रम के द्वारा प्राप्त कास्मीर का पॉच वर्ष तक शासन किया तथा अन्त में विरक्त होकर राज्य को त्याग दिया। अभिनवभारती ने पुष्पनामक प्रभेद के व्याख्यान प्रसगं में मातृगुप्त को वीणावादन के रूप प्रस्तुत किया गया है। शारदातनय ने भाव प्रकाशन तथा सागरनन्दी नाटकलक्षणरत्नकोष में नाटयस्वरूप तथा नाटयागं आदि के प्रसंगो पर अनेक बान मातृ गुप्ताचार्य क ेमत को प्रस्तुत किया है इनका सर्वाधिक उदाहरण अभिज्ञान शाकुन्तलम की राधवभट्ट प्रणीत व्याख्या में प्राप्त होते हैं। जिनके नाट्यशास्त्र पर स्वतन्त्र टीकाकार होने की महत्ता प्रस्तुत किया है । यद्यपि सुन्दर मिश्र ने (स्थिति काल १६ वी शती) अपने 'नाटयप्रदीप' में मातृ गुप्त को नाट्यशास्त्र के एक टीकाकार के रूप में प्रस्तुत किया है। किन्तु ऐसर प्रतीत होता है हे नाट्यशास्त्र के स्वसं्त्र लेखक के रूप में इन्होने भरमुनि क ेमत को समीक्षा की हो जिससे श्री मिश्र ने इन्हें नाट्यशास्त्र का टीकाकार समझ लिया होगा। मातृ गुप्त उच्चकोटि के कवि भी थे और इसी कारण कुछ आलोचक इन्हें कालिदास से अभिन्न मानते है। जो अब अधिक कल्पना नहीं मानी जाती । वक्रोक्ति जीवित में कुन्तक ने मातृगुप्त के सुकुमारता तथा विचित्रता नामक गुणों का उल्लेख किया है। श्री हर्ष विक्रमादित्य के समकालीन होने के आधार मातृगुप्त का स्थिति काल ईसवी पॉचवी शती

माना जाता है। यही सिद्धान्त है।

भट्ट उद्भट्ट

आचार्य अभिनव गुप्त ने नाट्यशास्त्र के छः नौ तथा उन्नीसवे अध्याय में आचार्य भट्ट - उद्भट्ट के मतों का उल्लेख किया है। आचार्य गम्म्ट ने भी अपने काव्य प्रकाशन में उद्भट रस सूत्र का व्याख्याता तथा शांडगदेव ने भी इन्हें नाट्यशास्त्र का टीकाकार माना है। भटटोद्भट के सिद्धान्तों को भट्टलोल्लट द्वारा आलोचना किये जाने के कारण ये भट्टलोल्लट के पूर्ववर्ती नाट्यशास्त्र के व्याख्याकार है।

भट्टलोल्लट

आचार्य अभिनव गुप्त ने भट्टलोल्लट के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करते हुए उस पर आलोचना की है कि भट्टलोल्लट ने समग्र नाटयशस्त्र पर अपनी व्याख्या या भाष्य लिखा था। पूर्व मीमांसा शास्त्र के अनुगामी होने से इनकी रससूत्र पर इसी दर्शन के सिद्धान्तानुरूप व्याख्या भी है। यद्यपि भट्टलोल्लट के रसव्याख्यान की सभी व्याख्याकारों ने चर्चा है परन्तु इनका व्याख्याशास्त्र गाम्भीर्य मके उन्नत स्थान रखती थी इस सिद्धान्त को सभी स्वीकार करते थे। काव्यप्रकाश के प्राचीन व्याख्याकार माणिक्यचन्द्र लोल्लट तथा शंकुक की तुलना में लोल्लट भट्ट को रसशास्त्र का मार्मिक पण्डित माना हैं। काव्यप्रकाश आदि अनेक अलकार शास्त्र के ग्रन्थों में भट्टलोल्लट के सिद्धान्त को उल्लेख किया है। आचार्य हेमचन्द्र ने भी भट्ट लोल्लट के दो स्थानो पर सिद्धान्त उद्धृत किये है। भट्टलोल्लट अपराजित के पुत्र होने से अपराजित नाम से भी जाने जाते अपराजित के नाम से राजशेखर की काव्यमीमांसा में जो उद्धरण दिये गये है। उन्हीं को हेमचन्द्र ने भट्टलोल्लटके नाम से उदधृत किया है। भट्टलोल्लट ने न केवल नाटयशास्त्र पर ही रचना की किन्तु स्पन्दकारिका की भी व्याख्या की थी जिनका नाम वृत्ति था। इस टीका का उल्लेंख आचार्य अभिनवगुप्त के परमशिष्य क्षेमराज ने किया है। अत एव स्पन्दकारिका क लेखक भट्ट कल्लट भट्ट कल्लट भट्टलोल्लट से ज्येष्ठ तेर एवं उन्ही के समकालीन थे। भटट् कल्लट की अपेक्षा श्री शंकुक अवस्था में कम रहने पर भी लोल्लट के समकालीन विद्वान थे। ये सभी कास्मीर के निवासी थे यह भी सम्भावना है कि भट्टकल्लट की तरह भट्टलोल्लट भी बसु गुप्त के शिष्य रहे है।

श्री शंकुक

भरतमुनि के नाटयशास्त्र के अन्य टीकाकार श्री शंकुक थे जो भट्टलोल्लट के कनिष्ठ समकालीन एवं कास्मीर निवासी विद्वान थे शोर्गधर पद्धति वल्लभ देव की सुभाषितावली तथा जल्हण के सूक्ति संग्रहो में श्री शंकुक की अनेक सूक्तियॉ उद्धृत की गयी है। श्री शंकुक मयूर के पुत्र थे वाण के समकालीन मयूर से ये श्री शंकुक के पिता मयूर निश्चित ही भिन्न व्यक्ति होंगे। अभिनव भारती में अध्याय ३ से २६ अध्याय तक श्री शंकुक की टीका के निरन्तर उद्धरण देकर उन की आलोचनो की गयी है। यह स्पष्ट है कि श्री शंकुक की ने समग्र नाटयशास्त्र पर व्याख्या लिखी थी। ये रस शास्त्र के व्याख्यान में अनुमितिवादी आचार्य माने जाते है।

भटट नायक

ध्वन्यालोक एवं अभिनवभारती के रचनाकाल के मध्यवर्ती आचार्य के रूप मे भट्टनायक का स्थान है। नाटयशास्त्र के व्याख्याकार के रूप में इनका महान प्रसिद्धि है। कुछ विद्वानों ने इनके समग्रे नाटयशास्त्र का व्याख्यान लिखने पर अशका प्रगट की है। किन्तु इनके सिद्धान्त का अभिनवभारती ने अनेक स्थानों पर उल्लेख न होने से निश्चित नही कहा जा सकता कि नाटयशास्त्र पर इनका अधूरा व्याख्यान हुआ था। रस शास्त्र के व्याख्यान क्रम ये साधारणीकरण के उद्धावक एवं भुक्तिवाद के प्रवर्तक आचार्य के रूप में विख्यात है। आचार्य अभिनव गुप्त के अतिरिक्त रूय्यक ने अलकंर सर्वस्व की विमार्शिनी टीका में हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन विवके में तथा महिमभट्ट ने व्यक्ति विवके में भट्टनायकके ही दो पद उद्धृत किये है। इनके हृदय दर्पण नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का निर्माण भी किया था जिसका संकेत महिमभट्ट ने 'अदृष्टदर्पणा मानधीः' लिखकर अतिचातुर्यपूर्ण पद्धति से किया है। महिम भट्ट के टीकाकार राजानक रूय्यक ने भट्टनायक का उल्लेख करते हुए उनकी रचना हृदयदर्पण बतलायी है। साधारणी करण के उद्धावक भट्टनायक ही है। अत एव भट्टनायक का स्थिति काल अभिनवगुप्त से कुछ ही वर्ष पूर्व माना जाता है। ये कास्मीर के शासक अवन्ति वर्मा तथा शंकरवर्मा के समकालीन थे इसी कारण इनका समय ८८० - ९०० ई के मध्यमाना जाता है।

भट्ट यन्त्र

अभिनव भारती में आचार्य भट्ट यन्त्र के सिद्धान्त का उल्लेख मिलता है। ये भट्टयन्त्र भी कदाचित् नाटयशास्त्र के टीकाकार थे। इसके अतिरिक्त इनका अन्यत्र कहीं भी और अधिक परिचय नही मिलता है।

आचार्य कीर्तिधर

अभिनव भारती में अभिनव गुप्त ने केवल एक बार आचार्य कीर्तिधर के सिद्धान्त का उल्लेख किया है। इन्हें नाटयशास्त्र का प्राचीन टीकाकार माना जाता है इससे कीर्तिधर नाटयशास्त्रके प्राचीन तथा प्रतिष्ठित टीकाकार प्रसिद्ध होते है। सम्भवतः ये उद्भट के समसामयिक या उससे अधिक प्राचीन माना जाता है। भटटोदभट्ट से प्राचीन मानने पर इनका स्थिति काल सातवी शती माना जाना उचित है।

नान्यदेव

अभिनव गुप्त ने नान्यदेव के भरतमुनि रचित नाटयशास्त्र से भी कुछ उद्धरण दिये हैं। इस समय नान्यदेव का नाटयशास्त्र का भाष्य उपलब्ध है इसका तत्पर्य यह हुआ नान्यदेव ने नाटयशास्त्रका टीकाकार है। नान्यदेव ने अपने सिद्धान्त में भवभूति के मालतीमाधव प्रकरण पर एक पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या लिखी थी जिसमें अपने भरत मुनि विरचित भरतभाष्य को भी उदधृत किया है। आचार्य कान्तिचन्द्र पाण्डेय के अनुसार भी नान्यदेव अभिनवगुप्त से दो पीढ़ी पुराने है। अतः इनका स्थिति काल नवी शती का उत्तरा है।

भट्ट तोत

अभिनव गुप्त ने अभिनवभारती तथा ध्वन्यालोक की लोचना व्याख्या में भट्टतरेत कर उल्लेख अपने

गुरू के रूप में किया है। तथा नाटयशास्त्र पर गम्भीर उनकी मान्यताओं का प्रदर्शन किया है। नाटयशास्त्र के तत्कालीन महान विद्वान तथा व्याख्याता थे तथा नाटयशास्त्र की पाठभेद परम्पराओं की एक महत्वपूर्ण शाखा के समर्थक थें । यह शाखा भी शानतरस के विवरण को मूलपाठ की मान्यता देना, रस की अनुकरणशीलता का विरोध तथा काव्य एवं नाटय में रस प्रतिपादन जिसका अभिनव भारती में अनुकरण किया गया है। इन्होंने 'काव्यकौतुक' नामक ग्रन्थ की स्वतन्त्र रचना भी की थी जिस पर अभिनव गुप्त पाद ने विवरण लिखा था। अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती के काव्य कौतुक की कुछ पंक्तियाँ भी उल्लेख किया है इस समय काव्य कौतुक तथा उस पर अभिनव गुप्त रचित विवरण प्राप्त नहीं है। काव्याकौतुक से उद्धृत किये है। इससे यह प्रमाण होता है कि काव्यकौतुक ग्रन्थ विद्वानों का आदर प्राप्त कर चुका था। भटट् तोत का स्थिति काल दशवी शती का पूर्वार्द्ध था क्योकि अभिनव गुप्त का स्थिति काल दशवी शती के उतरार्द्ध से ग्यारहवी शती का प्रारम्भ-काल माना जाता है।

इसके अतिरिक्त अभिनव ने भट्टगोपाल; भागुरि; प्रियातिथि भट्टवृद्धि, रूद्रक भट्टसुमनस्, भट्टशंकर जैसे आचार्यो का यत्र तत्र व्याख्यान व्याख्यान - प्रसंग में नामोल्लेख किया है किन्तु इसमें कितने नाट्यशास्त्र के विवेचक टीकाकार थे यह ज्ञात नहीं है। ये अभिनव गुप्त से प्राचीन या समकालीन थे इसके विषय में कोई बाते जानकारी में नहीं आई है।

आचार्य अभिनव गुप्त पाद

आचार्य अभिनव गुप्त काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र के महान टीकाकार थे इसके अतिरिक्त दर्शन तथा तन्त्रादि शास्त्रों के भी महान शास्त्रकार थे। ये महान ज्ञानी तथा मध्यकालीन भारत की प्रतिभा मण्डित विद्वत श्रृंखला में मध्यमणि की तरह विलक्षण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अभिनव गुप्त ने विस्तार से अपना परिचय प्रस्तुत किया है। यद्यपि अभिनव गुप्त कास्मीर के निवासी थे किन्तु उनके पूर्वज अत्रिगुप्त कन्नौज से आकर, कास्मीर में वस गये थे। क्योकि इन्हें कन्नौज से कास्मीर के तत्कालीन शासक यशोवर्मा ने ससम्मान से आमन्त्रित किया था। उन्होंने अत्रिगुप्त को विस्तता के किनारे एक सुन्दर भवन था जिसको एक जागीर ने देकर बसाया था। इनके वंश में आगे चलकर वराह गुप्त हुए जो अभिनव गुप्त के पितामह थे। वराह गुप्त के पुत्र नरसिंह गुप्त हुए जिसका दूसरा नाम चुखुलक था। इनके चाचा का नाम वामन गुप्त था। वामन गुप्त एक महान कवि थे जिनका पद्य अभिनवगुप्त ने एक प्रसंग मे उल्लेख भी किया है। नरसिंह गुप्त के पुत्र अभिनव गुप्त थे। इनकी माता का नाम विमल कला था। इनका वंश शिवभक्ति में लीन रहता था। अभिनव गुप्त एक योगिनी भूः सन्तति होने से उन्हें आगम तथा त्रिकशास्त्र के संग्रह एवं रचना का पूर्ण रचना का पूर्ण सामर्थ्य होता था। उनकी माता का वाल्यकाल में ही स्वर्गारोहण हो गया था। माता का स्वर्गारोहण हो जाने पर इनके पिता को बहुत कष्ट हुआ तथा इसी कारण उन्होने संसार की अनित्यता तथा वैराग्य से अभिभूत होकर गृह को त्याग दिये। अभिनव गुप्त जबतक मात पिता के संरक्षण में रहे तब तक उनका जीवन सुखमय व्यतीत हुआ पर जब पिता भी उन्हे छोड़कर चले गये तो उन्हें अपनी जीवन

धारा का परिवर्तन करना आवष्यक हो गया।

अभिनवगुप्त गुप्तपाद की विधाध्ययन में प्रबल रूची थी। तथा वे प्रत्येक विषय को जिम्मेदारी से पढ़ने के लिए प्रत्येक विषय के योग्य एवं विद्वान गुरू से अध्ययन करते थे। अभिनव गुप्त के पिता सिह गुप्त व्याकरण शास्त्र के प्रमुख विद्वान थे उनसे व्याकरण का सम्यग रूप से अध्ययन किया। आचार्य वोमनात्थ से द्वेताद्वैत तन्त्र, भूतिराजतनय से शैव सम्प्रदाय की दीक्षा, लक्ष्मण गुप्त से प्रत्यभिज्ञा, भूतिराज से ब्रहमविद्या तथा भट्टतोत से नाटयशास्त्र का सम्यग् रूप से अध्ययन किया।इसके अतिरिक्त उन्होने लगभग 13 गुरूओं से किसी न किसी विषय का अध्ययन किया था। संसार से विरक्त होने के कारण केवल अध्ययन ग्रन्थ निर्माण तथा षिवभक्ति ही उनका मुख्य कार्य रह गये थे। इनका षिवभक्ति तथा उपासना से जो समय बचता था वह इन्ही दो कार्यो में लगता था ये किसी विषय के उद्ब्भट्ट विद्वान का पता लगते ही उसके पास अध्ययन के लिए चले जाते थे। इस प्रकार काष्मीर तथा उसके बाहर जो विशिष्ट विधाएँ उन्होने ग्रहण की उनके द्वारा विशाल ग्रन्थ राषि का निर्माण किया। इनकी सब मिलाकर 41 कृतियां ज्ञात है।

इन कृतियों के नाम हैः-

1. बोधपंचदशिका
2. परात्रिशिका विवरण
3. मालिनी विजय वार्तिक
4. तन्त्रालोक
5. तन्त्रसार
6. तन्त्रवटधानिका (ये सभी ग्रंथ कास्मीरक षैव दर्षन तथा षैव तन्त्र के है।)
7. अभिनव भारती (नाटयशास्त्र व्याख्या)
8. ध्वन्यालोक लोचन (ध्वन्यालोक व्याख्या) ये दोनो ग्रन्थ अलंकार षास्त्र तथा नाटय षास्त्र पर व्याख्यान हैं।
9. भगवतगीतार्थ संग्रह
10. परमार्थसार
11. ईष्वर प्रत्यभिज्ञा
12. विवृत्ति विमर्षिणी
13. क्रमस्तोत्र
14. भैरवस्तोत्र
15. देहस्थ देवताचक्रस्तोत्र
16. अनुभवविवेचन
17. अनुत्तराष्टिका
18. परार्थद्वाषिका

19. परमार्थचर्चा
20. महोपदेषविंषतिकम्।तेरह से बीस तक की रचनाये स्तोत्रात्मक तथा छोटी -छोटी है।
21. तन्त्रोच्चय
22. घटकर्पर कुलक विवृति
23. क्रमकेली
24. षिवदृष्टयालोचन
25. पूर्व पच्चिका
26. पदार्थ प्रवेष निर्णय टीका
27. प्रकीर्णकविवरण
28. प्रकरणस्तोत्र
29. काव्यकातुक विवरण

(भट्टतोत कृत काव्य कौतुक नामक अलंकार षास्त्रीय ग्रन्थ की व्याख्या)

30. कथा मुख तिलक
31. लध्वी प्रक्रिया
32. भेद विवरण
33. देवीस्तोत्र विवरण
34. तत्वाध्व प्रकाषिका
35. शिव भक्त्य विनाभावस्तोत्र

(इनमें से 23 से 35 तक के ग्रन्थ भी इस समय उपलब्ध नही होते है।) इसके अतिरिक्त इनके नाम से कुछ सूची पत्रों में अन्य कुछ ग्रंथ का विवरण भी मिलते है।

1. बिम्बप्रति बिम्बवाद
2. अनुत्तर विमर्षिणी वृत्ति
3. नाटयलोचन
4. परमार्थ संग्रह
5. अनुत्तर षतक

इन ग्रन्थां को विषय विभाजन की दृष्टि से

1. साहित्य षास्त्रीय
2. दार्षनिक
3. तान्त्रिक तथा प्रकिर्ण विभागों में बाँटा जा सकता है। इनकी रचनाओं का सबसे बड़ा भाग तान्त्रिक ग्रंथो का है। दार्षनिक ग्रन्थों में प्रत्यभिज्ञा दर्षन पर तथा गीता पर लिखित व्याख्यान आदि ग्रन्थ आते है। साहित्यिक ग्रंथो अभिनव -भारती, ध्वन्यालोक लोचन नामक दो षास्त्रीय विवेचन के टीका ग्रंथ घटकर्पर विवरण काव्य व्याख्या तथा एक अप्राप्य ग्रंथ काव्य कौतुक का विवरण ।

प्रर्कीण ग्रन्थों में इनके षेष स्तोत्र आदि सभी ग्रन्थों में इनके षेष स्तोत्र आदि सभी ग्रन्थो को लिखा जा सकता है।

इनके साहित्य षास्त्र के प्राप्य दो ग्रंथ है- एक ध्वन्यालोक लोचन तथा दूसरा अभिनव भारती। यद्यपि ये क्रमषः आनन्दवर्धनाचार्य के ध्वन्यालोक तथा भरतमुनि के नाटयषास्त्र की टीकाएँ है किन्तु इन्हें विद्वानों ने सम्यग् रूप से स्वीकार नही किया है। अपने विषयगत मौलिकतापूर्ण विवेचन के आधार पर अभिनव गुप्त द्वारा निष्चित सिद्धान्तो को उन विषयों पर अन्तिम माना जाता था, इसी कारण अंलकार षास्त्र के उत्तर कालिन संमग्र प्रतिभाषाली ग्रंथकार एवं विवेचक किसी न किसी रूप में अभिनव गुप्त की आधमकर्णता को स्वीकारते ही है। इस प्रकार जो संस्कृत साहित्य की जो सेवा इनके द्वारा की गयी उसके लिए समस्त भारत इनके प्रति कृतज्ञ है। तथा भारत में आद्य षंकराचार्य से कम नही है।

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि नाट्यशास्त्र के प्रमुख टीकाकार कौन-कौन से है ? इसके बारे मे आप सभ्यग् रूप से अध्ययन करेंगे एवं उनके सिद्धान्तों का भी सभ्यग् रूप से अध्ययन करेंगे। इस इकाई में नाट्यशास्त्र के प्रमुख ¬१६ टीकाकार माने गये हैं। उन टीकाकारों में सबसे अन्त में आचार्य अभिनव गुप्त पाद का नाम आता है। जिसकी तुलना आद्यशंकराचार्य से की गयी है। ये सभी टीकाकारों में यशस्वी एवं महान माने गये है। एवं उनका सिद्धान्त पक्ष भी प्रबल रहा।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सम्बद्ध	मिला हुआ
अधिकृत	नियुक्त किया हुआ
खण्डित	टुकड़ा
अल्पमात्र	थोड़े से मात्र में
कोहलीयम्	कोहल का यह
प्रोक्त	कहा हुआ
पौराणिक	पुराण में होने वाला
पर्याय	दूसरा नहीं

प्रतिष्ठित	सम्मानित
समकालीन	समान काल वाले
उद्भावक	पैदा करने वाला
अतिचातुर्य	अत्यन्त बुद्धिमान
हृदयदर्पण	हृदय का दर्पण (शीशा)
विवेचक	व्याख्या करने वाले
मध्य	बीच
प्रतिया	ज्ञान
मण्डित	विस्तार
आमन्त्रित	बुलाया गया है
स्वर्गारोहण	स्वर्ग चले जाने पर
गृह	घर
संरक्षण	अच्छी तरह से रक्षा करने वाला
उद्भट्ट	महान विद्वान
विंशतिकम्	बीस
ार्मिक	महान

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. भरतमुनि के कितने पुत्र थे ?
2. भरतमुनि के पुत्रों में सर्व प्रथम किसका नाम आता है ?
3. कोहलीयम यह ग्रन्थ इस समय किस संग्रहालय में विद्यमान हैं?
4. नन्दी कौन थे ?
5. कास्यप किसके समान माने जाते थे ?
6. राजतंगिणी के प्राप्त विवरण के अनुसार मातृगुप्त क्या थे?
7. अभिनव गुप्त ने भट्टतोत का उल्लेख किस रूप मं े किया है?
8. अभिनव गुप्त कहां के निवासी थे?

9. अभिनव गुप्त के माता का नाम क्या था?

10. अभिनव गुप्त के पितामह कौन थे?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. नाटयशास्त्र के कितने प्रमुख टीकाकार हैं -

(क) १0 (ख) १२

(ग) २0 (घ) १६

2. अभिनव गुप्त के कितने गुरू थे?

(क) तीन (ख) चार

(ग) तेरह (घ) दो

3. मुख्य रूप से नाट्यशास्त्र को किस शास्त्र में रखा गया है -

(क) साहित्य (ख) दर्शन

(ग) वेद (घ) व्याकरण

4. अभिनव गुप्त मुख्य रूप से कितने ग्रन्थों के कर्ता थे

(क) 20 (ख) 41

(ग) 22 (घ) 40

5. अभिनव गुप्त के पिता का नाम था

(क) विश्वनाथ (ख) नर सिंह गुप्त

(ग) मम्म्ट (घ) जगन्नाथ

2. 6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न के उत्तर

1. सौ पुत्र
2. कोहल का
3. लन्दन
4. तण्डु
5. भरत के समान
6. कवि थे
7. अपने गुरू के रूप में
8. कास्मीर
9. विमल कला

10. वाराह गुप्त

बहुविकल्पीय प्रश्नो के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (ख)
5. (ख)
6. (घ)

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 पारसनाथद्विवेदी , भरतमुनि, सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी
2 बलदेव उपाध्याय बलदेव उपाध्याय संस्कृतसा. इतिहास चौखम्भासुरभारती प्रकाशन वाराणसी
3 सत्यव्रत सिंह विश्वनाथ साहित्यदर्पण चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2.8 उपयोगी पुस्तके

1 पारसनाथद्विदी भरतमुनि नाट्यशास्त्रम् सम्पूर्णानन्द सां वि.वि वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिनवगुप्त पाद का परिचय एवं उसका ग्रन्थ के विषय में समझाइयें

इकाई 3 नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य

रूप रेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य
3.3.1 नाट्यशास्त्र का पृथ्वी पर अवतरण
3.3.2 नाट्यमण्डप
3.3.3 विकृष्ट नाटयगृह
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व के इकाईयों के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि नाट्यशास्त्र का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हआ। इसमें मनुष्य के जीवन के कला के विषय में महŸवपूर्ण प्रकाश प्रस्तुत करने वाले नाट्यशास्त्र में क्या योगदान दिया।

नाट्यशास्त्र के महत्व को जानते हुए इस इकाई में आप जानेंगे कि मुनष्य के सामाजिक जीवन में नाट्य काला की अत्यन्त आवश्यकता होती है। नाट्यशास्त्र सदा शिव ब्रह्मा तथा भरत मुनि के विवेचक शास्त्र तो है ही एवं मनुष्य के कला के विषय में भी समझाया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से आप प्रतिपाद्य विषय के माध्यम से नाट्य के महत्व को भी बता सकेंगे।

3.2 उद्देश्य-

इस इकाई के अध्ययन के प्रश्चात् आप-

- भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्र के महत्व को समझाते हुऐ उनकी प्रतिपाद्य विषय के बारे में भी बता सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र के विषयावतरण के बारे में समझ सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र में ऋषिगणों ने पाँच प्रश्न किये इसके विषय में समझ सकेंगे।
- भरतमुनि द्वारा प्रदत्त पाँच प्रश्नों के उत्तर के विषय में भी समझ सकेंगें
- नाट्यशास्त्र का पृथ्वी अवरण किस प्रकार हुआ इसके विषय में भी समझ सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र का निर्माण किस प्रकार होता है इसके विषय में समझ सकेंगे।
- नाट्रयशास्त्र में स्तम्मारोपण का विधान किया है इसके विषय में भी समझ सकेंगे।

3.3 नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य

विषयावरण-

नाट्यशास्चत्र के प्रथम अध्याय में प्रारम्भ में भरतमुनि ने ब्रह्मा तथा शिव की स्तुति करते हुए उन्हें क्रमशः नाट्य तथा नृत्य का प्रथम उपदेष्टा माना गया है। ब्रह्मा ने ही वेदों तथा इसकी विधि शाखाओं से नाट्यविधायक तत्त्वों को ग्रहण किया था। ब्रह्मा जी ने तत्त्वों को ग्रहण कर नाट्य शास्त्र की चारों वेदों की गतिमा से मण्डित करते हुए ऐसा नाट्य वेद या पंचम वेद निर्माण किया जो सभी वर्णों के

लिए समान रूप से अध्ययन करने योग्य था। अभिनव गुप्त पाद ने नाट्यशास्त्र शब्द की व्याख्या अभिनव गुपत पाद ने नाट्यशास्त्र शब्द की व्याख्या अभिनव भारती में की है तथा नाट्यवेद और नाट्य शास्त्र दोनों को समानर्थक माना हे। इसके साथ ही अभिनव गुप्त ने ब्रह्मा के द्वारा दिया हुआ ज्ञान का प्रतिपादक स्रौत मात्र मानकर नाट्यशास्त्र का कर्ता भरत को हीत माना है। इसके साथ ही यह भी कि यह नाट्यशास्त्र सदा शिव ब्रह्मा तथा भरत मुनि के मतों का विवेचन शास्त्रमात्र नहीं है, इस तथ्य को भी उन्होंने दिखलाया है।

नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय-

नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य तथा उसके प्रयोगादि विषय को ध्यान में रखकर प्रारम्भ में ही ऋषिगण उनसे पाँच प्रश्न किया प्रथम प्रश्न नाट्यशास्. की रचना क्यों की गयी या यह क्यों उत्पन्न हुआ है? '' इसका आश्य यह है कि जब मानव जीवन के लिए निर्धारित पुरूषार्थों एवं इति कर्तव्यता का वेद से ही ज्ञान हो जाता है । तो फिर इस नवीन श्रम को कयों किया जाए। इसी प्रश्न का अगला भाग है कि यह किसके लिए बनाया गया है। यह प्रश्न है- जिसका आश्य है कि इस नाट्य वेद के अधिकारी कौन है? जो वेद द्वारा उपदेष्ट होने से बच गये हैं? इसी सन्दर्भ में उनका दूसरा प्रश्न है- इस नाट्यवेद के कितने विभाग हैं? क्या इसके इतने विभाग हैं कि इसे सर्वाग्ीण रूप से पृथक से समझना आवश्यक होगा।

तीसरा प्रश्न - इस नाट्यवेद के कितने अंग् है? उर्थात् क्या नाट्य विविध अगें का सजीव शरीर के अंगें जैसा कोई पारस्परिक सम्बन्ध भी है।

चौथा प्रश्न- नाटक के अगें को समझने लिए आवश्यक प्रयोग कौन है? यदि ये अग्, परस्पर सम्बद्ध होत तो इन अगें को किसी विशेष प्रमाण से जानना आवश्यक है। यदि ऐसा हो तो वह विशेष प्रमाण कौन सा हुआ हैं

पाँचवा प्रश्न है- नाटक के अंगों का प्रदर्शन करते हुए इस नाट्य का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए? उपर्युक्त प्रश्नों तथा इनसे सम्बद्ध प्रश्नों केउत्तर ही भरतमुनि का विरचित नाट्य शास्त्र है।

इस प्रंसग में ये ऊपर जो पाँच प्रश्न किये गये हैं उन प्रश्नों काउत्तर क्रमशः दिया जा रहा है।

प्रथम प्रश्न काउत्तर - प्रथम प्रश्न केउत्तर में भरत मुनि ने देवों की प्रार्थना पर ब्रह्मा द्वारा सृष्ट सार्ववर्णिक प४चमवेद के रूप में सम्मानित नाट्यवेद की रचना की सम्पूर्ण कथा को कहते हुए उन परिस्थितियों का प्रदर्शन किया जिससे यह न केवल देवगाणों लिए दृश्य काव्य या श्रव्य काव्य प्रयोजन को बतलाने वाला एक क्रि߀नीयक बने अपितु उन लोगों के लिए भी वह एक आदर्श एवं अनुकरणीय मार्ग का प्रदाता हो जिनके लिए वेद को पढ़ना निषिद्ध बतलाया गया है।

दूसरे प्रश्न काउत्तर - दूसरे प्रश्न काउत्तर में भरतमुनि ने नाट्यवेद के विभागों को प्रदर्शन करते हुए इसके वाचिका भिनय संगीत, अभिनय तथा रस के विभाग को बतलाया है।

तीसरे प्रश्न काउत्तर - तीसरे प्रश्न केउत्तर में भतरमुनि ने बतलाया कि नाट्यवेद में कहे हुए सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए नाटक मुख्य रूप से रस को प्रकट करता है, और अन्य कलाएँ इस रस को प्रभावशाली बनाने में वैसा ही सम्बन्ध होगा जिस प्रकार शरीर का अंगों के साथ रहता है। ये अंग परस्पर सम्बद्ध होकर नाटयशास्त्र की पूर्णता को प्रदान करता है।

चौथा प्रश्न काउत्तर - इस प्रश्न काउत्तर यह है कि नाटक के विभिन्न भागों का ज्ञान आँख, कान जैसी दोनों इन्द्रियों की सहायता से होने के कारण इसका प्रमाण प्रत्यक्ष स्वीकृत।

पाँचवे प्रश्न काउत्तर - पाँचवे प्रश्न काउत्तर सम्पूर्ण नाट्यवेद है। भरत मुनि द्वारा कथित इन पाँच प्रश्नों के परिवेश में नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति के विषय में उपलब्ध के विषय में पुराण शैली में प्राचीन कथा भी प्रस्तुत किया । नाट्यशास्त्र में उललब्ध यह इतिहास विश्व में प्राप्य नाटकसाहित्य के उद्भव का सर्वाधिक महत्व शाली प्राचीन विवरण है। यह इस प्रकार है-त्रेता युग के प्रारम्भ में इन्द्रादि देव गणों ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना किया। ब्रह्मा जी इन्द्रादि देवगणों से प्रशन्न होकर ऋग्वेद से पाठय, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनव, तथा अथर्ववेद से रस को ग्रहण करके नाट्यवेद की सृष्टि की यह सभी वर्णों के लिए पढ़ने लायक था। इसकी रचनाकर ब्रह्मा ने दवेगणों के अनुरोध पर इस वेद की शिक्षा ऋषियों को देने का निश्चय कर इस नाट्यवेद की शिक्षा भरतमुनि को दी तथा उनको अपने सों पुत्रों से सहयोग लेकर इसके प्रस्तुत करने का आदेश दिया। जब भतरमुनि ने अपने सौ पुत्रों को शिक्षा देकर ब्रह्मा जी ने इसमें कैशिकी वृत्ति की योजना का परामर्श दिया और और इस प्रयोग के लिए भतर मुनि द्वारा इष्ट स्त्री पात्रों की ब्रह्मा जी ने उप्सराओं को उत्पन्न कर पूर्ति भी की। तब भरतमुनि ने इन्द्रध्वज महोत्सवच के अवसर पर अपना यह प्रयोग प्रस्तुत किया जिसमें देवासुर संग्राम में देवताओं की विजय का अभिनय किया गया था। इसको देखकर दैत्यगण रूष्ट हो गये और अभिनय में विघ्न उत्पन्न करने लगे। जब किसी भी प्रकार से शान्त नहीं हुए तो नाट्य प्रयोग के रक्षा करने के लिए नाट्य गृह की आवश्यकता का अनुभव किया गया और तब विश्वकर्मा जी के द्वारा इस के लिए नाट्य गृह का निर्माण किया गया और विधिवत रंगपूजा के साथ रंग के रक्षक देवगणों को भी प्रेक्षागृह में नियुक्ति की गयी।

इस प्रेक्षागृह में भरत ने पितामह ब्रह्मा द्वारा निर्मित 'अमृतमन्थन' समवकार को प्रस्तुत किया गया। इस प्रयोग में सभी देव एवं दैत्यगणों ने दर्शक के रूप में उपस्थित होकर अपने अपने कर्म तथा भावों को प्रस्तुत होते हुए देखकर प्रशन्नता व्यक्त की । तब फिर पितामह ब्रह्मा ने भगवान शिव को इसी प्रयोग को बतलाने के लिए भरतमुनि को निर्देश दिया। उनके आदेशानुसार भरतमुनि ने हिमालय पर्वत के एक रमरणीय शिखर पर पूर्वरंग विधानपूर्वक अमृतमन्थन समवकार तथा त्रिपुरा

दाह नामक डिम रूपकों को प्रस्तुत कया जिन्हें देखकर प्रशन्न भगवान शंकर ने भरतमुनि को पूर्वरंग

विधि में ताण्डव के संयुक्त करने लिए तथा उसे तण्ड द्वारा प्राप्त करने का आदेश दिया। भगवान शंकर के आदेश को भरतमुनि ने सहर्ष स्वीकार किया और तण्ड से ताण्डव का शिक्षा प्राप्त करके उस ताण्डव को पूर्वरंग में समावेश किया जिसमें माता पार्वती द्वारा सुकुमार श्रृंगारिक लास्य को भी योगदान था। इस नाटयवेद के प्रभाव हेतु इस नाट्यवेद के प्रभाव से चार नाट्य वृत्तियों को अविष्कृत कर उन्हें भी नाट्यवेद में श्री विष्णु ने प्रविष्ट करवाया। इस प्रकार निर्मित इस दिव्य नाट्यवेद को अवररूप में पृथ्वी पर स्थानान्तरित करने का कार्य भी श्री भरतमुनि ने किया जिसकी कथा नाट्यशास्त्र के अन्तिम अध्याय में दी गयी है।

3.3.1 नाट्यशास्त्र का पृथ्वी अवतरण-

इस प्रसंग में नाट्यशास्त्र में दो कथाएँ हैं। प्रथम कथा के अनुसार भरत पुत्रों को अपनी कला के ज्ञान पर अभिमान हो गया था। जिससे एकवार उन्होंने एक नाट्य प्रदर्शन में मुनियों के चरित्र पर अक्षेप पूर्ण व्यग् प्रस्तुत कर दिया। इसे देखकर मुनियों ने क्रोध में होकर भरतमुनि के पुत्रों को शाप दे दिया कि ऐसे नाट्यशास्त्र का नाश हो जाए तथा भरतमुनि के पुत्र भी शूद्र हो जाए। यह सुनकर देवताओं को नाट्यशास्त्र के नाश की चिन्ता हुई। और उन्होंने मुनियों से जाकर शाप को क्षमा करने का अनुरोध किया। मुनियों ने अपने दिये हुए शाप को पूर्ण रूप से अन्यथा न होने की बात कहते हुए उसमें संशोधन किया कि नाट्यविधा नष्ट नहीं होगी किन्तु भरतमुनि के पुत्रों को शुद्र अवश्य होना पड़ेगा।

इस शाप के चरितार्थ होने के प्रसंग में नाट्यशास्त्र में दूसरी कथा और दी गयी है। इसके अनुसार जब इन्द्र का पद नहुष को मिला तो स्वर्ग में उन्होंने अप्सराओं से अमिनीत नाट्य प्रयोग को देखकर भूलोक में अपने घर भी वही नाट्य प्रयोग प्रस्तुत करने का देवताओं से अनुरोध किया। देवताओं ने नहुष को समझाया की यद्यपि अप्सराओं के द्वारा भूतल पर नाट्य सम्भव नहीं है किन्तु यह कार्यआप भरतमुनि के पुत्रों को पृथ्वी पर ले जाकर अवश्य सम्पन्न करवा सकते हैं। नहुष ने भरतमुनि के पुत्रों को पृथ्वी पर नाट्य प्रस्तुत करने की प्रार्थना की जिसको स्वीकार कर भरतमुनि ने अपने पुत्रों को पृथ्वी पर जकार नाट्य प्रयोग करने का आदेश देकर समझाया कि इस प्रकार वहाँ जाने से ऋषि प्रस्त शाप का भी अन्त हो जायेगा। तब भरतमुनि पुत्रों ने स्वर्ग से जाकर नहुष के अन्तः पुर में नाट्य प्रयोग प्रस्तुत किये तथा कुछ दिन भूतल पर गृहस्थ भाव में समय व्यतीत कर शाप के अन्त हो जाने पर पुनः स्वर्ग लौटे आये। किन्तु वे अपनी सन्तती को इस नाट्य के प्रयोग आदि को शिक्षा दे गये जिससे पृथ्वी पर नाट्यशास्त्र का प्रचार प्रसार हो गया।

3.3.2 नाट्य शास्त्र

नाट्य शास्त्र के द्वितीय अध्याय में नाट्य की प्राथमिक आवश्यकता के कारण नाटय गृह की निर्माण-विधि विस्तार से दिखलायी गयी है। विश्वकर्मा ने नाट्यमण्डप के तीन प्रकार के सन्निवेशों तथा

उनका विधान बतलाया इनमें विकृत नाट्य गृह आयताकार चतुरस्र नाट्य गृह वर्गाकार तथा त्यस्र नाट्य गृह त्रिभुजाकार होता है। विकृष्ट को कुछ लोग मण्डलाकार मानते हैं किन्तु यह विवरण नाट्य शास्त्र के अनुसार न रहने से मान्य नहीं होता है। इनमें प्रमाण की दृष्टि से फिर नाट्यमण्डप के और भी भेद किये गये हैं जो ज्येष्ठ, माध्यम और कनीयस रूप में बनते हैं। ज्येष्ठ या विकृष्ठ मण्डप देवों के लिए मध्यम या चतुरस्र मनुष्यों के लिए उपयोगी होता है। ज्येष्ठ नाट्य मण्डप के विशाल रहने से पात्रों के द्वारा उच्चारिह पाठयांश दर्शकों को श्राव्य नहीं होता है। और नहीं उनकी भावपूर्ण शरीराभिनय की मुद्राएँ दृश्य हो पाती है। अतएव मध्यम नाट्य गृह ही अधिक उपयोगी होता है। इसी प्रकार अवर या त्यस्र नाटय गृह सामान्य जनता के लिए उपयोगी होता है। विकृष्ट नाटय गृह का प्रमाण 908 हाथ या दण्ड का होता है, चतुरस्र का प्रामण 64 हाथ या दण्ड का तथा त्यस्र का प्रमाण 32 हाथ या दण्ड होता है।

3.3.3 विकृष्ट नाट्य गृह-

सभी प्रकार के नाट्य गृहों के निर्माण के पूर्व उचित भूमि का चयन करना चाहिए। इसके उपरान्त भूमी का शोधन स्वस्थ वैलों द्वारा हल चलाकर करते हुए अस्थि, कील आदि अशुद्ध पदार्थों को भूमि से निकाल देना चाहिए। इसके बाद उजले दृढ़ सूत्र से भूमि का माप करना चाहिए तथा इस समय पर्याप्त सतर्कता बरतनी चाहिए, जिससे न तो हाथ में छूटने पाये और नहीं टूटने पावे अन्यथा किसी अमंगल के होने की अशंका रहती है। मध्यम विकृष्ट मण्डप की विधि यह है कि चौसठ हाथ लम्बी तथा बत्तीस चौडी़ लम्बाई का क्षेत्र लेकर फिर डोरी से उसको दो भाग कर दें। इन दो भागों को फिर और दो भागों में बाँटें जिससे से एक भाग पर रंगपीठे तथा रंगशीर्ष तथा दूसरे भाग पर नेपथ्य गृह की रचना करें।

निवेशन

इस प्रकार हो जाने पर इसके निवेश या नींव रखने की विधि सम्पन्न करना चाहिए तथा समय उत्सव मनाते हुए मंगल वाधों का निर्घोष करनया चाहिए क्योंकि ध्वनियों से आकाश परिष्कृत एवं विशुद्ध हो जाता है। और अनिष्ट की अशंका निर्मूल हो जाती है। इस समय हा पाखंडी, सन्यासी तथा विकलांग को नहीं आने देना चाहिए तथा रात्रि में दिशाओं में बलि दी जाये तो उनके अनेक देवता के मन्त्र तथा बलि पदार्थ के अनुरूप विधिवत् सम्पन्न की जाती हे। इस प्रकार बड़े मनोयोग से नींव रखने या शिलान्यास का कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

स्तम्मारोण

नींव की स्थापना के बाद मण्डप निर्माण कार्य का प्रारम्भ करना चाहिए तथा दीवारों को उठाते समय स्तम्मारोपण करना चाहिए। यह कार्य भी उत्सव मनाते समय शुभ मुहूर्त में पुजा पाठ के साथ करना चाहिए। इनका विवरण नाट्यशास्त्र 2/ 93 से 99 तक में विस्तार से दिया गया हैं।

मत्तवारणी

स्ताम्मारोपण के बाद मत्तवारणी का निर्माण करना चाहिए। रंगपीठ के दोनों बाजू में इसका निर्माण किया जाता है। इसकी ऊँचाई रंग पीठ से ऊँची और डेढ़ हाथ की रखनी चाहिए । मत्तवारणी वरामदे की आकार की होती है (इनका विशेष विवरण ना0 शा0 अ0 2/36 में देखना चाहिए)

रंगपीठ-

इसके बाद रंगपीठ की रचना करना चाहिए तथा रंगपीठ केपिछले भाग में नेपथ्य का निर्माण करना चाहिए जो रंगपीठ से अपेक्षाकृत ऊँचा रहे, इससे होकर नेपथ्य गृह में जाने के लिए दो द्वार रखे जाए जिनसे पात्र प्रवेश और निष्क्रमण करें। (इसका विस्तार से ना0शा0 पृ सं0 464 पर दिया गया है।)

दारूकर्म

नाट्य गृह की रचना में लकडी़ की कारीगरी भी अच्छी प्रकार से करनी चाहिए। इसे दारू कर्म कहते हैं। इसके अनुसार सभी स्तम्भ द्वार और वातायन विविध विकल्पों से पूर्ण होनी चाहिए इसमें स्थान पर चौंके बने हुए रहने चाहिए। (इसका विवरण विस्तार में ना0शा0अ0 2/63 से 66 में दिया गया है)

मण्डप

यह नाट्य मण्डप द्विभूमि बनाया जाता है । इस मण्डप में छोटे वातायन या खिडिकियाँ रखनी चाहिए जिससे वायु का प्रवेश कम हो और शब्द गम्भिर रूप से सुनाई दे तथा वाद्य संगीत के सूक्ष्म वादनादि क्रिया कलापों को आसानी से सुना जा सके। (इनका विवरण विस्तार से ना0शा0 अ0 2/ 85 86 में दिया गया है)

चतुरस्रनाट्यमण्डप

चतुरस्र नाट्य मण्डप को लम्बाई और चौडा़ई (32=32) 32-32 हाथ की रहने से यह वर्गाकार नाट्यमण्डप कहलाता है। इसके निर्माण में वहीं सब कार्य होते है जो विकृष्ट के स्वरूप वर्णन के प्रसंग में पूर्व में बतलाये गये हैं। इसकी दीवारें इटों से निर्माण की जाय इसमें दशस्तम्भ रखना चाहिए। विकृष्ट की अपेक्षा छोटा मण्डप होने से इसमें प्रेक्षकों के बैठने के लिए सीढी़नुमा बैठक का निर्माण किया जाए जिसे लकडी़ और ईट का बनाया जाय। ये सीड़ियाँ धरातल से एक हाथ उपर उठते हुए इतनी ऊँचाई तक चली जाँय जहाँ से रंगपीठ (सीधा) दिखलाई दे सकता हो।

त्यस्रनाट्यमण्डप

त्यस्र संजक नाट्यमण्डप का आधार त्रिभुज जैसा रखा जाता है तथा इसके मध्य भाग में जिस रंगपीठ

की रचना होती है वह भी त्रिभुत ही रहता है। इसका एक द्वार कोने में निकला हुआ रखा जाता है और दूसरा द्वार रंगपीठ के पिछली और रखते हैं। इसमें पहला द्वार सामान्यजन के प्रवेश के लिए और दूसरा द्वार अभिनेताओं के प्रवेश के लिए होता है। चतुरस्र में अभिहित विधि के अनुसार ही इसमें भी दीवारों का निर्माण किया जाता है और इसी प्रकार स्तम्भ भी लगाये जाते हैं। शेष कार्य विकृष्ट नाट्य गृह के समान त्यस्र नाट्य गृह में भी होता हैं। त्यस्र नाट्यमण्डप का यही स्वरूप है।

नाटयशास्त्र के तृतीय अध्याय में नाट्य मण्डप निर्माण के बाद देवगणों के अर्चन की विधि का विस्तार से निरूपण किया गया हैं क्योंकि देवपूजन के बिना नाट्यप्रयोग का प्रस्तुत करना उचित नहीं है तथा भरतमुनि ने भी इसी कारण इस अर्चन विधि का अवश्य सम्पादन बतलाया है।

नाट्यशास्त्र के चतुर्थाअध्याय में ताण्डव तृत्य के उद्भव के साथ नृत्य के लास्यादि प्रमेद का विवरण देकर उसके करण, अंगहार आदि का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम इस क्रम में भरत मुनि के नृत्य के उद्भव का भी विवरण दिया है, तथा नाट्य में प्रयोग भगवान शिव जी के प्रेरणा से हुई।

इस नृत्य में हस्त कटि पार्श्व, पाद, जंधा, उदर वक्षःस्थल तथा पृष्ट आदि स्थानों का तथा गति, चेष्टा आदि क्रियाओं का महŸव होता है और इसी कारण कभी स्थित तथा कभी दुरतगति की चेष्टाएँ रखी जाती है। इन चेष्टाओं से नृत्य में मातृकाएँ निर्मित होती है तथा तीन या चार मातृकाओं से कारण का संगठन या निर्माण का कार्य निर्माण जाता है।

भरतमुनि ने इस अध्याया में एक सौ आठ करणों का उनकी विभिनन मुद्राओं के साथ विस्तार से विवरण दिया है तथा यह विवरण अनेक परवर्ती संगीत नाटय ग्रन्थों में पर्याप्त विवेचन के साथ मिलता है। जिसका आधार भरतमुनि का नाट्य शास्त्र है। इन कारणों से अंगहार बनते है, जिनकी संख्या बत्तीस है। नृत्य में प्रभाव शालिता और शालीनता लाने के लिए पादरेचक कटिरेक कर रेचक तथा कण्ठ रेचकों की कल्पना की गयी है। तथा ताण्डव के उपकरण मूत इन कारणों, अंगहारों एवं रेचकों की रूपरचना भगवान शिव ने की थी, जिनसे तण्डु ने इन्हें प्राप्त किया और तण्ड से निर्दिष्ट होने से इस नृत्य को ताण्डव नाम से कहा जाने लगा।

3.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि साहित्य शास्त्र में नाट्यशास्त्र क्या है? इसमें प्रतिपाद्य विषय क्या है? इसके विषय में आप समग्र रूप से परिचित होंगे। नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरतमुनि ने ब्रह्मा तथा शिव की स्तुति करते हुए उनको नाट्य तथा नृत्य दोनों को उपेदश कर्ता माना है। नाट्यशास्त्र का प्रतिपाद्य विषय में ऋषिगणों ने पाँच प्रश्न किये उन पाँचों प्रश्नों केउत्तर भरतमुनि ने क्रमशः दिया है। पृथ्वी पर नाट्यशास्त्र के अवतरण का वर्णन करते हुए नाट्मण्डप किस प्रकार होना चाहिए इसका वर्णन सम्यग् प्रकार से किया गया है।

3.5 शब्दावली

प्रतिपादक	वर्णन करने वाला
स्रौत	सुनकर
प्राथ	प्राप्त होने वाला
आविष्कृत	खोज किया
नाटयगृह	नाट्य का घर
समक्ष	सामने
सृष्टि	रचना
समावेश	मिलाया
नाट्यमण्डप	नाटय का मकान (भवन)
माप	नापना
निर्घोष	आवाज
स्तम्यारोपण	खम्भा को स्थापित करना
गवाक्ष	खिड़की
वातायन	खिड़ंकी
उदर	पेट

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में भरतमुनि ने किसकी स्तुति की ?
2. नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य विषय में कितने प्रश्न ऋषि गणों ने किया?
3. ऋषि गणों का दूसरा प्रश्न क्या था?

4. गीत की उत्पत्ति किस वेद से हुई?
5. अभिनय की उत्पत्ति किस वेद से हुई?
6. देवताओं के अनुरोध से ब्रह्मा ने वेद की शिक्षा किसको दी?
7. मुनियों के चरित्र पर आक्षेप पूर्ण व्यंग किसने किया?
8. त्यस्र संज्ञक नाट्यमण्डप का आधार किसके जैस होता है?
9. स्तम्मारोपण के बाद किसका निर्माण करना चाहिए?

बहु विकल्पात्मक प्रश्न

1- ऋषि गणों के पाँच प्रश्नों केउत्तर किसने दिया-
   क- अभिनवगुप्त ख - भरतमुनि
   ग- विश्वनाथ घ- पण्डित जगन्नाथ
2- मुनियों ने शाप किसको दिया-
   क- विश्वनाथ को ख- जगन्नाथ को
   ग- भरतमुनि के पुत्रों को घ- अभिनव गुप्त को
3- किकृष्टनाटय गृह का निर्माण कितने हाथों का होता है-
   क- 908 ख- 90
   ग- 10 घ- 50
4- रंगपीठ के पीछले भाग में किस गृह का निर्माण करना चाहिए-
   क- नं पथ्य गृह ख- मण्डप गृह
   ग- नाट्य गृह घ- नृत्य गृह

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु-उत्तरीय प्रश्न का उत्तर

1. ब्रह्मा तथा शिव की
2. पाँच प्रश्न
3. नाटय के कितने विभाग हैं।
4. सामवेद से
5. यजुर्वेद से
6. भरतमुनि को

7. भरतमुनि के पुत्रों ने

8. त्रिभुजाकार

9. मत्तवारणी

बहु विकल्पात्म प्रश्नों के उत्तर

1- ख

2- ग

3- क

4- क

3.7 सन्द्रर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3.8 उपयोगी पुस्तकें

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

पाँचवा प्रश्न का उत्तर क्या है? इसके विषय में सम्यग् रूप से वर्णन करें।

इकाई -4 नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय(पूर्वार्द्ध)अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना
4.2. उद्देश्य
4.3. मंगलाचरण से लेकर श्लोक सं012तक) अर्थ, व्याख्या
4.4. श्लोक सं 13 0से 25 तक) अर्थ व्याख्या-(13-25)
4.5. श्लोक सं 26 0से 53 तक) अर्थ व्याख्या(26-53)
4.6. श्लोक सं54 0- 74तक) अर्थ व्याख्या (54-74)
4.7. श्लोक सं75 0-से 82तक) अर्थ व्याख्या (75-82)
4.8. सारांश
4.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ
4.11. सहायक ग्रन्थ
4.12. निबन्धात्मक प्रश्न

4.1. प्रस्तावना-

नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है इसके पूर्व की इकाइयों में आपने नाट्यवेद के संक्षिप्त इतिहास का परिचय प्राप्त करते हुए इसके टीकाकारों एवं नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य की विस्तृत जानकारी प्राप्त किया है। प्रस्तुत इकाई में नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय पूर्वार्द्ध के श्लोकों की व्याख्या कर आपके समक्ष अध्यनार्थ प्रस्तुत हैं।

नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय में भरतमुनि ने ब्रहमा और शिव की वन्दना करने के पश्चात् उसके प्रयोजन तथा विविध अंगों का वर्णन किया है। ब्रहमा द्वारा इन्द्र ने नाट्यवेद की जानकारी प्राप्त की उसमें देवों के प्रशिक्षित करने में असथकर्ता बताया है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझायेगे कि नाट्यवेद की उत्पत्ति किस प्रकार हुए, इसकी शिक्षा किसने दी और किसने प्राप्त की तथा इसका विस्तार किस प्रकार हुआ।

4.2. उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि

1. नाट्यवेद कैसे उत्पन्न हुआ।
2. नाट्यशास्त्र के प्रणेता कौन है, इनका मन्तव्य क्या है।
3. नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में क्या वर्णित है।
4. ब्रहमा जी ने किसे नाठ्य वेद की शिक्षा दी
5. इन्द्र ने देवों को प्रक्षिशित करने के किस किस प्रकार असमर्थता जतायी।
6. नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय का प्रतिपाद्य क्या है।

4. 3 मंगलाचरण से लेकर श्लोक सं0 12तक अर्थ व्याख्या

प्रणम्य शिरसा देवौ पितामहमहेश्वरौ।

नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि ब्रह्रणा यदुदाहृतम्।।1।।

अन्वयः) -अहं (पितामहमहेश्वरौ देवौ शिरसा प्रणम्य नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि यत् ब्रह्रणा उदाहृतम्।

शब्दार्थ-पितामहमहेश्वरौ=श्री ब्रह्मा और शिव। देवौ =देवों को। शिरमा प्रणम्य=सिर से प्रणाम कर।नाट्शास्त्रं प्रवक्ष्यामि=नाट्शास्त्र कहूॅंगा। यत्=जिसे। ब्रह्रणा उदहृतम्=श्री ब्रह्मा जी ने कहा था।

अनुवाद)-मैं (पितामह) ब्रह्मा जी (और महेश्वर) श्री शिव (देवों को सिर से प्रणाम कर नाट्यशास्त्र का प्रवचन करूॅंगा जिसको ब्रह्मा जी ने कहा था।

व्याख्या-भारती परम्परानुसार ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलचरण करते हुए आचार्य भरत ने पितामह और महेश्वर को प्रणाम किया है। प्रश्न यह है कि त्रिदेवों में से केवल दो को ही प्रणाम क्यों किया है? इसका उत्तर यह है कि पितामह ने ही इस नाट्यशास्त्र को पहले पहल भरत को बतलाया था; जैसाकि उन्होंने इसी अध्याय के 25वें श्लोक में यह स्वयं स्वीकार किया है -'आज्ञापितो विदित्वाहं नाट्यवेदं पितामहात्। पुत्रानध्यप्यामास प्रयोगं चापि तत्वतः।।

इस कथन से श्री ब्रह्मा आचार्य भरत के गुरू सिद्ध होते हैं। भगवान् शिव आनन्द निभ्रर होकर क्रीडाशील होते हैं तो सन्ध्यादि में नृत्य करते हैं उसका उपस्कारी नृत्त नाट्यशास्त्र में भी है, अतः वे भी आचार्य के गुरू हैं, अतएव वे दोनों नमस्कार्य है।

जग्राह पाठयमृग्वेदात् सामम्या गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

इस कथन से सिद्ध होता है कि भरत ने नाट्यशास्त्र रूपी नाट्य वेद का कथन करने की ही प्रतिज्ञा की है जिसे प्रारम्भ में उनके परमगुरू पितामह)ब्रह्मा जी (ने उनसे कहा था।

समाप्तजप्यं व्रतिनं स्वसुतैः परिवारितम्।

अन्ध्याये कदाचित्तु भरतं नाट्यकोविदम्।।2।।

मुनयः पर्युपास्यैनमात्रेयप्रमुखाः पुरा ।

पप्रच्छुस्ते महात्मानो नियतेन्द्रियबुद्धयः।।3।।

अन्वयः -पुरा महात्मानः नियतेन्द्रिय बुद्धयः आत्रेयप्रमुखाः ते मनयः तु कदाचित् अनध्याये समाप्तजायं व्रति नं स्वसुतैः परिवारितं नाट्यकोविदम् एनम् भरतं पर्युपास्य पप्रच्छः।

शब्दार्थ-पुरा=आदि कल्प में। महात्मानः नियतेन्द्रियबुद्धयः= विशालचेता तथा संयमित इन्द्रिय-

बुद्धि वाले। आत्रेयप्रमुखाः=दत्तात्रेय आदि। ते मुनायः= उन मुनियों ने। ब्रतिनम्=ब्रतशील। स्वसुतैः परिवारितम्=अपने पुत्रों) तथा शिष्यों (के साथ विराजमान। नाट्य-कोविदम्=नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ। एनम् भरतम्=इन भरत की। र्प्युपास्य= सम्यक् उपासना कर। पप्रच्छुः=पूछा।

अनुवाद-कल्प के आदि में विशाल चेता तथा संयमिति इन्द्रिय-बुद्धि वाले दत्तात्रेय आदि उन मुनियों ने किसी समय पाठ की समाप्ति पर जप को समाप्त कर चुके व्रतशील तथा अपने पुत्रों)और शिष्यों (के समीप विराजमान इन आर्चा भरत की सम्यक् उपासना कर उनसे पूछा।

व्याख्या-ब्रह्मा जी ने भरत मुनि को नाट्यशास्त्र का उपदेश आदि कल्प में ही दिया था, और भरत मुनि से प्रश्नकर्ताओं ने उनसे आदि कल्प में ही नाट्य के विषय में पूछा था, इसलिए श्लोक में 'पूरा' शब्द का प्रयोग किया गया है'। एक बार भरतमुनि अपना जप-पाठ समाप्त कर अपने पुत्रों और पुत्रवत् पालित शिष्यों के मध्य बैठे हुए थे। उसी समय दत्तात्रेय आदि प्रमुख ऋषिगण उन तपस्वी के पास आये। वे ऋषिगण वेदद्रष्टा होने से महात्मा और अपनी तपः साधना के बल पर इन्द्रियजयी और स्थिर बुद्धिवाले थे।

योऽयं भगवता सम्यग्ग्रथितो वेदसम्मितः।

नाट्यवेदः कथं ब्रह्रन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते।।4।।

कत्यङ्ग किंप्रमाणश्च प्रयोगश्चास्य कीदृशः।

सर्वमेतद् यथातत्वं भागवन् वक्तुमर्हसि।।5।।

अन्वयः-ब्रह्रन् !भगवता योऽयं वेदसम्मितः नाट्यवेदः सम्यक् ग्रथितः)सः (कथं कस्य वा कृते कत्यङ्गः किंप्रमाणश्च उत्पन्? अस्य प्रयोगश्च कीदृशः? भगवन् !एत्त सर्वं यथातत्वं वक्तु अर्हसि।

शब्दार्थ-भगचता=आप श्रीमान् के द्वारा। योऽयम्=जो यह वेदसम्मितः नाट्यवेदः=वेद के सदृश पवित्र नाट्यवेद। सप्यक् ग्रथितः =सुन्दरतम वस्तु समायोजना से गुम्फित। कथम् =क्यों। कस्य वा कृते=अथवा किसके लिए। कत्यङ्गः=कितने अंगो वाला। किं कैसे किया जाता है। भगवन् =भगवन्। एतत् सर्वम्=यह सब कुछ। यथातत्वम्=तत्व-विवेचनपूर्वक। वक्तुम् अर्हसि= कहने में समर्थ हैं।

अनुवाद-बहा्रन् आपने जो यह वेद के समान नाट्यवेद सुन्दरतम वस्तु योजना से गुम्फित किया है, वह क्यों और किसके लिए उत्पन्न किया है? इसके कितने अंग हैं? क्या प्रमाण है अथवा कितनी

संख्या हैं? भगवन् !यह सब आप ही तत्व विवेचनपूर्वक हमको बतलाने में सक्षम हैं।

व्याख्या-आत्रेयादि मुनिजन आचार्य भरत के समीप अपनी जिज्ञासा के शमनार्थ गये थे, इसलिए उन्हें गुरू मानते हुए उनके लिए 'भगवता' पद का प्रयोग किया है। वे कहते हैं कि हम आप गुरूवत् पूज्य आचार्य से यह जानना चाहते हैं कि आपने इस नाट्यवेद की रचना क्यों की अर्थात् इसकी रचना का क्या कारण है? दूसरे, यह नाट्यवेद तो वेद है। वेद-पाठ के श्रवण का अधिकार केवल द्विजों को प्राप्त है। क्या इस नाट्यवेद का द्विजेतर लोग भी पठन-श्रवण कर सकते हैं, अन्यथा इसके रचने का क्या प्रयोजन है? तीसरे, इसके कितने अंग है, अर्थात् यह केवल अंगिरूप है अथवा अंग समुदाय मात्र? चौथा प्रश्न है कि यह किस प्रमाण वाला है? इस विषय में आचार्य अभिनवगुप्त का मतह कि 'दृश्यं श्रव्यं च यत्' इस विषय में प्रश्न करना तो निरर्थक है। तब इस प्रश्न का क्या निहितार्थ है? इसका समाधान् प्रस्तुत करते हुए अभिनव भारतीकार कहते है कि उक्त प्रश्न का आशय है-नाट्य के जो कुछ अंग है, वे यदि विज्ञेय हैं तो उनकी अंगता किस प्रमाण से जानी जाती है? कुछ विद्वान् 'प्रमाण' शब्द का अर्थ' संख्या' बतलाते है। उनका मत है' कि नाट्यगत रूपकादि की पाठ्य, अभिनय, रस और गीतों की क्या संख्या है? पॉचवॉ प्रश्न है कि इसका प्रयोग कैसे किया जाता है अर्थात् क्या इसके क्या इसके अंगों का एक-साथ प्रयोग किया जात है कि इसका प्रयाग किया जाता है अथवा भिन्न-भिन्न कलों में?

तेषां तु वचनं श्रुत्वा मुनीनां भरतो मुनिः।

प्रत्युवाच ततो वाक्यं नाट्यवेदकथां प्रति।।6।।

अन्वयः-भरतः मुनिः तेषां मुनीनां तु वचनं श्रुत्वा ततः नाट्यवेदकथां प्रति वाक्यं प्रत्युवाच।

शब्दार्थ-भरतमुनिः=भरतमुनि। तेषां मुनीनाम्=उन मुनियों के। वचनं श्रुत्वा=वचन को सुनकर। ततः=तदनन्तर। नाट्यवेद कथां प्रति=नाट्यवेद की कथा से सम्बद्ध। वाक्यम्=वचन। प्रत्युवाच=प्रत्युत्तर देते हुए बोले।

अनुवाद-उन मुनियों के वचन सुनकर भरतमुनि नाटफयवेद कथा के प्रति उन्मुख होकर उत्तर वाक्य बोले।

उन मुनियों के वचन सुनकर भरतमुनि प्रत्युत्तर देने लगे। कारिका में 'तु' पद निश्चयात्मक है जिसका तात्पर्य यह है कि उनके वचन सुनकर अविलम्ब प्रत्युत्तर देने के लिए उन्मुख हैं। इस तत्व-निरूपण में मुनियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का यथाक्रम उत्तर देना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि उनका तत्व-

विवेचनापूर्वक उत्तर देना, क्योंकि इस तत्व-निरूपण में प्रश्नों के प्रत्युत्तर का क्रम-भंग भी संभव है।

भव शुचिभिर्भूत्वा तथाऽवहित मानसैः।

श्रूयतां नाट्यवेदस्य सम्भवो ब्रह्ानिमित्तः।।7।।

अन्वयः-भव शुचिभिः तथा अवहितमानसैः भूत्वा ब्रहानिर्मित नाट्यवेदस्य संभवः श्रूयताम्।

शब्दार्थ-भवöिःः=आप लोग। शुचिभिः=पवित्र। तथा अवहितमानसैः=एकाग्रचित वाले। भूत्वा=होकर ब्रह्ानिर्मितः=ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित। नाट्यवेदस्य =नाट्यवेद की। संभवः=उत्पत्ति। श्रूयताम्=सुनिये।

अनुवाद-आप लोग पवित्र और एकाग्रचित्त वाले होकर ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित नाट्यवेद उत्पत्ति सुनिये।

व्याख्या-भरतमुनि कहते हैं कि आप लोग अपने काय और मन से शुद्ध होइए तत्पश्चात् अपने चित्त को एकाग्र कीजिये जिसमें मैं आपको यह बतला सकूॅं कि श्री ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित इस नाट्य की इस लोक में उत्पत्ति के विषय में बतला सकूॅं, अर्थात् मैं आपकी इस शंका का समाधान कर सकू कि नाट्यवेद कैसे उत्पन्न हुआ।

पूर्वकृतयुगे विप्रा !वृत्ते स्वायम्भुवेऽन्तरे।

त्रेतायुगेऽथ सम्प्राप्ते मनोर्वैवस्वतय तु।।8।।

ईर्ष्या क्रोधादिसंमूढे लोके सुखितदुःखिते।।9।।

देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगेः।

जम्बूदीपे समाक्रान्ते लोकपालप्रतिष्ठिते।।10।।

महेन्द्रप्रमुखैदैवैरूक्तः किल पितामहः।

क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्।।11।।

न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु ।

तस्मात् सृजाऽपरं वेदं पन्चमं सार्ववर्णिकम् ।।12।।

अन्वयः-विप्राः !पूर्वकृतयुगे स्वायम्भुवे अन्तरे वृत्ते अथ त्रेतायुगे सम्प्राप्ते वैवस्वतस्य मनोः)अन्तरे (प्राप्ते) सति (लोके तु ग्राम्यधर्मे प्रवृत्ते कामलोभवशगते ईर्ष्या क्रोधादि संमूढेसुखितदुःखिते) सति (

लोकपाल प्रतिष्ठिते जम्बूदीपे देवदानवगन्धर्वयक्षर क्षोमहोरगैः समाक्रान्ते) सति (पितामहः नाट्यशास्त्र) प्रथम अध्याय- (भरतमुनि

महेन्द्रप्रमुखैः देवैः उक्तः किल-''(वंय (क्रींडनीयमक् इच्छामः यत् दृश्यं श्रव्यं च भवेत्। अयं वेदव्यवहारः शूद्रजातिषु न संश्राव्यः, तस्मात् अपरं सार्ववर्णिकपन्चमं सृज।

शब्दार्थ-विप्राः=हे ब्राहा्रणो। पूर्वकृतयुगे=पूर्व सतयुग में। स्वायम्भुवे अन्तरे वृत्ते =स्वायम्भुव मनु के मन्वन्तर के समाप्त होने पर। अथ=और। त्रेतायुगे सम्प्राप्ते=त्रेतायुग के प्रारम्भ होने पर। वैवस्वतस्य मनोः अन्तरे सम्प्राप्ते=वैवस्वत मनु के मन्वन्तर के आने पर। लोके तु=और लोक् में। गा्रम्यधर्मे वृत्ते=ग्राम्य धर्म की प्रवृत्ति बढ़ने पर। काम लोभ वशंगते=काम और लोभ के वशीभूत हो जाने पर। ईर्ष्याक्रोधादि संमूढे सुखित दुःखिते=ईर्ष्या क्रोधादि स मूढ होने के कारण सुखी-दुःखी होने पर लोकपाल प्रतिष्ठिते=इन्द्रादि लोकपालों द्वारा प्रतिष्ठित। जम्बू दीप में देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षेमहोरगैः समाक्रान्ते=देव, दानव, यक्ष राक्षस और बडे-बडे सर्पो से रौदि जाने पर। महेन्द्र प्रमुखै देवैः=देवराज इन्द्रादि देवों। पितामहः उक्तः=पितामह ब्रहा्रजी से कहा। क्रीडना ीयकम् इच्छामः=मनोरंजन की वस्तु चाहते है। यत्=जो दृश्यं श्रव्यं च भवेत्=दृश्य और श्रव्य हो। अयम्=यह। वेदव्यवहारः=वेदोपदेश। शूद्रजातिषु न संश्राव्यः= शुद्र जातियों में सुनाने योग्य नहीं है। तस्मात्=इसलिए। अपरः=अन्य। सार्ववर्णिकम्=सभी वर्णो के सुनाने योग्य नहीं है। वेदव्यवहारः=वेदोपदेश। शूद्रजातिषु न संश्राव्यः= शूद्र जातियों में सुनाने योग्य नहीं है। तस्मात्=इसलिए। अपरः=अन्य। सार्ववर्णिकम्=सभी वर्णो के लिए संश्राव्य। पन्चमं वेदं सृज=पॉचवें वेद की रचना कीजिये।

अनुवाद-हे ब्राहा्रणो !पूर्व सतयुग में स्वायम्भूव मनु के अन्तर के समाप्त होने और त्रेता के प्रारम्भ में ववस्वत मनु के अन्तर के प्रारम्भ हो जाने पर तथा संसार में ग्राम्यधर्म की प्रवृत्ति बढ़ जाने पर काम और लोभ के प्राप्त होने तथा ईर्ष्या, क्रोधादि से मूढ़मति होने के कारण सुखी-दुःखी होने पर इन्द्रादि लोकपालों से प्रतिष्ठा-प्राप्त जम्बद्वीप को देव, दानव, यक्ष, राक्षस और क्रीडानीयक)मनोरंजन (की वस्तु चाहते हैं जो दृश्य और श्रव्य हो। यह वेदोपदेश शूद्र जातियों में सुनाने योग्य नहीं हैं। इसलिए आप उनसे भिन्न पॉचवे वेद की रचना कीजिये।

व्याख्या-सृष्टि के आदिकल्प के प्रथम सतयुग में सवायंभुव मनु का मन्वन्तर था। उसके समाप्त होते ही लोक में वेद-विरूद्ध जिसे ग्राम्य धर्म कहते हैं-की प्रवृत्ति पनपने लगी। परिणाम यह हुआ कि

संसार के मनुष्य वेद-मर्यादा का उल्लंघन करते हुए काम और लोभ के वशीभूत हो गये ।इन दुर्गुणों के उत्पन्न होने से मनुष्यों में ईर्ष्या, क्रोध आदि अनेक विकार उत्पन्न हो गये जिनके कारण उनके अन्तः-करण मोहयुक्त हो गये और वे सुख-दुःख से ग्रस्त हो गये। पृथ्वी अपने वश में कर लिया। फलतः इन्द्र आदि लोकपालों द्वारा प्रतिष्ठित इस पुण्य जम्बूदीप में सर्वत्र अत्याचार, अनाचार और अशान्ति का साम्राज्य स्थापित हो गया और धर्म का लोप होने लगा। सतयुग में सत्वगुण के उत्कर्ष के कारण सभी लोग अपने-अपने धर्म का अनुपालन करते थे, किन्तु त्रेतायुग में रजोगुण का उत्कर्ष हो जाने के कारण सभी लोग काम-लोभ के वशीभूत होकर अपने धर्म के अनुकूल आचरण से विमुख हो रहे थे। वे शास्त्र के आदेश की अवज्ञा करने लगे। इस प्रकार वेदव्यवहार के अधिकारी द्विजवर्णो के लोग भी स्वच्छाचारिता की ओर उन्मुख होने लगे थे। इससे देवता चिन्तित हो गये। इस लिए उन्होंने ब्रह्मा जी से निवेदन किया कि वे ऐसे पॉचवे वेद की रचना करें जो सभी वर्णो के लिए व्यवहरणीय हो और जिसका सभी वर्णो के लोग समान रूप से आस्वादन कर अपने-अपने धर्म-पालन का सहज उपदेश प्राप्त कर सकें। इस वेद की विशेषता क्रीडनीयकता है। 'क्रीडनीय' शब्द की व्याख्या आचार्य अभिनवगुप्त ने इस प्रकार की है-क्रीड्यते चित्तं विक्षिप्यते विह्रियते येन तत् अर्थात् जिसके द्वारा चित्त को अनुरंजित किया जाय। क्रीडनीयता के लिए इसका दृश्य और श्रव्य होना स्वाभाविक है क्योंकि दृश्य होने से यह हृद्य होगा और श्रव्य होने से ज्ञानप्रद। इस वेद की रचना के दो प्रमुचा लाभ है-प्रथम इसके दर्शन से दर्शकों का चित्त कुछ क्षणों के लिए आत्मविभोर हो जायेगा कि हृदय की आनन्दावस्था में वे शास्त्रोपदेश भी ग्रहण करते जायेगे। दूसरा लाभ यह होगा कि हृदय की आनन्दावस्था में वे शास्त्रोपदेश भी ग्रहण करते जायेगे।इसलिए वे इन देवों ने ऐसे क्रीडनीयक की रचना करने की प्रार्थना की जो दृश्य भी हो और श्रव्य भी।

4.4- श्लोक 13से 25 तक

एवमसित्वति तानुक्त्वा देवाराजं विसृज्य च।

स्समार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्ववित्।।13।।

अन्वयः-तान् 'एवमसतु' इति उक्त्वा देवराजं विसृज्य तत्ववित्)पितामहः (योगमायाम् आस्थाय चतुरो वेदान् सस्मार।) यतः इमे वेदाः श्रीशुद्रजातिषु न श्राव्याः ततः सर्वश्राव्यम् अन्यत् पन्चमं वेदं वक्ष्ये।(

अनुवाद-उन देवों को ’ऐसा ही हो’ कहकर और देवराज को बिदा कर तत्वज्ञानी ब्रह्मा जी ने अपनी योगमाया में स्थित होकर चारों वेदों कस स्मरण किया।)क्योंकि ये वेद सत्री और शूद्र जातियों में श्राव्य नहीं है, इसलिए मैं सब लोगों के लिए श्राव्य अन्य पॉचवें वेद को कहूंगा।(

व्याख्या-देवों द्वारा सार्ववर्णिक पन्चम वेद के सृजन की प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया। ’हे देवो !ऐसा ही होगा।’ यह कहकर उन्होने देवराज सहित सभी देवों को विसर्जित कर दिया। सर्वलोकवेद के तत्वज्ञाता ब्रह्मा जी तदनन्तर अपनी योगमाया में स्थित होकर चारों वेदों का स्मरण करने लगे। योगमाया में स्थित होने का उद्देश्य चारों वेदों का एक साथा अवभास करना था।

ब्रह्मा जी ने विचार किया कि क्योंकि ये वेद स्त्रियों और शूद्रो के लिए वर्जित हैं, इसलिए मुझे ऐसे पॉचवें वेद की रचना करनी चाहिये जो सभी वर्णो के लिए व्यवहार्य हो। ब्रह्मा जी के इस संकल्प-वाक्य पर आचार्य अभिनवगुप्त ने कोई टिप्पणी नहीं की है, इसलिए इसे नाट्यशास्त्र के श्लोकों की संख्या में सम्मिलित नहीं किया गया है। हो सकता है, यह श्लोक प्रक्षिपत हो।

धर्म्यमर्थ्य यशस्यं सोपदेश्यं ससङ्ग्रहम्।

भविष्यतश्च लोकस्य सर्वंकर्मानुदर्शकम्।।14।।

अन्वयः)-अहं (धर्म्यम् अर्थ्य, यशस्यं, ससङ्ग्रहं सोपदेश्यं च भविष्य तः लोकस्य च सर्वकर्मानुदर्शकम्)नाट्याख्यं पन्चमं वेदं सेतिहासं करोमि(।

शब्दार्थ-धर्म्यम्=धर्मोपदेश में साधु। अर्थ्यम्=अथ-प्राप्ति कराने वाला, सबके लिए अभिलषणीय। यशस्यं=कीर्ति प्रदान करने वाला सोपदेश्यम=साथा-साथ उपदेश करता हुआ ससङ्ग्रहम=सभी विद्याओं को लोकवृत्त के संग्रह के युक्त भविश्यतः लोकस्य= भावि पीढ़ीयों को। सर्वकर्मानुदर्शकम्=सभी कर्मो का मार्ग-दर्शन कराने वाला।

अनुवाद)-ब्रह्मा मा जी ने संकलंप किया कि मैं (धर्मोपदेश में साधु, अर्थ-प्रदान करने में समर्थ या अभिलषणीय यशः)कीर्ति (प्रदान करने वाले साथ-साथ उपदेश करते हुए तथा संकल विद्याओं और लोकवृत्त के संग्रह-स्वरूप) नाट्याख्या पन्चम वेद की रचना करूगॉ(।

व्याख्या -चारों वेदों के स्मरण करने के अनन्तर भरत ने नाट्यवेद की रचना का संकल्प किया। चारों वेदों को स्मरण करने का कारण यह था कि भरत उन चारों वेदों से ही पॉचवां नाट्यवेद रचना चाहते थे। वेदों से नाट्यवेद का सृजन होगा इससे वह धर्ममय होगा यह तो स्वतः सिद्ध है और धर्म चारों

पुरूषार्थो का मूल है, जिनमें अर्थ भी सम्मिलित है, तो फिर भरत ने अलग से 'अर्थ्यम' पद का प्रयोग क्यों किया है? क्या इससे पुनरावृत्ति दोष नहीं आता? नहीं, क्योंकि यह 'अर्थ्यम' पद' अभिलषणीय' अर्थ का वाचक है तो धर्मोपदेश में साधु होने के कारण यह नाट्यवेद सबके लिए अभिलषणीय होगा और इससे वे यशस्वी बनेगे, क्योंकि धर्म का अर्जन करने वाले को यश की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। अब प्रश्न यह होता है कि क्या यह वेद केवल धर्म का उपदेशक ही होगा, जन-समान्य का चित्तनुरंजन करता हुआ यह यथावसर धर्म का उपदेश भी करता रहेगा। उसके द्वारा प्रस्तुत अभिनयों से घटना-वैविध्य से जनसमान्य को यह स्वीकार करने को विवश होना पडेगा की उससे रामादि सत्यपुरूषों के समान आचरण करना चाहिए, रावणादि सत्यपुरूषों की भॉति नहीं। इसलिए नाट्यवेद सोपदेश होगा। यही नहीं , इसमें नृत्य, संगीत, चित्रकला स्थापत्य आदि सकल ललित कलाओं, साहित्य आदि विद्याओं तथा लोकवृत्त का संग्रह भी होगा। इसप्रकार यह नाट्यवेद भावि सन्ततियों के लिए सन्मार्ग का प्रदर्शक होगा।

सर्वशास्त्रर्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम्।

नाट्याख्यं पन्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।।15।।

अन्वयः-अहम् सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नम् सर्वशिल्पप्रवर्तकम् नाट्याख्यम् पन्चमम् वेदम् सेतिहासम् करोमि।

शब्दार्थ -अहम्=मैं सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नम्=सभी शास्त्रों के अर्थो से परिपूर्ण। सर्वशिल्पप्रवर्तकम्=सभी शिल्पों का प्रवर्तन करने वाले। नाट्याख्यम्=नाट्य नामक। पन्चमम्=पॉचवें। वेद को। सेतिहासम्=इतिहास सहित। करोम्=करूगा) रचूगा(।

अनुवाद -मैं सभी शास्त्रों के अर्थो से परिपूर्ण और सभी शिल्पों का प्रवर्तन करने वाले नाट्य नामक पॉचवें वेद की रचना करूगा।

व्याख्या-'वेद' शब्द' विदि ज्ञाने' धातु से घञ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होने से ज्ञान का पर्याय है। इसमें सकल शास्त्रों, विद्याओं और कलाओं का ज्ञान समाविष्ट है। संसार में जो कुछ भी ज्ञान-विज्ञान दृष्टिगत होता है, उसका मूल वेद ही हैं। अतः वेद को ज्ञान का पर्याय मानना सर्वथा संगत है। ज्ञान को ही सत्य, अनन्त औरब्रहा्र भी कहा गया है। जैसा कि ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रहा्र'' इत्यादि श्रुति वाक्य से प्रमाणित है। श्रुतियों में ही ब्रहा्र को रस-स्वरूप भी जिस पन्चम वेद का संकल्प किया था वह भी सर्वशास्त्रों के अर्थो से सम्पन्न तथा सकल शिल्पों) कलाओं (का प्रवर्तक है। सर्वशास्त्रों सम्पन्नता से इस नाट्यवेद की ज्ञानमयता और शिल्पप्रवर्तकता से उसकी रसमयता का बोध होता है।

एवं संड्कल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।

नाट्यवेद ततशचक्रे चतुर्वेदाड्ग-सम्भवम्।।16।।

अन्वयः-एवं संकल्प्य भगवान् चतुर्वेदाननुसमरन् तत् चतुर्वेड्सम्भवं नाट्यवेदं चक्रे।

शब्दार्थ-एवम् संकल्प्य= ऐसा संकल्प करने के अनन्तर। भगवान्=भगवान् भरत। चतुर्वेदाननुस्मरन्=चारों वेदों का अनुस्मरण करते हुए। ततः=तदनन्तर। चतुर्वेदाड्गसम्भवम्=चारों वेदों से उत्पन्न अंगों वाले। नाट्यवेदं चक्रे=नाट्यवेद की रचना करने लगे।

अनुवाद)-मैं नाट्यवेद की रचना करूगा (ऐसा संकल्प करने के अनन्तर भगवान् ब्रह्मा तब चारों वेदों का अनुस्मरण करते हुए चार वेदों से उत्पन्न अंगों वाले नाट्यवेद की रचना करने लगे।

व्याख्या-पूर्व के दो श्लोकों मे यह संकल्प कर कि धर्म आदि प्रयोजनों से युक्त पन्चम नाट्यवेद की रचना करूॅगा, महामना भरत वेदों के अनुस्मरण में दत्तचित्त रहे और उनसे अपने अभीष्ट ग्रन्थ चार अंगों-पाठ्य, गीत, अभिनय तथा रस-नाट्यवेद की रचना का उपक्रम करने लगे।

ज्ग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।17।।

अन्वयः)-ब्रह्मा (ऋग्वेदात् पाठ्यम्, सामभ्यः गीतम् एव, यजुर्वेदात् अभिनयान् अपि च आथर्वणात् रसान् जाग्राह।

शब्दार्थ-ऋग्वेदात्=ऋग्वेद से। पाठ्यम्=काकु, स्वर आदि पाठ्य)संवाद (को। सामभ्यः= सामवेद से। गीतमेव्=गीत को ही। यजुर्वेदात् =यजुर्वेद से। अभिनयान्=सात्विक आदि अभिनयों को। अपि च्=और। आथर्वणात्=अथर्ववेद को। रसान्=श्रृंगारादि रसों को। जाग्राह् =ग्रहण किया।

अनुवाद-ब्रह्मा जी ने ऋग्वेद से काकु, स्वर आदि से युक्त पाठ्य या संवाद को, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से सात्विक आदि अभिनय को तथा अथर्ववेद से श्रृगारादि रसों को, ग्रहण किया।

व्याख्या-नाट्याख्य पन्चम वेद का सृजन करने का संकल्प कर ब्रह्मा जी ने चारों वेदों का अनुस्मरण किया और उनके एक-एक प्रमुख अंग को ग्रहण कर नाट्य-वेद की रचना की। चारों वेदों के प्रमुख अंग कौन-कौन से हैं, जिनका उन्होंने ग्रहण किया, इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य को ग्रहण किया। 'पाठ्य का अर्थ है-जिसका पठन किया जा सके। इसे नाट्य में संवाद भी कहते हैं। यह गद्य- पद्य मिश्रित है। उनके अर्थ की प्रतीत काकु और उदात्तादि स्वर के ज्ञान से होती

है, अतः ब्रह्मा जी के काकु, स्वर समन्वित पाठ्य को ऋग्वेद से ग्रहण किया जिससे संवादों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया जा सके। नाटकों के संवादों में गीतों का आयोजन आवश्यक होता है। गीत या संगीत का मूल स्रोत सामवेद है, अतः ब्रह्मा जी ने सामवेदो से गीत-तत्व को ग्रहण किया। अभिनय चार प्रकार के होते हैं -सात्विक, वाचिक, आङ्गिक और आहार्य। यजुर्वेद में याज्ञिक क्रियाओं -प्रदक्षिणा आदि -में ये सभी अभिन आ जाते हैं।अतः चतुर्विध अभिनय को ब्रह्मा जी ने यजुर्वेद से ग्रहण किया। अथर्ववेद में मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि से सम्बन्धित मन्त्र हैं जिलमें वीर, भयानक, श्रृंगार गार आदि रसों के दर्शन होते हैं, अतः अथर्ववेद से ब्रह्मा जी ने रसों को ग्रहण किया। इन चार अंगों को ग्रहण कर लेने के अनन्तर ब्रह्मा जी ने नाट्यवेद को चार तत्वों-पाठ्य, गीत, अभिनय और संवाद से परिपूर्ण कर दिया।

वेदोपवेदैः सम्बदो नाट्यवेदो महात्मना।

एवं भगवता सृष्टो ब्रह्रणा सर्ववेदिना।।18।।

अन्वयः-एवं सर्ववेदिना महात्मना भगवता ब्रह्रणा वेदोपवेदैः नाट्यवेदः सृष्टः।

शब्दार्थ-एवम्= इस प्रकार। सर्ववेदिना्=सर्ववेत्ता। महात्मना भगवता ब्रह्रण्=महात्मा भगवान् ब्रह्मा जी ने। वेदोपवेदैः=चारों वेदो तथा आयुर्वेदादि उपवेदों से सम्बद्ध। नाठ्यवेदः सृष्टः =नाट्वेद रचा।

अनुवाद-एवम्) चारों वेदों से चार अगो को ग्रहण कर (सर्ववेत्ता महात्मा भगवान् ब्रह्मा जी ने चारों वेदों तथा आयुर्वेदादि उपवेदों से सम्बद्ध नाट्यवेद रचा।

व्याख्या-ब्रह्मा जी चूकि महात्मा थे तो सर्ववेदी भी या सर्ववेत्ता भी थे। उन्हें भगवान् इसलिए कहा गया किवे सर्वविद् होने के कारण किसी भी प्रकार का ग्रन्थ रचने में समर्थ थे। इसलिए उन्होने जो नाट्यवेद नामक पन्चम वेद रचा, वह न केवल चारों वेदों से सम्बद्ध था, अपितु उन वेदों के आयुर्वेदादि उपवेदों से भी सम्बद्ध था। कहने का तात्पर्य यह है नाट्यवेद एक वेदसम्मत रचना होती हुई भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती थी।

उत्पाद्य नाट्यवेदां तु ब्रह्रोवाच सुरेश्वरम्।

इतिहासो मया सृष्टः स सुरेषु नियुज्यताम्।।19।।

अन्वयः-नाट्यवेदम् उत्पाद्य तु ब्रह्मा सुरेश्वरम् उवाच-मया इतिहासः सृष्टः स सुरेषु नयुज्यताम्।

शब्दार्थ-नाट्यवेदम् उत्पाद्य=नाट्यवेद की रचना करके। तु=तो। ब्रह्मा =ब्रह्मा जी ने। सृष्टः=रच दिया है। स=उसको। सुरेषु=देवताओं में। नियुज्यताम्=नियोजित कीजिये।

अनुवाद-नाट्यवेद की रचना करके ब्रह्मा जी ने देवराज इन्द्र से कहा-मैंने दशरूपक रूपी इतिहास रच दिया है। उसको देवताओं में नियोजित कीजिये।

व्याख्या-ब्रह्मा जी ने नाट्यवेद तो रच दिया किन्तु उसका प्रयोग तो राज ही करा सकता है। इसलिए ब्रह्मा जी ने इन्द्र से कहा कि मैंने एक इतिहास रचा है। यह इतिहास अभिनवगुप्त के अनुसार दशरूपक है जिसका नटों द्वारा रंगमंच पर अभिनीत किया जाता है। इसके प्रयोग के लिए दक्ष नटों की आवश्यकता होती है। इसलिए ब्रह्मा जी ने इन्द्र से कहा कि तुम अपने देवों में से ही ऐसे पात्रों का चयन करो जो ककुशलतापूर्वक इस दशरूपक के पाठय, नृत्त, गीत आदि का अभिनय कर सकें।

कुशला ये विदग्धाश्च प्रगल्भाश्च जितश्रमाः।

तेष्वयं नाट्यसंज्ञो हि वेदः संक्राम्यतां त्वया।।20।।

अन्वयः-ये कुशलाः विदग्धाः प्रगल्भाः जितश्रमाश्च) सन्ति (तेषु हि अयं नाटय्संज्ञः वेदः त्वया संक्राम्यताम्।

शब्दार्थ -ये=जो नट। कुशलाः=नाट्य-कला प्रवीण। विदग्धाः=चतुर। प्रगल्भा=परिषद् में निर्भिकतापूर्वक बोलने की क्षमता रखने वाले। जितश्रमाः=कभी थकान का अनुभव न करने वाले। तेषु=उन्हीं में। अयं नाट्यसंज्ञो वेदः=इस नाट्यसंज्ञक वेद का। त्वया=तुम। संक्राम्यताम्=संक्रमण करो, प्रशिक्षण प्रदान करों।

अनुवाद-जो नट नाट्यकला-प्रवीण, चतुर, परिषद् में निर्भीकता से बोलने में सक्षम और कभी थकान का न अनुभव करने वाले हो, उन्हीं को तुम इस नाट्यसंज्ञक वेद के लिए प्रशिक्षित करो।

व्याख्या-ब्रह्मा जी ने निर्देश दिया कि अपने देवों से, ऐसे पात्रों का चयन करो जो इस नाट्यसंज्ञक वेद के ग्रहण-धारण के योग्य हों, उसके विषय में ऊहापोह)तर्क वितर्क (करने में समर्थ हों, जिससे रंगमंच पर आकर वे दर्शकों के सामने बोलने में संकोच का अनुभव बिल्कुल न करें तथा जो जितश्रम हों, अर्थात् अभिनय करते-करते कभी थकान का अनुभव न करें। इसके लिए उनका व्यायामशील होना नितान्त आवश्यक हैं। उक्त गुणों से सम्पन्न नट ही इस नाट्यवेद का सम्यक् व्यवहार कर सकाते हैं।

तच्छुत्वा वचनं शक्रो ब्रह्[रणा यदुदाहृतम्।

प्रान्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम्।।21।।

ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयोगे चास्य सत्तम।

अशक्ताः भगवन् देवा अयोग्याः नाट्यकर्मणि।।22।।

अन्वयः-शक्रः ब्रह्मणा यदुदाहृतम् तत् वचनं श्रुत्वा प्रान्जलिः प्रणतः)चे (भूत्वा पितामहं प्रत्युवाच-'सत्तम भगवन्। देवाः अस्य ग्रहणे धारणे ज्ञाने प्रयाकगे च अशक्ताः नाट्यकर्मणि च अयोग्याः।

शब्दार्थ-शक्रः=इन्द्र ने। ब्रह्मणा यदुदाहृतम्=ब्रह्मा जी ने जो कहा था। तत् वचनं श्रुत्वा=उस वचन को सुनकर। प्रान्जलिः =हाथ जोडते हुए। प्रणतः भूत्वा=प्रणाम कर। पितामहं प्रत्युवाच=पितामह)ब्रह्मा जी (को प्रत्युत्तर दिया। सत्तम भगवन्= हे श्रेष्ठ भगवान्। देवाः=देवलोग। ग्रहणे=गुरूमुख से श्रवण करने। धारणे=गुरूमुख से श्रवण कर उसका अविस्मरण करने। ज्ञाने=नाट्य के ऊहापपेह विचार। प्रयोगे च=और इसका परिषद् में प्रकटीकरण करने में। अशक्तः=असमर्थ हैं। नाट्यकर्मणि अयोग्याः=नाट्यकर्म के लिए अयोग्य है।

अनुवाद-इन्द्र ने, ब्रह्मा जी द्वारा कहे गये, उस वचन को सुनकर हाथ जोड़ते हुए प्रणाम कर प्रत्युत्तर दिया-'हे श्रेष्ठ भगवन्)देवता लोग इस नाट्यवेद को ग्रहण करने)गुरूमुख से श्रवण करने(, धारण करने)गुरूमुख से सुनकर उसे निरन्तर स्मरण रखने(, ज्ञान में)ऊहापोह विचार में (और परिषद के समक्ष प्रकट करने में असमर्थ हैं और वे नाट्यकर्म के लिए अयोग्य भी हैं।

व्याख्या-ब्रह्मा जी ने नाट्यवेद की रचना कर इन्द्र से अपने देवों के मध्य से उपयुक्त पात्रों का नियोजना करने के लिए कहा जो इस नाट्यवेद को सम्यक् जान कर उसका परिषद् में प्रकटीकरण करें। किन्तु ब्रह्मा जी ने इस वेद के व्यवहार के लिए नट में जिन योग्यताओं की अनिवार्यता बतायी थी, उनका देवों में अभाव जान कर और पितामह सकल विद्याओं के ज्ञात होने के कारण सर्वश्रेष्ट)सत्तम (तथा सामर्थ्यवान्) भगवान् (समझकर उनके समक्ष अज्जलिबद्ध हो प्रणाम कर विनीत भाव से प्रतिवचन कहा-'हे श्रेष्ठ भगवन् !देव लोग तो सुखोपजीवी हैं, अतः नट के लिए जिस साधन की अनिवार्यता आपने बतायी है, उसे वे कभी नहीं कर सकते। सुखी जीवन व्यतीत करने के स्वभाव वाले होने के कारण वे गुयमुख से इस नाट्यवेद का लम्बे समय तक श्रवण नहीं कर सकते और यदि किसी प्रकार श्रवण कर भी लें तो उसका निरन्तर स्मरण करते हुए नहीं रह सकते।

य इमे वेदगुह्रज्ञाः ऋषयः संशितव्रताः।

एतेऽस्य ग्रहणे शक्ताः प्रयोगे धारणे तथा।।23।।

अन्वयः-ये इमे वेदागुहा्रज्ञाः संशितव्रताः) च (ऋषयः) सन्ति (एते अस्य ग्रहणे प्रयोगे तथा धारणे शक्ताः) सन्ति(।

शब्दार्थ-ये इमे=जो ये। वेदगुहा्रज्ञाः=वेद-रहस्य के ज्ञाता। संशितव्रताः=प्रशंसनीय व्रत से युक्त।

ऋषयः= ऋषिजन हैं। एते=ये ही। अस्य= इस नाट्यवेद के। ग्रहण=गुरूमुख से श्रवण करने। में। शक्ताः समर्थ हैं।

अनुवाद-ये जो वेद-रहस्य के ज्ञाता तथा प्रशंसनीय व्रतधारी ऋषिजन है, ये ही इस नाट्यवेद को गुरूमुख से श्रवण करने, उसका सतत स्मरण रखने तथा परिषद में प्रकट करने में समर्थ हैं।

व्याख्या-इन्द्र ने कहा कि भू-लोक में ये ऋषिगण प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो रहे हैं, वे वेदज्ञ हैं। अतः उनमें इस नाट्यवेद के ग्रहण-धारण की सामर्थ्य है। साथ ही वेद के गुहा्र ज्ञान के ज्ञाता हैं, अतः अध्यात्म तथा उपनिषदर्थ के ग्रहण-धारण के कौशल के कारण रसादि के लिए उपयोगी सात्विक भाव के सम्पादन में समर्थ हैं। ऋषि होने के कारण वे ऊहापोह विचार के भी योग्य हैं और व्रत के अभ्यास में सशक्त होने के कारण वे जितरम होकर इसका अभिनय भी कर सकते हैं। इस प्रकार ये उदार ऋषिगण ही इस नाट्यवेद की शिक्षा के सर्वथा उपयुक्त पात्र हैं।

श्रुत्वा तु शक्रवचनं मामाहाऽम्बुज सम्भवः।

त्वं पुत्रशतसंयुक्तः प्रयोक्ताऽस्य महाऽनघ।।24

आज्ञापितो विदित्वाऽहं नाट्यवेदं पितामहात्।

पुत्रानध्यापयामास प्रयोगं चाऽपि तत्वतः ।।25।।

अन्वयः-शक्रवचनं श्रुत्वा तु अम्बुजसम्भवः माम् आह-महानघ !त्वं पुत्रशतसंयुक्तः)ान् (अस्य प्रयोक्ता)भव(।)एवम् (आज्ञापितः अहं पितामहात् नाट्यवेदं विदित्वा पुत्रान्) नाट्यवेदं (प्रयोग चाऽपि तत्वतः अध्यापयामास।

शब्दार्थ-शक्रवचनम्=इन्द्र के वच न। श्रुत्वा=सुनकर। अम्बुजसम्भवः=कमल योनि ब्रह्मा जी ने। माम् आह=मुझसे कहा । त्वम्=तुम। पुत्रशतसंयुक्तः=सौ पुत्रों वाले हो। अहम्=मैनं। पितामहात्=ब्रह्मा जी से। नाट्यवेदं विदित्वा= नाट्यवेद का ज्ञान प्राप्त कर। पुत्रान्=पुत्रों को प्रयोगं चापि=नाट्यलक्षणशास्त्र भीं अध्यापामास=प ढ़ाया ।

अनुवाद- इन्द्र के वचन सुनकर कमलयोनि ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा-हे महानघ !तू सौ पुत्रों वाले हो। तुम इस नाट्यवेद के प्रयोगकर्ता बनो।)ब्रह्मा जी से इस प्रकार की (आज्ञा पाकर मैंने अपने पुत्रों को नाट्यवेद और उसके प्रयोगरूप नाट्यलक्षणशास्त्र को भी पढ़ाया।

व्याख्या-इन्द्र द्वारा वेदगुहा्रज्ञ ऋषियों को ही नाट्यवेद के ज्ञान और उसके प्रयोग में सर्वथा समर्थ बताये जाने पर ब्रह्मा जी ने मुझसे)भरत से (कहा। 'तू पद के प्रयोग से ध्वनित होता है कि उन्होंने अन्य ऋषियों से भी कहा, किन्तु मुझसे विशेष रूप से कहा-हे महानघ! तुम परिषद् में सम्मान प्राप्त हो और बडें परिवार वाले भी हो। अतः तुम इस नाट्यवेद का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रयोग करने में सर्वथा हो, इसलिए तुम्हीं इसका ज्ञान प्रापत करो। सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया और फिर अपने सौ पुत्रों को पहले नाट्यवेद पढ़ाया, तदनन्तर उसके प्रयोरूप नाट्यलक्षण शास्त्र का तात्तिवक ज्ञान भी कराया। कहने का आशय यह है कि मैंने अपने पुत्रों को नाट्यवेद का सैद्धान्तिक)जीमवतपजपबंस(और प्रायोगिक ;चतंबजपबंस (दोनों प्रकार का तात्विक ज्ञान कराया।

4. 5श्लोक 26 से 53 तक

शाण्डिल्यं चैव वात्स्यं च कोहलं दत्तिलं तथा।

जटिलाम्बष्टकौ चैव तण्डुमग्निशिखं तथा।।26।।

सैन्धवं सपुलोमानं शाड्वलिं विपुलं तथा।

कपिन्जलिं बादरिं च यमधूम्रायणौ तथा।।27।।

जम्बुध्वजं काकजड्घं स्वर्णकं तापसं तथा।

केदारिं शालिकर्ण च दीर्घगात्र च शालिकम्।।28।।

कौत्सं ताझडायनिं चैव पिड्गलं चित्रकं तथा।

बन्धुलं भल्लकं चैव मुष्टिकं सैन्धवायनम्।।29।।

तैतिलं भार्गवं चैव शुचिं बहुलमेव च।

अबुधं बुधसेनं च पाण्डुकर्णे सुकेरलम् ।।30।।

ऋजुकं मण्डकं चैव शम्बरं वन्जुलं तथा।

मागधं सरलं चैव कर्त्तारं चौग्रमेव च।।31।।

तुषारं पार्षदं चैव गौतमं बादरायणम्।

विशालं शबलं चैव सुनामं मेषमेव च।।32।।

कालियां भ्रमरं चैव तथा पीठमुखं मुनिम्।

नखकुट्टाष्मकुट्टौ च षट्पदं सौत्तमं तथा।।33।।

पादुाकेपानहौ चैव श्रुतिं चाषस्वरं तथा।

अग्निकुण्डाज्यकुण्डौ च वितण्ड्यं ताण्ड्यमेव च।।34।।

कर्तराक्षं हिरण्याक्षं कुशलं दुस्सहं तथा।

लाजं भयानकं चैव वीभत्सं सविचक्षणम्।।35।।

पुण्ड्रानासं पुण्ड्रनासं चाप्यसितं सितमेव च।

विद्युज्जिह्वं महाजिहह्वं शालङ्कायनमेव च।।36।।

श्यामायनं माठरं च लोहिताङ्ग तथैव च।

संवर्तकं पन्चशिखं त्रिशिखं शिखमेव च।।37।।

शङ्खवर्णमुखं षण्डं शङ्कुकर्णमथापि च।

शक्रनेमिं गभस्तिं चाप्यंशुमालिं शठं तथा।।38।।

विद्युतं शातजङ्घं च रौद्रं वीरमथापि च।

पितामहाज्ञयाऽस्माभिर्लोकस्य च गुणेप्सया।।39।।

प्रयोजितं पुत्रशतं यथा भूमिविभागशः।

यो यस्मिन् कर्मणि यथा योग्यस्तस्मिन् स योजितः।।40।।

अनुवाद-पितामह) ब्रह्मा जी (की आज्ञा और लोक की गुणग्राहकता के कारण हमने शाण्डिल्य से लेकर वीरपर्यन्त 105पुत्रों) तथा शिष्यों (को नाट्यवेद की भूमिकाओं का विभाजन करते हुए

नाट्यवेद का अध्यापन किया और उसके प्रयोगरूप नाट्लक्षण शास्त्र को भी पढ़ाया तथा जो जिस कार्य के लिए योग्य था उसे उसमें नियोजित कर दिया।

व्याख्या-ब्रह्मा जी की आज्ञा तो शिरोधार्य की ही, साथ ही भरत ने यह भी ध्यान में रखा कि इस नाट्यवेद के प्रयोग से प्रजाजन का अनुरंजन भी होना चाहिए। ऐसा दृष्टिकोण रखते हुए उन्होंने अपने सौ पुत्रों को नाट्यवेद की शिक्षा दी। पुत्रों के नाम ये हैं-शाण्डिकोण, कोहल, दत्तिल, जटिल, अम्बाष्टक, तण्डु, अग्निशिखा, सैन्धव, पुलोमन, शाड्वलि, विपुल कपिन्जलि, बादरि, यम, धूम्रायण, जम्बुध्वज, काकजड़्घ, स्वर्णक, तापस, केदारि, शालिकर्ण, सैन्धवायन, तैतिल, भार्गव, शुचि, बहुल, अबुध, बुधसेन, पाण्डुकर्ण सुलेरल, ऋजुक, मण्डक, शम्बर, गौतम, बादरायण, कालिय, भ्रमर, पीठमुख, मुनि, नखकुट्ट अश्मकुट्ट, षट्पद, उत्तम, पादुक, उपानह, श्रुति, चषस्वर, अग्निकुण्ड, आज्यकुण्ड, वितण्ड्य ताण्ड्य कर्तराक्ष, हिरण्याक्ष, कुशल, दुःसह, लाज, भयानक, वीभत्स, विचक्षण, पुण्ड्राक्ष पुण्ड्रनास, असित, सित, विद्युज्जिह्व, महाजिह्व शालड़्कायन, श्यामायन, माठर, लोहिताड़्ग संवर्तक, पन्चशिख, त्रिशिख, शिख, शड़्खवर्णमुख, षण्ड, शड़्कुकर्ण, शक्रनेमि, गर्भस्ति, अंशुमालि, शठ, विद्युत, शातजड़्घ, रौद्र, और बीर। इन पुत्रों की संख्या 105होती है जो जो शतक में ही गणना करने योग्य हैं। किन्तु ये सभी भरत के औरस पुत्र थे, ऐसा निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इनमें ऐसे अनेक नाम हैं जिनमें अपत्यार्थक इञ्)इ (तथा चकञ्) आयन (प्रत्यय लगे हुए हैं, जैसे-बादरि, ध्रूमायण, ताण्डायनि, बादरायण आदि। ये निश्चित रूप से भरतेतर पुरूषों के पुत्र थे, किन्तु भरत ने नाट्यवेद का तात्विक ज्ञान कराया फिर प्रायोगिक रूप में उनसे दशरूपक का अभिनय कराया। इसमें जो व्यक्ति जिस कार्य के लिए उपयुक्त समझा-जैसे कोई हर्ष की अभिव्यक्ति करने में सक्षम था, तो कोई शोक की अभिव्यक्ति करने में-उन्हें उसी के अनुसार नियोजित किया।

भारतीं सात्वतीं चैव वृत्तिमारभटीं तथा।

समाश्रितः प्रयोगस्तु प्रयुक्तो वै मया द्विजाः।।41।।

अन्वयः द्विजाः !मयातु भारतीं सात्वतीम् आरभटी चैव वृत्तिं समाश्रितः प्रयोगः वै प्रयुक्तः।

शब्दार्थ-द्विजा=हे ब्राह्राणो!। मया=मैंने।तु=तो भारतीं सात्वतीम् आरभटी चैव वृत्तिं समाश्रितः=भारती, सात्वती और आरमही वृत्तियों पर आधारित।

अनुवाद-हे ब्राह्रणो !मैने तो भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों के आधार पर ही नाट्य का अभिनय करवा दिया।

व्याख्या-जिस प्रकार धर्मादि रूपी साध्य चार है, उसी प्रकार उसके साधन रूपी वागड्गसत्व चेष्टाएॅ भी चार है। इन्हें वृत्तियॉ कहते हैं। किन्तु इसके विषय में अज्ञ और साधनहीन होने के कारण आचार्य भरत ने उसे छोड़ दिया। इसीलिए उन्होंने अपने'तु' कथन का प्रयोग किये। किन्तु इन वृत्तियों के प्रयोग से नाट्य-प्रयोगों में सरसता नहीं आ सकी, अतः उनका जनरंजन का प्रयास भी विफल रहा। यह कथन उनके 'कै'शब्द से ध्वनित होता है।

प्रिगृहा्र प्रणम्याऽथ ब्रह्मा विज्ञापितो मया।

अथाऽऽह मां सुरगुरूः कैशिकीमपि योजय।।42।।

यच्च तसयाः क्षम द्रव्यं तद् ब्रूहि द्विजसत्तम।

एवं तेनाऽस्म्यभिहितः प्रयुक्तश्च मया प्रभुः।।43।।

अन्वयः-अथ मया परिगृहा्र प्रणम्य)च (ब्रह्मा विज्ञापितः। अथ मां सुरूगुयः आह-कैशिकीम् अपि योजय। द्विजसत्तम !यच्च तस्याः क्षमं द्रव्यं तद् ब्रूहि। एवं तेन अभिहितः अस्मि, मया च प्रभुः प्रत्युक्तः।

शब्दार्थ-अथ=तदनन्तर। मया=मैंने। परिगृहा्र प्रणम्य= परिग्रहपूर्वक प्रणाम करके। ब्रह्मा विज्ञापित=ब्रह्मा जी को नाट्यप्रयोग की सूचना दी। अथ=तब। सुरूगुयः= देवों के गुरू ब्रह्मा जी ने। मामाह=मुझसे कहा। कैशिकीमपि=कैषिकी वृत्ति को भी। योजय= जोड़ लो, सम्मिलित कर लो। यच्च=और जो। तस्य= उसके लिए। क्षमम्=आवश्यक। द्रव्यम्=सामग्री हो। तद् ब्रूहि=वी मुझे बताओ। एवम्=इस प्रकार। मया च= और मैंनं े। प्रभुः=भगवान् ब्रह्मा जी को। प्रत्युक्तः=प्रत्युत्तर दिया।

अनुवाद-तदनन्तर मैंने परिग्रहपूर्वक प्रणाम करके ब्रह्मा जी को)अपने नाट्य प्रयोग की (सूचना दी। तब देवों के गुरू ब्रह्मा जी ने मुझसे कहा-कैशिकी वृत्ति को भी सम्मिलित कर लो। उसके लिए जो आवश्यक सामग्री हो उसे मुझको बतायें। उन्होंने मुझसे ऐसा कहा। और मैंने भगवान् ब्रह्मा जी को प्रत्युत्तर दिया।

व्याख्या-भरत ने जिस नाट्य प्रयोग की ब्रह्मा जी को सूचना दी थी, उसमें केवल भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों का ही प्रयोग था, नाट्य की प्राणीभूता कौशिकी वृत्ति को समायोजित नहीं किया था। कैशिकी के अभाव में तो वह सम्पूर्ण प्रयोग नीरस होने के कारण निष्फल ही था। अतः ब्रह्मा जी ने भरत को आदेश दिया कि अपने नाट्य-प्रयागक में कैशिकी वृत्ति को भी समायोजित कर

लें। ब्रह्मा जी यह भली-भॉति जानते थे, कैशिकी वृत्ति व्ययसाध्य है और इसके लिए स्त्री-पात्रों का होना अनिवार्य है, इसलिए उन्होंने भरत से कहा कि इस वृत्ति को भी समायोजित करने के लिए जिन वस्तुओं की तुम्हें आवश्यकता हो, उनके लिए मुझसे कहो, मैं पूरा करूॅंगा।

दीयतां भगवन् द्रव्यं कैशिक्याः सम्प्रयोजकम्।

नृत्ताड्.गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका।।44।।

दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः।

कैशिकी श्लक्ष्णनैपथ्याः श्रृड्.गररससम्भवा।।45।।

अशक्या पुरूषैः सा तु प्रयोक्तुं स्त्रीजनाद् ऋते।

ततोऽसृजन्महातेजा मनसाऽसरसो विभुः विभुः।।46।।

अन्वयः-भगवान् !कैशिक्याः सम्प्रयोजकं द्रव्यं दीयाताम्। मयानृत्यतः भगवतः नीलकण्ठस्य नृत्ताड्.गहारसम्पन्ना रसभावक्रियात्मिका श्लक्ष्ण नेपथ्या श्रृंगार रस सम्भवा कैशिकी दृष्टा। सा तु स्त्रीजनाद् ऋते पुरूषैः प्रयोक्तुम् अशक्या। ततः महाराजाः विभुः मनसा अप्सरसः असृजन्।

शब्दार्थ-भगवान्=हे प्रभो !कैशक्याः सम्प्रयोजकं द्रव्यम्=कैशिकी वृत्ति के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले द्रव्य को। दीयताम्=प्रदान करें । मया=मैंनें। नृत्यतः=नृत्त के लिए धारण किये गये अंगहारों से सम्पन्न। रसभावक्रियात्मिका=रसों को अभिव्यक्ति देने वाली । कैशिकी दृष्टा =कैशिकी के साक्षात् दर्शन किये हैं। सातु= किन्तु वह। स्त्रीजनाद्ऋते=स्त्री पात्रों के बिना। प्रयोक्तुम्=प्रयोग किये जाने के लिए। ततः=तब। महातेजाः=महातेजस्वी। विभः=सर्वव्यापी भगवान् ब्रह्मा ने। मनसा=अपने मन से। अप्सरसःअसृजन्=अप्सराओं की उत्पत्ति की।

अनुवाद)-भरत ने कहा (हे भगवान्) !आप मुझे (कैशिकी वृत्ति के लिए प्रयोज्य द्रव्य दीजिये। मैंने नृत्य करते हुए भगवान् शिव की नृत्त के लिए अपेक्षित अड्.गहारों) अड्.गभूषणों (से सम्पन्न, रसों के भावों की अभिव्यंजक, श्लक्षण)चिकने तथा कोमल (नेपथ्य वाली तथा श्रृंगार रस को जन्म देने वाली कैशिकी के साक्षात् दर्शन किये हैं। वह स्त्री-पत्रों के बिना पुरूष-पात्रों द्वारा प्रयोग की ही नहीं जा सकती। तब महा तेजसवी और सर्वव्यापी भगवान् ब्रह्मा जी ने अपने मन से अप्सराओं को उत्पन्न किया।

व्याख्या-ब्रह्मा जी के वचन सुनकर भरत ने उनसे कैशिकी के लिए प्रयोज्य द्रव्य देने की प्रार्थना की। किन्तु क्या द्रव्य दिया जाय? इस अभिप्राय से वे कैशिकी के साक्षात्करण का वृत्तान्त सुनाते हुए

कहने लगे-एक बार जब भगवान् शिव नृत्त के लिए उपयोगी आभूषणों से अपने अंग-प्रत्यंग को सुसज्जित किये हुए थे। उसके क्रिया-कलाप सहृदय सामाजिकों के अन्तःकरण में विविध रसों के भावों का उद्बोधन कर रहे थे। वह श्लक्ष्ण) चिकने तथा कोमल (वस्त्रों से सुसज्जित थी और विशेष रूप से श्रृंगार रस को उत्पन्न कर रही थी। इस कैशिकी वृत्ति की प्रमुख विशेषता यह है कि इसका प्रयोग केवल स्त्री-पात्रों द्वारा ही संभव है, पुरूष-पात्र तो इसका किसी भी दशा में मंचन नही कर सकते।' भरत के इस कथन से उनका यह आशय स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें मुख्य रूप से दक्ष स्त्री-पात्रों की आवश्यकता हैं, क्योंकि भरत ने जिन शिष्यों तथा पुत्रों को नाट्य-प्रयोग का प्रशिक्षण दिया

था, उनमें सभी पुरूष-पात्र थे, जिनके द्वारा कैशिकी का प्रदर्शन सर्वथा असंभव था।

नाट्यालड्कारचतुराः प्रादान्मह्यं प्रयोगतः।

मन्जुकेशी सुकेशीं च मिश्रकेशीं सुलोचनाम्।।47।।

सौदामिनीं देवदत्तां देवसेनां मनोरमाम्।

सुदतीं सुन्दरीं चैव विदग्धां विपुलां तथा।।48।।

सुमालां सन्ततिं चैव सुनन्दां सुमुखीं तथा।

मागधीमर्जुनीं चैव सरलां केरलां धृतिम्।।49।।

नन्दां सपुष्कलां चैव कलमां चैव मे ददौ।

स्वातिर्भाण्डनियुक्तस्तु सह शिष्यैः स्वयम्भुवा।।50।।

नरदाद्याश्च गनधर्वा गानयोगे नियोजिताः।

एवं नाट्यमिदं सम्यग् बुद्ध्वा सर्वैः सुतैः सह।।51।।

स्वातिनारदसंयुक्तो वेदवेदाड्गकारणम्।

उपस्थितोऽहं ब्रह्मा णं प्रयोगार्थं कृतान्जलिः।।52।।

अन्वयः)-पितामहः (नाट्यालड्कारचतुराः) अप्सरसः(मह्यं प्रयोगतः प्रादात्। मज्जुकेशीम्)आरम्भ(कलमां) यावत्(मे ददौ। स्वयम्भुवा शिष्यैः सह स्वातिः भाण्डनियुक्तः, नारदाधरः गन्धर्वाः च गानयोगो नियोजिताः। एवम् अहं सर्वैः ः च गानयोगो नियोजिताः। एवम् अहं सर्वैः सुतैः सह वेद

वेदाड्ग कारणम्। इदं नाट्यं सम्यग् बुद्ध्वा स्वाति नारद संयुक्तः)सन् (कृतान्जलिः प्रयोगार्थ ब्रह्मा णम् उपस्थितः।

शब्दार्थ-नाट्यालड्कारचतुरः=नाट्यालंकार में चतुर। मह्राम्=मुझको। प्रयोगतः=नाट्यरूपकों का प्रयोग) मंचन(करने के लिए।प्रदात=प्रदान की। स्वयम्भुवा तु=उनके साथ ही भगवान् ब्रह्मा ने। स्वातिः=स्वाति नामक मुनि को। शिष्यैः सह=शिष्यों के साथ। भाण्डनियुक्तः=आपूरक, पणव, मृदड्ग, झल्लर आदि वाद्यों के लिए नियुक्त किया। नारदाद्याः गन्धर्वाश्च=नारदादि गन्धर्वों को। गान योगे=कंठ संगीत के लिए नियोजिताः=नियुक्त किया गया। सर्वैः सुतैः सह=अपने सभी पुत्रों के साथ। वेदवेदाड्गकारणम्=वेद और वेदांग के साधनभूत। इदंनाट्यम्=इस नाट्यवेद को। सम्यग् बुद्ध्वा=भली-भॉति जानकर। स्वातिनारदसंयुक्तः=स्वाति और नारद के साथ। प्रयोगार्थम्=प्रयोग)मंचन (के लिए। ब्रह्मा णम् उपस्थितः=ब्रह्मा जी के समक्ष उपस्थित हुआ।

अनुवाद)-पितामह ने (मुझे नाट्यलड्कार में प्रवीण) अप्सराए (कैशिकी वृत्ति के प्रयोग के लिए प्रदान की। उन्होंने मुझे मनजुकेशी से लेकर कलमा पर्यन्त)चौबीस अप्सराएॅ (दीं।) एतदनन्तर (स्वयम्भुव) ब्रह्मा जी (ने स्वाति नामक ऋषि को शिष्यों के सहित भाण्डों) आपूरक, पणव, मृदंग, झल्लर आदि वाद्यों (के लिए नियुक्त किया तथा नारदादि गन्धर्वो को गायन के लिए नियोजित किया। इस प्रकार वेद और वेदड्गों के साधन भूत इस नाट्यवेद का अपने सभी पुत्रों के साथ सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर मैं स्वाति और नारद के साथ हाथ जोड़कर)अभिवादन करता हुआ (ब्रह्मा जी के सम्मुख)नाट्यके (प्रयोगार्थ उपस्थित हुआ।

व्याख्या-भारत द्वारा याचना किये जाने पर ब्रह्मा जी ने उन्हें चौबीस अप्सराएॅ प्रदान की जो नाट्यलंकार में चतुर या प्रवीण थी। 'नाट्यालंकार' शब्द का अर्थ आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार नाट्य का अलंकार अर्थात् कैशिकी वृत्ति है, किन्तु अन्य आचार्य नाट्यलंकार वे है। जो सामान्य अभिनय देखे जाते है। जिनका आचार्य भरत ने बाईसवें अध्याय में वण्रन किया है। ये दो प्रकार के होते हैं-स्वभावज जिसके अन्तर्गत लीला, विलास इत्यादि दश अलंकार हैं, दूसरे यत्नज जिसके अन्तर्गत शोभा, कान्ति इत्यादि सात अलंकार हैं। आचार्य अभिनवगुपत के अनुसार इस कर्म में मुनि-कन्याएॅ पूर्णतः अयोग्य हैं अतएव ब्रह्मा जी को नाट्यालंकार में दक्ष अपसराएॅ देनी पड़ी। कैशिकी वृत्ति के सफल प्रदर्शन के लिए स्त्रियों की संख्या की अधिकता अपेक्षित है, ऐसा जानकर विभु ब्रह्मा जी ने चौबीस अपसराएॅ प्रदान की जिनके नाम इस प्रकार हैं)-1 (मन्जुकेशी, (2)सुकेशी, (3)मिश्रकेशी, (4) सुलोचना, (5) सौदामिनी, (6) देवदत्ता, (7) देवसेना, (8) मनोरमा, (9) सुदती, (10) सुन्दरी, (11) विदग्धा, (12) विपुला, (13) सुमाला, (14) सन्तति, (15) सुनन्दा,

(16) सुमुखी, (17) मागधी, (18) अर्जुनी, (19) सरला, (20) केरला, (21) धृति, (22) नन्दा, (23) पुष्कला, (24) कलमा। एतदनन्तर ब्रह्मा जी ने स्वाति नामक गन्धर्व को दिया जिन्होंनं वर्षा-काल में गिरती हुई जलधारा के वैचित्र्य को दर्शाने के लिए 'पुष्कर' नामक वाद्य का निर्माण किया था। उन स्वाति को उनके शिष्यों के साथ नाट्योपयोगी वाद्यों-आपूरक, पणव, झल्लर आदि के वादन के लिए नियुक्त किया और गीतों का गायन करने हेतु नारदादि देवर्षियों को भी भरत के संरक्षण में दे दिया। इस प्रकार आचार्य भरत नाट्य के लिए आवश्यक सभी उपकरणों-नृत्त, गीत, वाद्य-से पूर्णतः संयुक्त हो चुके थे। तब उन्होने अपने पुत्रों के साथ चारों वृत्तियों-सहित नाट्याभिनय में दक्षता प्राप्त की। तदनन्तर आचार्य भरत अपने पुत्रों को लेकर नारद और स्वाति के साथ पितामह के पास चले और विनीत वेश से उनके सम्मुख उपस्थित हुए। श्लोक के 'ब्रह्मा णम् उपस्थितः' का अर्थ आचार्य अभिनवगुप्त ने यह किया है-'नाट्य प्रयोग के ब्रह्मा जी को आमंत्रित किया।' मेरे मत में, वे ब्रह्मा जी से केवल यह कहने के लिए उपस्थित हुए थे कि उन्होंनं नाट्य-प्रयोग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है, अब वे उसके मंचन की स्वीकृति प्रदान करें। यह बात अगले श्लोकों में कही भी गयी है, अतः आमंत्रण की यहॉ कोई बात नहीं है।

नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तं ब्रूहि किं करवाण्यहम्।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच पितामहः।।53।।

अन्वयः) -मया (नाट्यस्य ग्रहणं प्राप्तम्, ग्रहणं, ब्रूहि-अहं कि करवाणि? एतत् वचनं श्रुत्वा तु पितामहः प्रत्युवाच।

शब्दार्थ-नाट्यस्य=नाट्यवेद की। ग्रहणम्=पूरी शिक्षा। एतत्=इस। वचनम्=वचन को। श्रुत्वा=सुनकर। तु=तो। पितामहः=ब्रह्मा जी ने। प्रत्युवाच=प्रत्युत्तर दिया।

अनुवाद)-भरत ने कहा-हे पितामह !मैंने ('नाट्य का पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया है, 'अब आप बतायें कि मैं क्या करूॅ? 'इस वचन को सुनकर तो पितामह)ब्रह्मा जी (ने प्रत्युत्तर दिया।

व्याख्या-भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों के साथ कैशिकी को भी समायोजित कर भरत ने अपने पुत्रों-सहित चारों वृत्तियों में नाट्य-प्रयोग का पुर्ण प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने के अनन्तर उन्होंने ब्रह्मा जी से निवेदन किया कि अब वे किसी भी स्थान पर नाट्यवेद का पूर्ण प्रयोग करने में समर्थ हो गये हैं। कृपया उन्हें अब भविष्य में क्या करना है, इसके लिए दिशा-निर्देश प्रदान करें। 'किं करवाणि' (क्या करूॅ (कहने में उनका यह आशय छिपा हुआ है कि अब वे इस नाट्यवेद का कहॉ प्रयोग

करें। इस वचन को सुनकर ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया। श्लोक में 'तु' पद से यह सूचित होता है कि ब्रह्मा जी जान गये कि इस समय भरत नाट्य के पूर्ण प्रयोग में सक्षम हो गयेंह ै।

4 .6.(श्लोक सं0 54- 74तक) अर्थ व्याख्या (54-74)

म्हानयं प्रयोगस्य समयः प्रत्युपस्थितः।

अयं ध्वजमहः श्रीमान् महेन्द्रस्य प्रवर्तते।।54।।

अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यसंज्ञः प्रयुज्यताम्।

ततस्तमिन् ध्वजमहे निहतासुरदानवे।।55।।

प्रहृष्टामरसंकीर्णे महेन्द्रविजयोत्सवे।

पूर्व कृता मया नान्दी ह्राशीर्वचनसंयुता।।56।।

अष्टाड्.गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता।

अन्वयः-अयं प्रयोगस्य महान् समयः प्रत्युपस्थितः। अयं महेन्द्रस्य श्रीमान् ध्वजमहः प्रवर्तते। अत्र इदानीम् अयं नाट्यसंज्ञः वेदः प्रयुज्यताम्। ततः तस्मिन ध्वजमहे निहितासुरदानवे प्रहृष्टामरसड्.कीर्णे महेन्द्र विजयोत्सवे मया हि पूर्वम् आशीर्वचन संयुता अष्टाड्.गपदसंयुक्ता विचित्रा वेदनिर्मिता नान्दी कृता।

शब्दार्थ-अयम्=यह। प्रयोगस्य= प्रयोग का। महान् समयः समुपस्थितः=अच्छा समय आ गया है। अयम्=यह। महेन्द्रस्य= देवराज इन्द्र का। श्रीमान् ध्वजमहः प्रवर्तते=वैभव-सम्पन्न ध्वज पूजन का समय है। अत्र=इस स्थान पर। इदानीम्=इस समय। अयम्=यह। नाट्यसंज्ञः वेदः=नाट्यसंज्ञक वेद। महेन्द्र विजयोत्सवे ध्वजमहे =महेन्द्र के विजयोत्सव रूप ध्वजमह में। मया=मैंने। पूर्वम्=सर्वप्रथम। आशीर्वचन संयुक्ता=आशीर्वादात्मक वचनों से युक्त। अष्टांगपदसंयुक्ता=आठ अंगों वाले पदों से युक्त। विचित्रा=अतएव विचित्र। वेदनिर्मिता=वेदो से निर्मित। नान्दी कृता=नान्दी का प्रयोग किया।

अनुवाद) -ब्रह्मा जी बोले(-यह नाट्यप्रयोग का अच्छा समय आ गया है। यह देवराज इन्द्र का वैभव-सम्पन्नह ध्वजमह)उत्सव (आ गया है। यहॉ पर इस समय इस नाट्य संज्ञक वेद का प्रयोग करो। तब उस दानव और असुरों से निर्विध्न तथा हर्षित देवों की भीड़ से परिपूर्ण महेन्द्र के विजयोत्सव पर मैंने सर्वप्रथम आशीर्वाद से युक्त तथा अष्टांगपदी होने के कारण विचित्र और वेद से निर्मित नान्दी का पाठ किया।

व्याख्या-भरत द्वारा नाट्यप्रयोग का उपयुक्त अवसर और स्थान पूछे जाने पर ब्रह्मा जी ने उनसे महा िकइस नाट्यवेद के प्रयोग का उपयुक्त अवसर तो अब आ ही गया। देखो न, देवराज इन्द्र ने असुर-दानवों का वध करके सम्पूर्ण जगत् को निर्विध्न कर दिया है। आज उनकी विजय के उपलक्ष्य में इन्द्र ध्वज को पूजने का ध्वजमह नामक विजयोत्सव मनाया जा रहा है। तुम इसी अवसर पर यहीं पर अपने इस नाट्यवेद का प्रयोग करो। ब्रह्मा जी के ये वचन सुनकर आचार्य भरत ने पहले नान्दी का पाठ किया है। वह अष्टांग-पदसंयुक्ता थी। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार वह नान्दी सुप्तिड़तरूप आठ पदों वाले वाक्य अथवा महावाक्य से युक्त थी, अथवा आठ वाक्यों से युक्त थी, अथवा उभय

प्रकार की थी, इसीलिए वह विचित्रा थी। किन्तु वह देव-निर्मिता थी, जैसाकि श्रुति वचन है-

आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात् प्रवर्तते।

देव,द्विजनृपा दीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।

तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्याः सुरैर्जिताः।।57।।

अन्वयः-तदन्ते यथा दैतयाः सुरैः जिताः) तथा (सम्फेट विद्रवकृता छेद्यमेद्याहवात्मिका अनुकृतिः बद्धा।

शब्दार्थ-तदन्ते=नान्दी की समाप्ति पर। यथा =जिस प्रकार। दैत्याः=दैत्यों को।सुरैः जिताः=देवों ने जीता था।) तथा= (उस प्रकार। सम्फेट विद्रवकृता=रोषपूर्ण वचनों से युक्त तथा शंका, भय, त्रास उत्पन्न करने वाली। छेद्यभद्याहवात्मिका=शस्त्र युद्ध और मल्ल युद्ध से युक्त। अनुकृति=नाट्यनुकाररूपा प्रस्तावना। बद्धा=योजित की गयी।

अनुवाद-नान्दी की समाप्ति पर जिस प्रकार दैत्यों को देवों ने जीता था, उस प्रकार रोषपूर्ण वाक्यों से युक्त तथा शड़्का-भय-त्रास उत्पन्न करने वाली शस्त्र युद्ध तथा मल्ल युद्ध से युक्त प्रस्तावना आयोजित की गयी।

व्याख्या-नान्दी के समाप्त हो जाने पर भरत द्वारा देवों असुरों को पराजित करने की घटना पर आधारित अनुकृति आयोजित की। अभिनवगुपत ने अनुकृति को नाट्य कहा है, किन्तु इस स्थल पर वे अनुकृति का अर्थ नाट्य नहीं मानते। उन्होंने 'अनुकृतिः बद्धा' की व्याख्या इस प्रकार की है- ''अनुकृतिरिति नाट्यम। तत्र च बद्धेति गुणनिका योजिता, न तु प्रयोग इत्येच्यासत्।'' अर्थात् अनुकृति नाट्य को कहते हैं, उसमें बद्ध की गयी अर्थात् गुणनिका)प्रस्तावना (आयोजित की गयी, प्रयोग नहीं आयोजित किया गया। जो ऐसा मानते हैं, वह असत्य है। इसलिए बद्धा का अर्थ है

प्रतावित की गयी, निष्पादित नहीं कि गयी। प्रयोग तो आगे किया गया है जिसमें विध्नों का व्याघात देखने को मिलेगा। अतः यह मानता उचित है कि भरत ने नान्दी के अनन्तर प्रस्तावना आयोजित की। इसकी कथावस्तु देवासुर-संग्राम पर आधारित थी। इसमें देवों की असुरों पर विजय दर्शायी गयी थी। इस युद्ध के मध्य देवों और असुरों में किस प्रकार रोषपूर्ण वाक्यों में संवाद हुए, किस प्रकार एक-दूसरे शंका-भय-त्रास से ग्रसित करने का प्रयास किया गया और किस प्रकार दोनों पक्षों में शस्त्रयुद्ध और मल्लयुद्ध हुए, ये सब प्रस्तावना में दर्शाये गये।

ततो ब्रह्मा दयो देवाः प्रयोगपरितोषिताः।।58।।

प्रददुर्हृष्टमनसः सर्वोपकरणानि नः।

अन्वयः-ततः ब्रह्मा दयः प्रयोगपरितोषितः प्रहृष्टमनसः नः सर्वोपकरणानि प्रददुः।

शब्दार्थ-ततो=तब। ब्रह्मा दयः देवाः=ब्रह्मा दिक देवों ने। प्रयोगपरितोषिताः=इस प्रस्तावना के प्रयोग से सन्तुष्ट होकर हृष्टमनसः=हर्षित मन से। नः=हम लोगों को। सर्वोपकरणानि=सभी उपकरण। प्रददुः=प्रदान कर दिये।

अनुवाद-तब ब्रह्मा दिक देव प्रस्तावना के प्रयोग से सन्तुष्ट होकर हर्षित मन से हमको सभी उपकरण प्रदान कर दिये।

व्याख्या -भरत ने जब अपने पुत्रों के साथ देवों की विजय और असुरों की पराजय का ओजस्वी नाट्य-प्रयोग देवगण के समक्ष प्रस्तुत किया तो उसे देखकर ब्रह्मा जी जैसे सर्वज्ञ देव भी भावाभिभूत हो गये। उन सभी ने प्रसन्न होकर आचार्य भरत को नाट्य के लिए उपयोगी सभी उपकरण प्रदान कर दिये।

प्रीतस्तु प्रथमं शक्रो दत्तवान् स्वं ध्वजं शुभम्।।59।।

ब्रह्मा कुटिलकं चैव भृङ्गरं वरूणः शुभम्।

सूर्यश्छत्रं शिवः सिद्धिं वायुर्व्यजनमेव च।।60।।

विष्णुः सिंहासनं चैव कुबेरो मुकुटं तथा।

श्राव्यत्वं प्रेक्षणीयस्यं ददौ देवी सरस्वती।।61।।

शेषा ये देवगन्धर्वा यक्षराक्षससपन्नगाः।

तस्मिन् सदस्यभिप्रेतान् नानाजाति गुणाश्रयान्।।62।।

अंशाशैर्भाषितं भावान् रसान् रूपं बलं तथा।

दत्तवन्तः प्रहृष्टास्ते मत्सुतेभ्यो दिवौकसः।।63।।

अन्वयः-प्रथमं तु शक्रः प्रीतः) सन् (स्वं शुभं ध्वजं दत्तवान्। ब्रह्मा चैव कुटिलकं वरूणः शुभं भृङ्गरं, सूर्यः छत्रं, शिवः सिद्धिं, वायुः व्यजनम् एव च, विष्णुः सिंहासनं तथा कुबेरो मुकुटं)दत्तवान् (सरस्वती देवी प्रेक्षणीयस्य श्राव्यत्वं ददौ। शेषाः ये देवगन्धर्वाः यक्षराक्षससपन्नगाः)सर्वे (ते दिवौकसः प्रहृष्टाः) सन्तः (मत्सुतेभ्यः तस्मिन् सदसि अभिप्रेतान् नानाजाति गुणाश्रयान् भावान् रसान्) च (दत्तवन्तः तथा रूपं बलं)च (अंशाशैः भाषितम्।

शब्दार्थ-प्रथमम्=सर्वप्रथम। शक्रः=इन्द्र ने। तु=तो। प्रीतः=प्रसन्न होकर। स्वम्=अपने। शुभं ध्वजम्=मंगलध्वज को। दत्तवान्=दिया ब्रह्मा =ब्रह्मा जी ने। कुटिलकम्=वक्रदण्ड दिया। वरूणः=वरूण ने। शुभं भृङ्गारम्=कल्याणकारी कमण्डलु दिया।सूर्यश्दत्रम्=सूर्यदेव ने छत्र दिया। शिवःअभगवान् शिव ने। प्रेक्षणीयस्य= दर्शनीय) नाट्य (को। श्राव्यत्वम्=श्रव्य गुण प्रदान किया। शेषाः ये=शेष जो। देवगन्धर्वाः=देव-गन्धर्व। यक्षराक्षस सपन्नगाः=यक्ष राक्षस और पन्नग योनियों के प्राणी थे। ते=उन्होंने तस्मिन् सदसि=उस सभा के लिए। नाना जातिगुणाश्रयन् भावन् रसान्=नाना जातियों और गुणों पर आश्रित भावों और रसों को। दन्तवन्तः=प्रदान किया। तथा अशांशैः=अपने-अपने अंशो द्वारा। रूपं बलं भाषितम्=रूप तथा बल का कथन किया।

अनुवाद-सर्वप्रथम तो इन्द्र ने प्रसन्न होकर अपने मंगल-ध्वज को प्रदान किया।)तदनन्तर ब्रह्मा जी ने कुटिलदण्ड, वरूण ने कल्याणमय कमण्डलु, सूर्य ने छत्र, भगवान शिव ने दैवी और मानुषी सिद्धियॉ विष्णु ने सिंहासन तथा कुबेर ने मुकुट प्रदान किया। वाग्देवी सरस्वती ने)भी (इस प्रेक्षणीय)दृश्य काव्य (को श्राव्यत्व प्रदान किया। शेष जो देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नग योनियों के स्वर्ग के प्राणी थे, उन्होंने भी प्रसन्न होकर उस सभा के लिए अभिष्ट नाना जातियों और गणों पर आश्रित रसों और भावों को प्रदान किया, साथ ही अपने-अपने अंशो से भाषित)वाचिक अभिनय(, रूप)सौन्दर्य-प्रसाधन (तथा बल) कायिक अभिनय (की मेरे पुत्रों को) शिक्षा (दी।

व्याख्या -देवों ने भरत को क्या-क्या नाट्योपकरण प्रदान किये थे, इसको स्पष्ट करते हुए आचार्य भरत कहते हैं कि सबसे पहलं इन्द्र ने अपने मंगल-ध्वज को प्रदान किया जो विजयसूचक होने के कारण विघ्न विनाशक था। तदान्तर ब्रह्ाजी ने अपना कुटिलक या वक्रदण्ड प्रदान किया जो

विदूषक के लिए उपयोगी था। सूर्य ने छत्र प्रदान किया जो मेघाकार था क्योंकि मेघ सूर्य से उत्पन्न होते हैं, जैसाकि कहा भी गया है -'ऋतवे वर्षान्ते महतो-मेघः सम्प्रवान वर्षा-ऋतु के लिए वर्षान्त में महत्) सूर्य (से मेघ उत्पन्न हुआ। यह छत्र आतप-निवारण के लिए उपयोगी था। भगवान् शिव से दैवी और मानुषी सिद्धियॉ प्राप्त हुई जिससे नाट्य-प्रयोग सिद्धिरूप फल प्रदान करने में सक्षम हुआ। वायु से व्यंजन दिया जो आपत-पीड़ित पात्रों के पसोने सुखाने के लिए उपयोगी था। विष्णु ने सिहासन और कुबेर ने मुकुट प्रदान किये जो राजाओं के रूप में अभिनय करने वाले पात्रों के लिए उपयुक्त उपकरण थे। अब तक नाट्यवेद केवल दृश्य था। किन्तु सरस्वती देवी ने प्रसन्न होकर उसे

श्रव्यगुण भी प्रदान कर दिया।

एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने।

अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये तत्र सङ्गता।।64।।

विरूपाक्षपुरोगाश्च विघ्नान् प्रोत्साहा्र तेऽबुवन्।

न क्षमिष्यामहे नाट्यमेतदागम्यतामिति।।65।।

ततरूतैरसुरै सार्धं विघ्ना मायामुपाश्रिताः।

वाक्चेष्टां स्मृतिंच ैव स्तम्भयन्ति स्म नृत्यताम्।।66।।

तथा विध्वंसनं दृष्ट्वा सुत्राधारस्य देवराट्।

कस्मात् प्रयोगवैषम्यमित्युक्त्वा ध्यानमाविशट्।।67।।

अन्वयः-एवं दैत्यदानमाशने प्रयोग प्रारब्धे ये दैत्याः तत्र सङ्गताः) आसन् ते (क्षुभिताः अभवन्। ते च विरूपाक्षपुरोगान् विध्नान् प्रोत्साहा्र अब्रुवन्-'एतत्)वयं (न क्षमिष्यामहे, आगम्यतामिति। 'ततः तैः असुरैः सार्ध मायाम् उपाश्रिताः

विघ्नाः नृत्यतां वाक्चेष्टां स्मृति चैव स्तम्भयन्ति स्म। देवराट् सूत्रधारस्य तथा विध्वंसनं 'प्रयोगवैभ्यं कस्मात्)उपस्थितम(' इति उक्त्वा ध्यानम् आविशत्।

शब्दार्थ-एवम्=इस प्रकार। प्रयोगे प्रारब्धे=नाट्य-प्रयोग के प्रारंभ होने पर। दैत्यदानवनाशने=दैत्यों और दानवों के विनाश पर आधारित। ये दैत्याः=जो दैत्य लोग। तत्र=उस नाट्य-परिषद् में। सङ्गताः=सम्मिलित हुए थे। सर्वे=वे सब। क्षुभिताः अभवन्=क्षुब्ध) क्रोद्ध (हो गये। ते च=और

उन्होंने। विरूपाक्षपुरोगान् विघ्नान्=विरूपाक्ष आदि विघ्नों को। प्रोत्सहा्र=प्रोत्साहित कर। अब्रुवन=कहा। एतत् न क्षमिष्यामहे=हम इसको सहन नहीं कर सकेंगे। आगम्यताम्=तुम लोग इधर आओ। ततः=तब। तैः असुरैः सार्धम्=उन असुरों के साथ। मायाम् उपाश्रिताः=मायाधारी। विघ्नाः=विघ्नों ने। नृत्यताम्=नृत्य करने वाले पात्रों की। वाक्चेष्टाम्=बोलने की चेष्टा को। विध्वंसने दृष्ट्वा=स्मम्भन देखकर। प्रयोग-वैषम्यं कस्मात्=नाट्य-प्रयोग में विषमता कैसे उपस्थित हुई। इति उक्त्वा=ऐसा कहकर। ध्यानम् आविशत्=ध्यानस्थ हुए।

अनुवाद-इस प्रकार दैत्यों और असुरों के विनाश की घटना पर आधारित नाट्यप्रयोग के आरम्भ

होने पर जो दैत्य उस नाट्य-परिषद् में सम्मिलित हुए थे, वे सब खुब्ध)क्रद्ध(हो गये, और उन्होंने विरूपाक्षादि विघ्नों को प्रोत्साहित कर कहा-''हम इस नाट्य को सहन नहीं कर सकते, तुम सब इधर आओं।'' तब उन असुरों के मायाधारी विघ्नों ने नृत्य करते हुए पात्रों की वाणी की चेष्टा और स्मरण-शक्ति को स्तम्भित कर दिया। देवराज इन्द्र सूत्रधार का इस प्रकार स्तम्भन देखकर'' प्रयोग में विषमता कैसे)उपस्थित हो गयी(''ऐस कहकर ध्यानस्थ हो गये।

व्याख्या-प्रस्तावना से परितुष्ट ब्रह्मा दिक देवों से नाट्य के लिए उपयोगी सभी उपकरणों को प्राप्त कर आचार्य भरत ने अपने पुत्रों के साथ नाट्य-प्रयोग प्रारम्भ किया। इस नाट्य की कथावस्तु देवासुर-संग्राम पर आश्रित थी जिसमें दैत्यों को क्रोध आने लगा। उन्होंने क्रोध में हमतमाते हुए विरूपाक्ष आदि विघ्नों को आमंत्रित किया और उनसे कहा कि हम इस नाट्य प्रयोग को देखना पसन्द नहीं करते। तुम सब लोग इस रंगशाला में जाकर व्यवधान उत्पन्न करो। असुरोंसे आज्ञप्त होकर विघ्नों ने अपनी माया का आश्रय लेकर सर्वप्रथम रंगमंच पर नृत्य करते हुए पात्रों की वाक्शक्ति पर विराम लगा दिया जिससे वे अभीष्ट गीत को ही भूल गये। उनके बाद उन्होंनं नाट्य के सूत्रधार को निष्क्रिय कर दिया। उसकी स्थिति तो मृत प्राणी की-सी हो गयी थी, इसीलिए श्लोक में उसका 'विघ्वसन' कहा गया है। ऐसा हो जाने पर ध्यानस्थ व्यक्ति को माया प्रभावित नही कर सकती और वह वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इसलिए नाट्य में उपस्थित विषमता के वास्तविक कारण का पता लगाने के निमित्त उन्होंने ध्यान की मुद्रा धारण की थी।

अथाऽपश्यत् सदो विघ्नैःसमन्तात् परिवारितम्।

सहेतरैः सूत्रधारं नष्टसंज्ञं जड़ीकृतम्।।68।।

उत्थाय त्वरितं शक्रो गृहीत्वा ध्वजमुत्तमम्।

सर्वरत्नोज्ज्वलतनुः किन्चिदुद्वृत्तलोचनः।।69।।

रङ्गपीठगतान् विघ्नानसुरांश्चैव देवराट्।

जर्जरीकृत देहांस्तानकरोज्जर्जरेण सः।।70।।

अन्वयः-अथ)देवराट् (विघ्नैः समन्तात् परिवारितं सदः इतरै सह नष्टसंज्ञं जड़ीकृतं सूत्रधारम् अपश्यत्। सर्वरत्नोज्ज्वलतनुः किन्चिद् उद्वृत्तलोचनः देवराट् सशक्रः त्वरितम् उत्थाय, उत्तमं ध्वजं गृहीत्वा रङ्गपीठगतान् तान् विघ्नान् असुरान् चैव जर्जरण जर्जरीकृतदेहान् अकरोत्।

शब्दार्थ-अथ=तदनन्तर। विघ्नैः=विघ्नों द्वारा। समन्तात्परिवारितम्=सब और घेरे लिये गये।

सदः=परिषद् के। इतरैः सह=अन्यपात्रों के साथ। नष्टसंज्ञम्=संज्ञा-शून्य। जड़ीकृतम=जड़ बना दिये गये। सूत्रधारम्=सूत्रधार को। अपश्यत्=देखा। सर्वरत्नोज्जवलतनुः=समस्तरत्नों से उज्ज्वल शरीर वाले। किन्चिद् उद्धत्तलोचनः=कुछ ऊपर को भौंहें चढ़ाये हुए। त्वरितम् उत्थाय =तुरन्त उठ खड़े होकर। उत्तमं ध्वजं गृहीत्वा=अपने उत्तम ध्वज)ध्वजमह (को पकड़ कर। रङ्गपीठगतान्=रंगमंच पर गये हुए। तान्विघ्नान्=उन विघ्नों को। असुरॉश्चैवं=और असुरों को जर्जरेण=जर्जर असत्र से। जर्जरीकृतदेहान्=जर्जर हुए शरीर वाले। अकरोत्=कर दिया।

अनुवाद-ध्यानस्थ होने के अनन्तर देवराज ने विघ्नों द्वारा सब ओर घेर लिये गये परिषद् के अन्य पात्रों के साथ संज्ञा-शून्य तथा जड़ बने हुए सूत्रधार को दखा। सभी रत्नों से उज्जवल शरीर वाले उन देवराज इन्द्र ने तुरन्त उठ खड़े होकर हाथ में ध्वज पकड़ कर कुछ-कुछ ऊपर को भौहें चढाते हुए रंगमंच पर गये हुए उन विघ्नों तथा असुरों को अपने जर्जर अस्त्र से जर्जर हुए शरीर वाले कर दिया।

व्याख्या-नाट्य-प्रयोग में वैषम्य देखकर देवराज इन्द्र ने ऐसा ध्यान लगाया जिस पर असुरों की माया अपना प्रभाव नहीं डाल सकती थी। उस ध्यान में उनहोंने सूत्रधार सहित सभी पात्रों को सब ओर अपने घेरे में ले लिया है। इसके कारण उनकी संज्ञा नष्ट हो गयी है और वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। कार्य-सिद्धि के विघातकों को राजा द्वारा दण्ड मिलना चाहिए, ऐसा सोचकर देवराज इन्द्र ने तुरन्त अपने आसन से उठकर अपने मंगल-ध्वज को ग्रहण किया। देवराज इन्द्र अनेक रत्नों से जटित आभूषण धारण किया हुए थे जिनके कारण उनका शरीर अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत हो रहा था, किन्तु असुरों और उनके सहयोगी विघ्नों की धृष्टता से क्षुब्ध होने के कारण उनके नेत्रों की भौहें कुछ ऊपर की ओर तनी हुई थी। वे झपट कर रंगमंच पर पहुॅचे और अपने जर्जरणशील ध्वज से उन सिद्धि-विघातक असुरों तथा विघ्नों पर प्रहार करने लगे। उनके सतत् प्रहारों से असुरों और विघ्नों के शरीर

जीर्ण-शीर्ण होगये। यद्यपि शरीर के जर्जरीकरण से वे असुर और विघ्न विनाष को प्राप्त तो न हुए थे, किन्तु उस समय वे विघातक-कार्यो से विरत हो गये जिससे नाट्य-प्रयोग निर्विध्न सम्पन्न हो सके।

निहतेषु च सर्वेषु विघ्नेषु सह दानवैः।

सम्प्रहृष्य ततो वाक्यमाहुः सर्वे दिवौकसः।।71।।

अहो प्रहरणं दिव्यमिदमासादितं त्वया।

जर्जरीकृतसर्वाड़्गा येनैते दानवाः कृता।।72।।

यसमादनेन ते विध्नाः सासुराः जर्जरीकृताः।

तस्माज्जर्जर एवेति नामतोऽयं भविष्यति।।73।।ः

शेषा ये चैव हिंसार्थमुपयास्यन्ति हिंसकाः।

दृष्ट्वै जर्जर तेऽपि गमिष्यन्त्येवमेव तु ।।74।।

अन्वयः -ततः) दानवैः सह सर्वेषु च विघ्नेषु निहतेषु)सत्सु (सर्वे दिवौकसः सम्प्रहृष्य वाक्यम् आहुः-'अहो !त्वया इदं दिव्य प्रहरणम् आसादितं येन एतेदानवाः जर्जरीकृतसर्वाड्.गाः कृताः। यस्मात् अनेन ते विघ्नाः सासुराः जर्जरीकृताः तस्मात् अयं' जर्जरः' एव नामतः भविष्यति। शेषाः भविष्यति। शेषाः च ये हिंसकाः हिसार्थम् उपयास्यन्ति, तेऽपि जर्जरं दृष्ट्वैव एवमेव तु गमिष्यन्ति।

शब्दार्थ-ततः=तब। दानवै सह=दानवों के साथ। सर्वेषु च विध्नेषु निहतेषु=सभी विध्नों के मृतप्राय होने पर। सर्वे दिवौकसः=सभी देवता। सम्प्रहृष्य= हर्षित होकर। वाक्यम् आह=वचन बोले। अहो=अति प्रसन्नता का विषय है कि। त्वया=आपने। इदं दिव्यं प्रहरणम्=यह दिव्य प्रहार। आसादितम्=किया था। येन=जिससे। एते दानवाः=ये दानव। जर्जरीकृत सर्वाड्.गाः=सभी अंगो से जर्जर। कृताः=कर डाले। यस्पात्=क्योंकि। अनेन=इस ध्वज ने। ते विघ्नाः=उन विघ्नों को।सासुराः=असुरों-सहित। जर्जरीकृताः=जर्जर कर दिया है। तस्मात्=इसलिए। अयम्=यह जर्जरं दृष्ट्वैव व=जर्जर को देखकर ही। एवमेव तु=इसी प्रकार। ंगमिष्यन्ति=चले जायेंगे।

अनुवाद-तब दानवों के साथ विघ्नों का विनाश कर दिये जाने पर सभी देवगण हर्षित होकर यह वचन बोले-'अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है कि आपने यह दिव्य प्रहार किया जिससे ये दानव सभी अंगों से जर्जर कर दिये गये, नाम से ही प्रसिद्ध होगा और जो शेष हिंसा करने वाले)असुर

आदि (हिंसा करने के लिए इस नाट्य-प्रयोग के समीप आयेंगे वे भी जर्जर को देखकर ही इसी प्रकार पलायन कर जायेंगे।

व्याख्या-इन्द्र ने अपने उत्तम ध्वज से दैत्यों और विघ्नों को अंग-प्रत्यंग से जर्जर कर दिया था जिससे वे मृतप्राय हो गये थे, मरे नहीं थे, किन्तु वे विघ्न उत्पन्न करने मे सर्वथा अशक्य हो गये थे, अतः रंगपीठ से धीरे-धीरे खिसक गये थे। इस प्रकार नाट्य की रंगशाला सर्वथा निर्विघ्न हो गयी थी। श्लोक में 'निहित' शब्द का अर्थ मरे हुए नहीं है, अपितु मृतप्राय है, किन्तु देवों के 'उपयास्यन्ति' कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वे अपनी अक्षमता के कारण वहॉ से चले गये थे। इन्द्र के इस पराक्रममपूर्ण कृत्य से हर्षित देवगण कहने लगे -''अहो !अर्थात् हम यह जानकर अत्यधिक हर्षित हैं कि आपने जिस ध्वजरूप अस्त्र से इन हिंसक असुरों का विघ्नों सहित क्षय किया है, उसको आज के बाद 'जर्जर' नाम से ही प्रसिद्ध कर दिया जाये, तथा जो शेष हिंसक प्राणी इस नाट्य में विघ्न उत्पन्न करने के लिए उपस्थित होने का प्रयास करेंगे वे इस विजय-ध्वज को देखते ही पलायन कर जायें ऐसी हमारी अभिलाषा है।''

4.7. श्लोक सं0 (75-से 82तक) अर्थ व्याख्या (75-82)

एवमेवास्त्विति ततः शक्रः प्रोवाच तान् सुरान्।

रक्षाभूतश्च सर्वेषां भविष्यत्येष जर्जरः।।75।।

अन्वयः-ततः शक्रः तान् सुरान् प्रोवाच-''एवमस्तु इति, एष जर्जरः सर्वेषांरक्षाभूतः भविष्यति।

शब्दार्थ-ततः=तब) देवों के वचन सुनकर (शक्रः=इन्द्रदेव ने। तान् सुरान्=उन देवो को। प्रोवाच=प्रत्युत्तर दिया। रक्षाभूतः=रक्षा-स्वरूप या रक्षक। भविष्यति=होगा।

अनुवाद-तब)देवों के वचन सुनकर (इन्द्र ने प्रत्युत्तर दिया- ''ऐसा ही हो। यह जर्जर सभी)नटों और परिषदों(का रक्षाभूत किंवा रक्षक होगा।''

व्याख्या -प्रहृष्टमना देवों ने पूर्व श्लोक में यह कहा कि भविष्य में यह इन्द्र-ध्वज 'जर्जर' नाम से ही प्रसिद्ध होगा। यों तो प्रत्येक देव में किसी वस्तु को कुछ वस्तु को कुछ बनाने की सामर्थ्य है किन्तु इन्द्र-ध्वज तो इन्द्र का था, अतः उसका 'जर्जर' नाम इन्द्र की अनुमति के बिना संभव नहीं था, क्योंकि इन्द्रदेव सभी देवों से अधिक माहात्म्य-युक्त हैं, अतः उन्होंने देवों के वचन सुनकर उन्हें

अनुमति प्रदान करने के भाव से कह ही दिया-'एवमस्तु' अर्थात् तुम जो नाम देना चाहते हो, वही नाम इस ध्वन का होवे।

प्रयोगे प्रस्तुते ह्रेवं सफीते शक्रमहे पुनः।

त्रासं जन्जनयन्ति स्म विघ्नाः शेषास्तु नृत्यताम्।।76।।

अन्वयः-नुनः स्फीते शक्रमहे एवं प्रयोगे प्रस्तुते) सति (शेषा विघ्नाः तु नृत्यतां त्रासं सज्जनयन्ति स्म।

शब्दार्थ-पुनः=दोबारा। सफीते=विशाल। शक्रमहे=इन्द्र के ध्वजमह उत्सव पर। एवम्=इसी प्रकार के। प्रयोगे प्रस्तुते=प्रयोग के प्रस्तुत किये जाने पर। शेषाः=बचे हुए। विघ्नाः तु=विघ्न तो। नृत्यताम्=नृत्य करने वाले, नटों में। त्रासं सन्जन्यन्तिस्म=भय उत्पन्न करने लगे।

अनुवाद-दूसरी बार उपस्थित इन्द्र के ध्वजमह महोत्सव पर इसी प्रकार के नाट्य का प्रयोग प्रस्तुत किये जाने पर बचे हुए विघ्न तो नृत्य करने वाले नटों में भय उत्पन्न करने लगे।

व्याख्या-प्रथम बार जब दैत्यासुरविनाशन नाट्य का प्रयोग किया गया था तो उसमें दैत्यों ने विघ्नों के साथ मिलकर सूत्रधार-सहित सभी नटों की वाणी और आंगिक क्रियाओं का स्तम्भन कर दिया था जिन्हें इन्द्र ने 'जर्जर' से नष्टप्राय कर नाट्य-प्रयोग को निर्विघ्न कर दिया।

दृष्ट्वा तेषां व्यवसितं दैत्यानां विप्रकारजम्।

उपस्थितोऽहं ब्रह्मा णं सुतैः सर्वैः समन्वितः।।77।।

निश्चिता भगवन् !विघ्ना नाट्यस्यास्य विनाशने।

अस्य रक्षाविधिं सम्यगाज्ञापय सुरेश्वर।।78।।

अन्वयः-तेषां दैत्यानां विप्रकारजं व्यवसितं दृष्ट्वा अहं सर्वैः सुतैः समन्वितः) सन् (ब्रह्मा णम् उपसिथतः)उवाच च (''भगवन् !अस्य नाट्यस्य विनाशने विघ्नाः निश्चिताः। सुरेश्वर !अस्य रक्षाविधिं सम्यग् आज्ञापय।

शब्दार्थ -तेषां दैत्यानाम्=उन दैत्यों के। विप्रकारजम्=अनादर से उत्पन्न। व्यवसितम्=विघ्नरूप कृत्य को। ब्रह्मा णम्=ब्रह्मा जी के सन्मुख। उपस्थितः=उपस्थित हुआ। भगवन्=हे प्रभो !अस्य

नाट्यस्य= इस नाट्य के। विनाशने=नष्ट करने में। विघ्नाः निश्चिताः=विघ्न निश्चित हैं। सुरेश्वर=हे देवों के स्वामी। अस्य= इसकी। रक्षाविधिम्=रक्षा का उपाय। सम्यक्=भली-भॉति। आज्ञापय =आदेश करें।

अनुवाद-उन दैत्यों के अपमान से उत्पन्न विघ्नरूप कृत्य को देखकर मैं अपने सभी पुत्रों के साथ ब्रह्मा जी के सम्मुख उपस्थित हुआ)और उनसे कहा-(''हे प्रभो !इस नाट्य के नष्ट करने में विघ्न निश्चित हैं; (इसलिए (हे देवों के स्वामिन् !इसकी रक्षा का उपाय भली-भॉति) सोच-समझकर (निर्दिष्ट करें।

व्याख्या-भरत ने दुबारा ध्वजमह उत्सव आने पर जिस नाट्य का प्रयोग किया था उसमें भी सत्स्वरूप देवों की विजय और असत्-स्वरूप दैत्यों की पराजय दर्शायी जा रही थी। इसे देखकर दैत्य लोग अपने आपकों अपमानित अनुभव कर रहे थे; अतः वे गतवर्ष की भॉति इस वर्ष भी नाट्य-प्रयोग में विघ्न उत्पन्न करने लगे। यह देखकर आचार्य भरत अपने तथा देवताओं के गुरू ब्रह्मा जी के पास अपने पुत्रों के साथ पहुचें और उनसे निवेदन करने लगे कि हे सुरेशवर !यह निश्चित है कि कहीं भी नाट्य-प्रयोग किया जायेगा तो उसमें विघ्न उपस्थित होंगे, इस लिए मैं आपसे ऐसा निर्देष चाहता हॅू जिससे इन विघ्नों का स्थायी निराकरण हो सके।

कृपया आज्ञा दें कि मैं क्या करूॅ।

ततश्च विश्वकर्माणं ब्रह्र्रोवाच प्रयत्नतः।

कुरू लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म महानत।।79।।

अन्वयः-ततः च ब्रह्मा विश्वकर्माणम् उवाच-''महामतो !लक्षणसम्पन्नं नाट्यवेश्म प्रयत्नः कुरू।

शब्दार्थ-ततश्च=और तब। ब्रह्मा =ब्रह्मा जी ने। विश्वकर्माणम् उवाच=विश्वकर्मा से कहा। महामते=हे महाबुद्धिमान। लक्षणसम्पन्नम्=सभी लखणों से सम्पन्न। नाट्यवेश्म=नाट्य-गृह, नाट्यशाला। कुरू =निर्मित करो। प्रयत्नतः=सावधानीपूर्वक।

अनुवाद -और तब ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा से कहा-''है कुशाग्रबुद्धे !तुम सभी लक्षणों)विशेषताओं (से सम्पन्न नाट्य-गृह का सावधानीपूर्वक निर्माण करों।

व्याख्या-आचार्य भरत के विनीत वचन सुनकर ब्रह्मा जी ने विचार किया कि नाट्य-प्रयोग तो तभी निर्विघ्न सम्पन्न हो सकता है जब कोई वास्तु विद्या तत्वविद् एक सर्वगुणसम्पन्न नाट्यशाला का निमार्ण कर दे। इसके लिए देवों के स्थपति विश्वकर्मा से अधिक कुशल कोई नहीं था; अतः उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाकर निर्देश दिया कि वह एक ऐसा नाट्य-गृह बनायें जो सभी विशेषताओं से सम्पन्न हो तथा जिसमें किसी विघ्न के लिए काई अवकाश न रहें। किन्तु इस नाट्य-गृह के निर्माण में कोई छिद्र न रह जाये जिसमें होकर कोई विघ्न प्रवेश कर सके। इसके लिए विशेष सावधानी बरतनी होगी, अतः नाट्यशाला का निर्माण 'प्रयत्नतः' किया जाना चाहिए।

तोऽचिरेण कालेन विश्वकर्मा महच्छुभम्।

सर्वलक्षणसम्पन्नं कृत्वा नाट्यगृहंतु सः।।80।।

प्रोक्तवान् दुहिणं गत्वा सभायां तु कृतान्जलिः।

सज्जं नाट्यगृहं देव तदवेक्षितुमर्हसि।।81

अन्वयः-ततः सः विश्वकर्मा अचिरेण कालेन महच्छुभं सर्वलक्षणसम्पन्नं नाट्यगृहं कृत्वा सभायां द्रुहिणं गत्वा तु कृतान्जलिः प्रोक्तवान्-''देव !नाट्यगृहं सज्जम्) अस्ति (तद् अवेक्षितुम् अर्हसि।

शब्दार्थ-ततः=तब। सः विश्वकर्मा =उस विश्वकर्मा ने। अचिरेण कालेन=अल्प काल में ही। महच्छुभम् =अत्यधिक कल्याणकारी। सर्वलक्षणसम्पन्नम्=सर्वागुणसम्पन्न। द्रुहिणं गत्वा=ब्रह्मा जी के पास जाकर। कृतान्जलिः=हाथ जोड़कर। प्रोक्वान्=कहा देव=हे देव। नाट्यगृहंसज्जम्=नाट्य-गृह तैयार है। तत् अवेक्षितुम् अर्हसि=उसे आप देख सकते हैं।

अनुवाद-तब उसे विश्वकर्मा ने अल्पकाल में ही अत्यधिक कल्याणकारी तथा सर्वगुणसम्पन्न नाट्यगृह का निर्माण कर देव-सभा में ब्रह्मा जी के पास जाकर हाथ जोड़कर कहा-''देव !नाट्यगृह तैयार है; उसे आप देख सकते हैं''

व्याख्या-ब्रह्मा जी का यह निर्देश पाकर िकवह प्रयत्नपूर्वक एक सर्वगुणसम्पन्न नाट्य-गृह बना दे, सुरस्थपति विश्वकर्मा ने अल्पकाल में ही एक मण्डप बना दिया जो सभी विशषेताओं से युक्त तथा नटों और सामाजिकों-दोनों के लिए शुभ) या कल्याणप्रद (था। इतनी शीघ्रता से नाट्य-गृह का निर्माण कर दिये जाने से यह सूचित होता है विश्वकर्मा उस समय के कुशलतम वास्तुविद् थे। अल्पावधि में प्रयत्नपूर्वक एक भव्य नाट्य-गृह का निर्माण उनकी वास्तुविद्या विशारदता की पराकष्ठा को ही दर्शाता है।

ततः सह महेन्द्रेण सुरैः सर्वैश्च सेतरैः।

आगतस्त्वरितो द्रष्टुं द्रुहिणो नाट्यमण्डपम्।।82।।

अन्वयः-ततः द्रुहिणः महेन्द्रेण सेतरैः सर्वोः च सह नाट्यमण्डपं द्रष्टंु त्वरितः आगतः।

शब्दार्थ-ततः=तब। द्रुहिणः=ब्रह्मा जी। महेन्द्रण सेतरैः सर्वै सुरैश्च सह=देवराज इन्द्र तथा अन्य सभी देवों के साथ । त्वरितः=शीघ्रता से आगतः=आये।

अनुवाद-तब) विश्वकर्मा के वचन सुनकर (ब्रह्मा जी देवराज इन्द्र तथा अन्य देवों के साथ शीघ्रतापूर्वक नाट्यमण्डप को देखने आ गये।

व्याख्या-ब्रह्मा जी के आदेश से एक भव्य तथा कल्याणकारी नाट्य-गृह को देखने आये। श्लोक में 'आगतः क्रिया के प्रयोग से यह ध्वनित होता है कि विश्वकर्मा ने नाट्यमण्डप भूलोक में निर्मित किया था जिसे देखने के लिए सुरगुरू ब्रह्मा जी स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आये थे।

अभ्यास के प्रश्न -

एक शब्द में उत्तर दीजिए-

- नाट्यशास्त्र की रचना किसने की -
- ब्रहामा ने भरत को नाट्य का उपदेश कब दिया था।
- नाट्य के समय किसका स्मरण किया गयाः
- नाट्य शास्त्र को कौन सा वेद कहते है।
- विदग्ध का क्या अर्थ है।
- प्रगल्भ का क्या तात्पर्य है ।
- गुरूमुखात का क्या अर्थ होता है।
- इन्द्र न किन ऋषियो को नाट्य वेद का ज्ञाता समझा।
- ब्रहमा के कितने पुत्र बताये गये।
- शाण्डिल्य कौन है।

4-8. सारांश

नाट्यशास्त्र के श्लोकार्थ द्वारा सम्यक अध्ययन करने की इस इकाई में आपने आत्रेय आदि मुनियों के प्रश्न करने परे आर्चाय भरतमुनि द्वारा उपदेषित नाट्य विधा का अवलोकन कर उसकी समस्त पृष्ठ भूमि की जानकारी प्राप्त किया। यह एक अत्यन्त प्राचीन बात है कि आचार्य भरत नाट्य के विशेषज्ञ थे उन्होंनअपने शिष्यों को और पुत्रों को नित्य रूप से नाट्यवेद पढाया उस नाट्य वेद के प्रयोग का प्रशिक्षण निरन्तर दिया। एक समय प्रात :काल जब वे अपने जप को समाप्त कर अध्ययन अध्यापन से विरत होकर अपनेपुत्रों के बीच में बैठे हुए थे, उसी समय आत्रेय आदि ऋषियों ने उनके समक्ष जाकर शिष्यत्व प्रस्तुत करते हुए उनसे पॉच प्रकार के प्रश्न पूछा -

1. आप ने जिस नाट्य वेद को सुन्दरतम् वस्तुओं के समाहरण के लिए गुम्फित किया है उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी।

2. इस नाट्य वेद कि रचना किसकें लिए की गयी।

3. नाट्य वेद के कितने अंग है।

4. नाट्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किस प्रमाण की आवश्यकता है।

5. इसके कितने प्रकार है और इसका प्रयोग किस प्रकार होता है।

इन समस्त प्रश्नों के उत्तर में ब्रह्मा द्वारा जो भी कहा गया है वह प्रथम अध्याय की दोनों इकाईयों में वर्णित है।

उनका यह उत्तर है वही नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय के समस्त श्लोंको मे निबद्ध है।

मंगलाचरण से लेकर श्लोक संख्या 127तक के समस्त वर्णन में नाट्य की उत्पत्ति प्रेक्षागृह की पूजा और नाट्य की विशेषताओं प्रयोजनों के वर्णन किये गये। ये सब दोनों इकाईयों प्राप्य है जिनके अध्ययन से आप नाट्य शास्त्र से सम्बन्धित मूल भूत तथ्यों का ज्ञान करा सकेंगे।

4.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

- भरत
- आदिकल्प
- चारों वेदों का
- पंचम वेद
- चतुर

- धैर्य पूर्वक बोलने वाला
- महर्षियों
- 105
- ब्रह्मा के पुत्र

4.10संदर्भग्रन्थ सूची

1 पारसनाथद्विवेदी भरतमुनि नाट्यशास्त्रम् सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

4.11 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

4.12निबन्धात्म क प्रश्न

- नाट्य शास्त्र के मंगलाचरण की व्याख्या कीजिए।
- नाट्य शास्त्र प्रथम अध्याय के अनुसार नाट्यमण्डप की विवेशषेता लिखिए।
- ब्रह्मा के 105पुत्रों के नाम लिखिए।

इकाई -5 नाट्यशास्त्र(प्रथम अध्याय उत्तरार्ध)अर्थ एवं व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

51. प्रस्तावना

5.2. उद्देश्य

5.3 श्लोक संख्या 83से लेकर श्लोक सं0 94 तक(अर्थ, व्याख्या)

5.4. श्लोक सं0 95 से 110 तक)अर्थ व्याख्या

5.5. श्लोक सं0 111 से 127 तकअर्थ व्याख्या

5.6. सारांश

5.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8. सन्दर्भ ग्रन्थ

5.9. सहायक ग्रन्थ

5.10. निबन्धात्मक प्रश्न।

5.1. प्रस्तावना-

नाट्यशास्त्र के समयक अध्ययन से सम्बन्धित यह पॉचवी इकाई है । इसके पूर्व की इकाईयों में आपने नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य उसके प्रमुख टीकाकारों एवं उनके सिद्धान्तों का भति भॉति अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई के ठीक पूर्व की इकाईमें आपने मंगलाचरण से लेकर देवराज इन्द्र एवं अन्य देवताओं द्वारा नाट्यमण्डप के दर्शन तक के श्लोकों की अनुवाद सहित व्याख्या का अध्ययन किया है।

प्रस्तुत इकाई में नाट्यमण्डप की रक्षा हेतु देवताओं को प्रेरित करना एवं नाट्यमण्डप के माप से सम्बन्धित श्लोकों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस इकाई में नाट्यमण्डप की अनेक विशेषताओं तथा उसके सुरक्षा हेतु देवताओं के बीच में जो संवाद हुए उनका अध्ययन करते हुए नाट्यशास्त्र के प्रयोजन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके पश्चात रंगदेव के पूजन एवं उसके महात्म्य में पितामह ब्रह्मा द्वारा दिये गये आदेश का वर्णन भावार्थ् सहित प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्यशास्त्र के महत्व को बताते हुए ब्रह्माद्वारा बताये गये नाट्यनियमों एवं उसकी महत्ताओं को समझा सकेगें।

5. 2उद्देश्य-

नाट्यमण्डप की माप एवं विशेषताओं, प्रयोजनों तथा रंगदेवता के पूजन से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- ब्रह्मा द्वारा दिये गये उपदेशों का ज्ञान कर उन्हें बता सकेगें।
- नाट्यमण्डप की विशेषताओं को समझा सकेंगे।
- रंगपीठ की माप को सम्यक् रूप से बता सकेगे।
- नाट्यशास्त्र के प्रमुख प्रयोजन की व्याख्या कर सकेगें।
- नाट्य के अध्ययन से प्राप्त लाभों को बात सकेगें।
- ब्रह्मा द्वारा दिये गये नाट्य ज्ञानकी व्याख्या कर सकेगें।

5. 3श्लोक संख्या 83 से94 तक अर्थ एवं व्याख्या

दृष्ट्वा नाट्यगृहं ब्रह्मा प्राह सर्वान् सुरास्ततः।

अंषभागैर्भवद्भिस्तु रक्ष्योयं नाट्यमण्डपः।।83।।

अन्वय -:नाट्यगूहम् तथा दृष्ट्वा ब्रह्मा सर्वान् प्राह-भवद्भि :तु अंशभागै :अयम् नाट्यमण्डप : रक्ष्य:।

शब्दार्थ-नाट्यगृहम् नाट्यगृह को। तथा=वैसा, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित। दृष्ट्वा=देखकर। ब्रह्मा=ब्रह्माजी ने। सर्वान्=सब। सुरान्=देवों से। प्राह=कहा। भवद्भि= :आप लोगों को। तु=तो। अंशभागै= :अपने अंश भागों से। आयम्=इसा नाटद्ययमण्डपम्=नाट्यमण्डप की। रक्ष्य=:रक्षा करनी चाहिए।

अनुवाद-विश्वकर्मा द्वारा निर्मित उस नाट्य मण्डप को देखकर ब्रह्माजी ने सभी देवताओं से कहा-आप लोगों को अपने अंश भागो द्वारा इस नाट्यमण्डप की रक्षा करनी चाहिए।

व्याख्या -असुसरों तथा विघ्नों द्वारा नाट्यभिनय में निरन्तर व्यवधान उत्पन्न करते रहने के कारण भरतमुनि ने ब्रह्माजी से पहला कार्यतो यह किया कि उन्होंने विश्वकर्मा को एक सर्वलक्षसम्पन्न नाट्यगृह का निर्माण करने का आदेश दिया जिससे असुरों और उनके द्वारा प्रेरित विघ्नों का उसमें सहज प्रवेश न हो सकें। जब विश्वकर्मा ने वैसा नाट्य मण्डप बना दिया तो ब्रह्माजीने दूसरा कार्य यह कियाकि उन्होंने सभी प्रमुख देवताओं को निर्देश दिया कि वे अपने अंशभागों से नाट्य-मण्डप के विभिन्न सथलों पर प्रतिष्ठित होकर उसकीरक्षा करें। सुरक्ष-व्यवस्था चौकस हो जायेगी तो असुर और उनके द्वारा प्रेरित विरूपाक्षादिविघ्नगण् उधर आने का साहस ही नहीं जुटा पायेगे।तीसरे उपाय के रूप में ब्रह्माजीने साम नामक नीति का आश्रयलेकर उन असुरों को समझाने का प्रयास किया जिससे वे नाट्यप्रयोगों में विघ्न उपस्थित करने से विरत हो जायॅ। इस उपाय का विवेचन अगले श्लोक में किया गया है

रक्षणे मण्डपस्याथ विनियुक्तसतुचन्द्रमा:
यथादिग्लोकपालाश्च विदिक्ष्वपि च मारूत :।।84।।
नेपथ्यभूमौ मित्रस्तु निखिप्तो वरूणोम्बरे।
वेदिकारक्षणे वह्निर्भाण्डे सर्वदिवौकस:।।85।।
वर्णाश्चत्वार एवाथ स्तम्भेषु विनियोजिता:
आदित्याश्चैव रूद्राश्च स्थिता :स्तम्भान्तरेष्वपि।।86।।
धारणीष्वथ भूतानि शालास्वप्सरसस्तथा।
सर्ववेश्मसु यक्षिण्यों महीपृष्ठे महोदधि:।।87।।

अन्वय -:अथ मण्डपस्य रक्षणेतु चनद्रमा :विनियुक्त :यथादिग्लोकपाला:च विदिक्ष्वपि च मारूत :

)विनियुक्त (:नेपथ्य भूमौ मित्र:, वरूण :तु अम्बरे निक्षिपत:, वेदिकारक्षणे वह्नि :भाण्डे) च (दिवौकस) :निक्षिप्ता (अथ धरणीषु विनियोजिता :आदित्या :रूद्रा :च स्तम्भान्तरेषु अपि स्थिता:।अथ धरणीषु भूतानि तथा शालासु अप्सरस:, सर्ववेश्मसु यक्षिण्य :महीपृष्ठे) च (महोदधि :)निक्षिप्त(।

शब्दार्थ-अथ=तब। मण्डपस्य रक्षणे=मण्डप की रक्षा के लिए। चन्द्रमा :विनियुक्त= :चनद्रमा को नियुक्त किया गया। मारूत च= और पवन देव को। विदिक्ष्वपि= विदिशाओं)दिशाओंके कोणों (में। मित्र तु=सूर्य को तो। नेपथ्यभूमौ निक्षिप्त = :नेपथ्य की भूमिमें नियुक्त किया गया। कुबेर = : कुबेर को। अम्बरे=आकाश में। वेदिकारक्षणे वह्नि=वेदी की रक्षामेघ नियुक्त किये गये चत्वार : वर्णा=:ब्रह्माणादि चारों वर्णोके देवताओं को स्तम्भेषु=चारों स्तम्भों पर। नियोजिता = :नियुक्त किया गया। आदित्याश्चैव रूद्राश्च=बारह आदितयों और एकादश रूद्रों को । स्तम्भान्तरेश्वपि = अन्य सतम्भों पर भी नियुक्त कर दिया गया।

अनुवाद-तब) नाट्यगृह की रक्षार्थ देवों को प्रेरित करने के अनन्तर (नाट्-मण्डप की रक्षाके लिए चन्द्रमा को नियुक्त किया गया। इन्द्रादि दिक्पालोंको अपनी-अपनी दिशाओंके अनुसार) नाट्य-मण्डप की प्रत्येक दशा में (नियुक्त किया गया । नेपथ्य) पर्दे की पीछे प्रसाध-कक्ष (में सूर्य, आकाश में वरू, वेदी की रक्षा के लिए अग्नि तथा त्रिपुष्करादि वाद्यो के रक्षणके लिए सभी मेघों के नियुक्त किया गया तथा अन्य सतम्भों पर द्वादश आदित्यों तथा एकादश रूद्रो को नियुक्त किया गया। धारणियों)धरनों (पर पृथ्वी आदि पन्च भूतोंको,शालाओ)दो स्तम्भों के मध्य के कक्षो(में अप्सराओंको,नाट्य-गृह के सभी कक्षों में यक्षिणियों को तथा पृथ्वीतल पर महासागरको नियुक्त किया गया।

व्याख्या -‘अपने-अपने अंश भागों से आप लोगों को इस नाट्य-गृह की रक्षाकरनी चाहिए, ऐसा कहकर पितामह ने सभी प्रमुख देवों को नाट्य गृह के रक्षार्थ नियुक्त किया।उन्होंने चन्द्रमा को सौम्य प्रकृति का जानकर उन्हें नाट्य-मण्डप के रक्षणकार्यके लिए नियुक्त कर दिया। दिशाएँ दस होती हैं। उनमें से आठ दिशाओं के दिक्पाल इस प्रकारहैं-

दन्द्रो वह्नि :पितृपतिनैर्ऋतोवरूणो मरूत् ।

कुबेर इश :पतय :पूर्वादीनां दिशां क्रमात्।।

अर्थात् पर्व दिशा के दिक्पाल या लोकपाल इन्द्र हैं, आग्नेय कोण के अग्नि,दखिण दिशा के यम,

नैर्ऋव, पश्चिम दिशाके वरूण, वायव्य कोण के वायु, उत्तर दिशाके कुबेर और ईशान कोण के ईश लोकपाल हैं। इन्हें नाट्यगृह की उन्हीं दिशाओं में नियुक्त किया गया जिसके कि वे अधिपति है।

द्वारशाल नियुक्तौ तु कृतान्त :काल एव च।

स्थापितौ द्वारपत्रेषु नागमुख्यौ महाबलौ।।88।।

देहल्यां यमदण्डस्तु शूलं तस्योपरि स्थितम्।

द्वारपालौ स्थितौ चौभौ नियतिर्मृत्युरेव च ।।89।।

पार्श्वे च रड्गपीठस्य महेन्द्र :सिथतवान् स्वयम्।

स्थापिता मत्तवारण्यां विद्युद् दैत्यनिषूदनी।।90।।

सतम्भेषु मत्तवारण्या :स्थापिता :परिपालने।

भूतयक्षपिशाचाश्च गुह्याकाश्च महाबला:।।91।।

जर्जरे तु विनिक्षिप्तं वज्रं दैत्यनिबर्हणम्।

तत्पर्वसु विनिक्षिप्तं सुरेन्द्रा:ह्यामितौजस:।।92।।

शिर :पर्वस्थितों ब्रह्मा द्वितीये शड्करस्तथा।

तृतीये च स्थितो विष्णुश्चतुर्थे स्कन्द एव च।।93।।

पन्चमे महानागा :शेषवासुकितक्षका:।

एवं विघ्नविनाशायस्थापिता जर्जरे सुरा:।।94।।

अन्वय -:कृतान्त :काल :एवं च द्वारशालानियुक्तौ, द्वारपत्रेषु महाबलौ नामुख्यौ स्थापितौ, देहल्यां तु यमदण्ड :तस्योपरि शूलं स्थितम् नियति :मृत्यु :एव च उभौ द्वारपालौ नियुक्तौ, रड्गपीठस्य महेन्द :स्थिवान् दैत्यनिषुदिनी विद्युत्) च (मत्तवारण्यां स्थापिता। मत्तवारण्या :परिपालने स्तम्मेषुमहाबला :भूतपिषाचा :गुह्रका:च स्थपिता:। जर्जर तु दैत्यनिबर्हणंवज्रं विनिक्षिप्तम् तत्पर्वसु) च (अमितौजस :सुरेन्द्रा :हि विनिक्षिप्ता:। ब्रह्मा शिर :पर्वस्थित :तथा द्वितीये शड्कर : तृतीये च विशणु :चतुर्थे च स्कन्द :एव सिथत :पन्चमे च शेषवासुकि तक्ष्का :महानागा :स्थिता:।

एवं विघ्न विनाशाय जर्जरे सुरा :स्थापिता:।

शब्दार्थ-कृतान्त :काल :एव च=यम और काल।द्वारशाला नियुक्तौ =द्वारशाला पर नियुक्त किये गये। द्वारापत्रेषु =द्वारों के पत्रों पर। महाबलौ नागमुख्यौ=महाबलशाली अनन्त और गुलिक नामक प्रधाननागराज। तस्योपरि =उसके ऊपर।शूलं स्थितम्) = भगवन् शिव का (त्रिशूल रखा गया। नियति:मृत्यु :एव च= नियति और मृत्यु। उभौ=दोनोंको द्वारपालौ नियुक्तौ= द्वारपाल नियुक्त किये गये। रड्.गपीठस्य पार्श्वे च=और रंगपीठ के पार्श्व भाग में ।स्वयं महेन्द्र :

स्थितवान्=स्वयं देवराज इन्द्र अपने एक अंश से स्थित हुए। दैत्यनिषुदनी विद्युत् =दैत्यो की संहारकारिणी विद्युत्। मत्तवारण्यां स्थापिता=मत्तवारणीमें स्थापितकिया गया। मत्तवारण्या : परिपालने=मत्तवारणी की रक्षा के लिए। स्तम्भेषु=स्तम्भों पर।महाबला :भूतपिशाचा : गुहा्रकाश्च=महाबली भूत पिशाचों और गुहा्रकों को। स्थापिता= :स्थापित किया गया। जर्जरे तु =जर्जर नाम ध्वजदण्ड पर तो। तत्पर्वसु=उसके पर्वो) गा ॅठों (पर। अभितौजस= :अपार ओजस्वी। सुरेन्द्रा :हिविनिक्षिप्ता= :देवेश्वरों को ही स्थापित किया गया। ब्रह्माशिर :पर्वस्थित = : ब्रह्माजी सबसे ऊपर के पर्वपर स्थित हुए। तथा द्वितीयेशड्.कर= :इसी प्रकार दूसरे पर्वपर भगवान् शिव स्थित हुए। तृतीये विश्णु= :तीसरे पर्व पर भगवान् विष्णु स्थितहुए। चतुर्थेस्कन्द= :चौथे पर्व पर स्वामी कार्तिकेय स्थितहुए।पन्चमे च =और पॉचवें पर्व पर। शेषवासुकितक्षका = :शेष, वासुकि तथा तक्षक नामक नागराजोंको स्थापित किया गया । एवम् =इस प्रकार।विघ्न विनाशाय= विघ्नो के विनाश के लिए।जजरे =जर्जर पर सुरा :स्थापिता= :देवों को स्थापित किया गया।

अनुवाद) -नाट्यगृहकी (द्वारशाला) द्वारसे सम्बद्ध कक्ष (पर यम और काल को ही नियुक्त किया गया।द्वारपत्रों) कपाटों (पर महाबलशाली प्रधाननागों-अनन्त और गलिक-को स्थापित किया गया। देहली) द्वार के सबसेनीचे काष्ठ (पर यमदण्ड और उसके ऊपर) ऊर्ध्व काष्ट पर (त्रिशुल रखा गया ।नियति और मृत्य-इन दोनों को द्वारपालोंके रूप में स्थापित किया गया रड्.गपीठ के पार्श्व भाग)बंगल (में स्वयं देवराज इन्द्र स्थित हो गये ।मत्तवारणी पर) वज्रायुधरूपा होने के कारण (दैत्य– विनाशिनी विद्युत को स्थिापित किया गया मत्तवारणी की रक्षाके लिए उसके स्तम्भों पर महाबलशालीभूतपिशाचों तथा गुहा्रकों)यक्षों(को स्थापित किया गया ।जर्जर नाम ध्वज– दण्ड पर तो दैत्य विनाश वज्रको रखा गया उसके पर्वो)गॉठो (पर अपारओजसवी सुरेश्वरों को स्थापित किया गया। ब्रह्माजी)उसके (शिर:पर्व) सबसे ऊपर की गॉठ (पर स्थित हुए। दूसरे पर्व पर भगवान शड्.कर,

तीसरेपर भगवान् विशु ,चौथे पर स्वामी कार्तिकेय, और पॉचवें पर शेष,वासुकि तथा तक्षक नामक महानाग स्थित हुए।इस प्रकार विघ्नों के विनाशके लिए जर्जर पर देवों को स्थापित किया गया।

व्याख्या -भरत के लिए विश्वकर्माने जो नाट्यगृह बनाया था, वह पूरा का पूरा काष्ठ–निर्मितथा, किनतु उसमें अनेक कक्ष थे और प्रत्येक में एक या दो जोडी कपाट लगे हुए थे। इस तरह यह नाट्य मण्डप अत्यन्त विशाल और विविध भागों से युक्त था। पूर्व के चार श्लोकों में नाट्यगृह के अन्तर्भाग के रक्षणमें विविध देवताओं की नियुक्ति कर दी गयी।प्रस्तुत सात श्लोकों मे नाट्यगृह के बाह्य-क्षेत्र में देवों को नियुक्ति करने का विवरण दिया गया है। ब्रह्माजी ने नाट्य गृह की द्वारशालापर यम और काल को नियुक्त किया। द्वारशाला नाट्यगृह के मुख्य द्वार का कक्ष होता है जिसमें होकर सामाजिक रंगशाला में पहॅुते है। यहॉ से असुर और उनके सहयोगी विघ्न प्रवेश न पा सकें, इसलिए यहॉ ब्रह्माजी ने यम और काल को रक्षक रूप में स्थापित कर दिया था। द्वारपत्र नाट्य गृह के कपाटों को कहतेहैं। इनकी संख्या के बहुत्व के कारण ही श्लोक में ‘द्वारपत्रेषु ‘पद का प्रयोग हुआ है। इनकी रक्षार्थ ब्रह्मा जी दो महाबली प्रधान नागों –अनन्तऔर गुलिक को नियुक्त कर दिया। था, द्वार के सबसे नीचे काष्ठ को देहली कहते हैं । उसके ऊपर यमराज के दण्ड को रख दिया गया था, ताकि उस पर पैर रखतेही विघ्नों को प्रताडितकिया जा सके। उसके ऊपर अर्थात् ऊध्र्व काष्ठ पर भगवान शिव का त्रिशूल निक्षिप्त कर दिया गया था जो असुरों और विरूपाक्षादि विघ्नों के शिरो का उच्छेद करने में सशक्त था जिन्हे दूर से ही देखकर असुर पलायनकर सकते थे। रङ्गपीठ)रंगमंच (के पार्श्व भाग)बगल (में स्वयं देवराज इन्द्र अपनेएक अंश से स्थितहुए ।श्लोक में ‘च’ के प्रयोग से यह सूचित होताहै कि वे अपनी दिशा)पूर्व (तो एक अंश से नियुक्त थे ही, रंगमंच के पार्श्व में भी एक अंश से प्रतिष्ठित हो गये। राजादि के लिए उपयुक्त स्थान रंगमंच के पास होता ही है, इसलिए इन्द्र का यहॉ पर आसीन होना आवश्यक था। नाट्यगृहके बाहर चारों की गयी चारदीवारी को मत्तवारणी कहते है। इसके रक्षणार्थी ब्रह्माजी ने वज्रायुध रूपाविद्युत को नियुक्त् किया गया जो दैत्यों का स्पर्श पाते ही उनका विनाश करने में सक्षम थी। उस मत्तवारणीके स्तम्भों के रक्षण के लिए उन पर महाबली भूतों, पिशाचों और गुह्यकों)यक्ष्- विशेषों (को स्थापित किया गया था।

5. 4 श्लोक संख्या 95 से 110 तक अर्थ, व्याख्या

रङ्गपीठस्य मध्ये तु स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित:।

इष्ट्यर्थ रङ्.गमध्ये तु क्रियते पुष्पमोक्षणम् ।।95।।

पातालवासिनो ये च यक्षगुह्यकपन्नगा:।

अधस्ताद् रंगपीठस्य रक्षणे ते नियोजिता:।।96।।

नायकं रक्षतीन्द्रस्तु नायिकां च सरस्वती ।

विदूषकमथोड्.कार :शेषास्तु प्रकृतीर्हर:।।97।।

यान्येतानि नियुक्तानि दैवतानीह रक्षणे।

एतान्येवाधिदैवानि भविष्यन्तीत्युवाच स:।।98।।

एतस्मिन्नतरे देवै :सवैरूक्त :पितामह :।

साम्ना तावदिमे विघ्ना :स्थाप्यतां वचसा त्वया।।99।।

पूर्व साम प्रयोक्तव्यं द्वितीयं दानमेव च।

तयोरूपरि भेदस्तु ततो दण्ड :प्रयुज्यते।।100।।

देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा विघ्नानुवाच ह।

कस्माद् भवन्तो नाट्यस्य विनाशाय समुत्थिता:।।101।।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षोऽब्रवीद्वच:।

दैत्यैर्विघ्नगणै :सार्ध सामपूर्वमिदं तत:।।102।।

योऽयं भगवता सृष्टो नाट्यवेद :सुरेच्छया।

प्रत्यादे शोऽयमस्माकं सुरार्थ भवता कृत:।।103।।

तन्नैतदेवं कर्त्तव्यं त्वया लोकपितामह।

यथा देवास्तथा दैत्यास्त्वत्त :सर्वेविनिर्गता:।।104।।

विघ्नानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।

अलं वो मन्युना दैत्या!: विषादस्त्यज्यतामयम् ।।105।।

भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पक:।

कर्मभावान्वयापेक्षीनाट्यवेदो मया कृत :।।106।।

नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानां चानुभावनम्।

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यंभावानुकीर्तनम्।।107।।

क्वचिद्धर्म :क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थ :क्वचिच्छम:।

क्वचिद्धास्यं क्वचिद् युद्धं क्वचित्काम :क्वचिद्वध:।।108।।

धर्मो धर्मप्रवृततानां काम :कामोपसेविनाम्।

निग्रहो दुर्विनीतानां काम :कामोपसेविनाम्।।109।।

क्लीवानां धार्श्र्ट्यजननमुत्साह :शूरमानिनाम्।

अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।।110।।

अन्वय 95से 110 तक का अन्वय

अन्वय - :रंड्.गपीठस्य मध्ये तु स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित :रंड्गमध्ये तु इष्टयर्थ पुष्पमोक्षणं क्रियते। ये च पातालवासिन:यक्षगुह्यक पन्नगा :ते रड्.गपीठस्य रक्षणे अधस्तात् नियोजिता:। इन्द्र :तु नायकं रक्षति, नायिकां च सरस्वती)रक्षति(, अथ विदूषकम्ओंकार:शेषा:प्रकृति:तु हर :)रक्षति(’यानिएतानि दैवतानि इह रक्षणे नियुक्तानि,एतानि,एव अधिदैवानि भविष्यन्ति’ इति स :उवाच।

एतसिमन् अन्तरे सर्वै :दवै :पितामह :उक्त- :‘’त्वयातावत् इमे विघ्ना :साम्ना वचसा स्थाप्यताम्। पूर्व साम प्रयोक्ताव्यं, द्वितीयं दानमेवच, तयोरूपरि तु भेद :तत :दण्ड :प्रयुज्यते’’

देवानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्माविघ्नान् उवाच-‘’भवन्त:नाट्यस्य विनाशाय कस्मात् समुत्थिता:।‘’

ब्रह्मण:वचनं श्रुत्वा तत :विरूपाक्ष :विघ्नगणै:सार्ध दैत्यै :सामपूर्वम् इदं वच :अब्रवीत् -‘योऽयं नाट्यवेद :भगवता सुरेच्छया सृष्ट:अयं भवता सुरार्थकृत) :सन्(अस्माकं प्रत्यादेश:। लोक पितामह यथा देवा :तथा सर्वेदैत्या :त्वत्त :विनिर्गता :तत् त्वया एतदेवंन कर्त्तव्यम्।

विघ्नानां वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनम् अब्रवीत् -'दैत्या:। व :मन्युना अलम्, अयं विषाद :त्यजताम। मया भवतां देवतानां च शुभाशुभविकल्पक :कर्मभावान्वया पेक्षी नाट्यवेद :कृत:।

अत्र एकान्तत :भवताम् वानाम् देवानाम् च अनुभावनम् न)अस्ति अपितु (नाट्यम् अस्य सर्वस्य त्रैलोक्स्य भावानुकीर्तनम्) वर्तते(।

क्वचिद्धर्म:क्वचित् क्वचिद् क्रीडा , क्वचिद् अर्थ:शम :क्वचिद् हास्यं , क्वचिद्युद्धं क्वचित् काम:, क्वचितद् वध :धर्म– प्रवृत्तानां धर्म –प्रवृत्तानां धर्म:कामोपसेविनां काम:, दुर्विनीतां निग्रह:विनीतानां दम क्रिया क्लीबानां धार्ष्ट्यमजनम् शूरमानिनाम् उत्साह:, अबुधानांच विबोध:, विदुषाम् अपि वैदुष्यम।

शब्दार्थ-रंगपीठस्य मघ्ये तु= रंगमंच के मध्य में तो ।स्वयं ब्रह्मा प्रतिष्ठित= :स्वयं ब्रह्माजी प्रतिष्ठितहो गये। इष्ट्यर्थम् =नाट्यप्रयोग की सिद्धि के लिए ।पुष्पमोक्षणं क्रियते = पुष्प चढाये जाते हैं। अधस्तात् नियोजिता= :रंगपीठ के नीचे नियुक्त कर दिये गये। ओकार= :ओंकार)प्रणव(। शेषा :प्रकृती= :शेष प्रजाओं)सामाजिकों (की। अधिदैवानि भविष्यन्ति= अधीश्वर देवता होगे। इति स :उवाच= ऐसा उन्होंने)ब्रह्मा ने (कहा। एतस्मिन् अन्तरे= इसी बीच। पितामह :उक्त : =पितामह से कहा। स्थाप्यताम् =स्थापित करें शान्त करें। दानमेव च =दान का दण्ड :प्रयुज्यते =दण्ड का प्रयोग किया जाता है। देवानाम् =देवोंके। विघ्नान् उवाच =विघ्नों से कहा ।विनाशाय =विनाश के लिए । कस्मात् =क्यों। समुत्थिता= :उठ खडे.हुए थे। ब्रह्मण= : ब्रह्माजी के।विघ्नागणै :दैत्यै) :च (सार्धम्= विंघ्नगणों और दैत्यों के साथ ।विरूपाक्ष= :विरूपाक्ष ने। सामपूर्वम् =सामनीति का अनुसरण करतेहुए। योऽयम् नाट्यवेद= : जो यह नाट्यवेद। सुरेच्छया =देवों की इच्छा से लोकपितामह =हे सभी प्राणियोंकेपिताम।)त्वत्त :विनिर्गता : =देवलोगआपसे उत्पन्न हुए हैं। एतदेवं न कर्त्तव्यम् =ऐसा नहीं करना चाहिए था।

एकान्तत= : केवल। भवताम् =आप लोगों)दानवों(भावानुभावनम्= भावों का अनुभाव होता है। क्वचिद्धर्म= : कहीं पर धर्म। क्वचित् क्रीडा = कहीं पर क्रीडा। क्वचित् शम= :कहीं शभ)शान्ति (धर्मप्रवृत्तानां धर्म= :धर्म में प्रवृत्ति रखनेवालों के लिए धर्म। कामोपसेबिनां काम= :काम की आराधना करने वालों के लिए काम।दुर्विनीतानां निग्रह= : अविनीत जनों का निग्रह।

व्याख्या-ऊपर के सभी श्लोकों का भावार्थ व्याख्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

रंगपीठ के मध्य में तो स्वयं ब्रह्माजीप्रतिष्ठित हुए, क्योंकि रंगपीठ के मध्य में नाट्य प्रयोग की सिद्धि के लिए पुष्प चढाये जाते हैं। पाताल में निवास करने वाले जो यक्ष गुह्यक, और सर्प थे उन्हें रंगपीठ के रक्षणार्थ नीचे की ओर स्थापित कर दिया गया।)नाट्य प्रयोगके समय (नायक की रक्षा तो इन्द्र करते हैं और नायिका की सरस्वती।इसी प्रकार विदूषक की रक्षा ओंकार) प्रणव(तथा शेष प्रजाओं)सामाजिकों (की रक्षा भगवान् शिव करते हैं।जो ये देवताइस नाट्यगृहकी रक्षण में नियुक्त किये गये है वे ही इसके अधिष्ठाता देवता होंगे ऐसा उन्होंने)ब्रह्माजी ने (कहा।

इसी बीच सभी देवों ने पितामह से कहा-आपकों तब तक इन विघ्नों को सामपूर्ण वाणी से स्थापित या शान्त करें पहले साम का प्रयोग किया जाय,दूसरे दान का उन दोनों के ऊपर भेद का प्रयोग किया जाता है और सबसे अन्त में दण्ड का प्रयोग किया जाता है।

देवों के वचन सुनकर ब्रह्माजी ने देवो से कहा -आप लोग नाट्यके विनाश के लिए क्यों उठ खडे . हुए थे।

ब्रह्मा जी के वचन सुनकर दैत्यों और विघ्नों के साथ विरूपाक्ष ने सामनीति का अनुपालन करते यह वचन कहा-आपने देवों की इच्छा से जो यह नाट्यवेद रचा है वह देवों के लिए आपके द्वारा रचा हुआ होने के कारण हमारे लिए अपमानजनक है। हे सम्पूर्ण लोक के पितामह! जिस प्रकार ये देवताआपसे उत्पन्न हुए हैं उसी प्रकार हम सभी दैत्य आपसे उत्पन्न हुए है अत :आपको ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए था।

विघ्नों के वचन सुनकर बह्मा जी वचन बोले-'हे दैत्यों ! आप क्रोध को शान्त कीजिये, विषाद का परित्याग कीजिये । मैने आप लोगों तथा देवों के शुभ तथा अशुभ कर्मोके फल का विकल्पक तथा कर्म-भाव'अन्वय)वर्ण-कुल(के सहकारी नाट्यवेद की रचना की है।'

इस नाट्य में केवल आप लोगों)असुरों (तथा देवताओं के भावों का अनुकरण नहीं है) अपितु (यह नाटक) तो (इस समस्त त्रिलोक)के व्यकित्यों(के भावों का अनुभावन होता है।

मैंने जो यह नाट्यवेद रचा है)इसमें (कही तो धर्म है, कहीं क्रीडा है, कहीं अर्थ तो कहीं शम)शान्ति या निर्वेद (है । कहीं हास्य है, कहीं युद्धहै तो कहीं काम और कहीं वध)का प्रदर्शन(है।) इसमें (धर्म में प्रवृत्ति रखने वालों के लिए धर्महै,काम)रति (का सेवन करने वालों के लिए काम है, दुर्विनीत या अशिष्ट आचरण करने वालों के लिए दमन और विनीत)जितेन्द्रिय (जनों के लिए इनिद्रय-

निग्रहहै।नपुंसकों की धृष्टता-जन्य हास्य, शूरवीरों और स्वाभिमानियों का उत्साह, मूर्खो के लिए ज्ञान तथा विद्वानोंके लिए विद्वत्ता)का प्रदर्शन (भी है।

5.5. श्लोक सं0 111 से 127 तक)अर्थ व्याख्या

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्य दु:खार्दितस्य च।

अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरूद्विग्नचेतसाम्।।111।।

नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्।।112।।

उत्तमाधम माध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।

हितोपदेशजननं धृति क्रीडासुखादिकृत्।।113।।

एतद्रसेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियास्वथ।

सर्वोपदेशजननं नाट्यं लोके भविष्यति।।

दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।

विश्रान्तिजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।114।।

धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विबर्द्धनम।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविश्यति।।115।।

अभिवादनशीलस्य नित्यंवृद्धोपसेविन:।

चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

न तन्ज्ञानं नतच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत् कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।116।।

अध्ययनमध्यायनं यजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चैव ष्द्कर्माण्यग्रजन्मन:।।

उच्छं प्रतिग्रहो भिक्षा वाणिज्यं पशुपालनम्।

कृषिकर्म तथा चेतिषद्कर्माण्यग्रजन्मन:।।

तन्नाऽत्र मन्यु :कर्त्तव्यो भवद्भिरमरान् प्रति।

सप्तद्वीपानुकरणं नाट्यमेतद् भविष्यति।।117।।

देवानामसुराणां च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्।

ब्रह्मर्षीणां च विज्ञेयं नाट्यं वृत्तान्तदर्शकम्।।118।।

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दु:खसमन्वित:।

सोऽड्.द्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।119।।

'त्रैलोक्यस्यासयसर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।'

वेद विद्येति हासानामाख्यानपरिकल्पनम्।

विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।

श्रुति स्मृति सदाचार परिशेषार्थ कल्पनम्।

विनोदजवनं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।

एतस्मिन्नतरे देवान् सर्वानाह पितामह:।

क्रियतामद्य विधिवद् यजनं नाट्यमण्डपे।।120।।

बलिप्रदानैर्होमैश्च मन्त्रौषधिसमन्वितै:।

भोज्यैर्मक्ष्यैश्च पानैश्च बलि :समुपकल्पयताम्।।121।।

मर्त्यलोकगता :सर्वे शुभां पूजामवाप्स्यथ।

अपूजयित्वा रड् .तु नैव प्रेक्षां प्रवर्तयेत्।।122।।

अपूजयित्वा रंड्.तु य :प्रेक्षां कल्पयिष्यति।

निष्फलं तस्य तज्ज्ञानं तिर्यग्योनि चयास्यति।।123।।

यज्ञेन सम्मितं ह्येतर्रं रंड्.दैवतपूजनम्।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेनं कर्त्तव्यं नाट्ययोक्तृभि:।।124।।

नर्तकोऽर्थपतिर्वाऽपि य :पूजां न करष्यिति।

न कारयिष्यत्यन्यैर्वा प्राप्नोत्यपचयं तु स:।।125।।

यथाविधि यथादृष्टं यसतु पूजां करिष्यति।

स लप्स्यते शुभानर्थान्सवर्गलोकं च यास्यति।।126।।

त्रैविद्या मां सोमपा :पूतपाप

यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।

पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक

मश्नन्ति दिव्यान्दिविदेव भोगान्।।

एवमुक्त्वा तु भगवान् द्रुहिण:सह देवतै:।

रड्.गपूजा कुरूष्वेति मामेवं समचौदयत्।।127।।

अन्वय 111से 127 तक का अन्वय

अन्वय-:ईश्वराणां च विलास :दु:खार्दितस्य च स्थैर्यम् , अर्थोपजीविनाम् अर्थ :उद्विग्नचेतसां धृति :)इति (एतत् नानावसथान्तरात्मकं लोकवृत्तानुकरणं नाट्यं मया कृतम्।

उत्तमाध्ममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयं,भविश्यति।

)एतत् नाट्यम् रसे भावेषु सर्वक्रियासु अथ सर्वोपदेशजनं भविष्यति।(

एतत् नाट्यम लोके दु:खार्तानाम्श्रमार्तानाम्शोकार्तानाम् तपस्विनाम्) च (विश्रान्तिजननम् उत्पन्न करने वाला। भविष्यति ।

एतत् नाट्यम् धर्म्यम् , यशस्यम् आयुष्यम् हितम् बुद्धिविवर्द्धनम् लोकोपदेशजननम्)च (भविष्यति ।

तत् ज्ञानम् न, तत् शिल्पम् न, सा विद्या न, कला न, स योग :न, तत् कर्म न)अस्ति (यत् असिमन् नाट्य न दृश्यते।

तत् भवद्धि :अत्र अमरान् प्रति मन्यु :न कर्त्तव्य :। एतत् नाट्यं) तु (सप्त द्वीपानुकरणंभविष्यति।)येन एतत् नाट्यम्, यत् मया कृतं तत् अनुकरणम।(

नाट्यम् देवानाम् असुराणाम्च राज्ञाम् अथ कुटुम्बिनाम् ब्रह्मर्षीणाम् च बृत्तान्तदर्शकम् विज्ञेयम्।

य :अयम् लोकस्य सुख-दु:ख समन्वित :लोकस्य सवभाव) :अस्ति (स :अड्गाद्यभिनयोपेत :)सन (नाट्यम् इति अभिधीयते।

)एतत् नाट्यं लोके वेदविद्येतिहासानाम् आख्यानपरिकल्पनं विनोदकरणं) च (भविष्यति। (एतस्मिन् अन्तरे पितामह :सर्वान् देवान् आह -'अद्य नाट्यमण्डपे विधिवद् यजनं क्रियताम्।बलिप्रदानै :मन्त्रौषधि समन्वितै :, भोज्य :पानैश्च बलि :समुपकल्प्यताम् ।सर्वे मर्त्यलोकगता) :जना(: पूजाम् अवाप्स्यथ। रड्.गं तु अपूजयित्वा प्रेक्षां न प्रवर्तयेत्।

रड्.गम् अपूजयित्वा य :प्रेक्षां कल्पयिष्यति, तस्य तत् ज्ञानंनिष्फलम्)भविष्यति स (च तिर्यग्योनि यास्यति।

एतत् रंगदैवतपूजनंहि यज्ञेन सम्मितम्, तस्मात् नाट्ययोक्तृभि :सर्वप्रयत्नेन) रंगदैवतपूजनं (कर्त्तव्यम्। नर्तक :अथपति :वाऽपि य :पूजां न करष्यिति अन्यै वा न कारयिष्यति, स तु अपचयं प्राप्नोति। य :तु यथाविधि यथादृष्टं) च (पूजां करिष्यति स शुभान्अर्थान् लप्स्यते स्वर्गलोकं च यास्यति।

एवम् उक्त्वा तु भगवान् द्रुहिण :देवतै :सह मां 'रंगपूजां कुरूष्व ' इति एवं समचोदयत् ।

शब्दार्थ= - ईश्वराणां विलास= :ऐश्वर्यवान् लोगों के लिए विलास दु:खार्दितस्य स्थैर्यम्= दु:ख से अत्यन्त दु:खी व्यक्ति के लिए स्थैर्य या उत्साहपूर्णधैर्य। अर्थोपजीविनाम् अर्थ= :अर्थके लिए लालसा रखने वालों के लिए अर्थ)धन (।उद्विग्नचेतसां धृति= :उद्विग्न चित्तवालों के लिए धैर्य। नानावस्थान्तरात्मकम् =सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद आदि नानाअवस्थाओं की अभिव्यक्ति करने वाला। उत्तमाधममध्यानां नराणाम्= उत्तम् मध्यम और अधम कोटि के मनुष्यों के हितोपदेशजननम् =हितकारी उपदेश देने वाला।धृति क्रीडा सुखादि =धैर्य,क्रीडा और सुखादि की सृष्टि करने वाला ।

रसेषु भावेषु सर्वक्रियासु अथ =रसों, भावों तथा सभी कर्मो के सम्पादन)के प्रदर्शन (में। सर्वोपदेश जननम्= सभी मनुष्यों के लिए उपदेश की सृष्टि करने वाला। एतद् = यह यशस्यम् =यश: प्रद। लोकोपदेशजननम् = लोक के लिए उपदेशदायक। शिल्पम् =शिल्प ।अस्मिन् = इस ।नाट्ये =नाट्य में। भवद्भि= : आप लोगों को । अमरान् प्रति =देवों के प्रति । मन्यु :ने कर्त्तव्य= : क्रोधनहीं करना चाहिए। सप्तद्वीपानुरणं भिवष्यति =सातों द्वीपों के लोकवृत्त का अनुकरण होगा । अनुकरणम् =अनुरण ही है । सुख-दु:खसमन्वित= : सुख और दु:ख से युक्त । अंगाद्यभिनयोपेत : =आंगिक आदि अभिनयों से युक्त होने पर अभिधीयते =कहा जाता है। वेद्य विद्येतिहासानाम् =वेदो, विद्याओं, इतिहासों के। आख्यानपरिकल्पनम् =आख्यानों का परिकल्पक। विनोदकरणम् =सामाजिकों का अनुरंजन करने वाला। भविष्यति =होगा। श्रुति स्मृति सदाचार परिशेषार्थ कल्पनम् =श्रुतियों तथा स्मृतियों पर आधारित सदाचारक चित्रण। विनोदजननम् =विनोद का जनक। सर्वान् देवान् आह =सभी देवों से कहा । मन्त्रौषधिसमन्वितै= : मन्त्रों और औषिधियों से युक्त । बलिप्रदानै :होमैश्च= बलि प्रदानकरते हुए। भोज्यै= : मोदकादि भोज्य पदार्थो।पानैश्च = और दूध आदि पेय पदार्थो द्वाराबलि :समुपकल्प्यताम्= बलि प्रदान करने का विधानकरें। मर्त्यलोकगता : =मृत्युलोक में रहने वाले । शुभां पूजाम् अवाप्स्यथ =इस शुभ पूजा –विधान को प्राप्त कर लोगे। रगंम् अपूजयित्वा =रंगशाला की पूजा किये बिना ।तु =तो । प्रेक्षां नैव प्रवर्तयेत् =प्रेक्षागृह में प्रवेश ही नहीं करना चाहिए। प्रेक्षाम् =प्रेक्षागृहमें। कल्पयिष्यति =नाट्य प्रस्तुत करेगा।तत् ज्ञानम् =वह ज्ञान।निष्फलम् =निष्फल होगा। च =और वह। तियर्ग्योनिं यास्यति = पशु-पक्षी, कीट-पतंगादिरूप तिर्यक योनि को प्राप्त होगा। रंगदैवतपूजनम्= रंगदेवताका पूजन।यज्ञेनसम्मितम्= यज्ञकेसमानहै। नाट्ययोक्तृभि= : नाट्य के प्रयोक्ताओं को। सर्वप्रयत्नेन = सभी प्रयत्नों के साथ ।नर्तक:अर्थपति : वाऽपि= नर्तक हो या धन-कुबेर) राजा-रईस आदि(। अपचयं प्राप्नोति= ह्रास को प्राप्त होगा । यथादृष्टम् =शास्त्रोक्त नियमानुसार। स शुभान् अर्थान्लप्स्यते =वह शुभ वस्तुओं को प्राप्त करेगा। स्वर्गलोकं च यास्यति =और स्वर्गलोक गमन करेगा। भगवान् द्रुहिण= :भगवान्ब्रह्माजी ने। देवतै : सह= देवों के साथ । रंगपूजांकुरूष्व =रंगपूजा करो। समचोदयत् = प्रेरित किया।

व्याख्या-

ऐश्वर्यवान् मनुष्यों का विलास,दु:ख से अत्यन्त पीडि.त व्यक्ति के लिए स्थैर्यय उत्साहवर्द्धन,अर्थ के लिए जीवनयापन करने वालों के लिए अर्थ और उद्विग्न चित्त वालों के लिए धैर्य भी है।)इस प्रकार यह नाट्यवेद(रति आदि नाना स्थायी भावों तथा ईर्ष्या , द्वेष हर्ष,असूया आदि व्यभिचारी भावों से

सम्पन्न दु:ख– सुख,हर्ष शोक आदि अवस्थाओं का प्रदर्शनकरने वाला तथा लोकाचार का अनुकरण करने वाला है।

यह नाट्यवेद उत्तम, मध्यम और अद्यम विचार के मनुष्यों के कर्मो पर आधारित ,धैर्य ,क्रीडा, सुख आदि भावों को उत्पन्न् करने वाला और सामाजिकों के लिए कल्याणकारी उपदेश का जनक होगा।

वह ज्ञाननहीं, वह शिल्प नहीं वह विद्या नहीं ,वह कला , वह योग नहीं, और कर्म भी नहीं जो इस नाट्यवेद में नहीं दिखाया जाता है।

इस नाट्यवेद को देवताओं, असुरों, राजाओं, इतना ही नहीं राजा के परिजनों तथा महषियों के वृत्तान्तों का दर्शन कराने वाला होता है इसे जानना भी चाहिए।

संसार के प्राणियों का सुख और दु:ख से युक्त जो स्वभाव है, वही आंगिक अभिनयों से युक्त होकर नाट्य कहलाता है।

यदि यह नाट्य उपर्युक्त गुणों वाला होगा तो इसी बीच ब्रह्मा ने सभी देवताओं से कहा -आज नाट्यमण्डप में जाकर उसकी विधि– विधान से पूजाकीजिए। मन्त्रों एवं औषधियों से युक्त बलि प्रदानकरते हएु, हवन करते हुए,मोदक आदि भोज्य प्रदार्थो से खीर दुग्ध आदि पदार्थो द्वारा बलि का विधानकीजिए । मृत्यु लोक में निवास करने वाले सभी लोग इस पूजा की विधि जानकर रंगपीठ की पूजा किये बिना प्रेक्षागृह में प्रवेश नहीं करेगे ।

ब्रह्मा जी ने आचार्य भरत के सामने देवताओं से कहा -रंगदेवता की पूजा किये बिना जो प्रेक्षागृह में जाकर नाट्य का आयोजन करेगा उसका सभी ज्ञान निसफल होगा। और वह पुशु पक्षीआदिकी तिर्यग्योनि में जन्म लेगा।

रंगदेव का पूजन एक यज्ञ के समान है। अत :सभी प्रयत्नों से नाट्य के प्रयोक्ताओं को रंगपूजन करना चाहिए। नर्तक हो या राजा जो कोई भी रंग पूजा नही करेगा अथवा किसी से नहीं करायेगा वह अवश्य ही हानि को प्राप्त होगा किन्तु जो विधि पूर्वक रंगपूजा करेगा वह शुभ फल को प्राप्त करेगा तथा स्वर्ग लोक जायेगा।

ऐसा कहने पर ब्रह्मा जी ने देवों के साथ मुझको ‘रंग पूजा करों’ कह कर प्रेरित किया।

अभ्यास प्रश्न

निर्देश यहॉ प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर दिये गये है, जिनमें से एक सही है सही उत्तर का चयन कीजिए।

1. नाट्यवेद के उत्पत्ति-कर्ता कौन थे-

क. ब्रह्माजी ख. इन्द्र

ग. कोहल घ. दत्तिल

.2 ब्रह्माजी ने नाट्यवेद का ज्ञान किसे प्रदानकिया-

क. इन्द्र ख. शिव को

ग. सरस्वती को घ. भरत को

3. भरत ने प्रथम नाट्य-प्रयोग में कितनी वृत्तियॉ प्रयुक्त की थी-

)क (चार (ख (तीन

)ग (दो (घ (एक

4. भरत के नाट्य-प्रयोग में उत्पात करने वाले कौन थे-

क. दैत्य ख. विघ्न

ग.दोनों घ. कोई नहीं

5. विघ्नों की आहत किसने किया-

क.बह्मा ने ख. भरत ने

ग. भरत पुत्रों ने घ.इन्द्र ने

6. ब्रह्माजी ने दैत्यों को सन्तुष्ट करने के लिए किस नीति का प्रयोग किया-

क. साम का ख.दाम का

ग.भेद का घ.दण्ड का

7. भरत द्वारा प्रदत्त अप्सराओं की संख्या कितनी थी -

क. सोहल ख. बीस

ग. चौबीस घ.अट्ठाईस

8. भरत के भाण्ड-वादन के लिए कौन नियुक्त किये गये थे-

क. सशिष्य स्वाति ख.नारद

ग. दत्तात्रेय घ. शाण्डिल्य

9. प्रेक्षा में प्रवेश करने से पूर्व क्या आवश्यक है-

क. रंगपूजा ख. यज्ञ

ग. नान्दी पाठ घ. नटों की साज-सज्जा

10. रंगपूजा का सर्वप्रथम अधिकारी कौन है-

क.कवि ख. आचार्य

ग.रंगकर्मी घ. नट

11. नाट्य का संचालक कौन होता है-

क. कवि ख.आचार्य

ग.नट घ.सूत्रधार

12. ब्रह्माजी ने किसकी विनय सुनकर नाट्यवेद की रचना की-

क.इन्द्र की ख.गन्धर्वों की

ग.कुबेर की घ. देवो की

13. नाट्य का प्राण क्या है-

क.सुत्रधार ख.रसचर्वणा

ग.संवाद घ.अभिनय

14. भरतमनि ने पहले नाटक को कितनी वृत्तियों के आधार पर तैयार किया-

क.दो के ख.तीन के

ग.चार के घ.पॉच के

15. भरतमुनि ने पाठ किस वेद से ग्रहण किया-

क.ऋग्वेद से ख.यजुर्वेद से

ग.अथर्ववेदसे घ.सामवेद से

5.6. सारांश

नाट्यशास्त्र के श्लोकार्थ द्वारा सम्यक अध्ययन करने की इस इकाई में आपने आत्रेय आदि मुनियों के प्रश्न करने परे आर्चाय भरतमुनि द्वारा उपदेषित नाट्य विधा का अवलोकन कर उसकी समस्त पृष्ठ भूमि की जानकारी प्राप्त किया । यह एक अत्यन्त प्राचीन बात है कि आचार्य भरत नाट्य के विशेषज्ञ थे उन्होंनअपने शिष्यों को और पुत्रों को नित्य रूप से नाट्यवेद पढाया उस नाट्य वेद के प्रयोग का प्रशिक्षण निरन्तर दिया। एक समय प्रात :काल जब वे अपने जप को समाप्त कर अध्ययन अध्यापन से विरत होकर अपनेपुत्रों के बीच में बैठे हुए थे, उसी समय आत्रेय आदि ऋषियों ने उनके समक्ष जाकर शिष्यत्व प्रस्तुत करते हुए उनसे पॉच प्रकार के प्रश्न पूछा -

1. आप ने जिस नाट्य वेद को सुन्दरतम् वस्तुओं के समाहरण के लिए गुम्फित किया है उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी ।

2. इस नाट्य वेद कि रचना किसकें लिए की गयी ।

3. नाट्य वेद के कितने अंग है।

4. नाट्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किस प्रमाण की आवश्यकता है।

5. इसके कितने प्रकार है और इसका प्रयोग किस प्रकार होता है ।

इन समस्त प्रश्नों के उत्तर में ब्रह्मा द्वारा जो भी कहा गया है वह प्रथम अध्याय की दोनों इकाईयों में वर्णित है।

उनका यह उत्तर है वही नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय के समस्त श्लोंको मे निबद्ध है।

मंगलाचरण से लेकर श्लोक संख्या 127तक के समस्त वर्णन में नाट्य की उत्पत्ति प्रेक्षागृह की पूजा

और नाट्य की विशेषताओं प्रयोजनों के वर्णन किये गये । ये सब दोनों इकाईयों प्राप्य है जिनके अध्ययन से आप नाट्य शास्त्र से सम्बन्धित मूल भूत तथ्यों का ज्ञान करा सकेंगे।

5 . 7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1. (क (2) .घ (3) .ख (4) .ग (5) .घ (6) .क (7) .ग (8) .क (9) .क (10) .ख (11 .)घ (12) .घ (13) .ख (14) .ख (15) .ख (

5 . 8 संदर्भग्रन्थ सूची-

1 पारसनाथद्विवेदी भरतमुनि नाट्यशास्त्र सम्पूर्णानन्द सं वि.वि वाराणसी

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

5. 9सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

5 . 10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आचार्य भरत क नाट्य प्रयोग प र एक निबन्ध लिखिए।

2. आचार्य भरत ने अपना प्रथम प्रयोग किस प्रकार प्रस्तुत किया, विवेचना कीजिए।

3. नाट्य शास्त्र प्रथम अध्याय पर एक निबन्ध लिखिए।

ईकाई 1: रूपक भेद एवं सामान्य परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 इकाई की पाठ्य सामग्री

1.3.1 नाट्य, रूप एवं रूपक

1.3.2 रूपक भेद

1.3.3 नाटक

1.3.4 प्रकरण

1.3.5. भाण

1.3.6 प्रहसन

1.3.7 डिम

1.3.8 व्यायोग

1.3.9 समवकार

1.3.10 वीथि

1.3.11 अंक

1.3.12 ईहामृग

1.3.13 उपरूपक

1.3.14 नाटिका

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। यह इकाई धनंजय विरचित दशरूपकम् के 'रूपक भेद एवं सामान्य परिचय' पर आधारित है।

इस इकाई में नाट्य, रूप एवं रूपक के अर्थ के साथ-साथ रूपकों के आधारभूत तत्व के विषय में चर्चा की गई है। 'वस्तु नेता एवं रस' इन तीन भेदक तत्वों के आधार पर संस्कृत के नाट्याचार्यों द्वारा मान्य रूपक के दस भेदों का लक्षण तथा स्वरूप क्या होता है? एतद्विषयक धनंजय के विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाट्य के दस प्रकारों-नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग समवकार, वीथि, अंक और ईहामृग के साथ-साथ प्रमुख उपरूपक भेद नाटिका के धनंजय के द्वारा मान्य लक्षणों को भलीभाँति जान सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि नाट्य, रूप, रूपक क्या है?
- समझा सकेंगे कि रूपक के भेदक तत्त्व कौन-कौन से हैं। रूपक किस पर आश्रित होते हैं तथा कितने प्रकार केहैं?
- बता सकेंगे कि 'नाटक' की विशेषताएँ क्या होती हैं?
- समझा सकेंगे कि 'प्रकरण किसे कहते हैं?
- समझा सकेंगे कि रूपक भेद 'भाण' का लक्षण क्या है?
- व्याख्यायित कर सकेंगे कि प्रहसन का लक्षण तथा उसके भेद क्या हैं?
- भलीभाँति समझा पाऐंगे कि रूपक भेद 'डिम' एवं व्यायोग क्या होते हैं?
- सम्यक् प्रकार से बता सकेंगे कि 'समवकार' एवं 'वीथि' रूपक भेद की क्या विशेषताएँ होती हैं?
- अच्छी तरह समझा सकेंगे कि 'अंक' और ईहामृग क्या होते हैं?
- यह भी भलीभाँति समझा सकेंगे कि उपरूपक कौन-कौन से हैं? तथा प्रमुख उपरूपक 'नाटिका' की क्या विशेषताएँ होती हैं?

1.3 इकाई की पाठ्य सामग्री

1.3.1 नाट्य, रूप एवं रूपकः

आप इस बात को जानते ही होंगे कि साहित्याचार्यों द्वारा काव्य के दो भेद किए गए हैं- दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। इनमें से अभिनयपूर्वक रंगमंच पर प्रदर्शित किए जाने से हमारे नेत्रों का विषय बनने वाले नाटकादि दृश्य काव्य कहलाते हैं। इस दृश्य काव्य को नाट्य, रूप एवं रूपक भी कहा जाता है, जो इसकी अलग विशेषताओं पर आधारित भिन्न-भिन्न नाम हैं। 'अवस्थानुकृतिर्नाट्म' अभिनय करने वाले पात्र (नट आदि) के द्वारा राम, दुष्यन्त आदि नायक तथा सीता, शकुन्तला आदि नायिकाओं की सुख-दुख, हर्ष-शोक आदि अवस्थाओं का, अपने अभिनय कौशल से अनुकरण किया जाना ही नाट्य कहलाता है। नाट्य का अर्थ है अभिनय। अतः अभिनेय होने के कारण नाटकादि को नाट्य कहा जाता है। 'रूपं दृश्यतयोच्यते' वह नाट्य ही अभिनय द्वारा रंगमंच पर प्रदर्शित होने से हमारे नेत्रों के लिए दर्शनीय होता है। इसीलिए इसी को रूप भी कहा जाता है। जैसे कि प्रकृति में नीला, पीला, लाल, हरा आदि पदार्थ (वस्तुएँ) नेत्रों से देखे जाने के कारण रूप है वैसे ही नाटकादि भी नेत्र ग्राह्य होने के कारण रूप कहलाता है। 'रूपक तत्समारोपात्' रंगमंच पर राम आदि का अभिनय करने वाले पात्र (नट) में सहृदय जन राम आदि का आरोप कर लेते हैं अर्थात् उसे राम आदि ही समझने लगते हैं। नट पर राम आदि का आरोप किए जाने के कारण जो पहले नाट्य और रूप कहा गया है वही रूपक भी कहलाता है। इस तरह नेत्रों का विषय बनने से जो काव्य दृश्य काव्य रूप है वही अभिनेयता के कारण नाट्य और रूपक भी है।

1.3.2 रूपक भेदः

आपकी जानकारी में होगा कि रूपक अनेक तरह के होते हैं। दशरूपककार धनंजय ने 'वस्तुनेता रसस्तेषां भेदक: कहकर वस्तु, नेता एवं रसभेद के आधार पर रूपक के दस भेदों का निरूपण किया है। 'दशधैव रसाश्रयम्' से धनंजय ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि रूपक रस पर आश्रित होते हैं और इनकी संख्या दस ही है। तात्पर्य यह है कि शुद्ध रूप में दस प्रकार का ही नाट्य होता है जो कि रसाश्रित होता है। जहाँ रसों का संकर होता है वह शुद्ध रूपक न होकर संकीर्ण रूपक या उपरूपक कहलाता है। रस पर आधारित दस रूपक इस प्रकार इंगित किए गए हैं-

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।

व्यायोग समवकारौ वीथ्यङ्केहामृगाः इति।।"

नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग समवकार, वीथि अंक और ईहामृग ये दस रूपक भेद कहे गए हैं।

इन दश रूपकों का समीक्षात्मक विववरण इस प्रकार है:-

1.3.3 नाटक:

नाटक को सभी रूपकों की प्रकृति कहा जाता है। क्योंकि यह सभी रूपकों में प्रमुख है। इसमें रसों की प्रचुरता होती है। रूपक के सभी लक्षण वस्तु नेता, एवं रस सम्बन्धी नाटकों में पाए जाते हैं। नाटक के प्रारम्भ में पूर्वरंग (मंगलाचरण) आदि का विधान किया जाता है। तत्पश्चात् प्रस्तावना के बाद नाटक का अभिनय अंकों के अन्तर्गत किया जाता है। नाटक का कथानक प्रख्यात अर्थात् इतिहास (रामायण, महाभारत, पुराणादि) से उद्धृत होता है। इसका नायक रमणीय गुणों से युक्त तथा प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुआ कोई राजा (राजर्षि) या दिव्य पुरूष होता है। उसे धीरोदात्त पराक्रमी, यश की अभिलाषा करने वाला, उत्साह सम्पन्न कृष्णादि की तरह दिव्य, रामादि की तरह दिव्यादिव्य दुष्यन्तादि की तरह अदिव्य होना चाहिए। नाटक का इतिवृत्त बनने वाली प्रख्यात कथा में यदि कोई अंश नायक की धीरोदात्तता की दृष्टि से या रसानुभूति की दृष्टि से अनुचित हो तो उसे हटा देना चाहिए या उसकी दूसरे प्रकार से कल्पना कर ली जानी चाहिए। नाट्यारम्भ से पूर्व यदि कोई वृतान्त ऐसा हो जिसे रंगमंच पर दिखाना संभव न हो किन्तु दर्शकों के लिए उसे जानना जरूरी हो तो अंकों से पहले विष्कम्भक की योजना करके उसकी सूचना दी जानी चाहिए।

कथानक के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से नाटक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ-बीज बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य तथा पाँच कार्यावस्थाएँ-आरम्भ, प्रयत्न या यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम होने चाहिए।

क्रमशः एक-एक अर्थ प्रकृति के क्रमशः एक एक कार्यावस्था के साथ होने वाले संयोग से पाँच सन्धियाँ मुख (बीज+आरम्भ), प्रतिमुख (बिन्दु+प्रयत्न), गर्भ (पताका+प्राप्त्याशा), विमर्श अथवा अवमर्श (प्रकरी+नियताप्ति) तथा निर्वहन (कार्य$फलागम) हैं। पताका एवं प्रकरी का नाटक में होना अनिवार्य नहीं है। इसलिए गर्भ एवं विमर्श सन्धि में ये हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती है। नाटक में कभी भी कथा के मुख्य नायक का वध नहीं दिखाया जाना चाहिए। यह तथ्य संस्कृत नाटकों की सुखान्तता को इंगित करता है। नाटक का विभाजन अंकों में होना चाहिए तथा इसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए।

1.3.4 प्रकरण:

प्रकरण की कथा ऐतिहासिक न हो कर कवि की कल्पना से निर्मित एवं साधारण जन के जीवन पर आधारित होती है। इसका नायक मन्त्री, ब्राह्मण या वणिक् (वैश्य/व्यापारी) में से कोई एक होता है। वह धीर प्रशान्त कोटि का होता है तथा सदैव धर्म-अर्थ और काम की सिद्धि के लिए तत्पर रहता है। उसकी कार्यसिद्धि अनेकानेक विघ्नों से बाधित होती है। इस रूपक भेद में श्रंगार अथवा वीर में से

कोई एक अंगी रस होता है तथा अन्य रस गौण रूप में होते हैं। इसमें पाँच अर्थ प्रकृतियाँ, पंच कार्यवस्थाएँ, पंच सन्धियाँ तथा अंक संख्या, नाटक की तरह ही होती है। नायिका की दृष्टि से प्रकरण तीन तरह का होता है एक कुलजनिष्ठ, जिसमें केवल कुलजा (कुलीन वंशोत्पन्न) नायिका होती है। दूसरा जिसमें केवल गणिका नायिका होती है और तीसरा जिसमें कुलजा और गणिका दोनों ही नायिकाएँ होती हैं।

1.3.5 भाण:

भाण नामक रूपक भेद में कोई चतुर तथा बुद्धिमान (पण्डित) विट अपने या दूसरे के अनुभव के आधार पर किसी धूर्त के चरित्र का वर्णन करता है। भाण में एक ही अंक तथा (विट) एक अकेला पात्र होता है। वह विट आकाश भाषित के द्वारा स्वयं ही सम्बोधन और उत्तर प्रत्युत्तर करते हुए कथा को आगे बढ़ाता है। इस रूपक में शौर्य एवं सौभाग्य (विलासादि) के वर्णन से वीर तथा श्रृंगार रस की सूचना विट के द्वारा दी जाती है। इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होती है। इसकी कथावस्तु कविकल्पित होती है। इसमें मुख तथा निर्वहण ये दो संधियाँ अंगों सहित होती है। साथ ही लास्य के दस अंगों की योजना भी इसमें होती है।

1.3.6 प्रहसन:

हास्य रस प्रधान प्रहसन की कथावस्तु कवि कल्पित होती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसमें एक या दो अंक होते हैं। अन्य आचार्य इसे भाण की तरह एकांकी मानते है। प्रहसन तीन प्रकार का होता है शुद्ध, विकृत और संकीर्ण। पाखण्डी कहलाने वाले धूर्त विप्र, एवं धूर्त दास-दासी आदि के चरित्र, वेश तथा भाषादि से युक्त प्रहसन शुद्ध प्रहसन है। कामुक की तरह वेश वाले तथा वैसी ही भाषा बोलने वाले नपुंसक, कंचुकी, तपस्वी आदि पात्रों का समावेश जिस प्रहसन में हो वह विकृत प्रहसन तथा धूर्त पात्रों के चरित्रांकन से युक्त प्रहसन संकीर्ण प्रहसन कहलाता है। यह रूपक हास्य उत्पन्न करने वाले कथनों से परिपूर्ण होता है। इसका नायक बौद्ध भिक्षु, शैव सन्यासी, तपस्वी या गृहस्थ हो सकता है। उसके परिहास पूर्ण संवादों से दर्शकों में हास्य उत्पन्न होता है। प्रहसन में मिथ्या आचरण करने वाले नायक को सुसंस्कृत भाषा में सभ्य जन की तरह बोलते हुए दिखाया जाता है। यहाँ नाटकीय कथानक के कुछ अंश में विशेष भाव को प्रकट करते हैं तथा शेष अंश में मिथ्याचारी नायक के जीवन के उन अंशों को दिखाया जाता है जिनका उपहास करना यहाँ लक्षित होता है। यह एक अंक वाला रूपक है। इसमें भी मुख तथा निर्वहण दो सन्धियाँ होती है। यहाँ वेशभूषा तथा भाषा की विकृति से हास्य उत्पन्न होता है।

13.7 डिम:

डिम की कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसमें स्त्री पात्रों के अभाव में कैशिकी वृत्ति को छोड़कर सात्त्वती, आरभटी और भारती ये तीन वृत्तियाँ होती हैं। इसके नेता देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस तथा नाग

आदि मानवेत्तर योनि के लोग होते हैं अथवा भूत, प्रेत, पिशाच आदि सोलह उद्धत नायक इसमें होते है। इसमें रौद्र रस अंगीरस होता है तथा श्रृंगार एवं हास्य को छोड़कर अन्य रस (करूण, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत) अंग रूप में होते हैं। यह माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त (उन्मत्त) आदि की चेष्टाओं तथा सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि के दृश्यों से युक्त होता हैं। इस रूपक में चार अंक होते है। इसमें मुख, प्रतिमुख, गर्भ तथा निर्वहण ये चार संधियाँ होती हैं।

1.3.8 व्यायोग:

व्यायोग का इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है। इसका नायक कोई इतिहास प्रसिद्ध उद्धत व्यक्ति होता है। इसमें मुख प्रतिमुख और निर्वहण ये तीन संधियाँ तथा श्रृंगार एवं हास्य के अलावा अन्य छः रस (करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत) दीप्त होते हैं। इसमें ऐसे युद्ध का वर्णन होता है जिसके मूल में कोई स्त्री कारण न हो। जैसे- 'जामदग्न्य जय' नामक व्यायोग में प्रसिद्ध उद्धत नायक परशुराम ने पितृवध के कारण क्रोधित होकर सहस्रबाहु से युद्ध किया है। यह रूपक एक अंक का ही होता है, जिसमें एक ही दिन की कथा वर्णित होती है। कैशिकी वृत्ति को छोड़कर सात्वती, आरभटी और भारती रूप तीन वृत्तियाँ इसमें होती। व्यायोग नामक रूपक भेद में पुरूष पात्रों की ही बहुलता होती है।

1.3.9 समवकार:

देवों और असुरों से सम्बद्ध पुराण प्रसिद्ध कथा ही समवकार का इतिवृत्त होता है। इसमें सात्वती, आरभटी, भारती ये तीन वृत्तियाँ होती हैं। कौशिकी वृत्ति इसमें स्वल्प रूप में होती है। इसमें बारह नायक होते हैं जो इतिहास प्रसिद्ध देवता और दावन होते हैं। इन सभी नायकों की फलसिद्धि भी पृथक होती है। ये सभी नायक वीर रस से पूर्ण होते हैं। जैसे समुद्रमन्थन में परिलक्षित होते हैं। समवकार में तीन अंक होते हैं प्रत्येक अंक में क्रमशः तीन प्रकार का कपट (वस्तुकृत, स्वभावकृत और दैवकृत) तीन प्रकार का विद्रव (नगरोपरोध युद्ध तथा वायु, अग्निकृत) तथा तीन प्रकार का श्रृंगार (धर्म, अर्थ एवं काम से युक्त श्रृंगार) होता है। इसमें बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक नही होता।

1.3.10 वीथि:

यह रूपक भेद भी एकांकी है। वीथि में कैशिकी वृत्ति होती है। इसमें श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक न होने के कारण वह बहुत से उपायों द्वारा केवल सूच्य मात्र होता है। अन्य रसों का भी स्वल्प मात्रा में स्पर्श किया जाता है अर्थात् अन्य रस भी इसमें सूचित मात्र होते हैं। इसमें मुख एवं निर्वहण नामक दो संधियाँ होती हैं। यह प्रस्तावना के उद्घात्यक आदि अंगों से युक्त होती है। वीथि के 13 अंग होते है। इसमें पात्र संख्या एक या दो ही होती है।

1.3.11 अंक:

नाटक के अन्तर्विभाग (अंक) तथा इस रूपक भेद में किसी प्रकार का संशय न हो इसलिए इस रूपक भेद का दूसरा नाम 'उत्सृष्टिकांक' कहा जाता है। उत्सृष्टिकांक की कथावस्तु तो इतिहास प्रसिद्ध होती है किन्तु प्रख्यात कथा को ग्रहण करते हुए भी कवि अपने बुद्धि वैभव से उसमें परिवर्तन कर लेता है। इसका अंगी रस करूण रस है। इसके नायक सामान्य जन होते हैं। इसमें मुख एवं निर्वहण संधि एवं भारती वृत्ति तथा उसके अंगों की योजना की जाती है। इसमें एक ही अंक होता है। करूण रस प्रधान होने के कारण यह रूपक भेद स्त्रियों के विलाप से युक्त होता है। अर्थात् इसमें शोकग्रस्त विह्वल स्त्रियों का विशेष रूप से चित्रण होता है। इसमें वाक् युद्ध तथा मौखिक जय-पराजय का वर्णन किया जाता है। कोई-कोई आचार्य इसमें एक से तीन तक अंको का विधान करते हैं।

1.3.12 ईहामृग:

मृग की तरह अलभ्य (अप्राप्य) किसी नायिका की ईहा (अभिलाषा) के वर्णित होने के कारण ही इस रूपक भेद को ईहामृग कहा जाता है। इसका इतिवृत्तइतिहास तथा कवि कल्पना का मिश्रित रूप होता है। इसमें चार अंक तथा मुख, प्रतिमुख, निर्वहण रूप तीन सन्धियाँ होती हैं। इसमें देवता तथा मनुष्य में से कोई एक नायक तथा दूसरा प्रतिनायक होता है। वे धीरोदात्त कोटि के होते हैं। इसमें प्रतिनायक भ्रमात्मक एवं विपरीत बुद्धि के कारण अनुचित कार्य करने वाला होता है। वह किसी दिव्य स्त्री (जो उससे प्रेम नही करती) का अपहरण करना चाहता है। ऐसी स्थिति में कवि उस प्रतिनायक के आश्रय से श्रृंगाराभास का कुछ कुछ वर्णन इस रूपक में करता है। नायक प्रतिनायक का विरोध पूर्णता पर पहुँच कर भी किसी न किसी बहाने से इसमें युद्ध को रोक दिया जाता है। प्रतिनायक के वध की स्थिति आ जाने पर भी उसका वध टाल दिया जाता है। रूपक के मूल कथानक में महापुरूष के वध का वर्णन भले ही अंकित हो, किन्तु रूपक में उसे कदापि प्रदर्शित नही किया जाता है अर्थात् इसके इतिवृत्त में प्रतिनायक का वध नहीं दिखाया जाता।

1.3.13 उपरूपक:

इन दस रूपकों के अलावा नाट्याचार्यो ने अट्ठारह उपरूपक भेद भी बताए हैं जो इस प्रकार हैं - 1. नाटिक 2. त्रोटक 3. गोष्ठी 4. सट्टक 5. नाट्यरासक 6. प्रस्थानक 7. उल्लास्य 8. काव्य 9. प्रखण 10. रासक 11. संलापक 12. श्रीगदित 13. शिल्पक 14. विलासिका 15. दुर्माल्लिका 16. प्रकरणिका 17. हल्लीश 18. भाणिका इनमें से नाटिका, त्रोटक, सट्टक, रासक एवं भाणिका ही प्रमुख है। दशरूपककार धनंजय ने दशरूपकम मे अन्य संकीर्ण या उपरूपक भेदों का निराकरण करने के लिए केवल नाटिका का लक्षण मात्र दे दिया है जो निम्न प्रकार है-

1.3.14 नाटिका:

नाटिका की कथावस्तु प्रकरण नामक रूपक भेद के समान अर्थात् कवि कल्पित होती है। इसका

नायक नाटक के समान कोई राजा होता है। इस तरह नाटिका में नाटक एवं प्रकरण के लक्षणों का मिश्रण होने से यह संकीर्ण रूपक है। इसे प्रमुख उपरूपक माना गया है। इसका नायक प्रख्यात एवं धीर ललित कोटि का होता है। नाटिका का अंगीरस श्रृंगार होता है। नाटिका में कैशिकी वृत्तितथा स्त्री पात्रों की बहुलता होती है। इसमें चार अंक होते हैं तथा प्रत्येक अंक में कैशिकी वृत्ति के चार अंग नर्म, नर्मस्फिंज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ क्रमशः होते हैं अर्थात् प्रत्येक अंक में क्रमशः एक-एक अंग होता है।

नाटिका में दो नायिकाएँ होती हैं जेष्ठा एवं कनिष्ठा। ज्येष्ठा राजवंश में उत्पन्न हुई, प्रगल्भा, गम्भीरा तथा मानिनी होती है। उसी के अधीन होने के कारण कनिष्ठा नायिका के साथ नायक का मिलन बड़ी कठिनाई से होता है। कनिष्ठा नायिका भी राजवंश में उत्पन्न कोई राजकन्या तथा मुग्धा अर्थात् नवयुवती तथा नवीन कामभाव वाली होती हैं। नायक के अन्तःपुर में वास अथवा संगीत आदि के संबन्ध से वह नायक के निकट होती है। उस नवीन नायिका के विषय में सुनकर अथवा उसे देखकर नायक का उसके प्रति उत्तरोत्तर नवीन अनुराग होता है। इसमें नायक देवी अर्थात् ज्येष्ठा नायिका के भय से शंकापूर्वक नवीन नायिका की ओर प्रवृत्तहोता है। हर्ष द्वारा रचित 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' नाटिका के उदाहरण है।

1.4 सारांश

दृश्य काव्य वह है जो दर्शनीय हो। कोई काव्य दर्शनीय तभी हो सकता है जबकि उसे रंगमंच पर पात्र (नट) अपने अभिनय द्वारा प्रस्तुत करें। इस तरह अभिनेयता रूप विशेषता के कारण ही दृश्य काव्य को नाट्य, रूप एवं रूपक की संज्ञा भी दी जाती है। रूपक रसाश्रित होते हैं। इनकी संख्या दस मानी गई है। नाटिका आदि की गणना रूपक में न करके उपरूपकों के अन्तर्गत की गई है। नाटक को सभी रूपकों की 'प्रकृति' अर्थात मूल माना जाता है। इसमें नाट्य के सभी प्रमुख तŸवों- वस्तु, नेता एवं रस का सांगोपांग निरूपण होता है। नाटक तथा प्रकरण ही मात्र ऐसे रूपक भेद हैं जिनमें कथावस्तु का विकास पंच अर्थ प्रकृतियों पंच कार्यावस्थाओं तथा पंच सन्धियों के आयोजन के साथ होता है। रूपकों के वे भेद, जो एक, दो या तीन अंक वाले होते है अभिनय में सुविधाजनक होते है। इनमें पात्र संख्या कम होती है। अतः इनके आयोजन हेतु अधिक तामझाम की जरूरत नहीं होती। कतिपय रूपक भेद समाज के कुत्सित रूप पर व्यंग्य करने या हास्योत्पादक होने के कारण बेहद लोकप्रिय रहे हैं। 'प्रहसन' तो आज भी 'कॉमेडी' के रूप में रंगमंच की लोकप्रिय विधा है। इसी तरह प्रकरण भी अत्यन्त लोकप्रिय नाट्य विधा है। शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' पर बनी फिल्म 'उत्सव' प्रकरण नामक रूपक भेद की लोकप्रियता को दर्शाता है। नाटक के विषय में तो कहा ही गया है ''काव्येषु नाटकं रम्यं।''

इनके अलावा नाटिका एक ऐसा उपरूपक भेद है जो नाटककारों को विशेष प्रिय रहा है।

अतः दस रूपकों के अन्तर्गत न गिने जाने पर भी हमने उसका लक्षण निरूपण इकाई में किया है।

अभ्यास प्रश्न।

लघु उत्तरीय

टिप्पणी:

I. डिम
II. प्रहसन
III. भाण

बहुविकल्पीय प्रश्नः

प्रश्न ;1. दशरूपकम् का विभाजन किसमें है?

(क) सर्ग (ख) उच्छवास

(ग) उल्लास (घ) प्रकाश

प्रश्न 2.दशरूपकम् में कुल कितने विभाग है?

(क) चार (ख) आठ

(ग) बारह (घ) सोलह

प्रश्न 3.धनंजय के अनुसार सर्वप्रमुख रूपक भेद कौन सा है?

(क) प्रकरण (ख) नाटिका

(ग) नाटक (घ) प्रहसन

प्रश्न 4.नाटक का नायक कैसा होना चाहिए?

(क) धीरललति (ख) धीरशान्त

(ग) धीरोदात्त (घ) धीरोद्धत

प्रश्न 5.कुलजनिष्ठ, गणिकानिष्ठ एवं उभयनिष्ठ निम्नलिखित में से क्या होता है?

(क) भाण (ख) प्रकरण

(ख) नाटक (घ) वीथि

प्रश्न 6.शुद्ध, विकृत एवं संकीर्ण किसके भेद हैं?

(क) प्रकरण के (ख) भाण के

(ग) प्रहसन के (घ) डिम के

प्रश्न 7.समवकार का इतिवृत्त कैसा होता है?

(क) प्रख्यात (ख) उत्पाद्य

(ग) मिश्र (घ) दिव्य

प्रश्न 8.प्रहसन का अंगीरस क्या होता है?

(क) श्रृंगार (ख) हास्य

(ग) करूण (घ) अद्भुत

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

प्रश्न ;1. ....रस्तेषां भेदकः।

प्रश 2.अंक नामक रूपक भेद का दूसरा नाम ....है।

प्रश्न 3.प्रकरण का नायक विप्र ....या आमात्य में से कोई एक होना चाहिए।

प्रश्न 4.दशधैव..।

प्रश्न.5..नाट्य।

प्रश्न 6.रूपकं तत्..।

अतिलघुत्तरीय:

प्रश्न 1.दशरूकम् का लेखक कौन है?

प्रश्न 2.दशरूपकम् का वृत्ति भाग किसने लिखा है?

प्रश्न 3.व्यायोग की कथावस्तु कैसी होती है?

प्रश्न 4.प्रकरण का अंगीरस क्या होता है?

प्रश्न 5.स्वानुभूत या परानुभूत धूर्त चरित्र का वर्णन किस रूपक में होता है?

प्रश्न 6.उपरूपकों की संख्या कितनी मानी गई है?

प्रश्न 7. नाटक की पाँच अर्थप्रकृतियाँ कौन सी है?

प्रश्न 8.नाटक की पाँच कार्यावस्थाएँ क्या मानी गई हैं?

सत्य/असत्य बताइये:

1. व्यायोग नामक रूपक में स्त्रीहेतुक युद्धवर्णन होता है।
2. नाटक का अंगीरस वीर अथवा श्रृंगार में से कोई एक होता है।
3. नाटक में चार सन्धियाँ होती है।
4. भाण नामक रूपक में एक ही पात्र 'विट' होता है।
5. नाटिका की गणना उपरूपक में की जाती है।
6. नाटक में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए।
7. प्रकरण का नायक कोई राजा या दिव्य पुरूष होता है।
8. डिम नामक रूपक की कथावस्तु प्रसिद्ध (प्रख्यात) होती है।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री को भलीभाँति पढ़कर स्वयं लिखे, इससे आपका अभ्यास होगा तथा आप स्वयं अपना मूल्यांकन कर पाऐंगे।

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं किन्तु हमारा सुझाव है कि आप स्वमूल्यांकन हेतु उनसे अपने उत्तरों का मिलान करके देखें।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

नाट्य: 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं' काव्य के नायक-नायिका (राम-सीता) आदि की सुखःदुख आदि अवस्थाओं का रंगमंच पर नट के द्वारा किया गया अनुकरण ही नाट्य कहलाता है। इस तरह नाट्य शब्द का तात्पर्य है अभिनय, जो इस कुशलता से किया गया हो कि दर्शक को नट तथा राम आदि नायक में तादात्म्य (एकरूपता) की प्रतीति होने लगे।

रूप: 'रूपं दृश्यतोच्चते' नेत्रेन्द्रिय ग्राह्य होने के कारण नाट्य को 'रूप' कहा जाता है। जैसे नीले पीले आदि रंगों से युक्त लौकिक पदार्थ नेत्रों से देखे जाने के कारण रूप है वैसे ही नाटक आदि भी देखे जाने के कारण रूप है।

रूपक: 'रूपकं तत्समारोपात्' नाटक आदि में रंगमंच पर रामादि का अभिनय करने वाले नट या पात्र पर दर्शक राम आदि का आरोप कर लेते हैं। अतः जैसे कि रूपक अलंकार में मुख पर चन्द्र का आरोप होने से रूपक अलंकार होता है वैसे ही नाट्य में नट पर राम आदि का आरोप होने से उसे रूपक भी कहा जाता है।

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. धनंजय, दशरूपकम् व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन वाराणासी

2. भरतमुनि, नाटयशास्त्र, अनु0 डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

3. धनंजय, दशरूपकम्, धनिक कृत अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भण्डार मेरठ

4. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, साहित्य भंडार मेरठ

5. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी:

I. डिम के लिए इकाई की उपखण्ड संख्या 1.3.7 को देखें।
II. प्रहसन के लिए इकाई की उपखण्ड संख्या 1.3.6 को देखें।
III. भाण के लिए इकाई की उपखण्ड संख्या 1.3.5 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. घ
2. क
3. ग
4. ग
5. ख
6. ग
7. ख
8. ख

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. वस्तुनेता
2. उत्सृष्टिकांक
3. वणिक्
4. रसाश्रयम्
5. अवस्थानुकृतिः
6. समारोपात्
7. तयोच्यते

अतिलघूत्तरीय:

1. धनंजय
2. धनिक ने
3. प्रख्यात
4. वीर अथवा श्रृंगार
5. भाण में
6. अट्ठारह
7. बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य
8. आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम

सत्य/असत्य:

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. असत्य
8. सत्य

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाट्य किसे कहते हैं?
2. दशरूपकों के नाम क्या है? तथा उनके भेदक तत्व क्या माने गए हैं?
3. दशरूपकम् के अनुसार नाटक का लक्षण क्या है?

इकाई 2: नृत्य, पंचसन्ध्यङ्गों का विवेचन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 इकाई की पाठ्य सामग्री
  2.3.1 नृत्य
  2.3.2 नृत्त
  2.3.3 सन्धि का सामान्य लक्षण
  2.3.4 सन्धियों के नाम
  2.3.5 सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप
  2.3.6 मुख सन्धि
  2.3.7 मुख सन्धि के अंग
  2.3.8 प्रतिमुख सन्धि
  2.3.9 प्रतिमुख सन्धि के अंग
  2.3.10 गर्भ सन्धि
  2.3.11 गर्भ सन्धि के अंग
  2.3.12 अवमर्श विमर्श सन्धि
  2.3.13 अवमर्श सन्धि के अंग
  2.3.14 निर्वहण सन्धि
  2.3.15 निर्वहण सन्धि के अंग
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 निबन्धातमक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से संबंधित दूसरी इकाई है। यह इकाई धनंजय द्वारा लिखित दशरूपकम् के नृत्य तथा पंच सन्ध्यङगों पर आधारित है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि रूपक क्या है? रूपक के भेद कौन-कौन से हैं? तथा उनका लक्षण एवं स्वरूप क्या है।

इस इकाई में नृत्य के स्वरूप तथा उसके भेदों की चर्चा करते हुए नृत्त से उसकी भिन्नता का उल्लेख किया गया है। धनंजय को मान्य नाटक आदि की पंच सन्धियों तथा उनके चौसठ अंगों के विषय में प्रस्तुत इकाई में विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नृत्य तथा पंच सन्धियों एवं उसके अंगों के बारे में समझा सकेंगे एवं इस बारे में धनंजय के विचारों का भलीभाँति विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप:

- बता पाएंगे कि नृत्य तथा नृत्त के स्वरूप एवं भेद क्या होते हैं?
- जान सकेंगे कि सन्धि का स्वरूप क्या होता है?
- जान जायेंगे कि नाट्यगत पाँच सन्धियों के नाम क्या हैं?
- समझा सकेंगे कि मुख सन्धि क्या है? तथा उसके कितने अंग होते हैं?
- बता सकेंगे कि प्रतिमुख सन्धि क्या है?
- प्रतिमुख सन्धि के अंगों की जानकारी पा सकेंगे?
- जान लेंगे कि गर्भ सन्धि का लक्षण क्या है?
- गर्भ सन्धि के अंगों के विषय में जान लेंगे।
- बता पाऐंगे कि विमर्श अवमर्श सन्धि का लक्षण क्या है?
- विमर्श सन्धि के अंगों को जान पाएंगे।
- जान सकेंगे कि निर्वहण सन्धि की परिभाषा क्या है?
- निर्वहण सन्धि के अंगों के विषय में जान सकेंगे।

2.3 इकाई की पाठ्य सामग्री:नृत्य, पंच सन्ध्यङ्गों का विवेचन:

2.3.1 नृत्यः

दशरूपकम् के रचयिता धनंजय ने रस पर आश्रित शुद्ध रूपक दस ही कहे हैं। तत्कालीन नाट्याचार्यों में किसी किन्हीं का मानना था कि

"डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणीप्रस्थानरासकः।

काव्यं च सप्तं नृत्यस्य भेदाः स्यु भाणवत्।।"

अर्थात् डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य-नृत्य के ये सात भेद रूपक के एक भेद भाण के समान हैं। अतः नृत्य के इन भेदों की गणना भी रूपक के अन्तर्गत ही कर लेनी चाहिए। आचार्यों के इस मत का खण्डन करते हुए दशरूपककार कहते हैं - **"अन्यद्भावाश्रयं नृत्य" भावाश्रित नृत्य (रसाश्रित नाट्य से) भिन्न** हैं।

नृत्य भावों पर आश्रित होता है अर्थात् नृत्य में भावों को प्रदर्शित किया जाता है। नृत्य शब्द नृत् धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है अंग विक्षेप (शरीर का संचालन)। इस प्रकार स्पष्ट है कि नृत्य में आंगिक अभिनय की प्रचुरता होती है। इसमें नर्तक या नर्तकी अपने हाथ-पैर आदि अंगों एवं नेत्र,भ्रू आदि उपांगों के द्वारा पदार्थ रूप भावों को प्रदर्शित करते हैं। नृत्य में शास्त्रीय पद्धति के अनुसार पदार्थ का अभिनय होता है। यह नृत्य दो प्रकार का होता है-मधुर नृत्य एवं उद्धत नृत्य। दोनों ही प्रकार के नृत्यों में शास्त्रीय परम्परा का अनुकरण होता है। अतः नृत्य को मार्ग भी कहा जाता है। नृत्य के उदाहरण हैं:- कत्थक, मोहिनीअट्टम आदि। जिस शास्त्रीय नृत्य में नर्तक भयंकर मुखौटे आदि लगाकर उद्धत भावों की अभिव्यक्ति करते हैं वह उद्धत नृत्य होता है।

2.3.2 नृत्तः

नृत्य के प्रसंग से नृत्त के विषय में जानना भी आवश्यक है। "नृत्तं तालालयाश्रम्" नृत्त ताल एवं लय पर आश्रित अंग विक्षेप (शरीर संचालन) है। हाथ की ताली आदि ताल है तथा दुरत, मध्यम एवं विलम्बित लय है। अंग विक्षेप नृत्य एवं नृत्त दोनों में ही होता है। अतः दोनों में अन्तर यह है कि नृत्य का विषय भावप्रदर्शन है जबकि नृत्त में ताल एवं लय पर आश्रित अंग विक्षेप मात्र ही होता है। जिस तरह शास्त्रीय परम्परा का अनुकरण करने वाले नृत्य को मार्ग कहा जाता है उसी तरह भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रचलित नृत्त (लोकनृत्तं) पृथक-पृथक होता है। इसमें किसी प्रकार के शास्त्रीय मार्ग का अनुसरण नहीं किया जाता। अतः नृत्त को देशी कहा जाता है। नृत्त भी दो प्रकार का होता है- मधुर नृत्त और उद्धत नृत्त। जैसे कुमाँऊ में प्रचलित झोड़ा, चांचरी, छपेली आदि मधुर नृत्त है तो जागर में

ताल एवं लय पर आश्रित जो शरीर संचालन (अंग विक्षेप) होता है, उसे उद्धत नृत्त कहा जा सकता है। ये दोनों-नृत्य एवं नृत्त अपने दोनों भेदों मधुर एवं उद्धत के द्वारा लास्य एवं ताण्डव रूप में रूपकों के उपकारक होते हैं।

2.3.3 सन्धि का सामान्य लक्षण:

धनंजय के अनुसार सन्धि का लक्षण है-"किसी रूपक में कई कथांश होते हैं। उनके अपने प्रयोजन भी भिन्न-भिन्न होते हैं। वे इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन के साथ समन्वित होते हैं और किसी अवान्तर प्रयोजन के साथ भी उनका सम्बन्ध होता है। यही सम्बन्ध सन्धि कहलाता है।" सन्धि शब्द का अर्थ है संयोग या जोड़, जो दो या दो से अधिक तत्त्वों के मध्य हो सकता है। रूपक के संदर्भ में इतिवृत्त के प्रधान प्रयोजन के साथ समन्वित होते हुए भी किसी कथांश का अपने अवान्तर प्रयोजन के साथ होने वाले सम्बन्ध को ही सन्धि कहा जाता है।

2.3.4 सन्धियों के नाम:

धनंजय ने अपने दशरूपकम् में सन्धियों का इस प्रकार नामोल्लेख किया है-

"मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः"

अर्थात् मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण ये पाँच सन्धियाँ होती है।

2.3.5 सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप:

बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी एवं कार्य ये पाँच नाटक की अर्थ प्रकृतियाँ हैं। ये अर्थप्रकृतियाँ नाटक में प्रयोजन सिद्धि का हेतु कही गई हैं। नाटक में लक्ष्य या फल की प्राप्ति चाहने वाले नायकादि द्वारा इच्छित फल की प्राप्ति के लिए जो कार्य व्यापार किया जाता है उसकी पाँच अवस्थाएँ होती हैं आरम्भ, यत्न, प्रात्याशा, नियताप्ति एवं फलागम।

सन्धियों के रचनात्मक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए धनंजय कहते हैं- "बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य इन पाँच अर्थप्रकृतियों का क्रमशः आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम"-इन पाँच कार्यावस्थाओं के साथ संयोग (मिलन) होने पर मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श अवमर्श एवं निर्वहण या उपसंहति नाम की पाँच सन्धियों की रचना होती है।" सन्धियों के इस रचनात्मक स्वरूप को इस प्रकार समझा जा सकता है-बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग से होने वाली सन्धि को मुखसंधि कहते हैं। इसी तरह बिंदु तथा यत्न के संयोग से होने वाली सन्धि प्रतिमुख सन्धि है। पताका तथा प्राप्त्याशा मिलकर गर्भ सन्धि होती है तथा प्रकरी एवं नियताप्ति मिलकर विमर्श अवमर्श संधि होती है। इनमें यह देखने वाली बात यह है कि किसी रूपक की कथा में पताका एवं प्रकरी का होना अनिवार्य नहीं है। अतः गर्भ एवं विमर्श सन्धि

में ये हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकती। किन्तु गर्भ सन्धि में प्राप्त्याशा तथा विमर्श सन्धि में नियताप्ति का होना आवश्यक है। गर्भ सन्धि में नाटक का फल छिपा रहता है इसलिए उसे गर्भ सन्धि कहते है।

रूपक के अंत में जहाँ कार्य नामक पाँचवी अर्थ प्रकृति और फलागम रूप पाँचवी कार्यावस्था का संयोग होता है वहाँ उपसंहृति या निर्वहण नामक पाँचवी सन्धि होती है।

इन पंचसंधियों का लक्षण तथा इनके अंगों का विवरण निम्न प्रकार है-

2.3.6 मुख सन्धि का लक्षण:

"मुखं बीज समुत्पात्तिर्नानार्थरससम्भवाः।

अंगानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात्।।"

नाटक के प्रारम्भिक भाग में जहाँ पर अनेकानेक प्रयोजनों एवं रसों को निष्पन्न कराने वाली बीजोत्पत्ति दिखाई जाय वहीं पर मुख नामक प्रथम सन्धि होती है। मुख सन्धि में बीज को प्रदर्शित किया जाता है तथा कार्य की आरम्भ नामक कार्यावस्था को विशेष प्रकार से स्पष्ट किया जाता है। नाटक प्रकरणादि रूपकों में धर्म, अर्थ एवं काम रूप त्रिवर्ग की (फल के रूप में) नायक आदि को प्राप्ति होती है जबकि भाण, प्रहसन आदि रूपकों में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति कराना लक्ष्य या फल नहीं होता। वहाँ केवल रस की उत्पत्ति होती है। अतः इन रूपकों में रसोत्पत्ति के हेतु (रस के आलम्बन अथवा समाज के उपहास योग्य पक्ष) को ही बीज माना जाएगा। मुखसन्धि बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग (मिलन) से निष्पन्न होती है।

2.3.7 मुख सन्धि के अंग एवं उनके लक्षण:

"अंगानि द्वादशैतस्य" इस मुख सन्धि के बारह अंग होते हैं। इन सन्ध्यंगों का विवरण निम्नलिखित है-

(1) उपक्षेप (2) परिकर (3) परिन्यास (4) विलोभन (5) युक्ति (6) प्राप्ति (7) समाधान (8) विधान (9) परिभावना (10) उद्भेद (11) भेद (12) करण

किसी रूपक में यदि समस्त अंगों का विधान करना सम्भव न हो तो भी उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, युक्ति, उद्भेद एवं समाधान का तो अवश्य ही विधान करना चाहिए अन्यथा अंगहीन पुरूष की तरह रूपक भी शोभा हीन होगा। अतः मुख सन्धि के इन आवश्यकीय अंगों का लक्षण निम्नांकित है-

उपक्षेप: बीज का न्यास (रखना) ही उपक्षेप है। अर्थात् रूपक के इतिवृत्त को सर्वप्रथम शब्दों में अभिव्यक्त किया जाना ही उपक्षेप कहलाता है। जैसे किसान अन्न रूप फल की इच्छा से सर्वप्रथम

भूमि में बीज का निक्षेप करता है उसी प्रकार नाटककार भी नाटक के धर्मार्थकाम रूप फल के हेतु रूप बीज का रूपक के आरम्भ में निक्षेप करता है। यही उपक्षेप कहलाता है।

परिकर: उपक्षेप का बाहुल्य ही परिकर है। इसमें बीज न्यास की वृद्धि होने लगती है। अर्थात नाट्यार्थ का विकास होने लगता है। पात्र बोए हुए बीज की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बीज को दृढ़ करता है।

परिन्यास: उस बीज न्यास की सफलता को परिन्यास कहते हैं। जिस प्रकार खेत में डाला गया बीज फूलकर अंकुर की उत्पत्ति में समर्थ हो जाता है उसी प्रकार नाट्य का बीज भी निक्षिप्त होकर तथा पुष्ट होकर फल की सिद्धि में समर्थ हो जाता है। यही बीज निष्पत्ति है। जिसे परिन्यास कहते हैं।

युक्ति: जहाँ पात्र के अभीष्ट अर्थों का निर्णय या समर्थन किया जाय वहाँ युक्ति नामक मुख सन्धि का अंग होता है। अर्थात् जब पात्र अतीत की घटनाओं का स्मरण करा कर अपने प्रयोजन का समर्थन करता है तब युक्ति होती है।

उद्भेद: किसी गूढ़ बात को प्रकट करना ही उद्भेद कहलाता है। अर्थात जहाँ पर अब तक गुप्त अवस्था में स्थित बीज को थोड़ा सा प्रकाशित कर दिया जाय वहाँ उद्भेद नामक मुख संधि का अंग होता है।

समाधान: पहले संक्षेप में कहे गये बीज को पुनः अधिक स्पष्ट रूप से कहा जाना ही समाधान कहलाता है।

2.3.8 प्रतिमुख सन्धि:

बीज का कुछ-कुछ दिखायी देना और कुछ-कुछ न दिखायी देना ही प्रतिमुख सन्धि है। इस सन्धि का निर्माण बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति तथा प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से होता है। दशरूपककार धनंजय ने प्रतिमुख सन्धि का लक्षण इस प्रकार दिया है-

"लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।

बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।"

मुख सन्धि में बीज स्थापित किया जाता है उसे पोषित होने के लिए समुचित वातावरण मिलता है और प्रतिमुख सन्धि में आकर वह प्रस्फुटित होने लगता है, किन्तु जिस तरह बीज का पहला अंकुर कुछ-कुछ अस्पष्ट सा होता है उसी तरह नाट्य के बीज का यह अंकुर भी कुछ अस्पष्ट रूप में प्रतिमुख सन्धि में प्रकट होता है।

2.3.9 प्रतिमुख सन्धि के अंग एवं उनके लक्षण:

"अंगान्यस्यत्रयोदश" पूर्व में संकेतित बिन्दु रूप अर्थप्रकृति और प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से निष्पन्न प्रतिमुख सन्धि के तेरह अंग कहे गये है। (1) विलास (2) परिसर्प (3) विधूत (4) शम (5) नर्म (6) नर्मद्युति (7) प्रगमन (8) निरोध (9) पर्युपासन (10) वज्र (11) पुष्प (12) उपन्यास (13) वर्ण संहार। इनमें से परिसर्प, प्रशम, वज्र उपन्यास पुष्प को रूपकों में प्रमुख रूप में नियोजित करना चाहिए। शेष अंगों का आवश्यकतानुसार नियोजन किया जा सकता है। इन प्रमुख अंगों का लक्षण इस प्रकार है-

परिसर्पः- एक बार देखे गये किन्तु फिर नष्ट हुए बीज को खोजा जाना ही परिसर्प कहलाता है। अर्थात जहाँ बीज एक बार दिखायी पड़ गया हो और फिर नष्ट हो गया हो ऐसे दृष्टनष्ट बीज की खोज जहाँ पर की जाय वह अन्वेषण ही परिसर्प कहलाता है।

प्रशमः लक्ष्य के प्रति अरति (विरक्ति) के दूर हो जाने को शम कहते हैं।

वज्र: प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर वचन बोलना ही वज्र है। अर्थात नायक आदि के प्रति जब कोई पात्र किसी कारण वश प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर वचन बोलता है तो वह वचन वज्र के समान कठोर और हृदयविदारक होने के कारण वज्र कहलाता है।

उपन्यासः- उपाय युक्त या हेतु प्रदर्शक वाक्य को उपन्यास कहा जाता है। अर्थात उपाय से या व्यवहार कुशलता से बीज को प्रकाशित करना ही उपन्यास है।

पुष्पः- विशेषता युक्त वाक्य को पुष्प कहते हैं। अर्थात बीज को विशेष रूप से प्रकाशित करने वाला प्रशंसा युक्त वाक्य ही पुष्प कहलाता है।

2.3.10 गर्भ सन्धि:

"गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुदुः।

द्वादशाङग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्ति संभवः।"

जो बीज प्रतिमुख सन्धि में कुछ-कुछ प्रकट होने के कारण कभी पनपता कभी मुरझाता (लक्ष्यालक्ष्य रूप में" रहता है वही बीज गर्भ सन्धि में विशेष रूप में उद्भासित होने के कारण विघ्नों से बारम्बार नष्ट होता है। बार-बार उसका अन्वेषण किया जाता है। इस प्रकार प्रकट होने और नष्ट होने की स्थिति इस गर्भ सन्धि में निरन्तर बनी रहती है इसीलिए गर्भ सन्धि में फल प्राप्ति की आशा तो बनी रहती है किन्तु फल-प्राप्ति का दृढ़ निश्चय नहीं हो पाता। सामान्यतः पताका नामक अर्थप्रकृति और प्राप्त्याशा नामक कार्यवस्था के संयोग से गर्भ सन्धि होती है। लेकिन प्रत्येक नाटक में पताका का होना आवश्यक नहीं है इसलिए गर्भ सन्धि में पताका हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती। प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था इसमें अवश्यमेव होनी चाहिए।

2.3.11 गर्भ सन्धि के अंग एवं उनके लक्षण:

भरत, विश्वनाथ की तरह दशरूपककार धनंजय ने भी गर्भ सन्धि के बारह अंग माने हैं उनका नामोल्लेख इस प्रकार है-

(1) अभूताहरण (2) मार्ग (3) रूप (4) उदाहरण (5) क्रम (6) संग्रह (7) अनुमान (8) अधिबल (9) तोटक (10) उद्वेग (11) संभ्रम (12) आक्षेप। इनमें से अभूताहरण मार्ग, तोटक, अधिबल एवं आक्षेप प्रमुख हैं। शेष अंगों का यथासम्भव प्रयोग किया जा सकता है। इन प्रमुख अंगों का लक्षण इस प्रकार है-

अभूताहरण: कपट को अभूताहरण कहा जाता है। अर्थात कपट पूर्ण योजना के द्वारा इच्छित की प्राप्ति करने को अभूताहरण कहा जाता है।

मार्ग: यथार्थ बात का कथन मार्ग है। अर्थात किसी वस्तु या बात को ठीक उसी रूप में व्यक्त करना, जैसा कि वह वास्तव में है, मार्ग कहा जाता है।

तोटक: आवेगपूर्ण वचन ही तोटक कहलाता है। अर्थात हर्ष, कोप एवं अन्य कारणों से उत्पन्न आवेश युक्त कथन को तोटक कहा जाता है। तोटक कहीं अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति का कारण होता है, और कहीं प्राप्ति का कारण भी होता है।

अधिबल: "**तोटकस्यान्यथाभावं बु्रवतेऽधिबलं बुधाः**" विद्वानों के अनुसार तोटक का विपरीतभाव अधिबल कहलाता है। धनंजय के मतानुसार क्रुद्ध वचन तोटक है और क्रुद्ध वचन का उल्टा अर्थात् विनीत व दीन वचन अधिबल है। अन्य नाट्याचार्य दीन वचनों को अधिबल कहते हैं। धनंजय के मत में "दीन या विनीत वचन बोलकर किसी की वंचना करना ही अधिबल है।"

आक्षेप: गर्भ सन्धि में स्थित बीज का प्रकाशन ही आक्षेप कहलाता है। अर्थात् गर्भ सन्धि में जहाँ बीज को विशेष रूप से प्रकाशित किया जाता है वहाँ आक्षेप नामक संध्यङ्ग होता है।

2.3.12 अवमर्श विमर्श सन्धि: "

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।

गर्भनिर्भिन्न बीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।"

जहाँ क्रोध से व्यसन से या लोभ से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाता है तथा जहाँ गर्भ सन्धि के द्वारा विभिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखाया गया हो वहाँ अवमर्श/विमर्श सन्धि होती है। "जहाँ यह फल होना चाहिए इस प्रकार अवश्यम्भावी फल प्राप्ति का निश्चय कर लिया जाता है वहाँ अवमर्श या विमर्श होता है"।

2.3.13 अवमर्श विमर्श सन्धि के प्रमुख अंग एवं उनके लक्षण:

धनंजय ने गर्भ सन्धि के तेरह अंग कहे हैं। इन अंगों का नामोल्लेख इस प्रकार है- (1) अपवाद (2) संफेट (3) विद्रव (4) द्रव (5) शक्ति (6) द्युति (7) प्रसंग (8) छलन (9) व्यवसाय (10) विरोधन (11) प्ररोचना (12) विचलन (13) आदान। रूपक में इन अंगों का क्रमशः प्रयुक्त होना आवश्यक नहीं है। रूपकों में इनका निबन्धन आगे पीछे भी दिखायी देता है। इनमें से अपवाद, शक्ति, व्यवसाय, प्ररोचना और आदान ये प्रमुख अंग रूपक में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त किये जाने चाहिए। शेष अंगों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। इन प्रमुख अंगों का लक्षण इस प्रकार है-

अपवाद:- नाटक के किसी पात्र के दोषों का कथन करना ही अपवाद कहलाता है। अर्थात् नाटक के किसी पात्र की किसी न किसी रूप में बीज से संबंधित त्रुटि का वर्णन करना ही अपवाद है।

शक्ति:- विरोध का शान्त हो जाना ही शक्ति कहलाता है। नाट्य शास्त्र में विरोधी के शमन को शक्ति कहा जाता है। नाट्यदर्पण में क्रुद्ध पात्र को प्रसन्न करना ही शक्ति कहलाता है। जबकि दशरूपककार धनंजय के मतानुसार किसी पात्र के प्रति किसी नाटकीय पात्र के विरोध भाव का शान्त हो जाना ही शक्ति कहलाता है।

व्यवसाय: अपनी शक्ति का बखान करना ही व्यवसाय कहलाता है। अर्थात जहाँ कोई पात्र अपनी शक्ति सामर्थ के विषय में स्वयं वर्णन करे वहाँ व्यवसाय नामक अवमर्श सन्धि का अंग होता है।

प्ररोचना:- 'यह सिद्ध हो ही गया है' इस प्रकार के कथन से अथवा किसी सिद्ध पुरूष के कथन से जहाँ भावी अर्थ को प्रकटित किया जाय वहाँ प्ररोचना होता है। "यहाँ यह कार्य तो सिद्ध हो ही गया " इस प्रकार भावी कार्य की सिद्धि का निश्चय कराया जाता है। नियताप्ति से व्याप्त इतिवृत्त का यह भाग प्ररोचना कहलाता है।

2.3.14 निर्वहण सन्धि:

"बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णायथायथम।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।"

नाटक के अंतिम भाग में नाटक की नाट्य के कथावस्तु के बीज से युक्त मुख, प्रतिमुख, गर्भ एवं विमर्श सन्धियों में नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार यत्र-तत्र फैले हुए प्रारम्भ आदि अर्थों का एक (प्रधान) प्रयोजन के लिए एक साथ संग्रह किया जाता है या उन्हें एक साथ समेटा जाता है। यही निर्वहण सन्धि है। निर्वहण सन्धि के अन्त में अनिवार्य रूप से अद्भुत रस का समावेश किया जाना चाहिए।

2.3.15 निर्वहण सन्धि के प्रमुख अंग एवं उनके लक्षण:

धनंजय ने निर्वहण सन्धि के चौदह अंग माने जो इस प्रकार हैं-

(1) सन्धि (2) विबोध (3) ग्रथन (4) निर्णय (5) परिभाषण (6) प्रसाद (7) आनन्द (8) समय (9) कृति (10) भाषा (11) उपगूहन (12) पूर्वभाव (13) उपसंहार (14) प्रशस्ति। नाटक में प्रशस्ति नामक अंग की योजना अनिवार्य है। काव्य संहार तथा प्रशस्ति दोनों रूपक के अन्त में इसी क्रम में प्रयोग किये जाने चाहिए। अन्य अंगों का क्रम बदला भी जा सकता है। काव्यसंहार एवं प्रशस्ति का लक्षण इस प्रकार है-

काव्य संहार:- वरदान की प्राप्ति काव्य संहार कहलाता है। " मैं तुम्हारा और क्या प्रिय करू"? इस प्रकार के कथन द्वारा काव्य रूप वस्तु का उपसंहार किया जाना ही काव्य संहार नामक निर्वहण संधि का अंग है। संस्कृत के सभी नाटकों में काव्य संहार का अनिवार्य रूप से प्रयोग देखा जाता है।

प्रशस्ति:- शुभ अर्थ का कथन ही प्रशस्ति कहलाता है। अर्थात् नाट्य के अन्त में जब सर्वसाधारण के प्रति कल्याण की कामना व्यक्त की जाती है तो उसी को प्रशस्ति कहा जाता है। प्रशस्ति का भी संस्कृत नाटकों में उपनिबन्धन अवश्य किया जाता है। वस्तुतः प्रशस्ति रूपकों का अन्त मंगल है। संस्कृत नाटक सुखान्त होते हैं। अतः उनके अन्त में कल्याण कामना या प्रशस्ति अनिवार्य है। संस्कृत नाटकों में इसी प्रशस्ति को भरतवाक्य भी कहा जाता है।

इस प्रकार मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श व निर्वहण इन पांच सन्धियों के कुल 64 अंग होते हैं। जिनमें से कुछ अंग अनिवार्य होते हैं कुछ अंग आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किये जाते हैं।

2.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप भलीभाँति यह जान चुके हैं कि दशरूपककार धनंजय ने नृत्य तथा नृत्त के लक्षण तथा भेद स्पष्टता के साथ बताए हैं। इन्हें प्रायः एक समान समझ लिया जाता है जबकि ये एक दूसरे से अलग-अलग हैं। यद्यपि दोनों में ही अंग संचालन की बहुलता होती है लेकिन नृत्य में भावों की अभिव्यक्ति होती है। जबकि नृत्त ताल एवं लय पर आश्रित अंग संचालन मात्र होता है। नृत्त तथा नृत्य दोनों ही अपने मधुर एवं उद्धत रूप में नाट्य के उपकारी होते हैं। नाट्य की कथावस्तु पंच सन्धियों के अर्न्तगत गुँथी हुई होती है। नाटक की रचना करने से पहले ही नाटककार कथा के आदि-अन्त तथा नाट्य के फल का निश्चय करके नाटक की कथा को पाँच सन्धि रूप भागों में विभक्त कर लेता है। प्रत्येक सन्धि में अर्थ प्रकृति तथा कार्यावस्था का संयोग होता है। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श/अवमर्श तथा निर्वहण इन पांच सन्धियों के कुल 64 अंग होते हैं, जिनका नाटककार को यथासाध्य अपने नाटकों में प्रयोग करना चाहिए। इस इकाई के अध्ययन से आप नाट्यसन्धियों द्वारा नाटकीय इतिवृत्त के कलेवर निर्माण की प्रक्रिया को भली प्रकार समझकर अभिव्यक्त कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी

1. अधिबल,
2. शक्ति

3. बहुविकल्पीय:

1.धनंजय के पूर्ववर्ती आचार्यों ने नृत्य के कितने भेद माने हैं?

(क) आठ, (ख) नौ,

(ग) छः, (घ) सात

2.शास्त्रीय परम्परा पर आधारित नृत्य को क्या कहा जाता है?

(क) देशी, (ख) अपमार्ग,

(ग) मार्ग, (घ) उन्मार्ग।

3.नृत्त किस पर आश्रित होता है?

(क) रस पर, (ख) भाव पर,

(ग) ताल एवं लय पर, (घ) इनमें से किसी पर नहीं।

4.मुख सन्धि के कितने अंग होते हैं?

(क) दस, (ख) ग्यारह,

(ग) बारह, (घ) तेरह।

5.मुख सन्धि में किस अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्था का संयोग होता है?

(क) बीज एवं आरम्भ (ख) बीज एवं प्रयत्न

(ग) बीज एवं प्राप्त्याशा (घ) बीज एवं नियताप्ति

6.प्रतिमुख सन्धि के कुल कितने अंग कहे गए हैं?

(क) ग्यारह (ख) बारह

(ग) तेरह (घ) चौदह

7.पताका किस सन्धि में हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती?

(क) मुख (ख) प्रतिमुख

(ग) निर्वहण (घ) गर्भ

8.निर्वहण सन्धि के कुल कितने अंग होते हैं?

(क) तेरह (ख) चौदह

(ग) पन्द्रह (घ) सोलह

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:

1. मुख सन्धि का पहला अंग...कहलाता है।
2. नृत्य शब्द की निष्पत्ति..धातु से मानी जाती है।
3. नृत्य में ....का अनुकरण किए जाने के कारण इसे मार्ग भी कहा जाता है।
4. ....नृत्यं।
5. काललयाश्रयं.................................।
6. प्रतिमुख सन्धि में ....नामक अर्थप्रकृति तथा ....नामक
7. कार्यावस्था का योग होता है।
8. निर्वहण सन्धि के अन्त में................................रस होना चाहिए।
9. तृतीय सन्धि ....होती है।

अति लघु उत्तरीय :

1. डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य किसके भेद हैं?
2. नृत्त के दो भेद कौन से हैं?
3. नृत्य और नृत्त में क्या अन्तर है?
4. नृत्त को क्या कहा जाता है।
5. धनंजय के अनुसार निर्वहण सन्धि में कौन सी अर्थप्रकृति तथा कौन सी कार्यावस्था होनी चाहिए।
6. संस्कृत नाटकों में निर्वहण सन्धि के अन्तिम अंग प्रशस्ति को क्या कहा जाता है।
7. नाटक में पंच सन्धियों के कुल कितने अंग माने गए हैं।

सत्य/असत्य बताइए:

1. नृत्य रस पर आश्रित होता है।
2. नृत्त में ताल एवं लय पर आश्रित अंग विक्षेप होता है।
3. नाटक में आठ सन्धियाँ मानी गई हैं।
4. निर्वहण सन्धि के अंतिम दो अंग काव्यसंहार एवं प्रशस्ति हैं।
5. अवमर्श में नियताप्ति नामक कार्यावस्था होती है।
6. तोटक एवं अधिबल प्रतिमुख सन्धि के अंग हैं।
7. आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम ये पांच कार्यावस्थाएँ होती हैं।
8. अवमर्श सन्धि के ग्यारह अंग कहे गए हैं।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री का अच्छी तरह से अध्ययन करने के बाद स्वयं लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा तथा आप स्वयं अपना मूल्यांकन कर सकेंगे। यद्यपि उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव यही है कि आप पाठ्य सामग्री को पढ़ कर स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखे और बाद में उनका मिलान दिए गए उत्तरों से करें।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली:

नृत्य: 'भावाश्रयं नृत्यं' हाथ-पैर आदि अंगों तथा आँख-भौं आदि उपांगों के विक्षेप (संचालन) द्वारा जहाँ भावों की अभिव्यक्ति हो वही नृत्य है। नृत्य भावाश्रित होता है।

नृत्त: 'माललयाश्रयं नृत्तं' केवल ताल (हाथ की ताली आदि) तथा लय (विलम्बित, मध्यम, एवं द्रुत) पर आश्रित अंग विक्षेप (संचालन) ही नृत्त कहलाता है।

सन्धि: सन्धि शब्द का अर्थ है संयोग या जोड़। नाट्य के प्रसंग सन्धि को इस तरह समझा जा सकता है- किसी रूपक में कई कथांश होते हैं। उनके अपने भिन्न-भिन्न प्रयोजन होते हैं। वे काथांश नाटक के प्रमुख प्रयोजन के साथ अन्वित होने के साथ ही किसी अवान्तर प्रयोजन के साथ भी अन्वित होते हें। एक कथांश का प्रमुख प्रयोजन तथा अवान्तर प्रयोजन से एक साथ आन्वित होना ही सन्धि है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

लघुत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अधिबल के लिए गर्भ सन्धि के अंगों को, इकाई की उपखण्ड संख्या 2.3.11 को देखें।

2. शक्ति के लिए अवमर्श सन्धि के अंगों को, इकाई की उपखण्ड संख्या 2.3.12 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ख
2. ग
3. ग
4. ग
5. क
6. ग
7. घ
8. ख

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. उपक्षेप
2. नृत्
3. शास्त्रीय परम्परा
4. भावाश्रयं
5. नृत्तं
6. बिन्दु, प्रयत्न
7. अद्भुत
8. गर्भ सन्धि

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1) चौसठ ;
2) नृत्य के
3) मधुर एवं उद्धत नृत्त
4) नृत्य 'भावाश्रित' तथा नृत्त तालालयाश्रित है, यही दोनो में अन्तर है।
5) देशी
6) कार्य, फलागम
7) भरतवाक्य

सत्य/असत्य:

1. असत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. असत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी

2. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, साहित्यभंडार, मेरठ

3. धनंजय, दशरूपक, व्याख्याकार, डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

4. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु. डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 5. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत् अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भंडार, मेरठ

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दशरूपकम् के अनुसार नृत्य की क्या विशेषताएँ हैं?
2. सन्धि का सामान्य लक्षण देते हुए स्पष्ट कीजिए कि धनंजय ने सन्धियाँ कितनी तथा कौन-कौन सी बताई हैं?

सन्धियों का रचनात्मक स्वरूप क्या है

इकाई 3: अर्थोपक्षेपक, नायक नायिका निरूपण

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 खण्ड एक
  3.3.1 कथावस्तु के भेद
  3.3.2 अर्थोपक्षेक का अर्थ एवं उसके भेद
  3.3.3 विष्कम्भक
  3.3.4 प्रवेशक
  3.3.5 विष्कम्भक एवं प्रवेशक में पाई जाने वाली समानता व असमानता
  3.3.6 चूलिका
  3.3.7 अङ्कास्य
  3.3.8 अङ्कावतार
  3.3.9 अङ्कास्य एवं अङ्कावतार में पाई जाने वाली समानता व असमानता
3.4 खण्ड दो
  3.4.1 नायक की सामन्य विशेषताएँ
  3.4.2 नायक के भेद
  3.4.3 धीरललित नायक
  3.4.4 धीरशान्त नायक
  3.4.5 धीरोदात्त नायक
  3.4.6 धीरोद्धत नायक
  3.4.7 नायक की श्रंृगारिक अवस्थाएँ
  3.4.8 दक्षिण
  3.4.9 शठ
  3.4.10 धृष्ट
  3.4.11 अनुकूल
3.5. खण्ड तीन
  3.5.1 नायिका के सामान्य गुण

3.5.2 नायिका भेद
3.5.3 स्वकीया नायिका
3.5.4 मुग्धा स्वकीया
3.5.5 मध्या स्वकीया नायिका
3.5.6 प्रगल्भा स्वकीया नायिका
3.5.7 परकीया नायिका
3.5.8 सामान्या नायिका
3.5.9 नायिकाओं की अवस्थाएँ
3.6 सारांश
3.7 पारिभाषिक शब्दावली
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। यह इकाई धनंजय द्वारा विरचित दशरूपकम् के "अर्थोपक्षेपक, नायक-नायिका निरूपण" पर आधारित है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि नृत्य और पंचसन्ध्यङ्ग क्या होते हैं।

नाट्याचार्यों ने नाटक आदि में सूच्य इतिवृत्त की सूचना देने के उपाय रूप पाँच अर्थोपक्षेपक बताएँ हैं जो नाट्य में अत्यन्त उपयोगी होते हैं। नाटक आदि के नायक-नायिका की सामान्य विशेषताओं तथा उनके भेद-प्रभेदों एवं अवस्थाओं आदि का प्रस्तुत ईकाई में विस्तार से विवेचन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाटक में प्रयुक्त होने वाले सूच्य इतिवृत्त के सूचक अर्थोपक्षेपकों के विषय में तथा नाटक के के नायक-नायिका के विषय में सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि अर्थोपक्षेपक क्या है?
- समझा सकेंगे कि अर्थोपक्षेपक के कितने भेद हैं तथा उनकी विशेषताएँ क्या होती हैं?
- भलीभांति बता सकेगे कि नायक के सामान्य गुण या विशेषताएँ क्या होती हैं?
- भली प्रकार समझा सकेंगे कि प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर नायक के कितने और कौन-कौन से भेद होते हैं? तथा उनके लक्षण क्या हैं?
- बता सकेंगे कि श्रंगारिक आधार पर नायक कितने प्रकार का होता है?
- बता सकेगे कि नायक के पुरूषोचित सात्विक गुण क्या है?
- समझा सकेंगे कि नायिका के भेद-प्रभेद क्या है?
- सम्यक् रूप से बता पाऐंगे कि नायिकाओं की अवस्थाएँ कौन-कौन सी होती हैं?
- बता सकेंगे कि स्त्रियों (नायिकाओं) में यौवन जन्य अलंकार क्या होते हैं?

3.3 खण्ड एक:

3.3.1 कथावस्तु के भेद:

आप इस बात से परिचित अवश्य होंगे कि किसी भी नायक के सम्पूर्ण जीवन वृत्त में सभी घटनाएँ या बातें ऐसी नहीं होती कि उन्हें रंगमंच पर ज्यों का त्यों दिखाया जाय। अतः इस दृष्टि से नाट्याचार्य मूलतः इतिवृत्त को दो तरह का मानते हैं-सरस इतिवृत्त और नीरस इतिवृत्त। इनमें सरस इतिवृत्त वह होता है जो दृश्य हो अर्थात् जिसे रंगमंच पर दिखाया जाय। नीरस इतिवृत्त वह होता है जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत तो नहीं किया जाता, पर उसकी सूचना अवश्य दी जाती है अर्थात् नीरस इतिवृत्त सूच्य होता है।

नाटककार नायक के जीवन के जिस अंश को नाटक की कथावस्तु बनाता है उसमें कोई-कोई कथांश या घटना ऐसी होती है, जो दर्शकों में नीरसता जगाने वाली (अर्थात् उबाऊ), नायक के चरित्रांकन की दृष्टि से अनुचित और सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से अशोभनीय होती है। अतः इन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत करना ठीक नहीं है तथापि उस नीरस इतिवृत्त को जानना दर्शकों के लिए जरूरी भी होता है अन्यथा कथा का क्रम टूट जाएगा या कथा दर्शकों की समझ में नहीं आएगी। अतः नाटककार उस नीरस किन्तु सूच्य इतिवृत्त की सूचना अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से देता है।

3.3.2 'अर्थोपक्षेपक का अर्थ एवं उसके भेद:

'अर्थोपक्षेपक' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'अर्थ' एवं 'उपक्षेपक'। यहाँ अर्थ का तात्पर्य इतिवृत्त से तथा उपक्षेपक का तात्पर्य सूचक से है। अर्थात् सूच्य इतिवृत्त का सूचक ही अर्थोपक्षेपक है। नाटकीय कथा का जो अंश नीरस हो या किसी कारणवश उसे रंगमंच पर दिखाना अनुचित हो, लेकिन फिर भी दर्शकों के लिए उसे जानना आवश्यक हो, तो अर्थोपक्षेपकों के द्वारा भलीभांति उस सूच्य इतिवृत्त की सूचना दे देनी चाहिए।

सूच्य इतिवृत्त के सूचक ही नाट्यशास्त्रीय भाषा में अर्थोपक्षेपक कहे जाते हैं। धनंजय ने इनका नामोल्लेख इस प्रकार किया है:-

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।

विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतार प्रवेशकैः।।

(1) विष्कम्भक (2) चूलिका (3) अङ्कास्य (4) अङ्कावतार और (5) प्रवेशक इन पाँच अर्थोपक्षेपकों (इतिवृत्त के सूचकों) के द्वारा सूच्य वस्तु का प्रतिपादन करना चाहिए। इन अर्थोपक्षेपकों के लक्षण इस प्रकार हैं।

3.3.3 विष्कम्भक:

“वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।”

भूतकाल में घटित हो चुके और भविष्य में घटित होने वाले कथांशों का सूचक विष्कम्भक कहलाता है। यह संक्षिप्त अर्थ वाला होता है। अर्थात् इसमें अति संक्षेप में कथांश को सूचित किया जाता है। यह मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा प्रयुक्त होता है। मध्यम कोटि के पात्रों के अन्तर्गत आमात्य सेनापति वणिक पुरोहित आदि संस्कृत बोलने वाले पात्र आते हैं।

यह विष्कम्भक दो प्रकार का होता है। (1) शुद्ध (2) संकीर्ण। “एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः”। जिस विष्कम्भक में एक या अनेक मध्यम कोटि के पात्र होते हैं उसे शुद्ध विष्कम्भक कहा जाता है। जिस विष्कम्भक में मध्यम के साथ-साथ नीच या अधम कोटि के (चोर, शिकारी, सेवक, सेविका, सिपाही आदि प्राकृत भाषी) पात्र भी होते हैं उसे संकीर्ण विष्कम्भक कहा जाता है।

संक्षेप में विष्कम्भक की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. विष्कम्भक का वर्ण्य विषय संक्षिप्त होता है।
2. इसमें अतीत की एवं भावी घटनाओं की सूचनाएँ दी जाती है।
3. इसका प्रयोग प्रथम अंक से पहले प्रस्तावना के बाद हो सकता है। दो अंकों के बीच में भी विष्कम्भक का प्रयोग किया जा सकता है।
4. विष्कम्भक में मध्यम श्रेणी के पात्रों का होना आवश्यक है।
5. संकीर्ण विष्कम्भक में भी नीच पात्रों के साथ ही कम से कम एक मध्यम कोटि का पात्र जरूर होना चाहिए।
6. शुद्ध विष्कम्भक की भाषा संस्कृत होनी चाहिए।
7. संकीर्ण विष्कम्भक की भाषा में संस्कृत और प्राकृत का समिश्रण होना चाहिए।

3.3.4 प्रवेशक:“तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।

प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।।”

प्रवेशक भी विष्कम्भक की तरह भूत एवं भविष्य के कथांशों का सूचक होता है। यह अधम कोटि के पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा में सम्पादित होता है। अर्थात इसमें निम्न कोटि के पात्र होते हैं जो प्राकृत बोलते हैं। प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के मध्य में ही होता है। अतः स्पष्ट है कि

प्रवेशक कभी भी प्रथम अंक से पहले नहीं हो सकता। प्रवेशक शेष (रंगमंच पर प्रदर्शित न किये जा सकने वाले) अर्थों का सूचक होता है।

संक्षेप में प्रवेशक की विशेषतएँ निम्न प्रकार हैं।

1. प्रवेशक में भूत एवं भविष्य की कथांशों की सूचना दी जाती है।
2. प्रवेशक की वर्ण्य वस्तु संक्षिप्त होती है। इसमें अधम कोटि के पात्र होते हैं।
3. इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होती है।
4. इसमें केवल प्राकृत भाषा और वह भी निम्न श्रेणी की मागधी, शकारी, पैशाची प्राकृत आदि होती है।
5. प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के बीच में ही होता है, नाटक के आदि में कभी नहीं होता।

3.3.5 विष्कम्भक एवं प्रवेशक में पाई जाने वाली समानता व असमानता

विष्कम्भक एवं प्रवेशक में प्राप्त होने वाली समानताएँ इस प्रकार हैं-

1. विष्कम्भक एवं प्रवेशक दोनों ही भूत एवं भविष्य के उन कथांशों को सूचित करते हैं जिन्हें रंगमंच पर किन्हीं कारणों से दिखाया नहीं जा सकता।
2. विष्कम्भक एंव प्रवेशक दोनों का ही वर्ण्य विषय संक्षिप्त होता है। अर्थात दोनों में ही संक्षेप में कथांश को सूचित किया जाता है। अतः दोनों ही संक्षिप्त कलेवर वाले हैं।
3. विष्कम्भक एवं प्रवेशक में दिखाई देने वाली भिन्नताएँ इस प्रकार हैं-
4. विष्कम्भक में अधिकतर एक या अनेक मध्यम पात्र होते हैं। कभी-कभी मध्यम के साथ एक अधम पात्र भी हो सकता है जबकि प्रवेशक में केवल अधम पात्र ही होते हैं।
5. विष्कम्भक की भाषा अधिकतर संस्कृत ही होती है। कभी-कभी संस्कृत के साथ
6. प्राकृत भी होती है जबकि प्रवेशक की भाषा सदैव प्राकृत ही होती है।

7. विष्कम्भक का प्रयोग प्रथम अंक से पहले भी तथा दो अंकों के बीच में भी किया जा सकता है जबकि प्रवेशक का प्रयोग सदैव दो अंकों के बीच में होता है। प्रथम अंक से पहले प्रवेशक का प्रयोग कदापि नहीं हो सकता है।
8. विष्कम्भक के दो भेद-शुद्ध एवं संकीर्ण है जबकि प्रवेशक एक ही प्रकार का होता है।

3.3.6 "चूलिका अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।।"

नेपथ्य में अर्थात् परदे के भीतर स्थित पात्र के द्वारा जब किसी कथांश की सूचना दी जाय तो वह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक कहा जाता है। जैसे-भवभूति के उत्तररामचरितम् नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में-(नेपथ्य से) "तपोधना आत्रेयी का स्वागत है" इस प्रकार आत्रेयी के आगमन की सूचना दी जाती है। इसके पश्चात ही रंगमंच पर आत्रेयी का प्रवेश होता है। यहाँ नेपथ्य में स्थित पात्र के द्वारा आत्रेयी के आगमन की सूचना दी गयी है, अतः यहाँ चूलिका है।

3.3.7 " अङ्कास्य अङ्कान्तपात्रैरङ्कान्स्यं छिन्नङ्कस्यार्थसूचनात्"।।

जहाँ अंक की समाप्ति पर उस अंक के अन्त में रंगमंच पर आने वाले पात्रों के द्वारा किसी छूटे हुए कथांश की सूचना दी जाती है वहाँ अंकास्य होता है। अंक के अन्त में आने वाले पात्र को ही अंकान्त पात्र कहा जाता है। जहाँ ऐसे पात्रों के द्वारा उस अंक से बिल्कुल अलग अगले अंक (अर्थात् भिन्न या छूटे हुए) की कथावस्तु की सूचना दी जाय वही अंकास्य कहलाता है।

3.3.8 अङ्कावतारः- " अङ्कावतारस्त्वङ्काते पातोङ्कस्याविभागतः"।।

जहाँ पूर्व अंक का अन्त हो जाने पर, वहीं पर अग्रिम अंक का भी अविछिन्न रूप से अवतरण कर दिया जाता है, वहाँ अङ्कावतार होता है। अर्थात् जहाँ पूर्व अंक में प्रविष्ट पात्रों के द्वारा पूर्व अंक की कथा से विच्छिन्न (अलग) किये बिना ही अग्रिम अंक का अवतरण किया जाय। जहाँ पूर्व अंक के पात्र अंक के अन्त में किसी बात की सूचना दें तथा वे ही पात्र उसी अंकार्थ (कथावस्तु) को लेकर उसे विछिन्न किये बिना ही दूसरे अंक में प्रवेश करे, तो वहाँ अङ्कावतार कहलाता है। जैसे मालविकाग्निमित्रम् के प्रथम अंक के अंत में विदूषक उस अंक की कथा को विच्छिन्न किये बिना ही द्वितीय अंक की कथावस्तु की सूचना दे देता है। अतः वहाँ अङ्कावतार है।

3.3.9 अंकास्य एवं अंकावतार में पाई जाने वाली समानता व असमानता

अंकास्य तथा अंकावतार में निम्न समानता हैं-

1. अंकास्य तथा अंकावतार दोनों में ही कथा का क्रम नहीं टूटता है। कथा अविच्छिन्न होती है।

2. दोनों में ही पूर्व अंक के अन्त में उपस्थित पात्र अगले अंक के इतिवृत्त (कथांश) की सूचना देता है।

अंकास्य तथा अंकावतार में निम्न वैषम्य हैं-

1. अंकास्य पूर्व अंक के अन्त में घटित होता है जबकि अंकावतार अगले अंक के आरम्भ में पूर्व अंक के पात्रों के अवतरण के साथ घटित होता है।

2. अंकास्य में अगले अंक की कथा पूर्व अंक की कथा सं असम्बद्ध रूप में कही जाती है जबकि अंकावतार में पूर्व अंक की कथा से जोड़कर ही अगले अंक की कथा की सूचना दी जाती है।

3. अंकास्य में अगले अंक की कथा की सूचना पूर्व अंक के अन्त में दी दी जाती है जबकि अंकावतार में अगले अंक की कथावस्तु की सूचना इसी अंक के आरम्भ में पूर्व अंक में वर्णित पात्रों के अवतरण के साथ होती है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अंकास्य
2. अंकावतार
3. विष्कम्भक

बहुविकल्पीय

1.अर्थोपक्षेपक कुल कितने होते हैं?

(क) पाँच (ख) छः

(ग) सात (घ) आठ

2.विष्कम्भक कितने प्रकार का होता है?

(क) एक (ख) दो

(ग) तीन (घ) चार

3.विष्कम्भक एवं प्रवेशक की वर्ण्य वस्तु कैसी होती है

(क) सांकेतिक (ख) संक्षिप्त

(ग) विस्तृत (घ) इनमें से कोई नहीं

रिक्त स्थान की पूर्ति:

1. शुद्ध विष्कम्भक की भाषा...होती है।

2. प्रवेशक का प्रयोग सदैव..होता है।
3. चूलिका में सूच्य इतिवृत्त की सूचना ....से दी जाती है।

अति लघु उत्तरीय:

4. विष्कम्भक में किस कोटि के पात्र होने चाहिए?
5. प्रवेशक के पात्रों की भाषा क्या होती है?
6. सूच्य इतिवृत्त के सूचक अर्थोपक्षेपकों के नाम लिखिए।

सत्य/असत्य बताइए:

1. प्रवेशक में उत्तम कोटि के पात्र होते हैं।
2. चूलिका में पर्दे के पीछे से सूच्य इतिवृत्त की सूचना दी जाती है।
3. अंकावतार अन्तिम अर्थोपक्षेपक हैं

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री का भलीप्रकार से अध्ययन करके स्वयं लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा और आप स्वयं अपना मूल्यांकन कर सकेंगे।

यद्यपि सभी प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि पहले आप स्वयं उत्तर लिखें। बाद में दिए गए उत्तरों से उनका मिलान कर स्वमूल्यांकन करें।

खण्ड 2:

3.4.1

नायक की सामान्य विशेषताएँ: कथावस्तु के बाद रूपक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है 'नेता'। नेता का अर्थ यद्यपि नायक से लिया जाता है तथापि नाट्यशास्त्र में 'नेता' तत्त्व के अर्न्तगत सभी प्रकार के नाटकीय पात्र आ जाते हैं। जिसमें नायक पीठमर्द नायक के अर्थ सहायक, दण्ड सहायक, धर्म सहायक विदूषक आदि सभी ग्रही हैं। किन्तु हमें नायक के विषय में ही बताना अभीष्ट है। अतः सर्वप्रथम नायक के सामान्य गुणों के विषय में जानना आवश्यक है। साहित्य दर्पण के अनुसार नायक के सामान्य गुण इस प्रकार हैः-

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही

दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता"।।

अर्थात नेता या नायक त्यागी, कृती (करणीय कर्म को करने वाला), कुलीन, सम्पत्ति तथा शोभा से सम्पन्न, रूप, यौवन और उत्साह से सम्पन्न, दक्ष (कर्म निपुण), लोकप्रिय तेजस्वी, चतुर तथा शीलवान होना चाहिए।

दशरूपककार धनंजय ने विस्तापूर्वक नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख किया है-

"नेताविनीतो मधुरस्त्यागी दश्रः प्रियंवदः
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः
शूरो दृढ़श्य तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।"

रूपक का नायक विनम्र, मधुर, (सुन्दर),त्यागी, दक्ष (शीघ्रता) से कार्य करने वाला, प्रिय वचन बोलने वाला, लोकप्रिय, शुद्धमन वाला, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, स्थिर चित्त, युवा, बुद्धिमान, उत्साही, स्मृति, प्रज्ञा, कला एवं मान से युक्त, शूरवीर, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होना चाहिए। उपर्युक्त गुण नायक के सामान्य गुण कहे गये हैं। ये गुण यथासंभव सभी प्रकार के नायकों में होने चाहिए।

3.4.2 नायक के भेद:

"भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तेद्धतैरयम्।"

नायक की प्रकृति विशेष के आधार पर उसके चार भेद किये गये हैं-ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत। नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण आदि नाट्य सम्बन्धी लक्षण ग्रंथों में उक्त नायक भेदों के पूर्व धीर शब्द जोड़ा गया है। धीर शब्द से तात्पर्य है धैर्य अर्थात धैर्ययुक्त, जो संकट की स्थिति में भी विचलित न हो। धैर्य गुण ऊपर कहे गये चारों प्रकार के नायकों के लिए अनिवार्य है। अतः नायक के चार भेद हुए (1) धीरललित (2) धीरशान्त (3) धीरोदात्त (4) धीरोद्धत। इनके लक्षण इस प्रकार है-

3.4.3 धीरललित नायकः

"**निश्चिन्तों धीरललितः कलासक्तः सुखी मुदुः**"।।

चिन्ता से मुक्त, नृत्यगीत आदि कलाओं में आसक्त, सुखी एवं सुकोमल प्रकृति का नायक धीर ललित होता है। धीरललित नायक चिन्ता से मुक्त रहता है क्योंकि उसके राज्यादि की चिन्ता उसके मंत्री द्वारा की जाती है। चिन्ता से रहित होने के कारण वह संगीतादि कलाओं में आसक्त तथा भोग विलास में लीन रहता है। उसमें श्रंृगार रस की प्रधानता होती है। इसीलिए वह सुकोमल आचरण एवं स्वभाव वाला होता है। जैसे रत्नावली नाटिका का नायक उदयन, राज्य प्रजा आदि की ओर से सर्वथा निश्चित है। अपनी प्रिया वासवदत्ता का समागम उसे प्राप्त है और वह रागरंग में लीन है। अतः उदयन धीर ललित कोटि का नायक है।

3.4.4 धीरशान्त नायक:

"सामान्य गुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः"।

नायक के विनम्रता, त्याग, माधुर्य, दक्षता आदि गुणों से युक्त ब्राह्मण आदि धीरशान्त नायक कहा जाता है। अर्थात् यह नायक शान्त प्रकृति का होता है।

धीरशान्त कोटि का नायक ब्राह्मण, मंत्री या कोई वणिक् होता है। इसमें विनम्रता आदि सामान्य, गुण अन्य नायकों की तरह होते हैं। रूपक के एक भेद प्रकरण का नायक धीरशान्त कोटि का ही होता है। यद्यपि ब्राह्मण, वणिक् और मंत्री में किंचित निश्चिन्तता आदि भी देखी जाती है लेकिन इस आधार पर वे धीर ललित नहीं माने जा सकते। ब्राह्मणादि को शान्त कोटि का ही माना जाना चाहिए क्योंकि वे प्रकृति से ही शान्त होते हैं। जैसे-"मृच्छकटिकम्" का नायक जन्मना ब्राह्मण और कर्मणा वणिक् होने के कारण प्रकृति से ही शान्त है। इसी प्रकार मालतीमाधवम् का नायक माधव जन्म से ब्राह्मण होने के कारण धीरशान्त कोटि का है।

3.4.5 धीरोदात्त नायक:

"महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।

स्थिरो निगूढाहङ्कारों धीरोदात्तो दृढव्रतः।।"

धीरोदात्त नायक महापराक्रमी, अतिगम्भीर प्रकृति का, क्षमाशील, आत्मप्रशंसा न करने वाला, स्थिर स्वभाव का, विनम्रता आदि (श्लाध्य) गुणों से युक्त अहंकार आदि दुर्गुणों को छिपाने वाला तथा अंगीकृत किये हुए कार्य को पूर्ण करने वाला होता है। जैसे-हर्षकृत नागानन्द नाटक का नायक जीमूतवाहन धीरोदत्त कोटि का नायक है। उसी प्रकार राम भी धीरोदात्त कोटि के नायक कहे गये हैं। रूपक के नाटक नामक प्रमुख भेद का नायक सदैव धीरोदात्त कोटि का ही होता है। नायक की धीरोदात्ता को बनाये रखने के लिए प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथानक में कुछ परिवर्तन भी करने पड़ते हैं जैसे कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त को धीरोदात्त बनाये रखने के लिये कालिदास ने दुर्वासा के श्राप की कल्पना की है जो कि मूल कथा में नहीं है।

3.4.6. धीरोद्धत नायक:

"दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः।

धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।"

अत्यधिक घमण्डी, ईर्ष्याभाव की अधिकता वाला, माया और कपट से युक्त, अहंकारी, चंचल चित्त वाला, क्रोधी तथा स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने वाला धीरोद्धत नायक कहलाता है।

धीरोद्धत नायक में घमण्ड तथा ईर्ष्या का आधिक्य होता है। वह अपनी तंत्र शक्ति के द्वारा अविद्यमान (अप्रकटित) वस्तु को भी प्रकाशित कर देता है। वह छल-कपट से युक्त होता है। ऐसा

नायक आत्मप्रशंसा करने वाला होता है अर्थात् अपने शक्ति पराक्रम आदि का खुद ही बखान करता है। जैसे परशुराम और रावण धीरोद्धत कोटि के अन्तर्गत आते हैं।

3.4.7. श्रृंगारिक आधार पर नायक की अवस्थाएँ:

उपर्युक्त चार भेदों-धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत के अलावा नायक की श्रृंगारिकता के आधार पर उसकी चार अवस्थाएँ कही गई हैं-

1. दक्षिण, 2. शठ, 3. धृष्ट, 4. अनुकूल

कहने का तात्पर्य यह है कि किसी नवीन नायिका के प्रति आसक्त चित्त वाला

होने पर नायक अपनी ज्येष्ठा नायिका (पत्नी) के प्रति दक्षिण, शठ या घृष्ठ अवस्था वाला होता है। एक ही नायिका के प्रति आसक्ति रखने वाला जो नायक है वह अनूकूल कहलाता है। नायक की इन अवस्थाओं की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

3.4.8. दक्षिण: "दक्षिणोऽस्यां सहृदयः"-

जो नायक नवीन नायिका के प्रति आसक्त होते हुए भी ज्येष्ठा (अपनी पत्नी) नायिका के प्रति सहृदयता का व्यवहार करता है वह दक्षिण नायक होता है। अर्थात् कनिष्ठा नायिका के प्रति आसक्त होते हुये भी अपनी पत्नी के प्रति आदर युक्त रहना ही नायक का दक्षिणता है। जैसे - रत्नावली नाटिका का नायक उदयन नवीन नायिका रत्नावली के प्रति आसक्त होते हुए भी अपनी पत्नी वासवदत्ता के प्रति आदर युक्त है। अतः वह दक्षिण अवस्था वाला है।

3.4.9. शठः "गूढविप्रियकृच्छठः"।

अपनी पूर्वा नायिका का छिपकर अप्रिय करने वाला नायक शठ है। यद्यपि शठ और दक्षिण दोनों ही तरह के नायक नवीन नायिका के प्रति आसक्त होकर ज्येष्ठा नायिका का समान रूप से अप्रिय करते हैं फिर भी दक्षिण नायक ज्येष्ठा के प्रति सहृदय रहता है। वह ज्येष्ठा नायिका का मन दुखाना नहीं चाहता किन्तु शठ नायक हृदय से शुद्ध न होने के कारण इसकी चिन्ता नहीं करता। यही दोनों नायकों में विशेष अन्तर है।

3.4.10. धृष्टः "व्यक्ताङ्गवैकृतौ धृष्टो"-

जिस नायक के अंगों पर नवीन नायिका के साथ किये गये रति क्रीड़ा के चिह्न स्पष्ट रूप से देखे जाते हैं वह धृष्ट नायक है। अर्थात जो नायक रात किसी अन्य नायिका के साथ व्यतीत करके शरीर पर लगे हुये रमण चिन्ह् के साथ ही अपनी ज्येष्ठा नायिका के पास चला जाता है वह धृष्ट नायक है। धृष्ट शब्द का सरल अर्थ है ढीठ। जो नायक स्पष्ट रूप से जानबूझकर ज्येष्ठा नायिका का दिल दुखाने की ढीठता (धृष्टता) करता है वही धृष्ट है।

3.4.11- अनूकूल: 'अनुकूलस्त्वेकनायिकः'

जिसकी एक ही नायिका होती है वह अनुकूल नायक कहलाता है अर्थात् एक ही नायिका में आसक्ति रखने वाला नायक अनुकूल है। जैसे राम आजीवन केवल सीता के प्रति ही एकनिष्ठ रहे है अतः वह अनुकूल अवस्था वाले नायक हैं।

दक्षिण शठ, घृष्ट और अनुकूल ये नायक के भेद न होकर नायक की श्रंृगारिक अवस्थाएँ हैं। अतः पहले बताए गये-धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत इन चारों नायक भेदों में से प्रत्येक की चार-चार अवस्थाएँ होती हैं। अतः नायक सोलह ;4ग4द्ध प्रकार का होता है।

जो सोलह प्रकार के नायक ऊपर कहे गये हैं उनमें से प्रत्येक उत्तम, मध्यम और अधम के भेद से तीन प्रकार का होता है। इस प्रकार धीलललित, धीरशान्त, धीरोदात्त, धीरोद्धत (4) ग् दक्षिण, शिठ, धृष्ट, अतुकूल (4) ग् उत्तम, मध्यम, अधम (3) त्र 48 इस प्रकार नायक के भेद प्रभेद माने गये हैं। इन सभी प्रकार के नायकों के पुरूषोचित सात्विक गुण आठ माने गए हैं-

1. शोभा 2. विलास 3. माधुर्य 4. गम्भीरता 5. स्थिरता 6. तेजस् 7. ललित 8. औदार्य

अभ्यास प्रश्न:

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अनुकूल नायक
2. धीरोदात्त नायक

बहुविकल्पीय:

1.नायक की प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर नायक के कितने भेद किए गए हैं?

(क) दो (2) तीन

(ग) चार (4) पांच

2.नायकों के पुरूषोचित सात्विक गुण कितने माने गए हैं?

(क) छः (ख) तीन

(ग) आठ (घ) दस

3.नायकों के कुल कितने भेद मान्य हैं?

(क) पैंतालिस (ख) छियालिस

(ग) सैंतालिस (घ) अड़चालिस

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. नाटक का नायक..कोटि का होता है।
2. विप्र, वणिक् या अमात्य...के नायक कहे गए हैं।
3. ....धीरललित..सुखी मृदुः।
4. सामान्यगुणयुक्तस्तु..द्विजादिक्

अतिलघु उत्तरीय:

1. "नेता विनीतो मधुरस्त्ययागी दक्षः प्रियंवदः" में प्रियंवद का क्या अर्थ है?
2. 'सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरोशान्तो द्विजादिक्" में द्विजादिक से क्या तात्पर्य है?
3. अनुकूल नायक कौन होता है।

सत्य/असत्य:

1. नायक के विनम्रता आदि सामान्य गुण, धीरललित आदि सभी प्रकार के नायकों में होने चाहिए।
2. प्रकरण में विप्र, वणिक् या अमात्य धीरोदात्त कोटि के नायक होते हैं।
3. धीरललित नायक अपनी ज्येष्ठा और कनिष्ठा दोनों नायिकाओं के प्रति समान प्रेम भाव वाला होता है।

नोट:- ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व पाठ्य सामग्री का भलीभांति अध्ययन कर ले तभी प्रश्नों के उत्तर लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा और आप स्वमूल्यांकन कर पाएंगे।

यद्यपि प्रश्नों के उत्तर इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि पहले आप स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखें, बाद में दिए गए उत्तरों से मिलान करके स्वमूल्यांकन करें।

खण्ड 3

3.5.1 नायिका के सामान्य गुण:

नायिका तदगुणा कही गयी है अर्थात् किसी रूपक की नायिका को भी नायक के समान विनम्रता, माधुर्य, दक्षता, वाक्पटुता, लोकप्रियता, प्रसिद्ध वंश में उत्पत्ति और यौवन आदि गुणों से युक्त होना चाहिए।

3.5.2 नायिका भेद:

'स्वान्यासाधारणस्त्रीतिनायिकाविधा'।

सर्वप्रथम नायिका तीन प्रकार की कही गयी है। (1) स्वकीया नायिका (2) परकीया नायिका (3) सामान्य नायिका या सामान्य स्त्री। इनके लक्षण एवं भेद प्रभेद निम्न प्रकार हैं-

3.5.3. स्वकीया नायिका: "स्वीया शीलार्जवादियुक्"

स्वकीया नायिका शीलवती होती है। शील से अभिप्राय है नायिका का पतिव्रता होना। वह कुटिलता से रहित, सरलता से युक्त तथा पति की सेवा में निपुण होनी चाहिए। इस तरह पतिव्रता, सरल एवं लज्जावती अपनी पत्नी ही स्वकीया नायिका कही जाती है। स्वकीया नायिका के तीन भेद कहे गये हैं। (1) मुग्धा स्वकीया (2) मध्या स्वकीया (3) प्रगल्भा स्वकीया।

3.5.4. मुग्धा स्वकीया नायिका: "मुग्धा नववयः कामारतौ वामा मृदुः क्रुधि।"

मुग्धा स्वकीया नायिका वह होती है जो नवीन यौवनावस्था और नवीन कामभावना वाली हो। यह रति क्रीड़ा में झिझकने वाली और क्रोध करने में कोमल होती है अर्थात इसका प्रणय कोप आसानी से दूर हो जाता है।

3.5.5. मध्या स्वकीया नायिका: "मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा।।"

जिसमें यौवन और कामभाव का प्रादुर्भाव स्पष्ट दिखायी देने लगता है, जो मूर्छा की अवस्था पर्यन्त रति में समर्थ है वह मध्या स्वकीया है। इससे यह स्पष्ट है कि मध्या स्वकीया नायिका पूर्ण यौवन वाली होती है।

मध्या स्वकीया नायिका तीन प्रकार की होती है-

(1) धीरामध्या (2) अधीरा मध्या (3) धीराधीरा मध्या।

3.5.6. प्रगल्भा स्वकीया नायिका: "यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्गके।

विलीय मानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्येचेतना।।"

प्रगल्भा अर्थात प्रगाढ़ यौवन वाली नायिका यौवन में अन्धी सी, काम से उन्मत्त सी, प्रिय संयोग तथा काम जनित सुरत के आनन्द के कारण प्रियतम के अंगों में विलीन होती हुयी सी (प्रगाढ़ आलिंगन करने वाली) और रति क्रीड़ा के आरम्भ में ही मूर्छित सी हो जाती है। प्रगल्भा नायिका के भी तीन भेद कहे गये हैं (1) धीरा प्रगल्भा (2) अधीराप्रगल्भा (3) धीराधीरा प्रगल्भा।

तीन प्रकार की मध्या और तीन प्रकार की प्रगल्भा नायिकाएं जेष्ठा और कनिष्ठा के भेद से

दो-दो प्रकार की होती है। इस तरह मध्या एवं प्रगल्भा 6$6त्र 12 भेद हुए और एक प्रकार की मुग्धा नायिका। कुल मिलाकर स्वकीया नायिका तेरह प्रकार की हुयी।

3.5.7. परकीया नायिका: "अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्।

कन्यानुरागामिच्छातः कर्यादगांगिसंश्रयम।।"

परकीया नायिका दूसरे की विवाहिता स्त्री या अविवाहिता कन्या होती है। दूसरे की विवाहिता को अन्योढ़ा (परकीया) कहा जाना ठीक है पर कन्या को परकीया इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह विवाह से पूर्व अन्य के वश में (पिता-भाई आदि के अधीन) होती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्योढ़ा (दूसरे की विवाहिता स्त्री) को कभी भी नाटक में अंगी रस की नायिका नहीं बनाया जा सकता। जो अविवाहिता कन्या होती है उसके प्रति नायक के अनुराग का वर्णन करते हुए नाटककार उसे अंगी रस, अथवा अंग रस की नायिका भी बना सकता है।

3.5.8. सामान्या नायिका:

साधारण स्त्री तो गणिका होती है अर्थात गणिका को सामान्य नायिका कहा जाता है। वह संगीत आदि कलाओं में निपुण तथा प्रगल्भ एवं धूर्त होती है। वह किसी पुरूष के प्रति तभी तक प्रेम दिखाती है जब तक उसके पास धन होता है। जब वह धन रहित हो जाता है तब गणिका उसकी उपेक्षा कर देती है।

3.5.9. नायिकाओं की अवस्थाएँ: पूर्व में कही गई नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ होती है।

1.स्वाधीनपतिका: "”आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका

जिस नायिका का पति/प्रियतम उसके पास उसके वश में रहता है वह स्वाधीनपतिका कहलाती है।

2.वासकसज्जा: "मुदा वासकसज्जा एवं मंडयत्येष्यति प्रिये"

प्रियतम आने ही वाला है ऐसा जानकर जो नायिका स्वयं को तथा अपने निवास (घर) को सजाती सँवारती है वही वासकसज्जा कहलाती है।

3.विरहोत्काण्ठिता: "चिरयत्यव्यलीकेतु विरहोत्कंठितोन्मना"

प्रियतम द्वारा कोई अपराध (अन्यासक्ति रूप अपराध) न किए जाने पर भी निर्धारित समय पर उसके आने में देरी होने के कारण प्रियतम के वियोग में उससे मिलन के लिए उत्कंठित नायिका विरहोत्कंठिता कही जाती है।

4.खण्डिता: "ज्ञातेऽन्यासंगविकृते खंडितेर्ष्याकषायिता"

प्रियतम को अन्या नायिका के सहवास चिह्नों से युक्त देखकर जो नायिका ईर्ष्या से कलुषित हो उठती है, वह खंडिता कहलाती है।

5.कलहान्तरिता: "कलहान्तरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक्"

जो नायिका क्रोध से अपराधी नायक का तिरस्कार करके बाद में पश्चाताप करती है, उसे कलहान्तरिता नायिका कहा जाता है।

6.विप्रलब्धा: "विप्रलब्धोक्तसमयप्राप्तेऽतिविमानिता

पूर्व निर्धारित समय पर प्रिय के न आने से जो नायिका स्वयं को अपमानित हुआ समझती है, वह विप्रलब्धा कहलाती है।

7.प्रोषिताप्रिया: "दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया"

जिस नायिका का प्रिय किसी कार्य से दूर देश में स्थित होता है, वह प्रोषितप्रिया कहलाती है।

8अभिसारिका: "कामार्ताऽभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाऽभिसारिका"

काम पीड़ा से व्याकुल होकर जो नायिका स्वयं अपने प्रियतम के पास रमण हेतु जाती है, अथवा प्रिय को अपने पास बुलाती है, वह अभिसारिका कहलाती है।

जिस प्रकार हार केयूर आदि आभूषण नारी के शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार यौवनावस्था में शरीर में प्रकटित होने वाले कुछ विकार (परिवर्तन) शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। अतः उन्हें हार-भुजबन्द आदि के समान अलंकार कहा जाता है। यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले इन सात्विक अलंकारों की संख्या बीस मानी गयी है। इनमें तीन शरीरज अलंकरण हैं- (1) भाव (2) हाव (3) हेला। सात अयत्नज अलंकरण कहे जाते हैं (1) शोभा (2) कांति (3) दीप्ति (4) माधुर्य (5) प्रगल्भता (6) औदार्य (7) धैर्य। इनके अलावा दस स्वभावज अलंकरण कहे गये हैं- (1) लीला (2) विलास (3) विच्छित्त (4) विभ्रम (5) किलकिंचित (6) मोट्टायित (7) कुट्टमित (8) विव्वोक (9) ललित (10) विहत।

अभ्यास प्रश्न:

लघु उत्तरीय प्रश्न:

टिप्पणी:

1. परकीया
2. सामान्या नायिका

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1.नायिका सर्वप्रथम कितने प्रकार की मानी गई है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

2.स्वकीया नायिका के कितने भेद होते हैं?

(क) तीन (ख) चार

(ग) पाँच (घ) छः

3.सामान्या (साधारण स्त्री) नायिका निम्नलिखित में से कौन होती है?

(क) दूसरे की विवाहिता (ख) अविवाहिता कन्या

(ग) गणिका (वेश्या) (घ) राजकन्या

अति लघु उत्तरीय:

1. परकीया नायिका कौन होती है?
2. मुग्धा नायिका का लक्षण क्या है?
3. नायिकाओं की आठ अवस्थाएँ कौन-कौन सी है?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. मध्या स्वकीया नायिका के धीरा मध्या, अधीरा मध्या तथा................ तीन भेद कहे गए है।
2. प्रगल्भा स्वकीया नायिका के धीरा मध्या..................... तथा धीराधीरा मध्या तीन भेद कहे गए हैं।
3. मुग्धा नववयःकामा ....मृदुः क्रुधि।

सत्य/असत्य:

1. स्त्रियों में यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले विकारों को सात्विक अलंकरण कहाजाता है।
2. मुग्धा नायिका आयु में प्रौढ़ तथा अत्यन्त बढ़े हुए काम भाव वाली होती है।
3. नायिकाओं के स्वभावज अलंकरण दस माने गए हैं।
4. नायिकाओं की पाँच अवस्थाएँ कही गई हैं।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री का भलीभाँति अध्ययन करने के बाद स्वयं लिखे। इससे आपका अभ्यास होगा और आप अपना मूल्यांकन कर पाएंगे।

यद्यपि इकाई के अन्त में प्रश्नों के उत्तर दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि पहले आप स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखे फिर पीछे दिए गए उत्तरों से मिलान करके स्व मूल्यांकन करें।

3.6 सारांश:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि रूपक का सम्पूर्ण इतिवृत्त ऐसा नहीं होता जिसे ज्यों का त्यों रंगमंच पर दिखाया जा सके। अतः ऐसे वृत्तान्त की सूचना मात्र दे दी जाती है। सूच्य इतिवृत्त के सूचक उपायों को नाट्यशास्त्रियों ने 'अर्थोपक्षेपक' नाम दिया है। विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य एवं अंकावतार इन पाँच अर्थोपक्षेपकों के द्वारा कुछ इस प्रकार से सूच्य कथांश को सूचित किया जाता है कि कथा की निरन्तरता भी बाधित नहीं होती और दर्शक उन कथांशों को जान भी लेते हैं जिन्हें रंगमंच पर दिखाना संभव नहीं, किन्तु जानना आवश्यक होता है।

नायक निरूपण में आप देख चुके हैं कि सर्वप्रथम प्रकृति के आधार पर नायक के चार भेद करते हुए उनके श्रृंगारिकता के आधार पर उनके चार-चार भेद किए गए हैं। इस तरह नायक सोलह प्रकार के हो जाते हैं। पुनः ज्येष्ठ, मध्यम और अधम के आधार पर सोलह नायकों के तीन-तीन भेद करने पर नायक के अन्ततः अड़चालिस भेद होते हैं। नायक के पुरूषोचित गुणों से भी आप परिचित चुके हैं।

आपने यह भी जाना कि नायक की तरह विनम्रता आदि गुणों से युक्त नायिका सर्वप्रथम स्वकीया, परकीया और सामान्या भेद से तीन प्रकार की होती है। स्वकीया नायिका मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन तरह की होती है। इनमें से मुग्धा तो एक ही तरह की होती है जबकि मध्या एवं प्रगल्भा दोनों तीन-तीन तरह की होती है। मध्या तथा प्रगल्भा के ये छः भेद ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा के आधार पर दो-दो तरह के हो गए हैं। इस तरह छः तरह की मध्या छः तरह की प्रगल्भा तथा एक मुग्धा कुल मिलाकर स्वकीया के तेरह भेद आपने जान लिए हैं। परकीया नायिका परोढ़ा (दूसरे की विवाहिता) और कन्या रूप होती है। सामान्या नायिका तो गणिका या वेश्या होती है। इन सभी प्रकार की नायिकओं की स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाओं तथा उनके शरीरज, अयत्नज एवं स्वभावज कुल मिलाकर बीस सात्विक अलंकरणों के विषय में भी आपको जानकारी प्राप्त हुई। इस ईकाई के अध्ययन करने के बाद आप नाट्य में सूच्य इतिवृत्त के सूचक (अर्थोपक्षेपक), नायक के गुण, भेद-प्रभेद तथा नायिका के भेद-प्रभेद तथा उनकी अवस्था एवं अलंकरणों को जानकर सहज ही उनकी अभिव्यक्ति करने में सक्षम होंगे।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली:

चूलिका: "अन्तर्जवनिका संस्थैः चूलिका अर्थस्य सूचना"

जवनिका के अन्दर से अर्थात् पर्दे के पीछे स्थित पात्रों द्वारा जब किसी कथांश की सूचना दी जाय तो उसे चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक कहते हैं।

अर्थोपक्षेपक: यह शब्द अर्थ$उपक्षेपक इन दो शब्दों से मिलकर बना है। अर्थ का तात्पर्य है कथांश या इतिवृत्त और उपक्षेपक का तात्पर्य है सूचक। नाटक में जो दृश्य या घटनाएँ रंगमंच पर दिखाए जाने योग्य नहीं होती, किन्तु दर्शकों के लिए उसे जानना आवश्यक होता है, तो ऐसे वृत्त की सूचना नाट्य में जिन उपायों के द्वारा दी जाती है उन्हें अर्थोपक्षेपक कहा जाता है।

मुग्धा: जो नायिका यौवनावस्था में अभी पर्दापण कर ही रही होती है तथा जिसके मन में काम भाव का प्रथम स्फुरण हो रहा होता है उसे मुग्धा कहते हैं। इसके साथ-साथ मुग्धा का प्रणय कोप बड़ी आसानी से दूर किए जाने योग्य होता है। कामभाव से पूर्णतया परिरिचत न होने से यह रति क्रीडा में नायक के प्रतिकूल आचरण करने वाली होती है।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

2. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु0 डॉ0 रघुवंश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

3. धनंजय, दशरूपकम्, व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, साहित्य भण्डार, मेरठ

4. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

5. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत् अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भण्डार, मेरठ

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

खण्ड 1

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अंकास्य हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.3.7 को देखें।
2. अंकावतार हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.3.8 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. क

2. ख
3. ख

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. संस्कृत
2. दो अंकों के मध्य में
3. पर्दे के पीछे से

सत्य/असत्य

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य

खण्ड 2

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. अनुकूल नायक हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.4.11 को देखें।
2. धीरोदात्त नायक हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.4.5 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ग
2. ग
3. घ

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. धीरोदात्त
2. प्रकरण
3. निश्चिन्तो कलासक्त
4. धीरशान्तो

अति लघु उत्तरीय:

1. प्रिय वचन बोलने वाला या मधुर भाषी।
2. ब्राह्मण, वणिक् और अमात्य।
3. जो एक ही नायिका से प्रेम करे।

सत्य/असत्य:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य

खण्ड 3

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. परकीया नायिका हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.5.7 को देखें।
2. सामान्या नायिका हेतु इकाई की उपखण्ड संख्या 3.5.8 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ख
2. क
3. ग

अतिलघु उत्तरीय:

1.दूसरे की ब्याहता और कन्या।

2.मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा क्रुधि मृदुः।

3_. स्वाधीनपतिका

रिक्त स्थान की पूर्ति

1.वासकसज्जा

2.विरहोत्कंठिता3..खण्डिता

4.कलहान्तरिता 5.विप्रलब्धा 6.प्रोषिताप्रिया7..अभिसारिका।

सत्य/असत्य:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अर्थोपक्षेपक से आप क्या समझते हैं? अर्थोपक्षेपकों के भेद बताइए।
2. विष्कम्भक तथा प्रवेशक में क्या क्या समानताएँ तथा क्या क्या विषमताएँ हैं?
3. अंकास्य तथा अलंकावतार में साम्य तथा वैषम्य बताइए।
4. नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए नायक भेद का निरूपण कीजिए।
5. श्रृंगारिक आधार पर नायक की कितनी अवस्थाएँ होती हैं उनका लक्षण दीजिए।
6. स्वकीया नायिका किसे कहते हैं स्वकीया के भेद बताइए।
7. नायिकाओं की आठ अवस्थाओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई 4: दशरूपक के अनुसार रस मीमांसा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 इकाई की पाठ्य सामग्री

4.3.1 रस विवेचन

4.3.2 विभाव

4.3.3 अनुभाव

4.3.4 भाव

4.3.5 सात्त्विक भाव

4.3.6 व्यभिचारी भाव

4.3.7 स्थायी भाव

4.3.8 रसोत्पत्ति

4.3.9 लोल्लट का उत्पत्तिवाद

4.3.10 शंकुक का अनुमितिवाद

4.3.11 भट्टनायक का भुक्तिवाद

4.3.12 अभिवनगुप्त का रस सिद्धान्त

4.3.13 धनंजय का रस सम्बन्धी विचार

4.3.14 रस का आश्रय (स्थान)

4.3.15 रस प्रक्रिया एवं उसका स्वरूप

4.3.16 श्रृंगार रस के भेद तथा लक्षण

4.3.17 वीर रस

4.3.18 वीभत्स रस

4.3.19 रौद्र रस

4.3.20 हास्य रस

4.3.21 भयानक रस

4.3.22 करूण रस
4.3.23 अद्भुत रस
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से संबंधित इस इकाई में आप दशरूपकार धनंजय की रस सम्बन्धी मीमांसा को समझ पाएंगे। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप रूपक के वस्तु एवं नेता तत्त्व के विषय में बता सकते हैं।

नाट्य का प्रयोजन सहृदय जनों को आत्मानन्द स्वरूप श्रृंगारादि रसों का आस्वादन कराना है। दशरूपककार धनंजय ने भरत मुनि के रस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी रस विषयक अपनी अवधारणा को यहाँ स्पष्टता से अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत इकाई में दशरूपक में धनंजय द्वारा की गई रस विषयक मीमांसा का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप दशरूपक के अनुसार नाट्य के रस तत्व की सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि विभाव, अनुभाव, भाव, सात्त्विक भाव एवं व्याभिचारी भाव किसे कहते हैं?
- समझा सकेंगे कि विभावादि के द्वारा रसोत्पत्ति कैसे होती है?
- बता पाएंगे कि भरत के रस सिद्धान्त पर विचार करने वाले विभिन्न आचार्यों के क्या मत हैं?
- बता सकेंगे कि विभिन्न आचार्यों ने रस का आश्रय किसे माना है तथा इस सम्बन्ध में दशरूपककार का क्या मत है?
- बता पाएंगे कि रस की प्रक्रिया तथा उसका स्वरूप क्या है?
- बता सकेंगे कि श्रृं गार रस के भेद तथा उसके लक्षण क्या है?
- बता पाएंगे कि वीर, वीभत्स, रौद्र, भयानक, करूण एवं अद्भुत रसों के लक्षण क्या हैं?

4.3 इकाई की पाठ्य सामग्री

आप जानते हैं कि रूपकों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए धनंजय ने ‘वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः‘

कहकर दशरूपक के प्रथम प्रकाश में 'वस्तु' तत्त्व का सविस्तार वर्णन किया है। द्वितीय प्रकाश में 'नेता' तथा तृतीय प्रकाश में रूपकों के विभिन्न भेदों के स्वरूप एवं लक्षणों को बताया गया है। दशरूपककार ने ग्रन्थ के चतुर्थ प्रकाश में रूपकों में निरतिशय आनन्दभूत रस तत्त्व का विवेचन किया है। यद्यपि धनंजय नाट्याचार्य भरतमुनि के रस सिद्धान्त "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः" को मानने वाले हैं तथापि रसानुभूति किसे होती है? अर्थात् रस का स्थान क्या है? इस विषय में उनका मत कुछ विशेष है। दशरूपकम् के अनुसार रस मीमांसा इस प्रकार है-

4.3.1 रस विवेचन:

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव एवं व्याभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन के योग्य हुआ स्थायी भाव ही रस कहलाता है। रति, हास, शोक आदि स्थायी भाव सहृदयजन के चित्त में संस्कार रूप से स्थित होते हैं। वही स्थायी भाव जब काव्य में वर्णित या नाट्य में अभिनय द्वारा प्रदर्शित विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव एवं व्याभिचारी भावों के द्वारा पुष्ट होकर सहृदय जन को अतिशय आनन्द की अनुभूति कराने वाला होता है तो वही रस है। काव्य या नाट्य के रसों को जानने से पूर्व विभावादि के विषय में जानना आवश्यक है। यहाँ धनंजय सम्मत विभावादि का लक्षण एवं स्वरूप विवेचन प्रस्तुत है-

4.3.2 विभाव: "ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत्।

आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा।।"

विभाव वह है जो स्वयं जाना हुआ होकर स्थायी भाव को पुष्ट करता है। यह विभाव दो प्रकार का है- 1. आलम्बन विभाव, 2. उद्दीपन विभाव।

'यह दुष्यन्त आदि नायक ऐसा है", "यह शकुन्तला आदि नायिका ऐसी है" इस प्रकार नायकादि या देशकाल आदि, काव्य के अतिश्योक्ति रूप वर्णन के द्वारा विशिष्ट रूप वाले हो जाने के कारण आलम्बन अथवा उद्दीपन के रूप में जाने जाते हैं। भरत मुनि ने विभाव का अर्थ दिया है "विभाव अर्थात् जाना हुआ अर्थ"।

आलम्बन विभाव: नाटक देखने वाले सहृदय सामाजिक के लिए नायक-नायिका दोनों ही आलम्बन विभाव होते हैं जबकि नाटक के नायक के लिए नायिका और नायिका के लिए नायक आलंबन विभाव होता है। यथा दुष्यन्त के लिए नायिका शकुन्तला आलम्बन विभाव है अर्थात् दुष्यन्त की रति का आलम्बन शकुन्तला तथा दूसरे पक्ष में शकुन्तला की रति का आलम्बन दुष्यन्त है, किन्तु ये दोनों नायक-नायिका दर्शक के चित्त की रति के आलम्बन होते हैं

उद्दीपन विभाव: उद्दीपन का सामान्य अर्थ है 'उत्तेजित करने वाला पदार्थ'। वे विभाव अर्थात् हेतु या निमित्त या कारण, जो हृदय में स्थित रति आदि स्थायी भाव को उत्तेजित करते हैं, उद्दीपन विभाव

हैं। इसके अन्तर्गत देश-काल (रमणीय उद्यान, रमणीय बसन्तादि ऋतु) आदि का समावेश होता है। किसी भी आलम्बन विभाव (नायक-नायिका) के कारण उद्बुद्ध हुए स्थायी भाव को ये उद्दीपन विभाव और भी अधिक उद्दीप्त कर रस रूप अवस्था को पहुँचाने वाले होते हैं। इसीलिए ये उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं।

4.3.3 अनुभाव: 'अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः।'

रति आदि भावों को सूचित करने वाला विकार (शरीर आदि का परिवर्तन) अनुभाव है।

सहृदय सामाजिकों को रति आदि स्थायी भावों का अनुभव कराने वाले (आश्रय/नायक आदि के) भ्रूविक्षेप-कटाक्ष आदि शरीर के विकार या व्यापार अनुभाव कहलाते हैं। इन्हें अनुभाव इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये, नाटकादि दृश्य काव्य तथा महाकाव्य आदि श्रव्य काव्य में, इन अनुभावों को साक्षात् अनुभव करने वाले रसिक जनों के अनुभव के कर्म के रूप में अनुभूत होते हैं अर्थात् सहृदय सामाजिकों के अनुभव का विषय होने के कारण ही ये अनुभाव है। भावों को सूचित करने वाला विकार अनुभाव है- यह कथन लौकिक रस की दृष्टि से ही है। काव्य या नाट्य में तो ये अनुभाव रस को ही परिपुष्ट करने वाले होते हैं।

4.3.4 भाव

रस का स्वरूप विवेचन करते हुए (व्याभिचारी तथा स्थायी) भाव का उल्लेख किया गया है। अतः सर्वप्रथम भाव के विषय में धनंजय कहते हैं-

"सुखदुःखादिकैर्भावैर्भावतद्भावभावनम्"

सुख-दुखादि भावों के द्वारा सहृदय के चित्त को भावित कर देना ही भाव कहलाता है। अनुकार्य राम या दुष्यन्त आदि के जिन सुख-दुख आदि भावों का वर्णन काव्य में किया जाता है, उनके द्वारा रसिक (सहृदय जन) के चित्त को भावित या वासित करना ही भाव कहा जाता है। यह इस प्रकार है जैसे रामलीला में सीता के वियोग से व्याकुल राम को देखकर, उनके दुःख के साथ दर्शक के हृदय की तन्मयता या एकतानता हो जाती है, यही भाव है। अनुकार्य राम आदि के सुख-दुख आदि भाव दर्शकों के मन को उसी प्रकार वासित कर देते हैं जैसे कि अगरबत्ती की सुगन्ध आस-पास के क्षेत्र को सुवासित कर देती है।

4.3.5 सात्त्विक भाव: "पृथग्भावाभवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्विका सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम्।।" यद्यपि सात्त्विक भाव अनुभाव ही है तथापि ये पृथक् रूप से भाव कहे जाते हैं। इनको सात्त्विक भाव इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये सत्त्व अर्थात् मन (मानसिक स्थिति) से उत्पन्न होते हैं। सत्त्व का अर्थ है एकाग्र मन। यह सत्त्व जिस"का प्रयोजन या

हेतु हो वह सात्त्विक कहलाता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि किसी स्थायीभाव की जाग्रति के बाद होने वाली शारीरिक चेष्टाएँ और गतियाँ दो तरह की होती हैं-1. इच्छाजन्य 2. स्वयंभूत (अपने आप होने वाली)। कुछ गतियाँ या चेष्टाएँ ऐसी होती है जिनको स्थायी भावयुक्त व्यक्ति अपनी इच्छा से प्रकट करता है जैसे आँखों और भौंहो को चलाना। स्थायीभाव के आवेश में ये इच्छा जनित चेष्टाएँ दूसरों को अपने भावों से अवगत कराने के उद्देश्य से की जाती है। इस प्रकार की चेष्टा या गतियों को अनुभाव कहा जाता है परन्तु एक दूसरे प्रकार की भी गतियाँ या चेष्टाएँ हैं, जो स्थायी भाव के जाग्रत होने पर अपने आप प्रकट होने लगती हैं जैसे मुख का पीला पड़ जाना, रोमांच, लज्जा आदि। इन चेष्टाओं को सात्त्विक भाव कहा जाता है। ये सात्त्विक भाव आठ हैं। 1. स्तम्भ (अंगों का निष्क्रिय हो जाना), 2. प्रलय (अचेतना), 3. रोमांच, 4. स्वेद, 5. वैवर्ण्य (मुख आदि का रंग फीका पड़ जाना), 6. वेपथु (कम्पन), 7. अश्रु और 8. वैस्वर्य (आवाज का बदल जाना)।

4.3.6 व्यभिचारी भाव:

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।

स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ।"

विविध प्रकार से स्थायी भाव के अनुकूल चलने वाले भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। अर्थात् जो भाव स्थायी भाव के अन्तर्गत कभी उठते तथा कभी विलीन होते हुए से, (सागर की तरंगों के समान) प्रतीत होते हैं, वे भाव व्याभिचारी कहलाते हैं। ये तैतीस माने गए हैं-निर्वेद, ग्लानि, शंका, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, उग्रता, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, क्रीड़ा, अपस्मार, मोह, सु ुमति, अलसता, वेग, तर्क, अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, औत्सुक्य तथा चपलता।

4.3.7 स्थायी भाव:

"विरूद्धैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।

आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः"।।

जो रति आदि भाव, अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी भी भाव के द्वारा विच्छिन्न नहीं होता और अन्य भावों को उसी प्रकार आत्मसात कर (अपने में मिला) लेता है जैसे समुद्र सभी तरह के जल को आत्मसात् कर खारा बना देता है, वह स्थायी भाव कहलाता है। काव्यशास्त्र के सभी आचार्यों ने रति आदि स्थायी भावों का विवेचन किया है। ये रति आदि स्थायी भाव इसलिए स्थायी कहलाते हैं क्योंकि ये स्थितिशील अर्थात् स्थित रहने वाले हैं। 'स्थायी यस्मादवस्थितः' (नाट्यशास्त्र पृ0 सं0 379)। साथ ही रति आदि स्थायी भाव प्रधान भी होते हैं। 'बह्वाश्रयत्वात्

स्वामिभूतो स्थायिनो भावाः‘ (नाट्यशास्त्र पृ0 सं0 349) इस तरह इनकी दो विशेषताएँ हैं- 1. स्थितिशीलता, 2. प्रधानता। दशरूपकम् में इन्हें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है। ;पद्ध स्थायी भाव वह है जो प्रतिकूल या अनुकूल भावों के द्वारा विच्छिन्न नहीं होता है। ;पपद्ध जिस प्रकार समुद्र में कैसा भी पानी क्यों न गिरे वही खारा हो जाता है। इसी तरह सभी व्यभिचारी भाव आदि स्थाई भाव के रूप में ही घुलमिल जाते हैं। ये स्थायी भाव आठ हैं ; रति, ; उत्साह ; जुगुप्सा, ; क्रोध, ; हास, ; विस्मय, ; भय, ; शोक।

कुछ आचार्य शम की भी स्थायी भाव में गणना करते हैं, किन्तु शम की पुष्टि रूपकों में नहीं होती है। अतः नाटक आदि में रति से शोक तक आठ ही स्थायी भाव होते हैं।

4.3.8 रसोत्पत्तिः

इस प्रकार विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारी भाव एवं स्थायी भाव के विषय में जानने के बाद आपके लिए यह जानना भी नितान्त आवश्यक है कि इन सबके द्वारा रस निष्पत्ति कैसे होती है? वस्तुतः काव्य आदि को सुनने या नाटक आदि को देखने से राम आदि आलम्बन, विभाव, शरद ऋतु या उपवन आदि उद्दीपन विभावों, भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि अनुभावों तथा निर्वेद ग्लानि आदि व्यभिचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर सहृदय सामाजिकों या दर्शकों के हृदय में संस्कार रूप में स्थित रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, जुगुप्सा, भय और विस्मय ये आठ स्थायी भाव श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत रसों के रूप में परिणत हो जाते हैं।

रस शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य कहते हैं- ‘रस्यते इति रसः‘ जो आस्वादित किया जाय वह रस है अथवा “रसते इति रस” जो रसता (बहता) है, वह रस कहलाता है। भारतीय काव्य परम्परा में रस तत्त्व की सत्ता काव्य की उत्पत्ति के साथ ही मानी जाती है। वैदिक वाक्य है-“रसो वै रसः” अर्थात् ‘रस‘ आनन्द स्वरूप ब्रह्म है। सामान्यतः काव्य को सुनने या नाटकादि को देखने से सहृदय जनों को जिस अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, वही रस कहा जाता है। रस निष्पत्ति कैसे होती है? इस विषय में आचार्य भरत का वाक्य “विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः” प्रसिद्ध है। भरत के इस रस सम्बन्धी वाक्य की व्याख्या संस्कृताचार्यों ने अपने-अपने ढंग से की है। यथा

4.3.9 लोल्लट का उत्पत्तिवादः

लोल्लट का रस सम्बन्धी सिद्धान्त संस्कृत साहित्य में रसोत्पत्तिवाद के नाम से प्रख्यात है। लोल्लट के अनुसार विभावादि उत्पादक हैं और रस उत्पाद्य। अतः लोल्लट कारण-कार्यवाद का प्रतिपादन करते हुए विभाव आदि को रस-रूप कार्य का कारण मानते हैं।

रति-भाव अन्य स्थायी भाव के समान नायक-नायिका में तथा अन्य में भी अपने स्थायी

भाव के रूप में अन्तर्निहित रहता है और उद्दीपन, आलिंगन, कटाक्ष आदि अनुभावों के द्वारा अनुभूत होता है। औत्सुक्यादि संचारी भावों के द्वारा परिपुष्ट होता है। इस तरह स्थायी रूप में विद्यमान रति-भाव रस रूप में उत्पन्न होता है। वह रस सामाजिकों के अन्तःकरण में उत्पन्न नहीं होता। राम या दुष्यन्तादि पात्रों को ही इसका अनुभव हो पाता है। दुष्यन्त अथवा राम की वेश-भूषा धारण करने के कारण ही सामाजिक नट को ही दुष्यन्त या राम समझते हैं। सामाजिकों को इसी भ्रान्तिवश क्षणिक आनन्दानुभूति होती है। लोल्लट का यह रसोत्पत्तिवाद का मत दोषरहित नहीं कहा जा सकता है। इनके मत में सबसे बड़ा दोष सामाजिकों में रस की स्थिति को स्वीकार न करना है। वस्तुतः राम या दुष्यन्त अतीत काल में थे, वर्तमान में तो सहृदय सामाजिक ही रस का आस्वादन करता है।

4.3.10 शंकुक का अनुमितिवाद:

लोल्लट के उत्पत्तिवाद का सर्वप्रथम खण्डन करके शंकुक ने अपने अनुमितिवाद की स्थापना की। शंकुक ने आचार्य भरत के रस सूत्र की नवीन व्याख्या करते हुए कहा है कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा रस की अनुमिति होती है, उत्पत्ति नहीं। पर्वत में धुएँ को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि पर्वत अग्निमान् है। उसी प्रकार काव्य या नाट्य में सहृदय सामाजिक नट को राम अथवा दुष्यन्त के सदृश ही अनुभावों से युक्त देखता है तो वहाँ पर रस की स्थिति का अनुमान कर लेता है। वास्तविक राम या दुष्यन्त नहीं है, तथापि सामाजिक को नट में राम अथवा दुष्यन्त की अनुमिति होती है। इस प्रकार शंकुक ने अनुमितिवाद की स्थापना की है। लोल्लट के मत का खण्डन कर अनुमितिवाद की स्थापना करना भी सर्वथा दोषरहित नहीं रह सका। रस तो प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय है। इसकी सम्वेदना प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही हो जाती है, अतः अनुमान प्रमाण द्वारा इसकी सत्ता को सिद्ध करना उचित नहीं है।

4.3.11 भट्टनायक का भुक्तिवाद:

भट्टनायक ने उत्पत्त्विाद तथा अनुमितिवाद दोनों का खण्डन करके भुक्तिवाद की स्थापना की है तथा भाव और रस में भोज्य-भोजक-भाव सम्बन्ध माना है। उसके मतानुसार विभावादि भोजक है और रस भोज्य। इन्होंने रसानुभूति की प्रक्रिया में भावकत्व और भोजकत्व व्यापार की कल्पना की है। अपने मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि सामाजिक सर्वप्रथम काव्य की अभिधा शक्ति से वाच्यार्थ ज्ञान प्राप्त करता है। तदन्तर भावकत्व व्यापार द्वारा राम अथवा दुष्यन्त की भावना के साथ अपने भावों का तादात्म्य स्थापित करता है। इस भावकत्व व्यापार की प्रक्रिया में रामादि पात्र अपने व्यक्तित्व को छोड़कर साधारण रूप में हो जाते हैं और इस साधरणीकरण की प्रक्रिया में रजस् और तमस् वृत्तियों का लोप हो जाता है तथा सत्त्व का उद्रेक करने वाली प्रकाशात्मिकता और आनन्दात्मिका अनुभूति से सामाजिकों को रसभोग होता है। उनका विचार है-

“विभावादिभिः संयोगात् भोज्यभोजकभावसम्बन्धनात् रसस्य निष्पत्तिर्भुक्तिः।”

यद्यपि भट्टनायक की अपूर्व देन-साधारणीकरण प्रक्रिया है, किन्तु लक्षणकारों ने इनके भोज्य-भोजक-भाव को प्रमाणित नहीं माना है।

4.3.12 अभिनवगुप्त का रस-सिद्धान्त:

आचार्य भरत की रस-सूत्र की अन्तिम व्याख्या आचार्य अभिनवगुप्त ने की है, जिनका मत व्यंजनावादी है। अभिनवगुप्त रस को व्यंग्य मानते हैं और रस की प्रतीति अभिधा एवं लक्षणा के द्वारा न मानकर, व्यंजना वृत्ति द्वारा रस की अभिव्यक्ति मानते हैं। वे विभावादि तथा रस में व्यंग्य-व्यंजक-भाव वृत्ति द्वारा रस की अभिव्यक्ति मानते हैं। जब सहृदय सामाजिक काव्य अथवा नाट्य का पठन या अवलोकन करता है तो काव्य या नाट्य में वर्णित विभावादि उसके हृदय में स्थित अव्यक्त भावों को व्यक्त कर देते हैं। इस प्रकार इस रूप में अभिव्यक्त होकर विभावादि सामाजिकों को रसानुभूति कराते हैं। यह रसानुभूति लौकिक भावानुभूति से पृथक् होती है।

4.3.13 धनंजय का रस सम्बन्धी विचार: यद्यपि अभिनवगुप्त का व्यंजनावादी मत मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण आचार्यों के मध्य अत्यन्त अत्यधिक प्रतिष्ठित है, किन्तु आचार्य धनंजय रस-प्रक्रिया को व्यंजना पर आधारित नहीं मानते। वे विभावादि तथा रस में वाच्य-वाचक भाव मानते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अलंकारशास्त्रियों की तरह नाट्य में नौ रसों के स्थान पर आठ ही रसों का प्रतिपादन करते हैं। वह शान्त रस को नाट्य में निषिद्ध मानते हैं। अतः धनंजय के रस-सिद्धन्त में मुख्य तीन तत्व हैं- 1. विभावादि तथा रस में व्यंग-व्यंजक-भाव का खण्डन, 2. अपने मत वाच्य-वाचक-भाव की स्थापना और 3. नाट्य में शान्त रस का निषेध।

आचार्य धनंजय ने सबसे पहले अपने मत की स्थापना के लिए व्यंजना वृत्ति के द्वारा रसानुभूति का खण्डन किया है। वे अभिधा, लक्षणा तथा तात्पर्य-इन तीनों को ही वृत्तियाँ मानते हैं और व्यंजना शक्ति (व्यंग्यार्थ) का निषेध करते हैं। ध्वनिवादी जिसे प्रतीयमान अर्थ, व्यंजनावादी व्यंग्यार्थ कहते हैं, धनंजय उन सभी अर्थों को तात्पर्य में वृत्ति में ही मानते हैं।

धनंजय के मत में स्थायी भाव तथा रस काव्य के वाच्यार्थ ही हैं। कोई वाक्य वैदिक हो या लौकिक, उसकी परिसमाप्ति कार्यपरक होती है। काव्य का कार्य या उद्देश्य आनन्दानुभूति है। सहृदयों को रसानुभूति काव्य अथवा नाट्य में वर्णित विभाव के द्वारा होती है वाच्यार्थ को प्रकट करने वाली अभिधा शक्ति द्वारा ही इनका (विभावादि का) प्रतिपादन किया जाता है।

अपने मत की प्रतिस्थापना करते हुए आचार्य धनंजय ने लोल्लट, शंकुक तथा भट्टनायक के मतों का भी थोड़ा-थोड़ा अंश रखा है। दशरूपककार धनंजय ने अपने मत का प्रतिपादन इस प्रकार किया है-

“वाच्या प्रकरणादिभ्यो बुद्धिस्था वा यथा क्रिया।

वाक्यार्थः कारकैर्युक्ता स्थायीभाव स्तथैतरैः।।"

जिस प्रकार वाक्य अथवा प्रकरण से बुद्धि में स्थित क्रिया ही कारकों से युक्त होकर वाच्यार्थ होती है, उसी तरह विभावादि के द्वारा (वर्णित) स्थायी भाव भी वाक्यार्थ है।

धनंजय ने रसानुभूति को वाच्यार्थ से प्रतिपादित माना है। जैसे-(1) गाय को लाओ और (2) द्वार (खोलो या बन्द करो) इन दोनों वाक्यों में से एक में क्रियापद लाओ का उपयोग हुआ है। दूसरे प्रकरण द्वारा (द्वार खोलो या बन्द करो) आदि का ज्ञान होता है, ठीक इसी प्रकार काव्य में कहीं तो स्थायी भावों के वाच्य शब्द प्रीति आदि का प्रयोग करके जैसे-'प्रीत्यैनवोदाप्रिया' और कहीं पर प्रकरण द्वारा यह स्थायी भाव (काव्य में वर्णित) विभिन्न शब्दों द्वारा कहे गये विभावानुभाव, संचारी भावों के माध्यम से अत्यन्त पुष्ट हो जाता है और वाक्य का अर्थ माना जाता है।

आचार्य धनंजय के मत में विभावादि या काव्य भावक है, रसादि भाव्य। भट्टनायक के मतानुसार ही वे विभावादि और रस में भाव्य-भावक सम्बन्ध मानते हैं। भाव इसलिए भाव कहे जाते हैं कि ये सामाजिकों को श्रृंगार आदि रस की अनुभूति कराते हैं। जैसा कि आचार्य भरत-कृत 'नाटयशास्त्र' में वर्णित है-

"भावभिनय सम्बन्धान्भावयन्ति रसानिमान्।

यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः।।"

यह (चिन्ता आदि भाव) सामाजिकों को भावाभिनय से सम्बन्ध रखने वाले रसों की भावना कराते हैं, इसलिए नाट्य-प्रयोक्ताजन इन्हें भाव कहते हैं। रस-विषयक अन्तिम मत रस के स्थायी भावों की संख्या के विषय में है। धनंजय वस्तुतः आठ ही स्थायी भाव मानते हैं। वे शम स्थायी भाव को नाटकों में स्थान नहीं प्रदान करते हैं।

"रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः।

शममपि केचत्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।।"

रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, भय तथा शोक- ये आठ स्थायी भाव होते हैं। कुछ आचार्य शम को भी नवें स्थायी भाव के रूप में मान्यता देते हैं, किन्तु उनकी पुष्टि रूपकों में नहीं हो पाती।

4.3.14 रस का आश्रय (स्थान): काव्य के अर्थ से सहृदय जन में भावित होने वाले रति आदि स्थायी भाव ही रस हैं, क्योंकि उनका आस्वादन किया जाता है। इस रस का आस्वादन किसे होता है? अनुकार्य (राम आदि) को, अनुकर्त्ता (नट आदि) को अथवा सहृदय सामाजिक को इस विषय में

विद्वानों का अलग-अलग मत है। आचार्य लोल्लट ने रस का स्थान (आश्रय) अनुकार्य माना है। उनके मतानुसार विशेष रूप से नाटक के मूलपात्र अनुकार्य राम आदि ही रस का आश्रय है गौण रूप से अनुकर्त्ता नट भी राम आदि मूल पात्रों का अभिमान कर रस का आस्वाद कर लेता है। सहृदय (रसिक) इस रस का अनुभव नहीं करता, वह तो केवल चमत्कृत् होता है।

आचार्य शंकुक का विचार है कि राम आदि मूल पात्रों का जब अस्तित्व ही नहीं रहा तो उनके द्वारा अनुभूत रस की सत्ता वर्तमान में (नाटक के प्रदर्शित होने पर) कैसे हो सकती है? शंकुक के अनुसार नट रामादि के रति आदि स्थायी भाव का अनुकर्ता मात्र है अनुभवकर्ता या आस्वादयिता नहीं। निष्कर्षतः शंकुक के मत में रस का स्थान नट का अभिनय है नट नही। भट्टनायक के अनुसार इसका स्थान सहृदय (रसिक) का चित्त ही है। अभिनवगुप्तपाद के अनुसार रस आस्वाद्य न होकर आस्वादन रूप है। अतः रस का अर्थ है-आत्मानन्द, जिसका स्थान निश्चय ही सहृदय का चित्त या आत्मा है।

वस्तुतः नाटक आदि का प्रयोजन दर्शकों को रसास्वाद कराना है अनुकार्य (रामादि) को नहीं। क्योंकि अनुकार्य तो अतीत के होते हैं उन्हें रसास्वादन कराया भी कैसे जा सकता है? दशरूपककार धनंजय और उसके वृत्तिकार धनिक ने रस की स्थिति सहृदयगत मानी है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि सहृदयगत स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त होते हैं। उनका मानना है कि राम, दुष्यन्त आदि का अभिनय देखकर रति आदि स्थायी भाव ही जब आस्वाद्यता को प्राप्त होते हैं अर्थात् सहृदय के चित्त में अलौकिक निर्भरानन्द चेतना को विकसित करते हैं, तब 'रस' कहा जाता है। यह रस सहृदय सामाजिक के चित्त में ही रहता है। वस्तुतः नाटक को देखने वाले हर दर्शक को रसानुभूति नहीं हो सकती है। उसके लिए (आनन्दानुभव के लिए) सहृदय होना बहुत जरूरी होता है। क्योंकि रसिक सामाजिक ही नाटक के अभिनय के अवसर पर उपस्थित रहता है, अनुकार्य (मूलपात्र-राम आदि) तो अतीत काल के होते हैं। इस तरह रस की स्थिति अनुकार्य राम आदि में नहीं मानी जा सकती। रस का स्थान तो सहृदय सामाजिक ही है। हाँ काव्यार्थ की भावना से उद्भूत नट को भी रसास्वाद होने में कोई मतवैभिन्य नहीं है। धनंजय कहते हैं कि नट को भी रसास्वादन प्राप्त हो सकता है। नाटक में तो नट-नटी (अभिनय करने वालों) के हृदय में भी रस की स्थिति माननी पड़ेगी अर्थात् इन्हें भी सहृदय होना चाहिए, नहीं तो वे संवेद्य-भावना विशेष को सहृदय सामाजिक के हृदय में संप्रेषित नहीं कर सकते। तात्पर्य यह है कि नाटक आदि में अभिनय करते हुए नट-नटी अपने चित्त में स्थित रस का आस्वादन तो करते ही हैं साथ ही उनका यह रसास्वादन सहृदय के चित्त में संस्कार रूप में स्थित रति आदि स्थायी भावों को जाग्रत कर रस दशा को प्राप्त करा देता है।

4.3.15 रस प्रक्रिया एवं उसका स्वरूप:

आत्मानन्द की अनुभूति को ही रस कहा जाता है। काव्यार्थ के साथ एकाग्रता होने से

सहृदय के चित्त में जो आनन्द अनुभव होता है, वही स्वाद (रस) कहलाता है। यह स्वाद वैसे तो सभी रसों में पाया जाता है फिर भी अलग-अलग रसों के अलग-अलग विभाव होते हैं। अतः इस भिन्नता के कारण सहृदय के चित्त की चार अवस्थाएँ हो जाती है-

1.श्रृंगार एवं हास्य में चित्त का विकास होता है।

2 वीर एवं अद्भुत में चित्त का विस्तार होता है।

3. वीभत्स तथा भय में चित्त का क्षोभ होता है।

4. रौद्र तथा करूण में चित्त का विक्षेप होता है।

धनंजय तथा धनिक दोनों ने शान्त रस को नाटक में स्वीकार नहीं किया है। शम शान्त रस का स्थायी भाव है। शान्त रस अनिर्वाच्य है अर्थात् इसका अभिनय नहीं किया जा सकता है। क्योंकि यह सुख-दुःख, चिन्ता, राग-द्वेष सभी से परे है तथा मुदिता, मैत्री, करूणा एवं उपेक्षा से प्रतीत होता है। शान्त रस की यह अवस्था केवल मोक्ष की अवस्था में ही प्राप्त हो सकती है और नाट्य का प्रयोजन तो मात्र 'धर्मार्थकाम' रूप ही होता है। मोक्ष नाट्य का प्रयोजन नहीं है। अतः नाटकादि में शान्त रस नहीं होता है।

काव्य में विभाव (चन्द्रमा आदि), संचारी भाव (निर्वेद आदि), तथा अनुभाव (रोमांच आदि) का जो अस्वादन किया जाता है, वही रस कहलाता है। नाट्यगत रसों का विशेष लक्षण इस प्रकार है-

4.3.16श्रृंगार रस के भेद तथा लक्षण:

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है-'वृत्तः यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यं दर्शनीयं वा तच्छंगोरेणोपमीयते' अर्थात् संसार में जो कुछ भी पवित्र, विशुद्ध, उज्जवल तथा दर्शनीय है, उसकी उपमा श्रृंगार रस से दी जाती है। इस रस की अजस्र धारा आबाल-वृद्ध को अपनी रमणीयता में डुबो देती है। आनन्दवर्धन ने इस श्रृंगार रस को सर्वाधिक मधुर तथा आनन्ददायक रस के रूप में माना है। कविराज विश्वनाथ इसे और भी व्यापक तथा महत्वपूर्ण रस के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार केवल श्रृंगार ही एक ऐसा रस है, जिसमें उग्रता, मरण, आलस्य तथा जुगुप्सा को छोड़कर अन्य सभी निर्वेदादि संचारी भाव होते हैं।

श्रृंगार रस को रसराज माना जाता है, जिसका हेतु इसकी सार्वदेशिकता तथा सार्वभौमिकता है। कामभावना मानव से लेकर पशु-पक्षी तक में स्वभाविक रूप से पाई जाती हैं। अन्य रसों की तुलना में सहृदय जनों को श्रृंगार रस की चर्वणा अधिक होती है। श्रृंगार रस की अपनी एक सबसे बड़ी विशिष्टता है-अन्य रसों को अपने आप में समाहित करने की क्षमता।

"रम्यदेश कलाकाल वेष भोगादिसेवनैः।

प्रमोदात्मारतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।।"

रमणीय देश, संगीत, नृत्य आदि कला, रमणीय बसन्त आदि काल, सुन्दर वेष, तथा भोगादि के सेवन से एक-दूसरे के प्रति आसक्त युवक एवं युवतियों को जो आनन्द होता है, वही रति-भाव है। यही रति नामक स्थायी भाव नायक या नायिका के अंगों की रमणीय चेष्टाओं से परिपक्व होकर श्रृंगार रस कहलाता है। श्रृंगार रस का यह स्वरूप जो काव्य में प्रयोग के योग्य होता है, वह लौकिक श्रृंगार के अन्तर्गत आता है। काव्य में वर्णन द्वारा सहृदय जनों के मन में जो एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति हुआ करती है, वह अलौकिक है। रमणीय देश, काल, चन्द्रोदय, सूर्योदय तथा पर्वत उपवन आदि उद्दीपन विभाव के रूप में होते हैं। इसी तरह नायिका सीता- शकुन्तलादि नायक राम, दुष्यन्तादि के लिए आलम्बन रूप होती है। नायक राम आदि नायिका सीता आदि के लिए आलम्बन, रूप में होता है। उदाहरणार्थ-'उत्तर-रामचरित' के प्रस्तुत श्लोक में राम और सीता का परस्पर प्रेम-रूप रति-भाव गोदावरी के तट पर (रम्य देश द्वारा उद्दीप्त होकर) श्रृंगार रस के रूप में आस्वाद्यमान है-

"स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन्

प्रतिविहिति सपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि?

स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा

स्मरसि च तदुपान्तेष्वावर्यो्व र्तनानि।। भवभूति, उत्तररामचरितत, 1/26

"हे मनोहर शरीर वाली सीते, उस पर्वत पर लक्ष्मण द्वारा की गई सेवा से आनन्दपूर्वक निवास करते हुए क्या अपने उन दिनों का स्मरण करती रही हो? क्या तुम्हें सरस तट वाली गोदावरी याद है? और उसके समीप हम दोनों के विहार करने का स्मरण है।" उपर्युक्त वर्णन में राम के द्वारा रम्य स्थलों का वर्णन किया जा रहा है। अतः पर्वत एवं गोदावरी के रमणीय तटों के द्वारा उद्दीप्ति होने वाली राम की आसक्ति का वर्णन किया गया है। युवक-युवती का विभाव, जैसे-'मालती-माधव' में कामन्दकी कहती है कि, "महल की छत पर वातायन में बैठी रति के समान मालती बारम्बार अपने समीप की नगर की गली में घूमने वाले साक्षात् नवीन कामदेव के समान माधव को देखकर उत्कंठा युक्त हुई कम्पित रमणीय अंगों से पीड़ित-सी हो रही है। "

श्रृंगार के भेद: धनंजय के अनुसार श्रृंगार रस के तीन भेद हैं-अयोग, विप्रयोग और सम्भोग। प्रायः अन्य सभी काव्यशास्त्रियों ने श्रृंगार के दो भेद किये हैं-विप्रलम्भ तथा सम्भोग। वस्तुतः दशरूपककार ने भी विप्रलम्भ को ही आयोग विप्रलम्भ के रूप में प्रयुक्त किया है। धनंजय के मत में विप्रलम्भ

शब्द का मुख्य अर्थ है-वंचना।

यदि नायक संकेत-समय पर उपस्थित न हो और अन्य नायिका का अनुसरण करे, तब वंचना होती है और इस तरह की वंचना को विप्रलम्भ कहा जाता है, किन्तु विरह का निमित्त अन्य भी हो सकता है। अतः धनंजय ने विप्रलम्भ का प्रयोग न कर अयोग और विप्रयोग का इस्तेमाल किया है।

अयोग श्रृंगार: अयोग का अर्थ है किसी मिलन का जहाँ अभाव हो-

"तत्रायोगाऽनुरागोपि नवयोरेकचित्तयोः।

पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः।।"

अयोग, श्रृंगार की वह अवस्था होती है जहाँ पर नायक-नायिका दोनों एक दूसरे पर आसक्त तो होते हैं, किन्तु परतन्त्रतावश वे एक-दूसरे से मिल नहीं पाते हैं। उनका मिलन किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हो पाता है। योग का अभिप्राय नायक-नायिका का परस्पर समागम होता है, किन्तु जहाँ पर समागम न हो पाये, वह अयोग कहलायेगा। अर्थात् माता-पिता अथवा भाग्य के अधीन होने के कारण जो वियोग होता है, उसे ही अयोग कहते हैं। जैसे-'रत्नावली' नाटिका में सागरिका वासवदत्ता के अधीन होने के कारण वत्सराज उदयन से समागम नहीं कर पाती अथवा 'मालती-माधव' में पिता के अधीन होने के कारण मालती का माधव से मिलन नहीं होता। भाग्यवश होने वाला अयोग जैसे पार्वती और शिव का बहुत समय तक संयोग नहीं होता।

इस अयोग श्रृंगार से उत्पन्न होने वाली नायक-नायिका की दस अवस्थाएँ होती हैं जो क्रमशः अधिक दुःखदायिनी होती हैं। ये अवस्थाएँ हैं- (1) अभिलाषा (2) चिन्ता, (3) स्मृति, (4) गुणकथन, (5) उद्वेग, (6) प्रलाप, (7) उन्माद, (8) संज्वर, (9) जड़ता, और (10) मरण।

"अभिलाषः स्पृहा तत्र कान्ते सर्वांगसुन्दरे।"

दृष्टे श्रुते वा तत्रापि विस्मयानन्दसाध्वसाः।।"

"साक्षात्प्रतिकृतिस्वप्नच्छायामायासु दर्शनम्।"

श्रुतिर्व्याजात्सखी गीतमागधादिगुणस्तुतेः।।"

उक्त दस अवस्थाओं में से अभिलाषा वह है जिसमें सर्वांग सुन्दर प्रिय का दर्शन होने पर, उसके विषय में सुनकर, उसके प्रति इच्छा होती है। इसके तीन अनुभाव होते हैं-विस्मय, आनन्द तथा संभ्रम। प्रिय का दर्शन पाँच प्रकार से होता है-साक्षात् दर्शन से, चित्र के माध्यम से, स्वप्न में, छाया द्वारा अथवा माया या इन्द्रजाल से। प्रिय का श्रवण सखी के मुख से, गीत के माध्यम से अथवा मागध (चारण-भाट आदि स्तुति गायक)के गुण-कीर्तन से होता है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में अभिलाषा का उदाहरण दिया गया है। जैसे-शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के मन में अभिलाषा होती है-

"असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि में मनः
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।।"

अर्थात् निःसन्देह ही यह क्षत्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य है। तभी मेरा मन इसके प्रति अभिलाषायुक्त है। संशयात्मक पदार्थों अथवा विषयों में सज्जनों के अन्तःकरण की प्रवृत्ति ही प्रमाण होती है। इसके अनुभावों में विस्मय, आनन्द तथा संभ्रम हुआ करते हैं।

विप्रयोग श्रृंगार: जिनमें परस्पर प्रगाढ़ अनुराग होता है, ऐसे नायक नायिका का पृथक् हो जाना ही विप्रयोग कहा जाता है। यह विप्रयोग दो प्रकार का होता है-1. मान-विप्रयोग और 2. प्रवास-विप्रयोग। मान-विप्रयोग भी दो प्रकार से होता है प्रणयमान तथा ईर्ष्यामानं। जिन नायक-नायिका का मिलन एक बार हो चुका हो उनमें जब वियोग होता है, तो वह विप्रयोग श्रृंगार कहलाता है।

प्रणय मान विप्रयोग: "तत्र प्रणयमानः स्यात् कोपावसितयोर्द्वयोः।"

प्रणयमान वह स्थिति है जिसमें नायक एवं नायिका दोनों या दोनों में से एक कुपित रहता है। प्रणयमान अर्थात् प्रणय में किया गया मान। जब नायक-नायिका दोनों में घनिष्ट प्यार हो जाता है तो इनमें अकारण ही क्रोध उत्पन्न होता है, क्योंकि 'प्रेम्णः कुटिलगामित्वात्' यह कथन सत्य है। 'उत्तररामचरित' में दिया गया है-

"अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः।
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरी सैकते।"
"आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामान्जलिः।।"

वनदेवी वासन्ती राम के प्रणयमान का वर्णन करती हुई कहती है-"इस लतागृह में आप उसके आने के मार्ग में दृष्टि लगाये बैठे रहते थे और वह सीता हंसों के साथ क्रीड़ा करती हुई गोदावरी के बालुकामय तट पर बहुत देर तक ठहरी रही। जब वह आई तो आपको कुपित सा देखकर उसने कातरतापूर्वक कमल की कली के समान सुन्दर प्रणामान्जलि बाँधी।"

ईर्ष्यामान: स्त्री के कोप अर्थात् क्रोध के कारण जब प्रणय भंग होता है, तो वह ईर्ष्यामान कहा जाता है।

"स्त्रीणामीर्ष्याकृतो मानः कोपोन्यासंगिनि प्रिये
श्रुते वाऽनुमिते दृष्टे, द्युतिस्तत्र सखीमुखात्

उत्स्वप्नायित भोगांक गोत्रस्खलनकल्पितः

त्रिधाऽनुमानिको, दृष्टः साक्षादिन्द्रियगोचरः।।"

अपने प्रिय को अन्य युवती में अनुरक्त जानकर, अनुमान करके अथवा देखकर नायिका को जो क्रोध होता है वह ईर्ष्यामान कहलाता है। यह तीन प्रकार का हुआ करता है। स्वप्न की बड़बड़ाहट से, सम्भोग के चिन्हों से भूल से अथवा दूसरी नायिका का नाम लेने से साक्षात् इन्द्रियों का विषय

होने पर प्रत्यक्ष देखा हुआ माना जाता है। जैसा कि धनिक ने कहा है-सखी के मुख से सुनने के बाद ईर्ष्यायुक्त नायिका से नायक कह रहा है-

"सुभ्रुत्वं नवनीतकल्पहृदया केनापि दुर्मन्त्रिणा

मिथ्यैव प्रियकारिणा मधुमुखेनास्मासु चण्डीकृता।

किं त्वेतद्विमृश क्षणं प्रणयिनामेणाक्षि कस्ते हितः

किं धात्रीतनया वयं किमुं सखी किंवा किमस्मत्सुहृत्।।"

अर्थात् "हे सुन्दर भौंह वाली! तुम्हारा हृदय नवनीत के समान मृदु है, अतः किसी दुष्ट की मन्त्रणा से, झूठे ही तुम्हारे हितकारी बनने वाले मीठी बात कहने वाले व्यक्ति ने तुम्हें हम पर कुपित कर दिया, किन्तु क्षण-भर को यह तो विचार करो कि इन सभी प्रिय-जनों में तुम्हारा सच्चा हितैषी कौन है? यह धाय की पुत्री या सखी, हमारे मित्र अथवा हम ।"

इसी प्रकार स्वप्न की बड़बड़ाहट से, भोग के चिह्न से युक्त नायक को देखकर, नायक द्वारा भूल से किसी अन्य नायिका का नाम लिए जाने पर नायिका ईर्ष्यामान से युक्त हो जाती है।

प्रवास विप्रयोग: "कार्यतः सम्भ्रमच्छापात्प्रवासो भिन्न देशता।

द्वयोस्तत्राश्रुनिश्वासकार्श्यलम्बालकादिता।।"

किसी कार्यवश, सम्भ्रम अथवा शाप से दोनों का (नायक-नायिका का) भिन्न-भिन्न स्थान में निवास करना प्रवास कहलाता है। इसके अनुभाव होते हैं-अश्रु गिरना, निःश्वास लेना, दुर्बलता, बालों का बढ़ना इत्यादि।

इनमें से प्रथम कार्यवश होने वाला प्रवास तीन प्रकार का होता है-भावी (आगे आने वाला) प्रवास, वर्तमान समय का प्रवास तथा भूत (बीता हुआ) प्रवास।

'द्वितीयः सहसोत्पन्नो दिव्यमानुषविप्लवात्।'

सम्भ्रम से उत्पन्न होने वाला द्वितीय प्रकार का प्रवास वह है, जो दैवीय अथवा मनृष्यकृत उपद्रवों से सहसा होता है। जैसे-'विक्रमोर्वशीय' में उर्वशी और पुरूरवा का दैवकृत् उपद्रव से सम्भ्रम प्रवास था।

'स्वरूपान्यत्वकरणाच्छापज्ञः सन्निधावपि।'

नायक तथा नायिका के समीप रहने पर भी जो स्वरूप बदल जाने के कारण देशान्तर-गमन होता है, वह शाप-प्रवास होता है। जैसे-'कादम्बरी' में वर्णित वैशम्पयान का प्रवास है।

सम्भोग श्रृंगार: "अनुकूलौ निषेवते यत्रान्योन्यं विलासिनौ"

दर्शनस्पर्शानादीनि स सम्भोगो मुदान्वितः।।

जहाँ नायक-नायिका परस्पर अनुकूल होकर, विलासितापूर्वक दर्शन, स्पर्शादि का उपभोग करके प्रसन्न तथा उल्लसित होते हैं, वहाँ पर सम्भोग श्रृंगार होता है, जिस प्रकार 'उत्तर-रामचरित' में देखने को मिलता है-

"किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्ति योगा
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
सपुलकपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।"

अर्थात् "हे सीते! तुम्हें स्मरण है, यह वही स्थल है जहाँ पर एक-दूसरे के गाल से गालं को सटाकर तथा न जाने क्या-क्या (इधर-उधर की) बातें करते हुए अपने एक हाथ को आलिंगन में बाँधे हुए हम दोनों की वह रात्रि व्यतीत हो गयी थी। अतः बीते हुए प्रहरों का पता नहीं लगा था।" अर्थात् बातों-बातों में हमें रात बिताने का पता भी नहीं चला था।

सम्भोग श्रृंगार में नायिकाओं की प्रिय के प्रति लीला आदि दस चेष्टाएँ पाई जाती हैं। ये चेष्टाएँ दाक्षण्य मृदुता तथा प्रेम से युक्त होती हैं। नायक में भी शोभा विलास माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, ललित तथा औदार्य गुणों का होना आवश्यक है।

4.3.7 वीर रस: प्रताप**,** विनय, सत्त्व, बल, नीति, विस्मय और पराक्रम आदि विभावों द्वारा विभावित, दया, युद्ध एवं दान आदि अनुभावों के अनुभावित तथा गर्व, धृति, हर्ष, अमर्ष, स्मृति, मति, तर्क इत्यादि व्यभिचारी भावों से भावित होकर उत्साह नामक स्थायी भाव वीर रस के रूप में आस्वादित होता है। यह वीर रस तीन प्रकार का होता है- 1. दयावीर, 2. युद्धवीर और 3. दानवीर।

4.3.18 वीभत्स रस: जुगुप्सा नामक स्थायी भाव से उत्पन्न होने वाला रस वीभत्स रस कहलाता है। दुर्गन्धमय मांस रक्त आदि इसके आलंबन, मांसादि में कीड़े पड़ना आदि उद्दीपन, थूकना, मुँह फेरना आदि अनुभाव तथा मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि आदि इसके व्याभिचारी भाव कहे गए हैं।

4.3.19 रौद्र रस: क्रोध स्थायी भाव का अभिव्यंजक रस रौद्र रस कहलाता है। शत्रु आदि इसके आलंबन विभाव, शत्रु की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव, भ्रूभंग, भुजाओं को फटकारना, शत्रु का तर्जन आदि अनुभाव तथा मोह, अमर्ष आदि इसके व्याभिचारी भाव होते हैं।

4.3.20 हास्य रस: अपने या दूसरे की विकृत वाणी, वेष एवं चेष्टा आदि विभावों से जो हास (स्थायी भाव) होता है उसका परिपाक ही हास्य रस कहलाता है। इसका आलंबन हास्यास्पद व्यक्ति, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, नेत्र, संकोच, मुख विकार आदि अनुभव तथा निद्रा, आलस्य आदि इसमें व्यभिचारी भाव होते हैं।

4.3.21 भयानक रस: भय स्थायी भाव का अभिव्यंजक भयानक रस कहलाता है। निम्न प्रकृति के

लोग इसका आश्रय, भयोत्पादक वस्तु आलंबन, उसकी चेष्टाएँ, उद्दीपन, प्रलय, स्वेद, कम्पन आदि अनुभाव तथा जुगुप्सा, आवेग मोह, त्रास, ग्लानि, दीनता, शंका आदि व्यभिचारी भाव हैं।

4.3.22 करूण रस: शोक स्थायी भाव का अभिव्यंजक रस करूण रस है। इसका आर्विभाव ईष्ट नाश अथवा अनिष्ट प्राप्ति से सम्भव है। निःश्वास, उच्छवास, रूदन, स्तम्भ आदि इसके अनुभाव तथा विषाद, उन्माद, चिन्ता, दैन्य, व्याधि और मरण आदि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।

4.3.23 अद्भुत रस: विस्मय स्थायी भाव वाला रस ही अद्भुत रस कहलाता है। अलौकिक वस्तु (दिव्य दर्शन, इच्छित मनोरथ पूर्ति, अपूर्व शिल्प) आदि इसके आलंबन, अलौकिक वस्तु का गुणकीर्तन उद्दीपन, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, संभ्रम आदि इसके अनुभाव तथा वितर्क, आवेग, हर्ष आदि इसके व्यभिचारी भाव होते हैं।

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप दशरूपककार धनंजय के रस मीमांसा विषयक विचारों से अवगत हो चुके हैं। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा रति आदि स्थायी भाव ही श्रृंगार आदि रस के रूप में आस्वादित होते हैं। कतिपय आचार्य मानते हैं कि यह रसास्वादन काव्यगत अनुकार्य राम आदि को ही होता है। कुछ दूसरे आचार्य अनुकर्त्ता (नट आदि) में रस की स्थिति मानते हैं जबकि दशरूपककार के अनुसार रस का स्थान सहृदयजन का चित्त है अर्थात् रस का आस्वादन सहृदय व्यक्ति के चित्त को ही होता है प्राकारान्तर से यदि नट भी सहृदय है तो उसे भी रस का आस्वादन हो सकता है।

इस इकाई का अध्ययन करने से बाद आप भरतमुनि के रस सिद्धान्त की विवेचना करने वाले भट्टलोल्लट के उत्पत्तिवाद, शंकुक के अनुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद तथा अभिनव गुप्त के रस सिद्धान्त के साथ-साथ धनंजय के रस संबन्धी विचारों को अभिव्यक्त कर सकेंगे साथ ही नाट्यगत श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक एवं अद्भुत इन आठों रसों के लक्षणों को भी भलीभांति समझा पाएंगे।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. सात्त्विक भाव
2. स्थायी भाव

3. करूण रस

बहुविकल्पीय:

1. स्थायी भाव किसके द्वारा आस्वादन होने पर रस कहा जाता है?

(क) विभाव (ख) अनुभाव

(ग) व्यभिचारी भाव (घ) इन सभी के

2. दशरूपककार ने नाट्य में कितने रस स्वीकार किए हैं?

(क) छः (ख) सात

(ग) आठ (घ) नौं

3. विभाव के कितने भेद हैं?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. दशरूपकार के अनुसार वीर रस युद्धवीर, दानवीर तथा.......................................के भेद से तीन तरह का होता है।

2. करूण रस का स्थायी भाव..है।

3. दशरूपककार धनंजय ने रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, जुगुप्सा, भय एवं ....ये आठ स्थायी भाव माने हैं।

अति लघु उत्तरीय:

1. श्रृंगार रस के कितने भेद होते हैं?
2. उद्दीपन विभाव किसे कहते हैं?
3. अनुभाव क्या है।

सत्य/असत्य बताइए:

1. व्यभिचारी भावों की संख्या चालिस होती है

2. नाट्य में शान्त रस की स्थिति होती है।
3. सात्त्विक भाव आठ होते हैं।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर पाठ्य सामग्री को अच्छी तरह पढ़कर स्वयं लिखें। इससे आपका अभ्यास होगा तथा स्वयं अपना मूल्यांकन कर पाएंगे।

यद्यपि उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर/संकेत इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि आप पहले स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखें फिर पीछे दिए गए उत्तरों से मिलान कर स्वमूल्यांकन करें।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली:

रस: विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव व्यभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन के योग्य बनाया गया स्थायी भाव ही 'रस' कहलाता है।

स्थायी भाव: जो रति आदि भाव अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी प्रकार के भावों के द्वारा विच्छिन्न नहीं होता और लवणाकर (नमक की खान या समुद्र) की तरह सभी भावों को आत्मसात कर लेता है, वह स्थायी भाव कहलाता है।

संचारी या व्यभिचारी भाव: विविध प्रकार से स्थायी भाव के अनुकूल चलने वाले वे भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं, जो स्थायी भाव में उसी तरह प्रकट और विलीन होते रहते हैं जिस तरह सागर में तरेंगें।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. अभिनवगुप्त, अभिनव भारती, सम्पादक रामस्वामी,गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज, बड़ौदा

2. मम्मट, काव्यशास्त्र, साहित्य भण्डार मेरठ

3. भरत, नाट्यशास्त्र, अनु. डॉ. रघुवंश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

4. धनंजय, दशरूपक, साहित्य भंडार मेरठ

5. धनंजय, दशरूपक, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस

6. भरत, नाट्यशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस

7. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, चौखम्बा विद्याभवन बनारस

8. ऋषि कुमार चतुर्वेदी, रस सिद्धान्त, ग्रन्थापन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी

1. इसी इकाई के उपखण्ड 4.3.5 को देखें।
2. इसी इकाई के उपखण्ड 4.3.7 को देखें।
3. इसी इकाई के उपखण्ड 4.3.22 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. घ
2. ग
3. क

रिक्त स्थानों की पूर्ति:

1. दयावीर
2. शोक
3. विस्मय

अति लघु उत्तरीय:

1. तीन-अयोग, विप्रयोग एवं संभोग
2. वे निमित्त या हेतु जो हृदय में उद्बुद्ध रति आदि को उत्तेजित करते हैं, उद्दीपन विभाव है।
3. सहृदय जनों को रति आदि का अनुभव कराने वाले आश्रय के भ्रूविक्षेप, कटाक्षपात् आदि शरीर विकार अनुभव होते हैं।

सत्य/असत्य:

1. असत्य
2. असत्य
3. सत्य

4.9 निबन्धत्मक प्रश्न

1. दशरूपकाकर धनंजय के अनुसार श्रृंगार रस का लक्षण देते हुए उसके भेद प्रभेदों को उल्लेख कीजिए
2. दशरूपककार के अनुसार विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों का परिचय प्रस्तुत कीजिए

इकाई 5 . दशरूपक प्रथम प्रकाश-मूल पाठ, अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 इकाई की पाठ्य सामग्री- कारिका/कारिकांश व्याख्या
5.3.1 दशरूपानुकारेण.........से वस्तु नेतारस्तेषां भेदकः तक
5.3.2 वस्तु च............से अवस्थाः पंच.......तक
5.3.3 अर्थप्रकृतयः पंच..........से सिद्धामन्त्रणतो.....तक
5.3.4 बीजवन्तो............से रहस्य कथ्यते.....तक
5.3.5 किं ब्रवीष्य..................
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.1 प्रस्तावना

काव्य एवं काव्यशास्त्र से सम्बन्धित यह पांचवी इकाई है। यह प्रश्न पत्र विशेषतः धनंजय कृत 'दशरूपकम्' पर आधारित है। इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि रूपक भेद तथा उनकी विशेषताएँ क्या हैं? नृत्य तथा पंचसन्ध्यंग क्या होते हैं? अर्थोपक्षेपक किसे कहते हैं? तथा नायक-नायिका की विशेषताएँ एवं भेद प्रभेद क्या है? साथ ही दशरूपककार की रस मीमांसा के विषय में भी आप भलीभांति बता सकते हैं।

दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश में दशरूपकम् के मूल स्रोत, नाट्य के प्रयोजन, रूपकों के दस भेद, रूपकों के भेदक तत्त्वों के साथ-साथ रूपक के वस्तु नामक तत्व का सविस्तार विवेचन किया गया है। प्रस्तुत इकाई में कथावस्तु के भेदों को बताते हुए अर्थप्रकृति, कार्यावस्था एवं सन्धियों के अन्तर्गत किस प्रकार रूपक की कथावस्तु का आयोजन किया जाना चाहिए, इस पर धनंजय के द्वारा मान्य सिद्धान्तों का विश्लेषण किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रूपक में कथावस्तु के सांगोपांग समायोजन के महत्व को समझा सकेंगे तथा धनंजय के कथावस्तु विषयक विचारों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य:

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप:

- बता सकेंगे कि 'दशरूपकम्' का आधार क्या है?
- बता पाऐंगे कि नाट्य, रूप एवं रूपक का लक्षण क्या है?
- नृत्य एवं नृत्त का लक्षण, नाट्य से उसकी भिन्नता तथा उसके भेदों को समझा सकेंगे
- बता सकेंगे कि रूपक के दस भेद तथा उनके भेदक तत्त्व क्या है?
- समझा पाऐंगे कि कथावस्तु के भेद किस प्रकार होते है?
- बता सकेंगे कि अर्थप्रकृति क्या है? तथा उसके कितने भेद होते हैं?
- समझा कि कार्यावस्था क्या होती है तथा ये कितनी हैं?
- बता सकेंगे कि कि पंच सन्धियाँ तथा उनके अंग कितने और कौन-कौन से होते हैं?
- बता पाऐंगे कि अर्थोपक्षेपक किसे कहते हैं तथा ये कितने प्रकार के होते हैं?
- नाट्योक्ति के आधार पर कथावस्तु के भेद जान पाऐंगे

- बता सकेंगे कि कि जनान्तिक और अपवारित क्या है?
- बता पाएगे कि आकाशभषित क्या होता है?

5.3: कारिका/कारिकांश व्याख्या भाग

5.3.1 "दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः से वस्तु नेतारस्तेषां भेदकः तक

"दशरूपानुकारेण यस्य माद्यन्ति भावकाः ।

नमः सर्वविदे तस्मै विष्णवे भरताय च।।"

सन्दर्भः- यह कारिका धनंजय द्वारा रचित दशरूपकम् के मंगलाचरण से ली गई है।

प्रसंगः- धनंजय विष्णु एवं भरतमुनि के प्रति अपनी श्रद्धा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि

अर्थः- उन सर्वज्ञ विष्णु भगवान को नमस्कार है जिनके दस रूपों (दशावतार) के द्वारा भक्त जन प्रसन्न हो जाते हैं। भरतमुनि के सन्दर्भ में इस कारिका का अर्थ है-नाट्य विद्या के पूर्ण ज्ञाता उन भरतमुनि को नमस्कार है जिनके दस रूपों (नाटकादि दस रूपकों) के अभिनय से रसिक जन प्रसन्न हो जाते हैं।

व्याख्या: दशावतार धारण करने वाले विष्णु को नमन करके जहाँ धनंजय ने ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण की परम्परा का निर्वाह किया है वहीं दूसरी ओर दस रूपकों के लक्षणों आदि का अपने 'नाटयशास्त्र' में निर्देश करने वाले भरतमुनि के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है क्योंकि नाट्यशास्त्र ही दशरूपकम् का आधार है।

ऽ आगे की कारिकाओं/कारिकांशों में संदर्भ सभी में पहली कारिका के समान ही होगा।

"व्याकीर्णे मन्दबुद्धीनां जायते मतिविभ्रमः।

तस्यार्थस्तत्पदैस्तेन संक्षिप्य क्रियतेऽ´जसा।।"

सन्दर्भः- यह कारिका दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश से उद्धृत है।

प्रसंगः- यहाँ दसरूपकम् के स्रोत की ओर संकेत करते हुए धनंजय कहते हैं कि-

अर्थः- भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में नाट्य सम्बन्धी लक्षण यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं इसलिए मन्द बुद्धि वाले लोगों को नाट्य के लक्षणों को समझने में बुद्धि भ्रम हो जाता है। अतः उस नाट्यशास्त्र के विषय को यहाँ संक्षेप में उसी के शब्दों के द्वारा सरल रीति से निरूपित किया जा रहा है।

व्याख्या:- भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्य के लक्षण अलग-अलग अध्यायों में बताएँ है जिससे मन्द बुद्धि के लोगों को नाट्य के लक्षणों को समझने में कठिनाई होती है। अतः धनंजय ने भरतमुनि के नाट्य सिद्धान्तों को उन्हीं के शब्दों में संक्षेप में एक ही स्थान पर एकत्रित कर दिया है। यहाँ स्पष्ट है कि दशरूपकम् का आधार भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। दशरूपकम में नाट्यशास्त्र में कहे गये सिद्धान्तों को प्रायः उन्हीं के शब्दों में एक साथ ग्रहीत किया गया है। धनंजय ने 'नाट्य' के विषय में कोई नई बात नहीं कही है। उन्होंने तो केवल नाट्यशास्त्र के विभिन्न अध्यायों में फैले हुए नाट्य सिद्धान्तों को अपने दशरूपकम् में संग्रहीत मात्र किया है।

"अवस्थानुकृतिर्नाट्य"

प्रसंग:- दशरूपकम के रचयिता नाट्य के स्वरूप का चित्रण करते हुए उसका लक्षण देते हैं कि-

अर्थ:- अवस्था का अनुकरण करना ही नाट्य कहलाता है।

व्याख्या:- जहाँ रूपक में वर्णित नायकों की सुख दुःख आदि अवस्थाओं का आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य-इन चार प्रकार के अभिनयों से नट के द्वारा अनुकरण किया जाता है, वह नाट्य कहलाता है। आंगिक अनुकरण का तात्पर्य पात्रों की शारीरिक चेष्टाएँ और हाव-भाव आदि है। वाचिक से तात्पर्य उन पात्रों का परस्पर वार्तालाप है। आहार्य का अर्थ है नायक आदि की वेशभूषा को अपनाना तथा सात्विक अभिनय नायकादि के मनोविकार एवं प्रवृत्ति आदि का अनुकरण करना है। नट अपने अभिनय कौशल के द्वारा नायकादि की सुख-दुख आदि अवस्थाओं का ऐसा अनुकरण करता है कि सामाजिकों को नायक और नट में एकरूपता प्रतीत होने लगती है। वास्तव में नट का कार्य (अभिनय) ही नाट्य है। यह कार्य नायकादि पात्रों की अवस्थाओं के कुशलतापूर्वक अनुकरण द्वारा किया जाता है। नटों के द्वारा अभिनेय होने के कारण ही यह नाट्य कहलाता है।

"रूपं दृश्यतयोच्यते"

प्रसंग:- ग्रन्थकार नाटक और रूप की एकता स्थापित करते हुए विवेचन करते हैं।

अर्थ:- देखने योग्य होने के कारण यह नाट्य 'रूप' भी कहलाता है।

व्याख्या:- नाटक दृश्य काव्य होने के कारण रंगमंच पर अभिनय द्वारा दिखाया जाता है। जिस प्रकार हम हरे, नीले, काले, पीले आदि रंगों को देखते हैं, वह हमारे नेत्रों के विषय होते हैं और नेत्रों का ही विषय रूप कहलाता है। अतः नाटक रूप भी कहा जाता है। धनंजय के अनुसार रूप की व्युत्पत्ति इस प्रकार है- रूप्येत दृश्यते इति रूपः।"

"रूपकं तत्समारोपात्"

प्रसंग:- दशरूपकार धनंजय ‘रूपक‘ शब्द का विवेचन करते हुए अपने विचार प्रकट करते हैं।

अनुवादः- नट पर राम आदि का आरोप किये जाने के कारण नाट्य रूपक कहलाता है।

व्याख्याः- इसका तात्पर्य यह है कि मुख में चन्द्रमा का आरोप किये जाने से ‘मुखचन्द्र‘ में रूपक होता है। उसी प्रकार नट में दुष्यन्त आदि के रूप का आरोप होने के कारण नाट्य को भी रूपक कहते हैं। इस प्रकार एक ही (दृश्य-काव्य) के लिए प्रयुक्त होने वाले नाट्य रूप और रूपक इन तीनों शब्दों का ‘इन्द्र, पुरन्दर तथा शक्र अदि के समान प्रवृत्ति-निमित्ति का भेद‘ स्पष्ट किया गया है। रूपक, रूपम् एवं रूपकम् (रूप$कम) या रूपयति इति अथवा आरोपयति इति। नट में दुष्यन्त आदि (अनुकार्य) के रूप का आरोप करना ही रूपक शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त है।

(प्रवृत्ति-निमित्तः- जिस निमित्त से किसी अर्थ में शब्द का प्रयोग किया जाता है वह शब्द प्रवृत्ति कहलाता है, जैसे-गोत्व के कारण गाय के लिए ‘गो‘ शब्द का प्रयोग होता है। अतः ‘गोत्व‘ गो शब्द का प्रवृत्ति- निमित्त है।)

“दशधैव रसाश्रयम्”

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।

व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्कहामृगा इति।।

प्रसंगः- धनंजय ने रस का परिपाक करने वाले रूपक भेदों का यहाँ पर उल्लेख किया है।

अर्थः- रस पर आश्रित यह रूपक दस ही प्रकार का होता है (1) नाटक (2) प्रकरण (3) भाण (4) प्रहसन (6) डिम (6) व्यायोग (7) समवकार (8) वीथि (9) अंक (10) ईहामृग।

व्याख्याः- शुद्ध नाट्य केवल दस ही होते हैं इससे अधिक नहीं। इस अवधारणा के लिए यहाँ एव (ही) शब्द का प्रयोग किया गया है। कुछ आचार्या का मानना है कि नृत्य के सात भेद-डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक और काव्य ये नाट्य के एक भेद भाण की तरह होते हैं। अतः इन्हें भी रूपकों के अन्तर्गत गिनना चाहिए। इस मत का निराकरण करने के लिए ही यहाँ ‘दशधैव‘ कहा गया है। दूसरी बात यह है कि नृत्य और नाट्य बिल्कुल अलग-अलग है। अतः नृत्य भेदों को नाट्य में नहीं गिना जा सकता। नाट्य में पात्रों का सर्वांगीण चित्रण करते हुए रस का परिपाक किया जाता है। नृत्य में भावों की ही अभिव्यंजना रहती है। नाट्य रसाश्रित होते हैं।

“अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्”

प्रसंगः- नृत्य के विषय में अपने विचारों को ग्रन्थाकार ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

अर्थ:- भाव पर अश्रित होने वाला नृत्य नाटक या रूपक से भिन्न होता है।

व्याख्या:- यहाँ 'भावाश्रय' शब्द से विषय का भेद और नृत्य शब्द से आङ्गिक अभिनय की प्रचुरता दिखाई गई है। नृत्य शब्द नृत् धातु से बना है। नृत् धातु का अर्थ है 'गात्र विक्षेप' अर्थात् अङ्गों का चलाना। नृत्य करने वाले के लिए लोक में नर्तक शब्द का प्रयोग किया जाता है। अतः नृत्य नाटक आदि रूपकों से भिन्न होता है।

स्पष्टतः रूपक या नाटक आदि में वाक्यार्थ रूप अभिनय द्वारा रस की निष्पत्ति होती है। नाट्य में सात्विक अभिनय की बहुलता होती है। आंगिक अभिनय कम होता है। नृत्य में केवल आंगिक अभिनय होता है। नाट्य रसाश्रित होता है, नृत्य भावाश्रित। अतः दोनों में विषयगत भिन्नता है।

"नृत्तं ताललयाश्रम्"

प्रसंग:- नृत्त का विश्लेषण करते हुये धनंजय कहते हैं कि-

अर्थ:-नृत्त ताल और लय पर आश्रित होता है।

व्याख्या:- हाथ से ताली बजाना इत्यादि ताल है और इसी ताल को दुरत, मध्यम और विलम्बित रूप में बजाया जाना ही लय है। केवल इन्हीं ताल एवं लय पर आश्रित होने वाला गात्र विक्षेप (अंगों का संचालन) नृत्त कहलाता है। इसमें किसी प्रकार का अभिनय नहीं होता। भावों की अभिव्यक्ति भी इसमें नहीं होती। केवल गात्र विक्षेप इसमें होता है।

"आद्यं पदार्थभिनयो मार्गो देशी तथा परम्।"

प्रसंग:- नृत्य तथा नृत्त के भेदों का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं कि-

अर्थ:-इनमें से पहला 'नृत्य' पदार्थाभिनय रूप है जो मार्ग कहलाता है और दूसरा 'नृत्त' देशी कहलाता है।

व्याख्या:-नृत्य और नृत्त दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति नृत् धातु से हुयी है जिसका अर्थ है, गात्र विक्षेप अर्थात अंग संचालन। नृत्य में शास्त्रीय परम्परा के अनुसार पद के अर्थ का अभिनय किया जाता है। पूर्व निर्धारित परम्परानुसार होने के कारण नृत्य को मार्ग भी कहा जाता है। नृत्त में किसी प्रकार का अभिनय नहीं होता। इसमें होने वाला अंगविक्षेप शास्त्रीय पद्धति के अनुसार न हो कर केवल लोक परम्परा के अनुसार होता है। इसीलिए नृत्त को देशी भी कहा जाता है।

"मधुरोद्धतभेदेन तद् द्वयं द्विविधं पुनः।"

लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम्।।

प्रसंग:-इस कारिका से नृत्य तथा नृत्त के भेदों का निरूपण किया गया है।

अर्थ:-वे दोनों नृत्य (मार्ग) और नृत्त (देशी) मधुर तथा उद्धत के भेद से पुनः दो-दो प्रकार के होते हैं - 1. मधुर नृत्य, 2. उद्धत नृत्य तथा 1. मधुर नृत्त 2. उद्धत नृत्त इन दोनो भेदो का लास्य एवं ताण्डव रूप से नाटकादि में प्रयोग होता है।

व्याख्या:- सुकुमार नृत्य और नृत्त को लास्य के नाम से जाना जाता है तथा उद्धत नृत्य एवं उद्धत नृत्त को ताण्डव के नाम से जाना जाता है। लास्य का प्रयोग स्त्री के द्वारा किया जाता है और ताण्डव का प्रयोग पुरूष द्वारा। रूपक में इनका आवश्यकता के अनुसार प्रयोग होता है जैसे-मधुर भावों के अभिनय हेतु लास्य नृत्य का और मधुर रस के उद्बोधन के लिए लास्य नृत्त का उपयोग होता है। इसी तरह उद्धत भावों के अभिनय हेतु ताण्डव नृत्य का और उद्धत रस के उद्बोधन के लिए ताण्डव नृत्त का उपयोग नाटककार करते हैं। ये दोनों ही नाटक की शोभा बढ़ाते हैं किन्तु नृत्य भावों के अभिनय द्वारा और नृत्त शोभा से।

"वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः"

प्रसंग:- रूपक के प्रमुख भेदक तत्वों का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थ:- तेषां अर्थात् नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथि, अंक और ईहामृग इन दस रूपकों के भेदक तत्व तीन हैं वस्तु, नेता, और रस।

व्याख्या:- रूपक के सभी भेदों में अभिनय होता है। रसानुभूति होती है और ये सभी दृश्य होते हैं। अतः इन रूपकों की एक दूसरे से भिन्नता किस आधार पर प्रतिपादित की जाय? इस प्रश्न के समाधान स्वरूप ही धनंजय ने 'वस्तु' अर्थात कथानक, 'नेता' अर्थात नायक और आस्वाद्य 'रस' के आधार पर रूपकों की एक दूसरे से भिन्नता प्रतिपादित की है।

5.3.2 "वस्तु च द्विधा"से अवस्थाः पंच... तक

"तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासंगिकं विदुः।"

प्रसंग:- ग्रंथकार धनंजय कथावस्तु भेदों का वर्णन करते हैं।

अर्थ:- वस्तु दो प्रकार की होती है, उनमें मुख्य कथावस्तु को अधिकारिक और अंगरूप वस्तु को प्रासङ्गिक कहते हैं।

व्याख्या:- वस्तु के भेद स्पष्ट करते हुए नाट्य की वस्तु दो प्रकार की कही गई है। प्रधान कथावस्तु आधिकारिक कहलाती है, जैसे-रामायण में राम और सीता का वृत्तान्त है। उस प्रधान कथावस्तु की अंगरूप वस्तु प्रासङ्गिक है-जैसे -रामायण में ही विभीषण तथा सुग्रीव आदि का वृतान्त।

“अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।

तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिम्।।”

प्रसंग:- आधिकारिक कथावस्तु का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं।

अर्थः- अधिकार का अर्थ है फल पर स्वामित्व। उस फल को जो स्वामी होता है वह अधिकारी कहलाता है। उस अधिकारी के द्वारा फलप्राप्ति पर्यन्त किया हुआ या उससे सम्बद्ध इतिवृत्त आधिकारिक इतिवृत्त कहलाता है।

व्याख्याः-फल के प्रति स्वस्वामी भाव सम्बन्ध (फल का स्वामी) होना अधिकार कहलाता है और फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है। अर्थात् नाटक का फल ही अधिकार है और उस फल का भोक्ता अर्थात नायक अधिकारी है। नाटक के नायक के द्वारा फल की प्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त या कथा ही आधिकारिक वस्तु कही जाती है।

“प्रासङिग्क परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।”

प्रसंगः-नाट्य की प्रासंङ्गिक कथावस्तु के विषय में धनंजय वर्णन करते हैं-

अर्थः- दूसरे (प्रधान प्रयोजन) की सिद्धि के लिए होने वाली जिस कथा का प्रसंग से अपना प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है, वह प्रासंगिक कथा है।

व्याख्याः-“प्र्रसङ्गतः निर्वृत्तम् प्रासङ्गिकम” अर्थात् प्रसङ्ग से होने वाला। यह कथावस्तु अधिकारिक कथा की फलसिद्धि में सहायक होती है, किन्तु प्रसंग से इसका अपना प्रयोजन भी सिद्ध हो जाया करता है। उदाहणार्थ रामकथा में राम की कथा मुख्य है, उसका फल रावण वध तथा सीता की प्राप्ति है। सुग्रीव की कथा इस प्रधान फल की प्राप्ति में उपकरण है, किन्तु उस कथा का अपना फल बालि-वध और राज्य-लाभ के रूप में प्रसंग से सिद्ध हो जाता है।

“सानुबन्ध पताकाख्यं प्रकरीच प्रदेशभाक्।”

प्रसंगः-प्रासङ्गिक कथावस्तु के भेदों का विश्लेषण करते हुए धनंजय स्पष्ट करते हैं।

अर्थः-इसमें दूर तक चलने वाला प्रासंगिक वृत्त पताका कहलाता है और एक प्रदेश में रहने वाला प्रकरी।

व्याख्याः-जो वृत्त (प्रधान इतिवृत्त के साथ) दूर तक चलता है वह पताका कहलाता है जैसे सुग्रीव आदि का वृतान्त (जो रामकथा के साथ दूर तक चलता है), इसलिए इसे पताका कहते हैं। जो

प्रासंगिक वृत्त थोड़ी दूर तक चलता है, वह प्रकरी कहलाता है जैसे रामायण में श्रवण, शबरी आदि का वृत्तान्त है।

"प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम।्

पताकास्थानकं तुल्यसंविधनविशेषणम्।।"

प्रसंग:-दशरूपककार पताकास्थानक का विवेचन करते हैं।

अर्थ:- जो किसी अन्य वस्तु के कथन द्वारा आगन्तुक प्रस्तुत वस्तु का सूचक होता है, वह पताकास्थानक कहलाता है। वह समान इतिवृत्त (संविधान) तथा समान विशेषण के भेद से दो प्रकार का होता है।

व्याख्या:-प्राकरणिक, किन्तु आगे आने वाले अर्थ का सूचक इतिवृत्त, जो पताका के समान होता है पताका स्थानक कहलाता है। वह अन्योक्ति तथा समासोक्ति के भेद से दो प्रकार का है-(1) समान इतिवृत्त के द्वारा प्रस्तुत आगे आने वाले अर्थ का सूचक (2) सम-विशेषणों के द्वारा। कवि अपने रूपक में कथा प्रसंग में अवसर प्राप्त होने पर भावी (भविष्य में होने वाली) घटना का संकेत कर देता है। यह संकेत समान घटनाओं के आधार पर या समान विशेषणों के आधार पर होता है। प्रथम में अन्योक्ति या अप्रस्तुत प्रशंसा का आधार लिया जाता है और द्वितीय में समासेक्ति का (अर्थात् तुल्य विशेषणों के आधार पर)। यहाँ 'आगन्तुक अर्थ' का तात्पर्य आगे आने वाले इतिवृत्त से है।

"प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।

प्रख्यातमितिहासादेरूत्पाद्यं कविकल्पितम्।।

मिश्रं च संकरात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः।"

प्रसंग:-इस कारिका में स्रोत के आधार पर इतिवृत्त के भेद-प्रभेदों का निरूपण करते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थ:-वह तीन प्रकार (आधिकारिक एवं पताका-प्रकरी) का इतिवृत्त भी फिर (1) प्रख्यात (2) उत्पाद्य (3) मिश्र भेद से तीन-तीन प्रकार का होता हे। इतिहास आदि से लिया गया इतिवृत्त प्रख्यात, कवि द्वारा (स्वयं) कल्पित उत्पाद्य तथा इन दोनों के मिश्रण से युक्त इतिवृत्त मिश्र कहलाता है। ये सभी इतिवृत्त दिव्य, मर्त्य तथा दिव्यादिव्य भेद से भी भिन्न-भिन्न होते हैं।

व्याख्या:- इसे इस प्रकार समझा जा सकता है-इतिहास-पुराण आदि में प्रसिद्ध कथानक प्रख्यात कथा है यथा-राम कथा कृष्ण कथा। कवि द्वारा कल्पित कथानक उत्पाद्य कथा है यथा मालतीमाधव

की कथा। प्रख्यात एवं उत्पाद्य का मिश्रण जिस कथानक में हो वह मिश्र कथा है यथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथा। इस प्रकार नौ प्रकार की कथा-वस्तु पुनः दिव्य दिव्यादिव्य एवं मर्त्य भेद से भिन्न-भिन्न होती है। जिसमें दैवी पात्र तथा दैवी कथा हो वह दिव्य, जिसमें दैवी तथा मानवी दोनों प्रकार की मिश्रित कथा तथा पात्र हो वह दिव्यादिव्य तथा जिसमें केवल मानवी पात्र तथा कथा हो वह मर्त्य इतिवृत्त होता है।

"स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुबीजं विस्तार्यनेकधा।"

प्रसंग:- ग्रन्थकार इतिवृत्त में धर्मार्थकामरूप फल की प्राप्ति के उपायों का विश्लेषण करते हुए सर्वप्रथम बीज के विषय में कहते हैं।

अर्थ:-उस फल का निमित्त बीज कहलाता है जिसका नाट्यारम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेत किया जाता है और जो आगे चलकर अनेक प्रकार से विस्तार को प्राप्त होता है।

व्याख्या:-नाट्य के धर्मार्थकामरूप फल की प्राप्ति के लिए नाट्यारम्भ में फल का 'किसी बीज के समान' सूक्ष्म संकेत किया जाता है वही बीज है। जैसे रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन को रत्नावली की प्राप्ति फल है। उसका हेतु है दैव की अनुकूलता से युक्त यौगन्धरापण का व्यापार। इसे नाट्यारम्भ में विष्कम्भक में बीज (सूक्ष्म) रूप से रखा गया है।

"बीजबिन्दुपताकारव्यप्रकरीकार्यलक्षणः।"

अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः।।

प्रसंग:-दशरूपककार प्रस्तुत नाटिका में पाँच अर्थप्रकृतियों का विवेचन करते हैं।

अर्थ:-बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक ये पाँच अर्थप्रकृतियाँ कही गई है।

व्याख्या:- अर्थप्रकृति-यहाँ अर्थ शब्द फल या प्रयोजन का वाचक है। प्रकृति शब्द का अर्थ है हेतु या कारण, इस प्रकार रूपकों में फल की सिद्धि के उपाय 'अर्थप्रकृतियाँ' कहलाती हैं। अभिनव भारती और नाट्य-दर्पण में भी अर्थप्रकृतियों को 'उपाय' कहा गया है। अभिनव-भारती और नाट्य-दर्पण के अनुसार इन पाँच उपायों में से बीज और कार्य दोनों जड़ (अचेतन) है तथा बिन्दु, पताका और प्रकरी तीनों चेतन हैं किन्तु यह चेतन-अचेतन का विभाग उचित नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः बीज, बिन्दु और कार्य ये तीन आवश्यक अर्थप्रकृतियाँ मानी गई हैं पताका और प्रकरी का सभी रूपकों में होना अनिवार्य नहीं है। स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि ये, बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य, फल प्राप्ति के उपाय या हेतु है।

"अवस्थाःपंच कार्यस्य फलार्थिभिः।

आरम्भयत्न प्राप्त्याशानियताप्ति फलागमः।।"

प्रसंग:-ग्रन्थकार ने रूपक में फल प्राप्ति पर्यन्त किये जाने वाले नायक के कार्य की अवस्थाआंे का उल्लेख इस कारिका में किया है।

अर्थ:- नाट्य के प्रचुर फल की इच्छा वाले व्यक्ति के द्वारा आरम्भ किये गये कार्य की पाँच अवस्थाएँ होती हैं-(1) आरम्भ (2) यत्न (3) प्राप्त्याशा (4) नियताप्ति (5) फलागम।

व्याख्या: (1) आरम्भ-प्रचुर फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र होना ही आरम्भ कहलाता है।

(2) प्रयत्न: फल के प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त वेगपूर्वक उद्योग करना ही प्रयत्न कहलाता है।

(3) प्राप्त्याशा: उपाय के होने तथा विघ्न की शंका होने से जो फलप्राप्ति की सम्भावना मात्र होती है, वह प्राप्त्याशा कही जाती है।

(4) नियताप्ति:विघ्नों के अभाव से फल की निश्चित रूप से प्राप्ति ही नियताप्ति कहलाती है।

(5) फलागम: पूर्णरूप से फल की प्राप्ति होना ही फलागम कहलाती है। कार्यावस्थाओं के स्वरूप के विवेचन से यह स्पष्ट है कि आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम, फल को लक्ष्य करके किए गए कार्य अर्थात् नायक के व्यापार की पाँच अवस्थाएँ हैं।

5.3.3 अर्थप्रकृतयः पंच से . सिद्धामन्त्रणतो....तक

"अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्था समन्विताः।

यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंचन्धयः।।"

प्रसंग:-इस कारिका के द्वारा धनंजय अर्थप्रकृतियों एवं कार्यावस्थाओं के संयोग से बनने वाली रूपक की पांच सन्धियों के विषय में कहते हैं-

अर्थ:-पाँच अर्थप्रकृतियाँ क्रमशः पाँच अवस्थाओं से समन्वित होकर क्रम से मुख अदि पाँच सन्धियाँ बनती हैं।

व्याख्या:-बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य इन पाँच अर्थ प्रकृतियों का क्रमशः आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम-इन पाँच कार्यावस्थाओं के साथ योग होने पर क्रमशः मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण ये पाँच सन्धियाँ बनती हैं। इस तरह एक-एक अर्थ प्रकृति और एक-एक कार्यावस्था के मिलने से ये सन्धियाँ होती है यथाः-

1. बीज (अर्थप्रकृति)+आरम्भ (कार्यावस्था)त्र मुखसन्धि

2. बिन्दु$प्रयत्नत्र प्रतिमुख सन्धि

3. पताका$प्राप्त्याशात्र गर्भ सन्धि

4. प्रकरी नियताप्तित्र विमर्श सन्धि

5. कार्य$फलागमत्र निर्वहण सन्धि

प्रत्येक रूपक में पताका एवं प्रकरी का होना अनिवार्य नहीं। वह हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती। अतः तदनुरूप गर्भ-सन्धि में पताका हो या न हो प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था का होना जरूरी है। इसी तरह विमर्श सन्धि में प्रकरी हो या न हो नियताप्ति कार्यावस्था अवश्य होनी चाहिए।

"अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति"

प्रसंग:-प्रस्तुत कारिका में मुखसन्धि का लक्षण देते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थ:- जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन एवं रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति हो वहीं मुखसन्धि होती है। बीज नामक अर्थप्रकृति एवं आरम्भ नामक कार्यावस्था के योग से बनने वाली मुख सन्धि के बारह अंग होते हैं।

व्याख्या:-सन्धि पंचक में जो पहली सन्धि है वह मुख सन्धि के नाम से जानी जाती है। इसमें प्रारम्भावस्था तथा बीज का समन्वय देखा जाता है। इसमें अनेकानेक प्रयोजनों एवं श्रृंगार आदि अनेक रसों की सिद्धि कराने वाली बीज की उत्पत्ति दर्शाई जाती है। इस तरह बीज, आरम्भ एवं अनेकानेक रस-प्रयोजनों से अन्वित सन्धि मुखसन्धि होती है। इस सन्धि के बारह अंग होते हैं।

"लक्ष्यालक्ष्ययोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।

बिन्दु प्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश।।"

प्रसंग:-इस कारिका में प्रतिमुख सन्धि के लक्षण को इंगित किया गया है।

अर्थ:-उस बीज का कुछ दृश्य एवं कुछ अदृश्य रूप में प्रकाशन प्रतिमुख सन्धि है। इसका निर्माण बिन्दु नामक अर्थप्रकृति एवं प्रयत्न नामक कार्यावस्था के योग से होता है। इसके तेरह अंग होते हैं।

व्याख्या:-मुख सन्धि में स्थापित किए गए बीज का कुछ दिखाई देना (किसी पात्र पर प्रकट हो जाना) और कुछ अलक्ष्य रहना (किसी पात्र के लिए प्रकट न होना) ही प्रतिममुख सन्धि है। पहले मुख सन्धि में बीज स्थापित किया जाता है। उसे पोषित होने के लिए उचित वातावरण मिलता है। इस

पोषण द्वारा प्रतिमुख सन्धि में आकार वह बीज प्रस्फुटित होने लगता है। जिस प्रकार सर्वप्रथम प्रस्फुटित हुए बीज (अन्नादि) का अंकुर कुछ अस्पष्ट सा होता है ठीक उसी प्रकार मुख सन्धि में डाला गया नाट्यफल के बीज का अंकुर कुछ अस्पष्ट रूप में प्रतिमुख सन्धि में उद्भासित होता है।

"गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।

द्वादशांगः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः।।"

प्रसंग:-इस कारिका में धनंजय ने गर्भ सन्धि का विवेचन किया है-

अर्थ:-पहले दिखाई दिए और बाद में नष्ट हुए बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाना ही गर्भ सन्धि है। इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति हो चाहे न हो प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था अवश्य होती है। इस सन्धि के बारह अंग होते है।

व्याख्या:-जो बीज प्रतिमुख सन्धि में लक्ष्यालक्ष्य रूप में रहता है वही बीज गर्भ सन्धि में विशेष प्रकार से उद्भिन्न (प्रकटित) होने के कारण विघ्नों से कभी नष्ट होता है, फिर उसका अन्वेषण किये जाने से उसकी प्राप्ति होती है, फिर उसका विच्छेद (वियोग) हो जाता है। फिर प्राप्त होता है, फिर नष्ट होता है, फिर से उसका अन्वेषण किया जाता है। इस प्रकार दिखाई दिए फल के लुप्त होने और प्राप्त होने की स्थिति गर्भ सन्धि में बनी रहती है। इससे फल प्राप्ति की संभावना (प्राप्त्याशा) तो बनी रहती है, किन्तु फल प्राप्ति का ऐकान्तिक (दृढ़) निश्चय नहीं हो पाता। यही इस सन्धि की विशेषता है। इसमें पताका का होना आवश्यक नहीं है। इसके बारह अंग माने गए हैं।

"अभूताहरणंमार्गो रूपोदाहरणे क्रमे।

संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा।।

उद्वेगसम्भ्रमाक्षेपाः लक्षण च प्रणीयते।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार गर्भ सन्धि के अंगों का उल्लेख करते हैं-

अर्थ:-इस गर्भ सन्धि के-अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, सम्भ्रम और आक्षेप, ये बारह अंग कहे गए हैं।

व्याख्या:-इनमें कपटयुक्त वचन 'अभूताहरण' है, तत्वगर्भित कथन 'मार्ग' है, सन्देहास्पस्पद वचन 'रूप', उत्कर्ष बताने वाले वचन 'उदाहरण', अभीष्ट वस्तु लाभ का चिन्तन 'क्रम' होता है। इसी तरह जहाँ साम दान युक्त कथन हो वहाँ संग्रह, जहाँ किन्हीं हेतुओं के आधार पर नायकादि द्वारा तर्क किया जाय वहाँ 'अनुमान' होता है। प्रयत्न पूर्वक धोखा देने को 'अधिबल',क्रोधपूर्ण वचन को

'तोटक', शत्रुजन्य भय को 'उद्वेग' शंका-त्रास होने को 'सम्भ्रम' तथा गर्भ बीज की स्पष्टता को 'आक्षेप' कहा जाता है।

"संरब्धं तोटकं वचः।"

प्रसंग:-यहाँ धनंजय ने गर्भ सन्धि के एक अंग तोटक का लक्षण दिया है।

अनुवाद:-क्रोध युक्त वचन तोटक है।

व्याख्या:-क्रोध-हर्ष एवं अन्य कारणों से उत्पन्न आवेश (क्रोध) युक्त वचन ही तोटक है। तोटक कहीं अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति का कारण होता है और कहीं प्राप्ति का कारण भी होता है। क्योंकि यह आवेग पूर्ण वचन हृदय को तोड़ने वाला (दुःख पहुँचाने वाला) होता है इसलिए इसे तोटक कहा जाता है।

"तोटकस्यान्याथाभावं बु्रवतेऽधिबलं बुधाः।"

प्रसंग:-यहाँ गर्भ सन्धि के अंग अधिबल का विश्लेषण किया गया है।

अर्थ:-विद्वानों ने तोटक के विपरीत भाव को 'अधिबल' कहा है।

व्याख्या:-धनंजय ने आवेश युक्त (क्रोधयुक्त) वचन को तोटक कहा अतः क्रुद्ध वचन का विपरीत (उल्टा) विनम्र एवं दीन वचन ही अधिबल है। जैसे रत्नावली नाटिका में राजा उदयन की यह उक्ति- "हे देवि! इस तरह प्रत्यक्ष देखे गए अपराध वाला मैं क्या कह सकता हूँ? हे देवि लज्जित होकर मैं अपना सिर तुम्हारे चरणों पर रखकर तुम्हारे पैरों की महावरजन्य लालिमा को तो दूर कर सकता हूँ किन्तु तुम्हारे मुख की क्रोधजन्य लालिमा तो तभी दूर हो सकती है जब तुम मुझे क्षमा कर दोगी।"

"क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।

गर्भ निर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार अवमर्श या विमर्श सन्धि का लक्षण इस प्रकार देता है-

अर्थ:-जहाँ क्रोध से, व्यसन से या विलोभन से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाता है तथा गर्भ सन्धि के द्वारा उद्भिन्न (प्रकट) बीज रूपी अर्थ का सम्बन्ध दिखाया जाता है वहाँ अवमर्श सन्धि होती है।

व्याख्या:-अवमर्श का अर्थ है ऊहापोह (पर्यालोचन) करना। इस ऊहापोह का कारण क्रोध, व्यसन या लोभ आदि होता है। जहाँ "यह फल होना चाहिए" इस प्रकार अवश्यम्भावी फलप्राप्ति का निश्चय

हो जाता है। वहाँ अवमर्श सन्धि होती है। इसमें नियताप्ति नामक कार्यावस्था अवश्य होनी चाहिए। क्रमशः प्राप्त प्रकरी नहीं भी हो सकती। साथ ही इसमें गर्भ सन्धि से प्रकाशित बीजार्थ का सम्बन्ध पाया जाता ह

"सिद्धामन्त्रणतो भविदर्शिका स्यात्प्ररोचना।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार अवमर्श सन्धि के अति महत्वपूर्ण अंग प्ररोचना के विषय में बता रहें हैं-

अर्थ:-जहाँ कोई सिद्ध पुरूष किसी भावी घटना को ऐसे सूचित करे जैसे कि वह सिद्ध ही हो गई हो। वहाँ प्ररोचना नामक अवमर्श सन्धि का अंग होता है।

व्याख्या:-नाटक आदि के अन्त में जब किसी सिद्धजन के द्वारा भविष्य में घटित होने वाली घटना की सूचना पहले ही दे दी जाती है वहाँ प्ररोचना होता है। जैसे कि वेणीसंहार नाटक में पांचालक (युद्ध क्षेत्र से आया हुआ दूत) युधिष्ठिर के पास आकर सिद्ध पुरूष 'श्रीकृष्ण' के वचनों से निकट भविष्य में होने वाले कौरवों के विनाश तथा इसके फलस्वरूप द्रौपदी के केशसंयमन रूप कथांश को सिद्ध कार्य के रूप में प्रस्तुत करता है।

5.3.4 बीजवन्तो............से रहस्य कथ्यते.....तक

"बीजवन्तो मुखाद्यार्थाः विप्रकीर्णा यथायथम्।

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्॥"

प्रसंग:-यहाँ धनंजय पंच संधियों में अंतिम कही जाने वाली निर्वहण सन्धि का लक्षण निर्देश करते हैं-

अर्थ:-रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि सन्धियों में यत्र-तत्र फैले हुए आरम्भ आदि अर्थों का एक प्रधान प्रयोजन के लिए एक साथ संग्रह करना या समेटा जाना ही निर्वहण सन्धि है।

व्याख्या:-निर्वहण सन्धि वह है जिसमें नाटकीय कार्य की प्रथम चार अवस्थाओं के प्रदर्शन में समावेशित सम्पूर्ण सामग्री को अर्थात् पूर्व अवस्थाओं एवं पूर्व प्रदर्शित सन्धियों में प्रयुक्त समस्त साधनों को उस एक प्रयोजन में सहयोगी के रूप में दर्शाया जाता है, जिसकी प्राप्ति नायक को कराना नाटककार का अभीष्ट है।

सरल शब्दों में कहे तो बीज से युक्त मुख आदि अर्थ, जो पूर्व कथित चारों सन्धियों में यत्र-तत्र फैले हुए हैं, जब एक अर्थ (प्रयोजन) के लिए एक साथ समेटे जाते हैं तो वही निर्वहण सन्धि है। इस सन्धि में कार्य नामक अर्थप्रकृति तथा फलागम नायक कार्यावस्था का योग होता है।

"द्वेधा विभागः कर्त्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।

सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्।।"

प्रसंग:-प्रस्तुत कारिका में दशरूपककार धनंजय कथावस्तु की योजना की दृष्टि से इतिवृत्त का विभाजन बताते हैं-

अर्थ:-सम्पूर्ण कथावस्तु का दो प्रकार से विभाजन करना चाहिए। कथावस्तु के कुछ अंश केवल सूच्य होते हैं (उन्हंे रंगमंच पर न दिखाकर उनकी केवल सूचना मात्र दे दी जाती है) दूसरे अंश दृश्य एवं श्रव्य होते हैं।

व्याख्या:-नाट्यशास्त्र के अनुसार कथावस्तु के दो खण्ड हैं। इनमें एक है कथावस्तु का सरस अंश, जिसे अंकों के अन्तर्गत रंगमंच पर दिखाया जाता है यह दृश्य एवं श्रव्य होता है है। दूसरा रंगमंच पर न दिखाया जा सकने वाला नीरस कथांश सूच्य मात्र होता है जिसकी विभिन्न अर्थोपक्षेपकों के द्वारा सूचना मात्र दे दी जाती है।

"अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।

विष्कम्भचूलिकाङ्कास्य अङ्कावतारप्रवेशकैः।।"

प्रसंग:-ग्रन्थकार यहाँ सूच्य इतिवृत्त के सूचक अर्थोपक्षेपकों का नाम निर्देश करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-(1) विष्काम्भक (2) प्रवेशक (3) चूलिका (4) अङ्कास्य और (5) अङ्कावतार इन पाँच अर्थोपक्षेपकों द्वारा सूच्य इतिवृत्त की सूचना देनी चाहिए।

व्याख्या:-नाटकार नाटक के सरस कथांश को तो अंकों के अन्तर्गत रंगमंच पर प्रस्तुत कर देता है किन्तु कुछ कथांश रंगमंच पर दिखाने योग्य नहीं होता पर दर्शकों (सामाजिकों) के लिए उसे जानना आवश्यक होता है अन्यथा कथा सूत्र छूट जाएगा। अतः ऐसे कथांश की सूचना नाटक में जिन उपायों द्वारा की जाती है उन्हें अर्थोपक्षेपक कहते हैं, जो विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य और अङ्कावतार है।

"वृत्तवर्तिष्यमाणनां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।"

प्रसंगः-यहाँ धनंजय विष्कम्भक नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण प्रस्तुत करते हैं-

अर्थः-भूतकाल में घटित हो चुके या भविष्य में घटित होने वाले कथांशों का सूचक, संक्षिप्त अर्थ

(विषय) वाला तथा मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा प्रयुक्त अर्थोपक्षेपक विष्कम्भक कहलाता है।

व्याख्या:-विष्कम्भक वह अर्थोपक्षेपक है जिसमें एक या दो मध्यम पात्र अथवा कभी-कभी मध्यम व एक अधम पात्र वार्तालाप करते हुए संक्षेप में भूत या भविष्य के कथांशों की सूचना देते हैं। पात्र एवं भाषा के आधार पर विष्कम्भक शुद्ध एवं संकीर्ण दो तरह का होता है। शुद्ध विष्कम्भक में मध्यम कोटि के पात्र होते हैं तथा वे संस्कृत में बातचीत करते हैं। संकीर्ण विष्कम्भक में मध्यम पात्रों के साथ एक अधम पात्र भी होता है। इसमें संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं का मिश्रण होता है।

"अन्तर्जवनिका संस्थैः चूलिकार्थस्य सूचनात्।"

प्रसंग:-चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं-

अर्थ:-पर्दे के पीछे से अर्थ (कथांश) की सूचना दिया जाना ही चूलिका है।

व्याख्या:-जब नेपथ्य में (पर्दे के पीछे) स्थित पात्र के द्वारा किसी सूच्य कथांश की सूचना दी जाती है उसे चूलिका कहा जाता है।

"अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्य छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।"

प्रसंग:-धनंजय ने यहाँ अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण इस प्रकार दिया है-

अर्थ:-जहाँ अंक की समाप्ति पर उस अंक में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा उस अंक से बिल्कुल अलग (किसी छूटे हुए) अर्थ की सूचना दी जाती है, वहाँ अङ्कास्य होता है।

व्याख्या:-अंक के अन्त में रंगमंच पर आने वाला पात्र ही अंकान्तपात्र है। जब ऐसे किसी पात्र के द्वारा पूर्व अंक की कथा से सर्वथा विच्छिन्न (अलग) अग्रिम अंक की कथा की सूचना दी जाय तब अंकास्य कहलाता है।

"अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।"

प्रसंग:-यहाँ धनंजय अङ्कावतार नामक अर्थोपक्षेपक का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-जहाँ अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित पूर्व अंक के कथाक्रम में ही दूसरे अंक की कथावस्तु का अवतरण होता है, वहाँ अङ्कावतार होता है।

व्याख्या:-अङ्कावतार में अर्थ की सूचना देने के लिए अन्य पात्र के प्रवेश के बिना ही पूर्व अंक के ही पात्रों द्वारा अविच्छिन्न रूप से (कथा का क्रम टूटे बिना) अग्रिम अंक की कथा का अवतरण कर दिया जाता है।

. "नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुर्नवस्तु त्रिधेष्यते।"

प्रसंग:- यहाँ नाट्योक्ति (नाट्यधर्म) की दृष्टि से कथावस्तु के विभागों का निर्देश किया गया है।

अर्थ:-नाट्य धर्म की दृष्टि से कथावस्तु पुनः तीन प्रकार की कही गई है।

व्याख्या:-नाट्य धर्म अर्थात नाट्योक्ति की दृष्टि से कथावस्तु तीन प्रकार की होती है। सर्वश्राव्य कथन, अश्राव्य कथन और नियतश्राव्य कथन। यहाँ उक्ति या कथन की सर्वश्राव्यता नियतश्राव्य और अश्राव्यता रंगमंच पर उपस्थित पात्रों की दृष्टि से है। दर्शकों या सामाजिकों को तो सभी उक्तियाँ सुनानी होती है। सर्वश्राव्य का अर्थ है जो कथन सबके सुनने योग्य हो। नाटक में इसे 'प्रकाश' द्वारा व्यक्त किया जाता है। अश्राव्य कथन किसी भी पात्र के न सुनने योग्य होता है। नाटक इसे "स्वगत कथन" कहते हैं और नियतश्राव्य कुछ निश्चित लोगों को ही सुनाने योग्य होता है। यह नियतश्राव्य दो तरह का होता है-जनान्तिक और अपवारित।

. "त्रिपताकरेणान्यानपवार्यन्तरा कथाम्।

अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्।।"

प्रसंग:-यहाँ ग्रन्थकार जनान्तिक नामक नियतश्राव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हैं-

अर्थ:- जहाँ अनेक पात्रों के बीच कोई पात्र त्रिपताका रूप हाथ की मुद्रा बनाकर अन्य पात्रों से छिपाकर किसी दूसरे पात्र से कोई गुप्त बात कहता है वहाँ जनान्तिक होता है।

व्याख्या:-रंगमंच पर अनेक पात्रों के उपस्थित होते हुए भी जिस पात्र को बात सुनानी नहीं होती है उसकी ओर हाथ की ओट करके दर्शकों को इस बात का संकेत दिया जाय कि यह बात केवल उसी पात्र को सुनानी है अन्यों को नहीं, वहाँ जनान्तिक नाम नियतश्राव्य कहलाता है।

"रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्।"

प्रसंग:-धनंजय द्वारा इस कारिकांश में अपवारित नामक नियत श्राव्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

अर्थ:-जहाँ कोई पात्र मुख फेरकर दूसरे पात्र से कोई गुप्त बात कहता है वहाँ अपवारित होता है।

व्याख्या:-अपवारित में रंगमंच पर उपस्थित जिस पात्र से बात छिपानी हो उसकी ओर से मुख फेरकर अन्य पात्र से गोपनीय बात कही जाती है। यहाँ मुख फेरने के द्वारा दर्शकों को यह संकेत दिया जाता है कि यह बात उन पात्रों को सुनाने के लिए नहीं है।

5.3.5 किं ब्रवीष्य.

"किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।

श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाशभाषितम्।।”

प्रसंग:-यहाँ ‘आकाशभाषित‘ नामक नाट्योक्ति का विवेचन प्रस्तुत है-

अर्थ:-जहाँ कोई पात्र (अकेला ही) ‘क्या कहते हो?‘ इस तरह कहकर बिना किसी दूसरे पात्र के कुछ कहे हुए भी कुछ सुनने का सा अभिनय करते हुए अकेले ही कथोपकथन करता है यही आकाशभाषित है।

व्याख्या:-जब रंगमंच पर उपस्थित एक अकेला पात्र ‘‘क्या कहते हो’’ इस प्रकार स्वयं कहकर, मानों उससे कोई कुछ कह रहा हो इस तरह कुछ सुनने का अभिनय करते हुए स्वयं अकेले कथोपकथन करता है उसी को आकाशभाषित कहा जाता है। आकाशभाषित अर्थात् शून्य में भाषण करना या अकेले ही कथोपकथन करना।

5.4 सारांश:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि दशरूपकम् को लिखने की प्रेरणा धनंजय को कहाँ से मिली या ‘दशरूपकम‘ का आधार ग्रन्थ क्या है? नाट्याचार्यों द्वारा नाट्य, रूप एवं रूपक की संज्ञा एक ही दृश्य काव्य को क्यों दी गई है? दशरूपकों के भेद तथा उनके भेदक तत्त्वों का भी दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश पर आधारित इस इकाई में विवेचन किया गया है। पुनः नाटक के वस्तु नामक तत्व का सांगोपांग सविस्तार विश्लेषण यहाँ किया गया है। पंच अर्थ प्रकृतियों एवं पंच कार्यावस्थाओं के विषय में भी यहाँ उल्लेख किया गया है। क्रमशः पंच अर्थप्रकृतियाँ क्रमशः पंच कार्यावस्थाओं से समन्वित होकर क्रमशः मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण रूप पंच सन्धियों के अन्तर्गत नाटक की कथावस्तु आदि से अन्त तक आकार लेते हुए धर्मार्थकाम रूप प्रयोजन सिद्धि की ओर बढ़ती है साथ ही नाट्य धर्म की दृष्टि से कथावस्तु के विभाजन के विषय में धनंजय के विचारों से आप अवगत हुए।

इस इकाई के अध्ययन से आप रूपकों के तीन भेदक तत्त्वों वस्तु, नेता एवं रस में से वस्तु तत्व को सविस्तार समझा सकेंगे।

. अभ्यास प्रश्न:

लघु उत्तरीय

टिप्पणी:

1. आकाशभाषित

2. जनान्तिक
3. अपवारित

बहुविकल्पीय:

1. 'दशरूपकम्' का लेखक कौन है?

(क) धनिक (ख) धनंजय

(ग) भट्टनायक (घ) भट्टलोल्लट

2. दशरूपकम् में कितने प्रकाश है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

3. प्रासंगिक कथावस्तु कितने प्रकार की होती है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

4. अर्थप्रकृतियाँ कितने प्रकार की होती है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

5. निम्नलिखित मे से क्या नाट्य का प्रयोजन नहीं होता है?

(क) धर्म (ख) अर्थ

(ग) काम (घ) मोक्ष

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

1. बीज, बिन्दु, पताका.. ये में पाँच अर्थप्रकृतियॉ कही गई है।
2. .... यत्न, प्राप्त्याशा नितयाप्ति और फलागम ये पॉच कार्यावस्थाऐ होती है।

3. रूपक में मुख, प्रतिमुख........................ विमर्श एवं....................... ये पॉच संधिया होती है।

अति लघुउत्तरीय:

1. नृत्य के दो भेद कौन-कौन से है?
2. पंच संधियों के कुल मिलाकर कितने भेद होते है?
3. नाट्योक्ति (नाट्य धर्म) की दृष्टि से कथावस्तु के कौन से तीन भेद होते हैं?

सत्य/असत्य बताइए:

1. 'दशरूपकम्' के अनुसार नाटक की मुख्य कथा को अधिकारिक कथावस्तु कहते हैं।
2. नृत्य और नृत्त नाटक आदि के उपराकर नहीं होते हैं।
3. प्रासंगिक कथावस्तु का प्रयोजन दूसरे का हित सिद्ध करना होता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

नाट्य - नाट्य का अर्थ है नट का कार्य अर्थात् अभिनय। नट अपने अभिनय कौशल द्वारा राम आदि नायक की सुख-दुःख आदि अवस्थाओं का जो अनुकरण करता है वही नाट्य है।

नृत्य - हाथ, पैर आदि अंगों तथा नेत्र, भौंह आदि उपांगों के संचालन के द्वारा भावों को अभिव्यक्त करना ही नृत्य है। नृत्य के लिए 'भावाश्रय नृत्य' कहा गया है अर्थात् नृत्य भाव पर आश्रित होता है। नृत्य करने वाले को नर्तक/नर्तकी कहा जाता है।

संधि - सामान्यतः संधि शब्द का अर्थ है जोड़ या संयोग। नाट्य के संदर्भ में यह संयोग अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्था का होता है।

नाटक में एक मुख्य कथा होती है जिसका अपना प्रयोजन होता है। मुख्य कथा के साथ अनेक छोटे-छोटे कथांश भी नाटक में होते है जिनका अपना-अपना प्रयोजन होता है और मुख्य कथा प्रयोजन से भी ये जुड़े होते है। इस तरह अपने प्रयोजन के साथ-साथ मुख्य प्रयोजन के साथ जुड़ा होना ही सन्धि है।

5.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. धनंजय, दशरूपकम्, व्याख्याकार केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा, प्रकाशन, वाराणसी।

2. धनंजय, दशरूपकम्, धनिककृत अवलोक व्याख्या सहित, साहित्य भंडार, मेरठ।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी

1. आकाशभाषित हेतु उपखण्ड संख्या 5.3.41 को देखें।
2. जनान्तिक हेतु उपखण्ड संख्या 5.3.39 को देखें।
3. अपवारित हेतु उपखण्ड संख्या 5.3.40 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ख
2. ग
3. क
4. घ
5. घ

रिक्त सथान पूर्ति :

1. प्रकरी एवं कार्य
2. आरम्भ
3. गर्भ एवं निर्वहण

अति लघु उत्तरीय:

1. मधुर नृत्य एवं उद्धत नृत्य
2. चौसठ
3. सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य

सत्य/असत्य:

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित कारिकाओं का अनुवाद कीजिएः-

(क) अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।

तन्निवृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।।

(ख) अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्थासमन्विताः।

यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्या पंच सन्धयः।।

2. निम्नलिखित कारिकाओं की सन्दर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए।

(क) मधुरोद्धतभेदन तद् द्वयं द्विविधं पुनः।

लास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम्।।

(ख) वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।

संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।

3. निम्न कारिकांशों की व्याख्या कीजिए-

(क) अवस्थानुकृतिर्नाट्यं

(ख) नृत्तं ताललयाश्रयम्।

इकाई 6: दशरूपक द्वितीय प्रकाशःमूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 इकाई की पाठ्य सामग्री-कारिका/कारिकांश व्याख्या
6.3.1 नेता विनीतो..............
6.3.2 भेदैश्चतुर्धा.................
6.3.3 निश्चिन्तो धीरललितः ....
6.3.4 सामान्यगुणयुक्तस्तु..............
6.3.5 महासत्त्वोऽतिगम्भीर.............
6.3.6 दर्पमात्सर्य भूयिष्ठो.............
6.3.7 स दक्षिणः शठो.................
6.3.8 दक्षिणोऽस्यां.............
6.3.9 पताकानायकस्त्वन्यः...........
6.3.10 एकविद्योविटः ....
6.3.11 लुब्धो धीरोद्धत्तः ....
6.3.12 शोभा विलासो ....
6.3.13 नीचे घृणाधिके..................
6.3.14 व्यसायादचलनं.................
6.3.15 स्वान्यासाधारणस्त्री...........
6.3.16 मुग्धा मध्याः..................
6.3.17 मुग्धा नववयः.................
6.3.18 द्वेधा ज्येष्ठा....................
6.3.19 अन्यस्त्री कन्यकोढ़ा..........
6.3.20 आसामष्टावस्थाः ....
6.3.21 आसन्नायत्तरमणा...............
6.3.22 कलहान्तरिता...............

6.3.23 यौवने सत्त्वजाः ....
6.3.24 तद्व्यापारात्मिका ....
6.3.25 चतुर्थी भारती.................
6.3.26 श्रृंगारे कौशिकी..............
6.4 सारांश
6.5 पारिभाषिक शब्दावली
6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

चतुर्थ प्रश्न पत्र काव्य एंव काव्यशास्त्र की द्वितीय पुस्तिका ''दशरूपक प्रथम एवं द्वितीय प्रकाश'' से संबन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की ईकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि रूपक के भेद क्या हैं? नृत्य तथा पंच सन्ध्यंग क्या होते हैं? अर्थोपक्षेपक क्या हैं? नायक-नायिका के कितने भेद-प्रभेद होते हैं? दशरूपक की रस मीमांसा क्या है? दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश के मूलपाठ, अर्थ व्याख्या को पढ़कर आप 'वस्तु' तत्त्व के विषय में विस्तार से बता सकते हैं।

नाट्य के 'नेता' तत्त्व को जानने के संदर्भ में नाटक के नायक-नायिका, पीठमर्द प्रतिनायक, विट आदि तथा नाट्य की वृत्तियों के विषय में धनंजय ने दशरूपक के द्वितीय प्रकाश में विस्तार से विवेचन किया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद नाटक के 'नेता' तत्त्व के अन्तर्गत सभी प्रकार के नाटकीय पात्रों तथा नाट्य वृत्तियों के महत्व को समझा सकेंगे तथा दशरूपककार के इससे सम्बद्ध विचारों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- **बता** सकेंगे कि नायक के सामान्य गुण क्या होते हैं?
- व्याख्या कर सकेंगे कि नायक के भेद-प्रभेद क्या हैं?
- बता पाऐंगे कि नायक के सहायक पात्र कौन-कौन होते हैं?
- बता सकेंगे कि नाटक का प्रतिनायक कैसा होता है?
- भलीभांति बता पाऐंगे कि नायक के पुरूषोचित सात्त्विक गुण क्या होते हैं?
- बता सकेंगे कि नायिका कितने प्रकार की होती है? तथा उनकी क्या विशेषताएँ होती हैं?
- नायिका की अवस्थाओं के विषय में सम्यक् प्रकार से बता सकेंगे।
- बता पाऐंगे कि वृत्ति किसे कहते हैं? यह कितने प्रकार की होती है? तथा विभिन्न नाट्य रसों के साथ विभिन्न वृत्तियों का तारतम्य क्या है?

6.3 इकाई की पाठ्य सामग्री कारिका/कारिकांश व्याख्या:

6.3.1 नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।

रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।

बुद्धि उत्साह स्मृति प्रज्ञाकलामानसमन्वितः।

शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।

सन्दर्भः- प्रस्तुत कारिका धनंजय द्वारा विरचित दशरूपकम् के द्वितीय प्रकाश से उद्धृत है।

प्रसंगः-दशरूपकम् के प्रथम प्रकाश में कथावस्तु के भेदों का वर्णन करने के बाद यहाँ द्वितीय प्रकाश के आरम्भ में धनंजय 'नेता' अर्थात् नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि-

अर्थः-नायक विनीत, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रियभाषी, लोकप्रिय, पवित्र, वाक्पटु, प्रसिद्ध वंशवाला, स्थिर चित्त, युवावस्था वाला, बुद्धि उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा कला एवं मान से युक्त, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रों का ज्ञाता और धार्मिक होना चाहिए।

व्याख्याः-नाट्याचार्यों ने पात्रों की प्रकृति तीन प्रकार की मानी है-उत्तम, मध्यम एवं अधम। यद्यपि नेता शब्द के अन्तर्गत सभी तरह के नाटकीय पात्र आ जाते हैं तथापि यहाँ नेता का अभिप्राय रूपक के नायक से लिया गया है। वह नायक नम्र स्वभाव वाला, देखने में सुन्दर (मधुर), प्रिय वचन बोलने वाला (प्रियंवद), करणीय कर्म में निपुण, लोकप्रिय, पवित्र (मन वचन एवं कर्म वाला) वाक्पटु, युवा, प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुआ, शूरवीर, दृढ़, तेजस्वी, कलाओं का ज्ञाता तथा शास्त्र ज्ञाता होना चाहिए।

ऽ नोट आगे के सभी कारिकाओं/कारिकांशों में संदर्भ पहली कारिका की तरह ही होगा।

6.3.2 भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्।

सन्दर्भः-प्रस्तुत कारिकांश धनंजय विरचित दशरूपकम् के द्वितीय प्रकाश से उद्धृत है।

प्रसंगः-कारिक के इस अंश में नायक के भेदों के विषय में बताया गया है।

अर्थः-यह नायिका ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत भेद से चार प्रकार का होता है।

व्याख्याः-नायक के ये चार भेद नायक की प्रकृति (स्वभाव) के आधार पर किए गए हैं। ललित, शान्त, उदात्त एवं उद्धत ये नायक की प्रकृति है। नाट्यशास्त्र आदि के अनुसार इन सभी प्रकार के नायकों के साथ 'धीर' पद जुड़ा हुआ है।अतः 1.धीरललित, 2. धीरशान्त, 3. धीरोदात्त और 4. धीरोद्धत ये चार भेद नाट्यचार्यों ने माने हैं। 'धीर' शब्द का अर्थ है धैर्ययुक्त। अर्थात् संकट की स्थिति

आने पर भी विचलित न होना ही धीरता है और यह धीरता गुण ललित, शान्त, उदान्त एवं उद्धत सभी प्रकार की प्रकृति वाले नायकों में अवश्य होनी चाहिए।

6.3.3 निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।

प्रसंग:- धीरललित नायक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए धनंजय कहते हैं-

व्याख्या:-चिन्ताओं से रहति, कलाओं के प्रति आसक्त, सुखी तथा कोमल स्वभाव एवं व्यवहार वाला नायक धीरललित कहलाता है।

व्याख्याः-धीरललित कोटि का नायक सभी प्रकार की चिन्ताओं से रहित होता है। चिन्तारहित होने के कारण ही वह संगीत आदि कलाओं में तथा कामादि में आसक्त होता है। श्रंृगार भाव की प्रधानता उसमें होती है इसीलिए वह सुकोमल स्वभाव एवं आचरण वाला होता है। ऐसा नायक सब प्रकार से सुखी होता है। यथा रत्नावली नाटिका का नायक उदयन धीरललित है।

6.3.4 सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिक्।

प्रसंग:-इस कारिकांश में धनंजय धीरशान्त नायक की विशेषताओं के विषय में बता रहें हैं कि-

अर्थ:- विनम्रता, मधुरता, त्याग, दक्षता, प्रियभाषी, लोकप्रिय, आदि सामान्य गुणों से युक्त ब्राह्मण आदि धीरशान्त नायक होते हैं।

व्याख्या:-विनम्रता आदि नायक के जो सामान्य गुण कहे गए हैं उन गुणों से युक्त ब्राह्मण, वणिक तथा अमात्य धीरशान्त कहे जाते हैं। ब्राह्मण वणिक् और अमात्य में धीरललित के गुण होने पर भी वे स्वभावतः शान्त होने के कारण धीरशान्त कहलाते हैं। प्रकरण नामक रूपक भेद का नायक धीरशान्त ही होता है जैसे मृच्छकटिकम् का नायक चारूदत्त जाति से ब्राह्मण तथा व्यवसाय (कर्म) से वणिक् है अतः वह धीरशान्त नायक है।

6.3.5 महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।

स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।

प्रसंग:-इस कारिका में धीरोदात्त नायक की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए धनंजय कहते हैं-

अर्थ:-धीरोदात्त नायक महापराक्रमी, अतिगम्भीर प्रकृति का, क्षमाशील, आत्मप्रशंसा न करने वाला, स्थिर स्वभाव का, विनम्रता के द्वारा छिपे हुए अहंकार वाला तथा दृढ़व्रती होता है।

व्याख्या:- ऐसा नायक, जिसका अन्तःकरण शोकक्रोध आदि से अभिभूत नहीं होता है, जो खुद अपनी प्रशंसा नहीं करता, अत्यन्त गम्भीर एवं दृढ़ प्रतिज्ञा वाला होता है तथा जिसका अहंकार

(स्वाभिमान) उसकी नम्रता के कारण छिपा रहता है, वह धीरोदात्त कहलाता है जैसे राम धीरोदात्त नायक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

6.3.6 दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।

धीरोद्धतस्त्वंहारी चलश्चण्डो विकत्थनः।।

प्रसंग:-धनंजय इस कारिका में धीरोद्धत नायक की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

अर्थ:- धीरोद्धत नायक अत्यधिक घमण्ड और ईर्ष्या से युक्त, माया और कपट से पूर्ण, अहंकारी, क्रोधी तथा आत्मप्रशंसा करने वाला होता है।

व्याख्या:-यहाँ दर्प से अभिप्राय है अपनी वीरता आदि पर घमण्ड करना। मात्सर्य का मतलब है दूसरों की उन्नति को सहन न करना। माया का अर्थ है मन्त्र शक्ति से न दिखने वाली वस्तु को प्रकट करना तथा दूसरों को ठगना ही छल है। इस प्रकार का धीरोद्धत नायक अस्थिर चित्त, अत्यन्त क्रोधी तथा स्वयं अपनी बड़ाई करने वाला होता है जैसे परशुराम धीरोद्धत नायक है।

6.3.7 स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वां प्रत्यन्यया हृतः।

प्रसंग:-यहाँ धनंजय ने नायक की श्रृंगार विषयक् अवस्थाओं का वर्णन किया है।

अर्थ:-अन्य नायिका के प्रति आकर्षित हुआ वह नायक पहली नायिका के प्रति दक्षिण, शठ एवं धृष्ट अवस्था वाला होता है।

व्याख्या:-किसी दूसरी नवीन नायिका के प्रति आसक्त नायक की अपनी पूर्वा नायिका (पत्नी) के प्रति तीन अवस्थाएँ होती हैं। आगे बताए जाने वाले अनुकूल नामक भेद को मिलाकर से उसी नायक की चार अवस्थाएँ होती हैं-1. दक्षिण, 2. शठ, 3. धृष्ट एवं 4.अनुकूल। पूर्व में जो नायक धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त एवं धीरोद्धत कहा गया है उनमें से प्रत्येक नायक दक्षिण, शठ, धृष्ट एवं अनुकूल भेद से चार-चार प्रकार का होता है। इस तरह नायक कुल सोलह प्रकार ;4ग4द्ध का होता है।

6.3.8 दक्षिणोऽस्यां सहृदयः गूढविप्रियकृच्छठः।

व्यक्तांगवैकृतो धृष्टः अनुकूलस्त्वेकनायिकः।।

प्रसंग:-यहाँ दक्षिण शठ धृष्ट एवं अनुकूल नायक की विशेषताओं को बताया गया है।

अर्थ:-नवीन नायिका के प्रत आसक्त होते हुए भी जो नायक अपनी पूर्वा नायिका के प्रति सहृदय बना रहता है वह दक्षिण नायक है। पूर्वा नायिका का छिपकर अप्रिय करने वाला शठ नायक है। जिस

नायक के अंगों पर अन्य नायिका के साथ की गई रतिक्रीड़ा करने के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देते हो वह धृष्ट नायक है। एक ही नायिका के प्रति आसक्त रहने वाला नायक अनुकूल नायक होता है।

व्याख्या:- जो नायक अन्या नायिका के द्वारा अपहृत चित्त होने पर भी अपनी पूर्वा नायिका (पत्नी) के प्रति पहले की ही तरह प्रेमपूर्ण बना रहता है वही दक्षिण नायक है। जो नायक अन्या नायिका से प्रेम करने के बाद अपनी ज्येष्ठा नायिका के प्रति पूर्ववत् प्रेमपूर्ण नहीं रह पाता अपितु प्रेम का दिखावा मात्र करता है। वह शठ नायक है। अन्या नायिका के साथ की गई रतिक्रीड़ा के चिह्नों के साथ ही जो नायक पूर्वा नायिका के पास जाने की धृष्टता करे वह धृष्ट नायक है और एक ही नायिका (पत्नी) से प्रेम करने वाला अनुकूल नायक होता है।

6.3.9 पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।

तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः।।

प्रसंग:-यहाँ धनंजय नायक के प्रमुख सहायक की विशेषताओं का वर्णन कर रहें हैंः:-

अर्थ:-पताका नायक प्रधान नायक से भिन्न होता है। इसे पीठमर्द कहा जाता है। वह चतुर एवं बुद्धिमान होता है। वह प्रधान नायक का अनुचर एवं भक्त होता है तथा प्रधान नायक से कुछ ही कम गुणों वाला होता है।

व्याख्या:-नाटकादि में पताका नामक प्रासंगिक कथा का जो नायक होता है वही पीठमर्द कहलाता है। यह चतुर एवं बुद्धिमान होने के साथ-साथ प्रमुख नायक का भक्त एवं अनुगामी होता है। इसके अलावा यह पीठमर्द प्रमुख नायक से कुछ ही कम गुणों वाला होता है जैसे राम कथा में सुग्रीव एवं विभीषण पीठमर्द (पताका नायक) है।

6.3.10 एकविद्यो विटश्चान्यो हास्यकृच्च विदूषकः।

प्रसंग:-दशरूपककार ने यहाँ प्रधान नायक के सहायक दो अन्य पात्रों विदूषक एवं विट के विषय में बताया है-

अर्थ:-किसी एक विद्या में पारंगत (प्रधान) नायक का सहायक पात्र विट कहलाता है। नाटक हास्य उत्पन्न करने वाला नायक का श्रृंगारिक सहायक विदूषक होता है।

व्याख्या:-नायक की उपयोगी गीत आदि विद्याओं में से किसी एक कला को भलीभांति जानने वाला नायक का सहायक पात्र विट कहलाता है। नाटक में हास्य उत्पन्न करने वाला पात्र विदूषक कहलाता है। वाणी, वेश और कर्म की विकृति के द्वारा यह नाट्य में हास्य उत्पन्न करता है। प्रायः सभी संस्कृत नाटकों में विदूषक अनिवार्य पात्र होता है।

6.3.11 लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः।

प्रसंग:-धनंजय प्रतिनायक (खलनायक) की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-जो पात्र लोभी, धीरोद्धत, अहंकारी, (जिद्दी) पापी, व्यसनी तथा मुख्य नायक का शत्रु होता है वह प्रतिनायक कहलाता है।

व्याख्या:-प्रधान नायक का विरोधी ही प्रतिनायक होता है। वह लोभी, व्यसनी, अहंकारी, पापी तथा मुख्य नायक से शत्रुता रखने वाला होता है। जैसे रामकथा में रावण तथा युधिष्ठिर कथा में दुर्योधन प्रतिनायक है।

6.3.12 शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्य तेजसी।

ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्विकाः पौरूषाः गुणाः।।

प्रसंग:-दशरूपकाकर धनंजय नायक के पुरूषोचित सात्विक गुणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

अर्थ:-शोभा, विलास, माधुर्य, गम्भीरता, स्थिरता, तेजस् ललित एवं औदाय (उदारता)-ये आठ पुरूषों के सात्विक गुण कहे गए हैं।

व्याख्या:-'सात्विक' का अर्थ है सत्त्व से उत्पन्न होने वाले। रजोगुण तथा तमोगुण के उद्रेक से रहित मन ही सत्त्व कहलाता है और शोभा विलास आदि ऐसे ही सत्त्व से उत्पन्न होने के कारण नायक के पुरूषोचित सात्त्विक गुण कहे जाते हैं। यहाँ कारिका में 'पौरूषाः' शब्द से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये शोभा आदि पुरूषों (नायक) के ही गुण होते हैं स्त्रियों या नायिकाओं के नहीं।

6.3.13 नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्य दक्षता।

गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः।।

श्लक्ष्णो विकारो माधुर्यं संक्षोभे सुमहत्यपि।

गाम्भीर्यं यत्प्रभावेण विकारो नोपलक्ष्यते।।

प्रसंग:-इन दो कारिकाओं में धनंजय नायक के क्रमशः शोभा, विलास, माधुर्य एवं गाम्भीर्य नामक सात्त्विक गुणों के विषय में बताते हैं-

अर्थ:-'शोभा' नामक सात्त्विक गुण में नीच के प्रति घृणा, अधिक के प्रति स्पर्धा, शौर्य तथा दक्षता, 'विलास' में धैर्यपूर्ण गति एवं दृष्टि तथा मन्दहास्य युक्त वचन, 'माधुर्य' में विकार का महान कारण होते हुए भी बहुत थोड़ा सा विकार तथा 'गाम्भीर्य' में विकार के अनेक कारण कारणों के होते हुए भी

बिल्कुल भी विकार परिलक्षित नहीं होता।

व्याख्याः- 'शोभा' नामक सात्विक गुण के होने पर नायक में नीच के प्रति घृणा की भावना, अधिक गुण वाले व्यक्ति के प्रति स्पर्धा की भावना, शूरता तथा दक्षता निहित रहती है।

'विलास' नामक सात्विक गुण में नायक की धैर्य युक्त गति होती है। उसकी दृष्टि में धीरता रहती है और उसकी वाणी मन्द हास्य से युक्त होती है अर्थात् बोलने में भी धीरता रहती है।

माधुर्य नामक सात्त्विक गुण के होने पर नायक में, क्षोभ के महान कारणों के होते हुए भी, मधुर विकार (थोड़ा सा ही विकार) दिखाई देता है।

'गाम्भीर्य' नामक सात्त्विक गुण के होने पर नायक की मुखाकृति पर हर्ष, भय, क्रोध, शोक, सुख, दुःख, आदि मनोविकारों या भावावेश के महान कारणों के होते हुए भी बिल्कुल भी विकार (परिवर्तन) दिखाई नहीं देता है।

6.3.14 व्यवसायादचलनं स्थैर्यं विघ्नकुलादपि।

अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि।।

श्रृंगाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु।

प्रियोक्त्याऽऽ जीविताद्दानमौदार्यं सदुपग्रहः।।

प्रसंगः-धनंजय नायक के स्थैर्य, तेज, ललित एवं औदार्य इन चार सात्त्विक गुणों के विषय में बताते हुए कहते हैं-

अर्थः-विघ्नों के होते हुए भी अपने निश्चय से पीछे न हटना नायक का स्थैर्य सात्त्विक गुण है। प्राण भले ही चले जाय किन्तु अपना अपमान सहन न करना-यही नायक का तेज गुण है। श्रंृगार के अनुरूप स्वाभाविक मृदु एवं सुन्दर चेष्टाएँ करना ही नायक का ललित गुण तथा प्रिय वचन बोलते हुए अपने प्राणों तक का परहित में दान कर देना अथवा सज्जनों का सत्कार करना ही औदार्य नामक सात्त्विक गुण है।

व्याख्याः-'स्थैर्य' नामक सात्त्विक गुण के होने पर नायक अपने पहले किए गए निश्चय से विचलित नहीं होता। चाहे कितने ही विघ्न बाधाएँ क्यों न आ जाय तब भी वह अपने निश्चय पर अटल रहता है।

'तेज' नामक सात्त्विक गुण के होने पर भले ही नायक के प्राणों पर संकट क्यों न आ जाय तब भी वह दूसरों के द्वारा किए गए अपमान को सहन नहीं करता। तात्पर्य यह है कि प्राण भले ही चले जाय लेकिन तिरस्कार या अपमान सहन न करना ही नायक का तेज नामक सात्त्विक गुण है।

'ललित' नामक सात्विक गुण के होने पर नायक श्रृंगार के अनुरूप स्वाभाविक रूप से सुकोमल तथा सुन्दर चेष्टाएँ करता है।

औदार्य नामक सात्त्विक गुण में नायक प्रिय वचन बोलते हुए जीवन पर्यन्त (या अपने प्राणों तक का दूसरों के हित में) दान कर देता है। यह उसका औदार्य है। इसी के साथ सज्जनों का आदर-सत्कार करना भी औदार्य है।

6.3.15 स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।

प्रसंग:-दशरूपककार ने यहाँ नायिका के गुण एवं भेदों का वर्णन किया है। ,

अर्थ:-उन (नायक के विनम्रता आदि सामान्य) गुणों से युक्त नायिका तीन प्रकार की होती है।

व्याख्या:-नायक के विनम्रता, माधुर्य, प्रियभाषी आदि सामान्य गुणों से युक्त नाटक आदि रूपक की नयिका तीन प्रकार की होती है-स्वकीया, परकीया और साधारण या सामान्या नायिका।

6.3.16 मुग्धा मध्या प्रगल्भेति शीलार्जवादियुक्।

प्रसंग:-दशरूपककार धनंजय स्वकीया नायिका के गुणों एवं उसके भेदों का उल्लेख कर रहे हैं-

अर्थ:-स्वकीया नायिका शील सरलता आदि से युक्त होती है। वह मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन प्रकार की होती है।

व्याख्या:-स्वकीया नायिका शीलवती होती है। शील से अभिप्राय यह है कि उसका चरित्र और आचरण अच्छा हो। वह सरल होनी चाहिए अर्थात् उसमें कुटिलता न हो। उसे लज्जाशील एवं पति सेवा परायण होना चाहिए। इस तरह अपनी पत्नी ही स्वकीया नायिका है। स्वकीया नायिका तीन तरह की होती है- 1. मुग्धा, 2. मध्या एवं 3.प्रगल्भा।

6.3.17 मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदु क्रुधि।

प्रसंग:-धनंजय स्वकीया नायिका के प्रथम भेद मुग्धा नायिका की विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं-

अर्थ:-मुग्धा नायिका उसे कहा जाता है जो यौवनावस्था में पदार्पण कर रही हो और काम वासना में रूचि रखने लगी हो, किन्तु रति क्रीड़ा से कतराती हो और क्रोध करने में भी कोमल हो।

व्याख्या:-जिसमें यौवन और काम भावना का पहले-पहल अभ्युदय हुआ है, जो सुरत क्रीड़ा से

झिझकने वाली तथा क्रोध में कोमल होती है अर्थात् जिसका क्रोध सहज ही दूर हो जाता है, वही

मुग्धा नायिका कही जाती है।

6.3.18 द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुग्धा द्वादशोदिताः।

प्रसंग:-स्वकीया नायिका के मध्या एवं प्रगल्भा नायिका भेद का निरूपण करते हुए दशरूपककार कहते हैं-

अर्थ:- मध्या एवं प्रगल्भा नायिकाएँ दो तरह की होती हैं-ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा। इस तरह मुग्धा से भिन्न स्वकीया नायिका के 12 भेद होते हैं।

व्याख्या:-स्वकीया नायिका के मुग्धा से इतर जो दो भेद मध्या एवं प्रगल्भा है उनके सर्वप्रथम तीन-तीन भेद होते हैं। मध्या नायिका के तीन भेद हैं- 1. धीरामध्या, 2.अधीरा मध्या एवं 3. धीराधीरा मध्या। इसी तरह प्रगल्भा के भी 1. धीरा प्रगल्भा, 2. अधीरा प्रगल्भा और 3. धीराधीरा प्रगल्भा ये तीन भेद। मध्या और प्रगल्भा के इन छः (6) भेदों में से प्रत्येक के ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा के आधार पर दो-दो भेद होकर ;6ग2द्ध कुल बारह भेद हो जाते हैं। स्वकीया का एक भेद है मुग्धा नायिका। इस तरह मध्या तथा प्रगल्भा के छः छः भेद तथा एक मुग्धा नायिका, कुल मिलाकर स्वकीया नायिका तेरह प्रकार की होती है।

6.3.19 अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढ़ाऽङ्गिरसे क्वचित्।

कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम्।।

प्रसंग:-दशरूपककार नायिका के द्वितीय भेद परकीया नायिका के विषय में कहते हैं-

अर्थः-अन्यस्त्री अर्थात् परकीया नायिका होती है-1. कन्या अथवा 2. अन्योढा अर्थात् दूसरे की विवाहिता स्त्री। प्रधान रस में अन्योढ़ा का आलम्बन के रूप में कदापि वर्णन नहीं करना चाहिए। कन्या के अनुराग को तो कवि (कृति में) इच्छानुसार प्रधानरस का या अप्रधान रस का आलम्बन बना सकता है।

व्याख्या:-कन्या और परोढ़ा दो तरह की परकीया नायिका होती है। इनमें से परोढ़ा तो किसी दूसरे की विवाहिता होने से परकीया है जबकि कन्या पिता भाई आदि के अधीन होने के कारण परकीया है। परोढ़ा को कभी भी अंगीरस का आलम्बन नहीं बनाया जा सकता है अर्थात् वह किसी ग्रन्थ की प्रमुख नायिका नहीं हो सकती। कन्या को प्रधान रस का आलम्बन भी बनाया जा सकता है और अप्रधान रस का भी। अर्थात् कन्या प्रमुख नायिका भी हो सकती है और अप्रमुख नायिका भी। यह कवि की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है।

6.3.20 आसामष्टावस्थाः स्युः स्वाधनीपतिकादिकाः।

प्रसंग:-धनंजय नायिकाओं की अवस्था भेदों का निरूपण करते हुए कहते हैं कि-

अर्थ:-इन सभी प्रकार की नायिकाओं की स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाएँ होती हैं।

व्याख्या:-(1) स्वाधीनपतिका, (2) वासकसज्जा, (3) विरहोत्कंठिता, (4) खण्डिता, (5) कलहान्तरिता, (6) विप्रलब्धा, (7) प्रोषितप्रिया और (8) अभिसारिका ये आठ अवस्थाएँ स्वकीया, परकीया एवं सामान्या सभी तरह की नायिकाओं में होती हैं। यद्यपि स्वकीया परकीया आदि भी नायिका की अवस्थाएँ हैं तथापि ये अवस्थाएँ धर्मी हैं जबकि स्वाधीनपतिका आदि उनके धर्म हैं अर्थात् उन स्वकीया आदि अवस्थाओं की ये स्वाधीनपतिका आदि आठ अवस्थाएँ हैं। ये अवस्थाएँ आठ ही हैं उससे कम या ज्यादा नहीं।

6.3.21 आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका।

मुदावासकसज्जा स्वं मण्डयत्येष्यति प्रिये।।

चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कंठितोन्मनाः।

ज्ञातेऽन्यासंगविकृते खंडितेर्ष्याकषायिता।।

प्रसंग:-यहाँ दशरूपककार धनंजय नायिकाओं की स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता एवं खंडिता-इन चार अवस्थाओं के विषय में बता रहे हैं।

अर्थ:-पति के आसन्न (उनके पास) और आयत्त (उसके वश में) होने के कारण जब नायिका प्रसन्न रहती है तो यही उसकी स्वाधीनपतिका अवस्था है। नायक आने ही वाला है यह जानकर प्रसन्न मन वाली नायिका जब अपने को सजाती है तो वह वासकसज्जा है। नायक के अपराधी न होने पर भी जब मिलन स्थल पर उसके आने में देरी होने से जो नायिका विरह के कारण व्याकुल होती है वह नायिका की विरहोत्कंठिता अवस्था है। नायक के अंगों पर लगे हुए चिह्नों को देखकर जो नायिका नायक की अन्या नायिका के प्रति आसक्ति को जानकर ईर्ष्या से कलुषित हो जाती है वह खण्डिता अवस्था वाली नायिका है।

व्याख्या:- ‘स्वाधीनभर्तका‘ या ‘स्वाधीनपतिका‘ अवस्था वाली नायिका वह होती है जिसका पति उसके पास और उसी के वश में होता है इसीलिए वह प्रसन्न रहा करती है।

‘वासकसज्जा‘ अवस्था वाली नायिका वह होती है, जो ‘नायक बस आने ही वाला है‘-यह जानकर खुद को और अपने घर को प्रसन्न मन से सजाती संवारती है।

‘विरहोत्कंठिता‘ उसे कहते हैं-जब नायक के निरपराध होते हुए भी किसी कारण यदि मिलन स्थल पर नायक के पहुँचने में देरी होती है और इस देरी के कारण नायिका विरह से व्याकुल हो उठती है तो वह विरहोत्कंठिता कही जाती है।

'खंडिता' अवस्था वाली नायिका वह होती है जो अपने प्रति नायक के प्रेम खंडन को जान जाती है जैसे कि नायक के अंगों पर लगे हुए अन्या नायिका के समागम चिह्न यह सूचित कर देते हैं कि नायक रात्रि में किसी दूसरी नायिका के साथ रमण करके आया है। ऐसी स्थिति में जब नायिका ईर्ष्या से कलुषित मन वाली हो जाती है तब वह नायिका की खंडिता अवस्था होती है।

6.3.22 कलहान्तरिताऽमर्षात् विधूतेऽनुश्यार्तियुक्।

विप्रलब्धोक्तसमयम् अप्राप्तेऽतिविमानिता॥

दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया।

कामार्ताऽभिसरेत् कान्तं सारयेद् वा अभिसारिका॥

प्रसंग:-दशरूपककार यहाँ नायिका की कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया और अभिसारिका- इन चार अवस्थाओं की विशेषताओं का उल्लेख कर रहे हैं-

अर्थ:-अपराधी नायक का क्रोध के कारण पहले तिरस्कार करके बाद में पश्चाताप करने वाली नायिका कलहान्तरिता है। निश्चित समय पर मिलन स्थल पर नायक के न पहुँचने के कारण स्वयं को अत्यधिक अपमानित समझने वाली विप्रलब्धा है। जिसका प्रियतम किसी कार्य से दूर देश में स्थित होता है वह प्रोषित प्रिया है। काम से पीड़ित होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली या नायक को अपने पास बुलाने वाली अभिसारिका होती है।

व्याख्या:-'कलहान्तरिता' अवस्था वाली नायिका वह होती है जो नायक के अपराध (दूसरी स्त्री के प्रति आसक्ति रूप) को जानकर पहले तो नायक का तिरस्कार करती है, किन्तु बाद में नायक के प्रति किए गए अपने व्यवहार पर पश्चाताप करती है।

इसी प्रकार निश्चित किए गए समय पर यदि नायक मिलन स्थल पर नहीं पहुँचता, तो नायिका स्वयं को नायक के द्वारा अत्यधिक अपमानित हुआ (ठगा गया) समझती है। ऐसी नायिका विप्रलब्धा है।

'प्रोषिताप्रिया' वह होती है जिसका प्रियतम किसी कार्यवश (व्यापार, नौकरी या अन्य किसी कारण से) दूर देश में प्रवास पर गया होता है।

'अभिसारिका' काम से पीड़ित होकर नायक को रमण (समागम) के लिए अपने पास बुलाती है या स्वयं नायक के पास रमण के लिए जाती है-ये दोनों ही तरह की नायिकाएँ अभिसारिका कही जाती है। क्योंकि ये कामार्त होकर अभिसार करना चाहती है।

इन आठ प्रकार की अवस्था वाली नायिकाओं में से स्वाधीनपतिका और वासकसज्जा ये

दोनों नायिकाएँ सदा प्रसन्न रहती हैं तथा उज्जवलता से युक्त होती है। शेष छः प्रकार की नायिकाएँ- (विरहोत्कंठिता, खंडिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितप्रिया तथा अभिसारिका) चिन्ता, निश्वास, खेद, अश्रु, मुख का फीका पड़ जाना, तथा साज सज्जा का अभाव आदि से युक्त होती है।

6.3.23 यौवने सत्त्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विंशतिः।

प्रसंग:-दशरूपककार स्त्रियों के यौवनावस्था में उत्पन्न होने वाले अलंकारों का वर्णन करते हैं।

अर्थ:-यौवनावस्था में सत्त्व से उत्पन्न होने वाले स्त्रियों के बीस अलंकरण होते हैं।

व्याख्या:-शरीर पर धारण किए जाने वाले भुजबन्द, हार आदि आभूषण शरीर की शोभा को बढ़ाने के कारण अलंकार कहे जाते हैं उसी तरह युवावस्था में शरीर सौन्दर्य को बढ़ाने वाले कुछ विकार या परिवर्तन होते हैं। अतः इन्हें भी अलंकरण कहा जाता है इनमें तीन शरीरज अलंकरण हैं-भाव, हाव और हेला। शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य ये सात अयत्नज अलंकरण हैं। इसके अलावा लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित तथा विहृत ये दस स्वभावज अलंकरण माने गए हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर यौवनावस्था में सत्व से उत्पन्न होने वाले स्त्रियों के ये बीस अलंकरण होते हैं।

6.3.24 तद्व्यापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा।

प्रसंग:-दशरूपककार नायक के व्यापार (वृत्ति) पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि-

अर्थ:- उस नायक के व्यापार, अर्थात् मानसिक, वाचिक तथा कायिक व्यापार को ही वृत्ति कहते हैं। प्रवृत्ति रूप नायक के व्यापार का स्वभाव ही वृत्ति कहलाता है। वृत्ति का अर्थ है नटों की क्रिया या व्यापार जिसका रूपक में प्रदर्शन होता है। वृत्ति केवल वही नहीं है जिसका शरीर के विभिन्न अंगों से प्रदर्शन किया जाय बल्कि मन तथा वाणी का व्यापार भी वृत्ति के अन्तर्गत आता है। कवि नायक आदि के कायिक, वाचिक एवं मानसिक व्यापारों को वर्णनीय रूप से अपने मन में रखकर ही काव्य रचना करता है। इसीलिए वृत्ति काव्य या नाट्य की जननी मानी गई है। ये वृत्तियाँ चार हैं-1. कौशिकी, 2. सात्त्वती, 3. आरभटी एवं 4. भारती।

व्याख्या:-आचार्य भरत के अनुसार जो आकर्षक वेश के कारण सुरूचि पूर्ण हो, जिसमें स्त्री पात्र तथा अनेक प्रकार के नृत्य, गीत तथा वाद्य आदि का समावेश हो, जिसमें प्रणय व्यापार, विलास तथा आमोद-प्रमोद बहुल प्र्रसंगों का समावेश हो तो वह कौशिकी वृत्ति है। सात्त्वती वृत्ति विशेषतः मानस व्यापार रूप होती है। भारती वृत्ति वाचिक व्यापार रूप तथा कौशिकी एवं आरभटी विशेषकर कायिक व्यापार रूप होती है।

6.3.25 चतुर्थी भारती सापि वाच्या नाटकलक्षणे,

कौशिकीं सात्त्वतीं चार्थवृत्तिमारभटीमिति।

पठन्तः वृत्तिमौद्भटः प्रतिजानते।।

प्रसंग:-धनंजय ने चार वृत्तियाँ मानी हैं। उद्भट आदि आचार्यों ने ‘अर्थवृत्ति‘ नामक पंचम वृत्ति भी स्वीकार की है। उसका ग्रन्थकार इस प्रकार निराकरण करते हैं-

अर्थ:-कौशिकी, सात्वती एवं आरभटी वृत्तियों के अलावा अन्य कोई ‘अर्थवृत्ति‘ नहीं होती। चौथी ‘भारती‘ वृत्ति होती है, जिसका वर्णन नाटक के लक्षण वर्णन के अवसर पर किया जाएगा।

व्याख्या:-उद्भट तथा उनके अनुयायियों को मान्य यह ‘अर्थवृत्ति‘ लक्ष्य ग्रन्थों (नाटकादि) में कहीं भी दिखाई नहीं देती है। साथ ही वह रसों में भी उपयुक्त नहीं होती क्योंकि हास्य आदि सभी रसों का भारती आदि चार वृत्तियों में ही समावेश हो जाता है और कोई भी काव्यार्थ नीरस नहीं होता है। अतः कौशिकी, सात्वती एवं आरभटी ये तीन ही अर्थवृतियाँ हैं। भारती वृत्ति तो शब्द वृत्ति है, वह आमुख का अंग है। इनके अतिरिक्त ‘अर्थवृत्ति‘ नाम वाली कोई वृत्ति नहीं है।

6.3.26 श्रृंगारे कौशिकी, वीरे सात्त्वत्यारभटी पुनः।

रसे रौद्र च वीभत्से, वृत्तिः सर्वत्र भारती।।

प्रसंग:-दशरूपककार विभिन्न रसों में विभिन्न वृत्तियों के प्रयोग का नियम निरूपित करते हैं-

अर्थ एवं व्याख्या:-श्रृंगार रस में कौशिकी, वीर रस में सात्वती तथा रौद्र एवं वीभत्स रस में आरभटी वृत्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। भारती वृत्ति का प्रयोग सभी रसों में होना चाहिए।

यहाँ श्रृंगार से हास्य का भी ग्रहण किया जाना चाहिए अर्थात् श्रंृगार एवं हास्य रस में कौशिकी वृत्ति का उपयोग होता है। इसी तरह वीर के साथ-साथ अद्भुत रस में भी सात्वती वृत्ति प्रयुक्त होती है। करूण, रौद्र, वीभत्स एवं भयानक रस में आरभटी वृत्ति होनी चाहिए। भारती वृत्ति सभी रसों में प्रयुक्त होती है क्योंकि यह शब्द वृत्ति रूप है।

6.4 सारांश

दृश्य काव्य में कथावस्तु के बाद दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है नेता या पात्र। पात्रों के अभाव में दृश्य काव्य अभिनेय नहीं हो सकता। अतः कथावस्तु यदि किसी नाटक का शरीर है तो पात्र उसे प्राणवान् बनाते हैं। इसीलिए दशरूपक के द्वितीय प्रकाश के अन्तर्गत ‘नेता‘ तत्त्व का विशद् विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम उनके विनम्रता आदि सामान्य गुणों का वर्णन किया गया है जो नायक में तो होने ही चाहिए नायिका में भी यथासंभव होने चाहिए। नायक की प्रकृति के आधार पर उनके धीरललितादि चार भेद बताते हुए पुनः श्रृंगारिक अवस्था के आधार पर नायक की दक्षिण, शठ, धृष्ट एवं अनुकूल चार अवस्थाएँ कहीं गई हैं। नायक के आठ पुरूषोचित सात्विक गुणों, नायक के

पीठमर्द, विट, विदूषक आदि सहायकों का वर्णन करते हुए इस इकाई में प्रतिनायक का भी उल्लेख किया गया है।

नायक के बाद नायिका का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम उसके स्वकीया, परकीया, सामान्या रूप तीन भेद करते हुए स्वकीया नायिका के मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा ये तीन भेद किए हैं। मध्या एवं प्रगल्भा के छः छः प्रभेद करते हुए मुग्धा सहित स्वकीया नायिका के तेरह भेद किए गए हैं। परकीया नायिका कन्या और परोढ़ा दो तरह की तथा सामान्या नायिका गणिका रूप में एक ही प्रकार की होती है। नायिकाओं में यौवनावस्था में सत्व से उत्पन्न होने वाले बीस अलंकरण बताए गए हैं।

नाट्य वृत्तियों के अन्तर्गत कौशिकी, सात्वती एवं आरभटी वृत्तियों का परिचय दिया गया है। इस प्रकार इस इकाई में नाटक के पात्रों (नेता तत्त्व) का समग्र विवेचन किया गया है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. धीरललित
2. धीरोदात्त
3. दक्षिण नायक

बहुविकल्पीय:

1. नायक की श्रृंगार विषयक अवस्थाएँ कितनी होती हैं?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) आठ

2. किसी एक विद्या में निपुण नायक का सहायक पात्र क्या कहलाता है?

(क) चेट (ख) विट

(ग) विदूषक (घ) पीठमर्द

3. वृत्ति कितने प्रकार की मानी गई है।

(क) एक (ख) दो

(ग) तीन (घ) चार

4. श्रृंगार रस में कौन सी वृत्ति होती है?

(क) कौशिकी (ख) सात्त्वती

(ग) आरभटी (घ) भारती

5. नायिका की कितनी अवस्थाएँ मानी गई हैं

(क) छ' (ख) सात

(ग) आठ (घ) नौ

रिक्त स्थानों की पूर्ति:

1. सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो...।
2. रूपक के प्रकरण नामक भेद का नायक.................................कोटि का होता है।
3. ....धीरशान्त, धीरोदात्त एवं धीरोद्धत नायक के ये चार भेद माने गये गए हैं।
4. ....धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।
5. आसन्नायत्तरमणा हृष्टा..................................।

अति लघु उत्तरीय:

1. अन्या नायिका के समागम चिह्नों से युक्त होकर अपनी ज्येष्ठा नायिका के पास आने वाला नायक क्या कहलाता है?
2. अनुकूल नायक कैसा होता है?
3. प्रधान नायक से कुछ ही कम गुणों वाला पताका नामक प्रासंगिक कथा का नायक क्या कहलाता है?
4. नाटक में हास्य उत्पन्न करने वाला पात्र कौन होता है?
5. स्वकीया नायिका के सर्वप्रथम कौन से भेद कहे गए हैं?

सत्य/असत्य:

1. नायक के कुल चालिस भेद कहे गए हैं।
2. स्वकीया नायिका के कुल तेरह भेद होते हैं।
3. साधारणस्त्री या सामान्या नायिका गणिका या वेश्या होती है।
4. वीर रस में आरभटी वृत्ति होती है।

नोट: ऊपर दिए गए प्रश्नों के उत्तर इकाई की पाठ्य सामाग्री को भलीभांति पढ़कर स्वयं लिखें। इससे आपका अभ्यास होगा तथा आप खुद ही अपनी मूल्यांकन कर पाऐंगे। यद्यपि उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर

इकाई के अन्त में दिए गए हैं तथापि हमारा सुझाव है कि आप पाठ्य सामग्री को पढ़कर स्वयं प्रश्नों के उत्तर लिखें और बाद में उनका मिलान दिए गए उत्तरों से करें।

6.5 पारिभाषिक शब्दावली:

मुग्धा नायिका:- नवीन यौवन एवं नवीन कामभावना वाली रति क्रीड़ा में प्रतिकूल आचरण वाली तथा आसानी से दूर किए जाने योग्य कोप वाली नायिका मुग्धा नायिका है।

धीरोदात्त: उत्कृष्ट मन वाला, अर्थात् सुख दुःख से अप्रभावित रहने वाला, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्म प्रशंसा न करने वाला, स्थैर्य गुण की अधिकता वाला, अपने अहं भाव को दबाकर (छिपाकर) रखने वाला तथा दृढ़व्रती नायक धीरोदात्त होता है।

वृत्ति: नाटक में नायक-नायिका आदि का जो कार्य व्यापार होता है उसी को वृत्ति कहते हैं। वृत्ति शब्द का अर्थ ही है व्यापार। ये वृत्तियाँ (नायकादि का व्यापार) चार प्रकार की होती है कौशिकी, सात्त्वती, आरभटी एवं भारती। इन वृत्तियों को नाट्य की जननी अर्थात् माता कहा गया है "वृत्तयः नाट्यमातरः।"

6.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. धनंजय, दशरूपकम् व्याख्याकार डॉ0 केशवराव मुसलगाँवकर, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी
2. धनंजय, दशरूपकम् धनिककृत अवलोक टीका सहित, साहित्य भण्डार मेरठ।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय:

टिप्पणी:

1. धीरललित हेतु इकाई के उपखण्ड संख्या 6.3.3 को देखें।
2. धीरोदात्त हेतु इकाई के उपखण्ड संख्या 6.3.4 को देखें।
3. दक्षिण नायक हेतु इकाई के उपखण्ड संख्या 6.3.8 को देखें।

बहुविकल्पीय:

1. ग
2. ख
3. घ
4. क
5. ग

रिक्त स्थान पूर्ति:

1. द्विजादिकः
2. धीरशान्त
3. धीरललित
4. निश्चिन्तो
5. स्वाधीनभर्तका

अति लघु उत्तरीय:

1. धृष्ट नायक
2. एक ही नायिका के प्रति आसक्ति रखने वाला।
3. पीठमर्द
4. विदूषक
5. मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा

सत्य/असत्य:

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित कारिकाओं का अर्थ स्पष्ट कीजिए:-

(क) महासत्त्वोऽवोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।

स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।

(ख) दक्षिणोऽस्यां सहृदयः गूढविप्रियकृच्छठः।।

व्यक्तांगवैकृतो धृष्टः अनुकूलस्त्वेकनायिकः।।

2. निम्नलिखित कारिका/कारिकांश की सन्दर्भ एवं प्रसंग सहित व्याख्या कीजिए:-

(क) पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।

तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः।।

(ख) 'लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः

इकाई 1- भवभूति एवं उनकी कृतियों का सामान्य परिचय

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भवभूति: एक परिचय
    1.3.1 जीवनवृत्त
    1.3.2 जन्मस्थान
    1.3.3 पाण्डित्य
1.4 भवभूति की कृतियों का सामान्य परिचय
    1.4.1 मालतीमाधव
    1.4.2 महावीरचरित
    1.4.3 उत्तररामचरित
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय नाट्य एवं नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत उत्तररामचरित के विश्लेषण से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इसमें आप भवभूति एवं उनकी कृतियों का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगें।

करुणावतार महाकवि भवभूति संस्कृत नाटककारों की प्रथम पंक्ति में गिने जाते हैं। बाह्य जगत् के सौन्दर्य पर मुग्ध विद्वान् नाट्य के क्षेत्र में भी कालिदास को प्राथमिकता प्रदान करते हैं, परन्तु आन्तरिक सौन्दर्य को पहचानने वालों की दृष्टि में भवभूति का स्थान विश्व के समस्त कलाकारों से आगे है।

भवभूति की तीन रचनाएँ उपलब्ध है। ये तीनों रूपक हैं जिनमें प्रथम मालती माधव एक प्रकरण है । इसमें मालती और माधव नामक दो प्रेमियों की कथा निबद्ध है । दूसरा महावीर चरित नाटक है जिसमें राम के प्रारम्भिक जीवन से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा चित्रित की गई है। तीसरा उत्तर रामचरित नाटक, राम के राज्याभिषेक के बाद से लेकर सीता निर्वासन की मुख्य घटना पर आधारित है ।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप महाकवि भवभूति के जीवनवृत्त और समय आदि को समझा सकेंगे तथा उनकी कृतियों का सम्यक् विवचेन कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप भवभूति के

- जीवन वृत्त से अवगत हो सकेंगे।
- स्थितिकाल को समझ सकेंगे।
- व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगें।
- पाण्डित्य को समझ पायेंगे।
- मालतीमाधव प्रकरण को समझ सकेंगे ।
- मालतीमाधव में प्रेम और सौन्दर्य की अनुभूति कर सकेंगे ।
- महावीरचरित की वस्तुयोजना को समझा सकेगे ।
- महावीरचरित की कथावस्तु का औचित्य जान सकेंगे ।
- उत्तररामचरित की कथावस्तु को समझ सकेंगे ।

- उत्तररामचरित की विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकेगे।

1.3 भवभूति: एक परिचय

संस्कृत साहित्य की यह परम्परा रही है कि कवि या लेखक अपना परिचय नहीं देते रहे है। जिसने दिया भी वह संक्षिप्त ही और उसके आधार पर उसके जीवन चरित तथा समय पर सम्यक् प्रकाश नहीं पड़ता। परन्तु भवभूमि के सम्बन्ध में वैसी बात नहीं है। अपने रूपकों की प्रस्तावना में उन्होंने अपने कुल, गुरु और पाण्डित्य आदि का संक्षिप्त परिचय दिया है। यहाँ आप भवभूति के जीवन वृत्त, स्थितिकाल तथा पाण्डित्य का विहंगम अवलोकन करेंगे।

1.3.1 जीवनवृत्त

करुणा के उत्पूर तटाक से करुण रस को निर्बाध प्रवाहित करने वाले भवभूति ने अपने विषय में महावीर चरित तथा मालतीमाधव की प्रस्तावनाओं में स्पष्ट संकेत किया है। इनका जन्म कश्यप वंश के उदुम्बर नामक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पूर्वज कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा को पढ़ने वाले आहिताग्नि थे। वे विदर्भ देश के अन्तर्गत प0पुर नामक नगर के निवासी थे। इनके पूर्वजों ने वाजपेय और सोमयाग जैसे बडे-बडे यज्ञ किये थे। ये लोग अपने समय में प्रचलित सभी विद्याओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। भवभूति ने अपने पांचवे पूर्वज का महाकवि नाम से निर्देश किया है। यह महाकवि नाम पितृकृत न होकर कार्यकृत प्रतीत होता है, जिससे सिद्ध होता है कि भवभूति को विद्या और कविता दोनो पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थीं। इनके बाबा का नाम गोपाल भट्ट और पिता का नाम नील कण्ठ था। इन्होंने स्वयं को जतुकर्णी पुत्र लिखा है जिससे स्पष्ट है कि इनकी माता का नाम जतुकर्णी था। इनके पिता ने इनका नाम श्रीकण्ठ रखा था, पर ये काव्य जगत् में भवभूति के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इस प्रसिद्धि का कारण इनके द्वारा देवी पार्वती की वन्दना में लिखा गया एक श्लोक था जिसमें इन्होंने पार्वती के स्तनों को भवभूति सिताननौ कहा था।

1.3.2 स्थितिकाल

भवभूति संस्कृत साहित्य जगत् की विलक्षण विभूति हैं। उन्होंने अपने नाटकों में अपना

एवं अपने परिवार का पर्याप्त परिचय दिया है, परन्तु अपने जन्म एवं स्थितिकाल की कोई सूचना नहीं दी है। फिर भी उपलब्ध अन्तः एवं बाह्य प्रमाणों के आधार पर उनका काल निर्णय किया जा सकता है।

भवभूति की भाषा-शैली पर बाणभट्ट का प्रभाव दिखाई देता है। भवभूति के तीनों नाटकों में प्रमुखतः मालती माधव में बाणभट्ट की शैली का प्रभाव प्रतीत होता है। बाणभट्ट हर्षवर्धन (606-648 ई0) के दरबारी कवि थे। इसलिए बाणभट्ट का समय सप्तम शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। बाणभट्ट ने

हर्षचरित के आरम्भ में ही अपने पूर्ववर्ती कवियों एवं ग्रन्थों की चर्चा की है। उनमें भास, कालिदास, सातवाहन, प्रवरसेन एवं आढ्य राज आदि कवियों तथा वासवदत्ता, सेतुबंध तथा बृहत्कथा इत्यादि ग्रन्थों का उल्लेख किया है। परन्तु भवभूति एवं उनकी कृतियों का संकेत कहीं नहीं किया है । इससे पता चलता है कि भवभूति बाणभट्ट के परवर्ती नाटककार है ।

बामन ने अपने काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में भवभूति के पद्यों को उद्धृत किया है। पी.वी.काणे ने अपने उत्तरराम चरित की प्रस्तावना में वामन को 8वीं शताब्दी के आस-पास माना है। राजशेखर (880-920 ई0) ने बाल रामायण में अपने को भवभूति का अवतार माना है ।

कल्हण की राजतरिड़्.गणी के अनुसार भवभूति और वाक्पतिराज कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा यशोवर्मा के राजकवि थे । राजतरिड़्.गणी से ज्ञात होता है कि कश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मा को पराजित किया था। डॉ0 स्टोन ने इस घटना को 736 ई0 के आस-पास निर्धारित किया है। यशो वर्मा के आश्रित वाक्पतिराज और भवभूति भी इसी समय होने चाहिए । वाक्पतिराज ने एक 'गउडवहो' नामक प्राकृतगाथा काव्य लिखा है, जिसमें उन्होंने भवभूति की बड़ी प्रशंसा की है। वाक्पतिराज के इस काव्य का समय इसमें वर्णित एक सूर्य ग्रहण की गणना के अधार पर डॉ0 जैकोवी ने 733 ई0 निर्धारित किया है। निःसन्देह भवभूति इस समय से पूर्व ही रहें होंगे। इस प्रकार भवभूति के समय की पूर्व सीमा 606 ई0 और परसीमा 733 ई0 निर्धारित होती है।

1.3.3 पाण्डित्य

'वाग्वैविभूति' के अनन्य आराधक भवभूति अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ थे। इनकी कृतियों में इनके अगाध पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता है। इनके पूर्वज अध्यवसायी एवं धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे । भवभूति की ज्ञान गरिमा का आधार उनका पैतृक संस्कार था। उनके वैदिक एवं दार्शनिक ज्ञान का प्रवाह मालतीमाधव के प्रथम अंक में ही होने लगता हैं, यद्यपि वे इसके निरर्थक पाण्डित्य-प्रदर्शन के पक्ष में नहीं थे। वाणी उनकी जिह्वा पर वशवर्तिनी बनकर रहती थी। उत्तरराम चरित के भरतवाक्य में भी उनको 'शब्दब्रह्मविद्' कहा गया है । शास्त्र सिद्ध होने के साथ ही रससिद्ध कवि बनकर भवभूति ने नाट्य शास्त्र की परम्परा के विपरीत संस्कृत काव्यजगत् में एक नया आयाम स्थापित किया है। करुण को ही अंगीरस स्वीकार किया है एवं अन्य रसों को इनका विवर्तमात्र कहा है। उत्तर रामचरित में प्रयुक्त विवर्त वेदान्त के विवर्तवाद का संकेत देता है ।

मालती माधव के पंचम अंक में योग और दर्शन दोनों का सामंजस्य प्राप्त होता है। मालती माधव के ही नवम अंक में योग दर्शन के व्यावहारिक ज्ञान का उद्गार प्रकट होता है। भवभूति सांख्य दर्शन के अच्छे ज्ञाता थे। उत्तर रामचरित के पंचम अंक में चन्द्रकेतु का यह वचन- 'अपरेऽपि प्राचीनमान सत्व प्रकाशाः स्वयं सर्वं मन्त्रदृशः पश्यन्ति' सांख्य के सत्त्वगुण का परिचायक है । न्यायदर्शन के शब्द निग्रहस्थान' का प्रभाव भी सौधातकि और दाण्डायन के वार्तालाप में देखने को

मिलता है।

भवभूति वैदिक साहित्य में पारंगत थे। उनकी कृतियों में वैदिक ज्ञान का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। उत्तर रामचरित के द्वितीय अंक में बैराज लोकों का वर्णन ऋग्वेद के मन्त्र के समान ही किया गया है। इसी प्रकार चौथे अंक में ऋग्वेद के मन्त्र का ही अनुसरण है। महावीर चरित के प्रथम एवं द्वितीय अंक में इनकी अथर्ववेद की विद्वता प्रकट होती है। उनकी रचना में वैदिक शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है जैसे-'अरुन्धती-अक्षरं ते ज्योतिः प्रकाश्यताम्। सत्वां पुनातु देवः परो रजसां यः एष तपति।'उनके नाटकों में औपनिषदिक ज्ञान का प्रभाव एवं मन्त्रों का सप्रसंग प्रयोग प्राप्त होता है। उत्तरामचरित में जनक के कथन 'अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन' इत्येव मृषयो मन्यन्ते।' में ईशावास्योपनिषद् के मन्त्र का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है। महावीर चरित के प्रथम श्लोक में ही उपनिषदों में वर्णित गूढ तत्वों का सन्निवेश है। उत्तररामचरित के चतुर्थ अंक में अरुन्धती कथनबृहदारण्यकोपनिषद् का स्मरण कराता है। धर्मशास्त्र और राजनीति में निपुणता उनकी रचनाओं में यथासन्दर्भ देखने को मिलती है। उनको वर्णाश्रम व्यवस्था के ज्ञान के साथ ही अतिथि सेवा अनुष्ठान नियम आदि का भी समुचित ज्ञान था। राजनीति में कुशलता का परिचय उत्तररामचरित के पांचवे अंक में देखने को मिलता है; जब दोनों कुमार एक दूसरे को लक्ष्य करके कहते हैं-''वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते।'' महाकवि को कामशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। मालती माधव में अनेक स्थलों पर कामशास्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। सप्तम अंक में बुद्धरक्षिता का कथन '**नववधू विरुद्धरभसोपक्रमस्खलन**' कामसूत्र के नियमों का परिचायक है। उनकी कृतियों में अनेक सूक्तियां उनके नीतिपरक एवं मनोवैज्ञानिक वैशिष्ट्य को प्रमाणित करती है। साथ ही, उन्होंने अपनी कृतियों की प्रस्तावनाओं में अपने को 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' ठीक ही कहा है अर्थात् वे व्याकरण (पद) मीमांसा (वाक्य) और न्याय (प्रमाण) के विद्वान् थे। इस प्रकार भवभूति विविध शास्त्रों एवं विद्याओं में पारंगत थे।

अभ्यास प्रश्न 1-

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

क. भवभूति के वंश का नाम है?
ख. भवभूति के जन्म का परिवार है?
ग. भवभूति के पूर्वज किस शाखा के आहिताग्नि है?
घ. वे किस देश के निवासी थे?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

क. भवभूति ने अपने पांचवे पूर्वज का क्या नाम निर्देश किया है?

ख. भवभूति ने स्वयं को किसका पुत्र लिखा है?
ग. भवभूति के पिता ने इनका क्या नाम रखा था?
घ. भवभूति की प्रसिद्धि का कारण किसकी वन्दना में लिखा श्लोक था?

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

क. भवभूति संस्कृत साहित्य जगत् की .... विभूति हैं।
ख. मालती माधव में .... की शैली का प्रभाव प्रतीत होता है।
ग. पी.बी.काणे ने बामन को .... के आस-पास माना है।
घ. भवभूति के समय की परसीमा .... निर्धारित होती है।

4- सत्य/असत्य बताइएः

क. भवभूति बाणभट्ट के परवर्ती नाटककार है।
ख. भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ था।
ग. भवभूति हर्षवर्धन के दरबारी कवि थे।
घ. वाक्पतिराज राजतरंगिणी के लेखक हैं।

5- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

1; 'वाग्वैविभूति के अनन्य आराधक महाकवि हैं।

क. भवभूति
ख. बाणभट्ट
ग. वाक्पतिराज
घ. कालिदास

1.4 भवभूति की कृतियों का सामान्य परिचय

भवभूति की प्रसिद्धि उनकी तीन रचनाओं के कारण ही रही है। उनकी उपलब्ध तीन रचनाओं में ''महावीर चरित'' और उत्तररामचरित'' सात-सात अंकों के नाटक हैं और ''मालती माधव'' दस अंकों का एक प्रकरण। इन रचनाओं के कालक्रम के विषय में विद्वानों में मतभेद है। उत्तररामचरित को प्रायः सभी आलोचक कवि की अन्तिम कृति मानते हैं; किन्तु महावीर चरित और मालती माधव के रचनाक्रम के विषय में पर्याप्त मतभेद है। पण्डित टोडरमल, डॉ0 भण्डारकर, चन्द्रशेखर पाण्डेय आदि महावीर चरित को कवि की प्रथम कृति मानते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि भवभूति ने अन्य अनेक रचनाएँ की होंगी, जिनका उचित सम्मान नहीं हुआ, तब उन्होंने मालती

माधव प्रकरण की रचना की, जिसमें अपने आलोचकों के प्रति उनकी खीज स्पष्ट व्यक्त हुई है; किन्तु उसका भी अधिक सम्मान नहीं हुआ तब वे महावीर चरित की रचना में प्रवृत्त हुए। इसके बाद भी जब उन्हें यथेष्ट सम्मान नहीं मिला; तब वे उŸ◌ररामचरित की ओर उन्मुख हुए और प्रारम्भिक आलोचना के बाद अपने जीवन में ही एक उच्च कोटि के कलाकार की ख्याति प्राप्त करने में सफल हुए। उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1.4.1 मालती माधव

भवभूति की प्रथम नाट्यकृति मालती माधव है। यह 10 अंको का प्रकरण है। इसमें मालती और माधव के प्रेम की काल्पनिक कथा चित्रित की गई है। भूरिवसु और देवरात क्रमशः प੍◌ावती और विदर्भ के राजमन्त्री थे। उन्होंने यह प्रण किया था कि वे अपने पुत्र पुत्रियों का परस्पर विवाह करेंगे। समय पर देवरात के पुत्र और भूरिवसु के पुत्री उत्पन्न हुई। भूरिवसु देवरात के पुत्र माधव के साथ अपनी प्रतिज्ञानुसार मालती का विवाह करना चाहते हैं, परन्तु राजा का साला और मित्र (नर्मसुहृत्) मालती से अपना विवाह करना चाहता है। राजा का समर्थन भी उसे प्राप्त है। माधव का एक साथी मकरन्द है और नन्दन की बहिन मदयन्तिका मालती की सहेली है। मालती और माधव एक शिव मन्दिर में मिलते हैं; वहीं मदयन्तिका को मकरन्द एक सिंह से बचाता है। तभी वे एक दूसरे पर अनुरक्त हो जाते हैं। इधर राजा मालती और नन्दन का विवाह कराने के लिए तैयार है। माधव अपनी प्रेम सिद्धि के लिए श्मशान में तन्त्रसिद्धि कर रहा है कि उसे एक स्त्री की चीख सुनाई पड़ती है। वहाँ जाने पर उसे पता चलता है कि अघोरघण्ट और उसकी शिष्या कपालकुण्डला मालती को चामुण्डा की बलि चढाने का उपक्रम कर रहे हैं। माधव अघोरघण्ट को मारकर मालती को बचा लेता है। राजा के सैनिक ढूंढते हुए श्मशान पहुंचते है और मालती को ले आते हैं। मालती और नन्दन के विवाह की तैयारी की जाती है, परन्तु कामन्दकी (भूरिवसु की शुभ चिन्तिका तापसी) की चतुरता से मकरन्द का विवाह नन्दन से हो जाता है और कामन्दकी शिव मन्दिर में ले जाकर मालती माधव का गन्धर्व विवाह करा देती है। इधर प्रथम मिलन पर मकरन्द नन्दन को पीट देता है। नन्दन वहाँ से चला जाता है। मदयन्तिका अपनी भाभी को समझाने जाती है, पर उसे अपना प्रेमी जानकर उसके साथ भाग जाती है, परन्तु सैनिकों द्वारा मकरन्द पकड़ लिया जाता है। यह सुनकर माधव मालती को छोड़कर अपने मित्र की सहायता करने के लिए चल पड़ता है। इसी बीच अपने गुरु का बदला लेने के लिए कपालकुण्डला मालती को चुराकर श्रीपर्वत पर ले जाती है। उधर सैनिकों और माधव-मकरन्द का भयंकर युद्ध होता है। राजा उनकी वीरता से प्रसन्न होकर उन्हें छोड देता है। माधव मकरन्द के साथ विक्षिप्तावस्था में विन्ध्य पर्वत पर मालती की खोज में घूम रहा है। वहीं कामन्दकी की शिष्या सौदामिनी बताती है कि मालती इसकी कुटिया में सुरक्षित है। इस समाचार को मकरन्द, भूरिवसु, मदयन्तिका आदि को देता है। बाद में मालती माधव के मिलन के साथ ही मकरन्द मदयन्तिका का विवाह सम्पन्न हो जाता है।वस्तुयोजना की दृष्टि से मालती माधव की कथा बहुत विशृंखलित है।

लम्बे-लम्बे समास और संवाद उसकी नाटकीयता में व्याघात उपस्थित करते है। यह प्रकरण महाकवि भास के 'अविमारक' से प्रभावित प्रतीत होता है।

1.4.2 महावीर चरित

यह सात अंकों का नाटक है। इसमें श्री रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन है। मालती माधव की अपेक्षा यह नाटक अधिक संगठित है। कवि ने इसमें अनेक कल्पनाएँ की हैं। आरम्भ में ही रावण को सीता विवाह का अभिलाषी चित्रित करके कवि ने नाटक में संघर्ष की अवतारणा कर दी है। रामचन्द्र जी धनुष तोड़कर सीता जी से विवाह करते है। रावण अत्यन्क्रुद्ध होता है, उसका मन्त्री माल्यवान् अपनी कूटनीति का प्रयोग करता है। पहले तो वह परशुराम को राम के विरुद्ध भड़काकर भेजता है पर जब यह युक्ति असफल हो जाती है तब वह सूर्पणखा को मन्थरा वेश में भेजकर कैकयी से राम को वन भेजने का षडयन्त्र करता है। वन में निवास करते समय माल्यवान् ही सीता हरण कराता है और बाली को भड़काता है। बाली राम से युद्ध करने आता है और मारा जाता है। अन्त में राम सुग्रीव की सहायता से लंका पर चढ़ाई करते हैं और रावण वध के अनन्तर पुष्पक विमान से अयोध्या लौट आते हैं।

महावीर चरित मालती माधव से अधिक गठा हुआ होने पर भी वर्णनों की अधिकता, सटीक चरित्र-चित्रण के अभाव एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की न्यूनता के कारण प्रथम श्रेणी का नाटक नहीं कहा जा सकता है।

1.4.3 उत्तररामचरित

यह भवभूति का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें कवि ने अपनी कल्पना का प्रयोग करके अद्भुत सृष्टि की है। सात अंकों में निबद्ध इस नाटक में रामचन्द्र जी के उत्तररामचरित का वर्णन है। इसे महावीर चरित का उत्तरभाग ही समझा जा सकता है। प्रथम अंक में राम को दुर्मुख नामक दूत से सीतापवाद विषयक सूचना मिलती है और वे प्रजारंजन के लिए उनका त्याग कर देते हैं। इसकी भूमिका बड़े ही कौशल से संयोजित की गई है। चित्रदर्शन के अवसर पर स्वयं

सीता जी गंगा जी का दर्शन करने की इच्छा व्यक्त करती हैं और गंगादर्शन के लिए उनका जाना अनजाने में ही राम से बिछुड़ जाना होता है। दूसरे अंक का प्रारम्भ 12वर्ष के बाद होता हैं आत्रेयी नामक तापसी तथा वासन्ती नामक वनदेवी के सम्भाषण से ज्ञात होता है कि राम ने अश्वमेघ यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है और महर्षि वाल्मीकि किसी देवता के द्वारा सौंपे गये दो प्रखर बुद्धि बालकों का पालन कर रहे हैं। राम दण्डकारण्य में प्रवेश कर शुद्रमुनि शम्बूक का वध करते हैं। तृतीय अंक में तमसा और मुरला दो नदियों के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि परित्यक्त होने के अनन्तर सीता जी प्राण-विसर्जन करने के लिए गंगा जी में कूद पडीं और वहीं उन्होंने लव-कुश को जन्म दिया। गंगा जी ने उनके पुत्रों की रक्षा करके वाल्मीकि जी को समर्पित कर दिया है। आज उनकी बारहवीं वर्षगांठ है,

इसलिए भगवती भागीरथी ने सीताजी को आज्ञा दी है कि वे अपने कुल के उपास्यदेव भगवान् सूर्य की उपासना करें। उन्हें भागीरथी का वरदान है कि उन्हें पृथ्वी पर देवता भी नहीं देख सकते, पुरुषों की तो बात ही क्या है? गंगा जी को यह बात ज्ञात है कि अगस्त्याश्रम से लौटते समय रामचन्द्र जी पंचवटी के दर्शन अवश्य करेंगे, कहीं ऐसा न हो के पूर्वानुभूत दृश्य का स्मरण कर वे विक्षिप्तचित्त हो जायें। इसलिए उन्होंने सीता जी को राम का दर्शन करने की योजना बनाई है और उनकी देखरेख के लिए उन्होंने (तमसा) को उनके साथ भेजा है। इसके अनन्तर भगवान् रामचन्द्र जी का प्रवेश होता है। वे पंचवटी प्रवेश में वनदेवी वासन्ती के साथ पूर्वानुभूत दृश्यों को देखकर सीता की स्मृति से अत्यन्त व्याकुल होते हैं। सीता अदृश्य रूप में उन्हें स्पर्श करके प्रबुद्ध करती है। छाया नामक तृतीय अंक में सीता के हृदय की शुद्धि हो जाती है। चतुर्थ अंक में वाल्मीकि आश्रम में जनक, कौशल्या, वसिष्ठ आदि का आगमन होता है। कौशल्या और जनक का मिलन होता है। वहीं एक क्षत्रिय बालक (लव) को ये देखते हैं। अन्य ब्रह्मचारियों द्वारा रामचन्द्रजी के यज्ञाश्व की सूचना सुनकर वह भाग जाता है। पांचवे अंक में यज्ञाश्व के रक्षक चन्द्रकेतु से लव का वाद-विवाद होता है और वे युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं, यद्यपि उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम उमड़ता है। छठे अंक में एक विद्याधर युगल के द्वारा दोनों के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है। इसी बीच रामचन्द्र जी के आ जाने से युद्ध रुक जाता है। कुश भी सूचना पाकर आ जाता है। राम के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त प्रेम उमड़ पडता है। परन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं हो पाता कि ये उन्हीं की सन्तान है। सम्मेलन नामक सातवें अंक में गर्भांक नाटक का प्रयोग होता है। वहीं वाल्मीकि की योजना से सीता-राम का मिलन

अभ्यास प्रश्न2-

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

क. महावीरचरित नाटक में कुल कितने अंक है?
ख. भवभूति के प्रकरण ग्रन्थ का नाम क्या है?
ग. उत्तररामचरित में अंकों की संख्या कितनी है?
घ. मालती माधव में कुल कितने अंक हैं?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

क. पं0 टोडरमल आदि किस नाटक को भवभूति की प्रथम कृति मानते हैं।
ख. प्रायः सभी आलोचक किस नाटक को भवभूति की अन्तिम कृति मानते हैं।
ग. भूरिवसु और देवरात क्रमशः किन राज्यों के राजमंत्री थे?
घ. नन्दन की वहिन मदयन्तिका किसकी सहेली है?

3- निर्देशानुसार उत्तर दीजिएः

क. महावीर चरित में कहाँ तक की घटनाओं का वर्णन हैं?
ख. पुष्पक विमान में विशेषण पद बताइए।
ग. महावीर चरित में रावण के मंत्री का नाम क्या है?
घ. किस अंक में सीता के हृदय की शुद्धि होती है?

4- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

क. वन में निवास करते समय .... सीता का हरण कराता है।
ख. दुर्मुख नामक दूत से .... विषयक सूचना मिलती है।
ग. राम दण्डकारण्य में प्रवेश कर .... शम्बूक का वध करते हैं।
घ. वाल्मीकि आश्रम में कौशल्या और .... का मिलन होता है।

5- सत्य/असत्य बताइएः

क. राजा मालती और माधव का विवाह कराने को तैयार हैं।
ख. माधव अघोरघण्ट का वध करता है।
ग. कपालकुण्डला मालती को चुराकर विन्ध्य पर्वत पर ले जाती है।
घ. कामन्दकी मालती-माधव का गन्धर्व विवाह कराती है।

6- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

उत्तररामचरित के अन्तिम अंक का नाम है-

a. चित्रदर्शन
b. छाया
c. गर्भांक
d. सम्मेलन

1.5 सारांश

भवभूति संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान रत्न हैं महत्व की दृष्टि से कालिदास के अनन्तर इन्हें स्थान दिया जाता हैं। उनकी रचनाओं ने संस्कृत साहित्य में एक नवीन आभा प्रदान की है। वे विदर्भ (बरार) के पद्मपुर नगर के निवासी थे। उन्होंने उदुम्बरवंशी ब्राह्मणों के परिवार में जन्म लिया था। ये ब्राह्मण बड़े ही आदरणीय, धर्मनिष्ठ, सोमरस का पान करने वाले और वेद के ज्ञाता थे। इनके बाबा का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इनके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था। वे वास्तव में ज्ञान के निधि ही थे। भवभूति को विद्वपैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुई थी। समस्त

शास्त्रों में उनकी अप्रतिहत गति थी। वाणी अनुचरी की भांति उनका अनुसरण किया करती थी। भवभूति की प्रसिद्धि उनकी तीन रचनाओं के कारण ही रही है। इनमें मालती माधव दस अंकों का प्रकरण है। महावीर चरित और उत्तर रामचरित सात सात अंकों के नाटक हैं। इसके अतिरिक्त उनके कुछ श्लोक यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। ये श्लोक उनकी दूसरी कृतियों की कल्पना के लिए बाध्य करते हैं; जैसे- सदुक्ति कर्णामृत में उद्धृत पद्य एवं शार्ङ्.धर पद्धति के कुछ पद्य भवभूति की लुप्त रचना के संकेत देते हैं। फिर भी उनकी तीन रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।

1.6 शब्दावली

तटाक - तालाब

निर्बाध - बाधारहित

उदुम्बर - एक ब्राह्मवंश

आहिताग्नि - ब्राह्मण, जो यज्ञ की पावन अग्नि को अभिमन्त्रित करते हैं।

श्रीकण्ठ - भवभूति कवि का विशेषण

अध्यवसायी - दृढ़संकल्प वाला

प्रवर सेन - सेतुबन्ध महाकाव्य के रचयिता

धर्मनिष्ठ - धार्मिक

वाग्वैविभूति - महाकवि की आराध्य शक्ति

शब्दब्रह्मविद् - वेद का विद्वान्

अरुन्धती - वसिष्ठ की पत्नी

औपनिषदिक - उपनिषदों पर आधारित

असूर्या - सूर्यरहित, प्रकाशहीन

प्रखर बुद्धि - मेधावी

कूटनीति - धोखे में डालने वाला मार्ग

अनुष्ठान - धार्मिक कार्यनिष्पादन

दारुण	-	कठोर
पद	-	व्याकरण शास्त्र
वाक्य	-	तर्कशास्त्र
प्रमाण	-	न्यायशास्त्र
श्मशान	-	शवस्थान
तन्त्रसिद्धि	-	अतिमानव शक्ति प्राप्त करने के लिए मन्त्र-यन्त्र की साधना
सटीक	-	समुचित, टीका सहित
यज्ञाश्व	-	यज्ञ का घोड़ा

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

क. कश्यप
ख. उदुम्बर
ग. तैत्तिरीय
घ. विदर्भ

क. भवभूति ने अपने पांचवे पूर्वज का महाकवि नाम निर्देश किया है
ख. भवभूति ने स्वयं को जतुकर्णीपुत्र लिखा है।
ग. भवभूति के पिता ने इनका नाम श्रीकण्ठ रखा था।
घ. भवभूति नाम की प्रसिद्धि का कारण पार्वती की वन्दना में लिखा श्लोक था।

3- क विलक्षण

ख बाणभट्ट

ग 8वीं शताब्दी

घ 733 ई0

4- क . सत्य

ख सत्य

ग असत्य

घ असत्य

5. भवभूति

अीयास प्रश्न 2

1. क. सात

ख. मालती माधव

ग. सात

घ. दस

2- क. पं0 टोडरमल आदि महावीरचरित को भवभूति की प्रथम कृति मानते है।

ख. प्रायः सभी आलोचक उत्तररामचरित को भवभूति की अन्तिम कृति मानते है।

ग. भूरिवसु और देवरात क्रमशः पùवती और विदर्भ के राजमन्त्री थे।

घ. नन्दन की वहिन मदयन्तिका मालती की सहेली है।

3- क. महावीर चरित में श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन है।

ख. विशेषण पद पुष्पक है।

ग. महावीर चरित में रावण के मन्त्री का नाम माल्यवान् है।

घ. छाया नामक तृतीय अंक में सीता के हृदय की शुद्धि होती है।

4- क. माल्यवान्

ख. सीतापवाद

ग. शूद्रमुनि

घ. जनक

4- क. असत्य

ख. सत्य

ग. असत्य

घ. सत्य

6- सम्मेलन

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1- भवभूति, उत्तररामचरितम्, व्याख्या- डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल; (1986-87)
साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

2- भवभूति, उत्तररामचरितम्; व्याख्या- आचार्य प्रभुदत्त स्वामी (1988)
ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1- डा. दयाशंकर तिवारी, भवभूति के नाटकों की ध्वनि सिद्धान्त परक समीक्षा, 2009,
विद्यानिधि प्रकाशन, खजूरी खास, दिल्ली-94

2- भवभूति, मालतीमाधवम्, व्याख्या-डॉ0 गंगासागर राय, (2002)
चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी-1

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- भवभूति के जीवनवृत्त, समय और पाण्डित्य को स्पष्ट कीजिए।

2- मालती माधव के कथानक का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

3- महावीर चरित की कथावस्तु का विवेचन कीजिए।

4- उत्तररामचरित की कथावस्तु का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 2: उत्तररामचरितम् का नाट्य शास्त्रीय मूल्यांकन

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2. 3 उत्तररामचरित की कथावस्तु और नाट्य
2.3.1 कथावस्तु का स्रोत और उसमें परिवर्तन
2.3.2 वस्तु विन्यास
2.4 उत्तररामचरित की नाटकीय विशेषताएं
2.4.1 नाटकीय संवाद
2.4.2 चरित्र चित्रण
2.4.3 प्रकृतिचित्रण
2.4.4 भाषा शैली
2.4.5 रसयोजना
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 सहायक पाठ्यसामग्री
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय नाट्य और नाट्य शास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित दूसरी इकाई है। पूर्व इकाई में आप भवभूति एवं उनकी कृतियों से सामान्य परिचय प्राप्त किये। इसके अन्तर्गत आप उत्तररामचरित की नाटकीय विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

उत्तररामचरित का कथानक वाल्मीकि रामायण से लिया गया है। रामायण की मूलकथा को अधिकाधिक नाटकीय बनाने के लिए भवभूति ने उसमें कई सुन्दर कल्पनाएं की है जिन्हें कुछ विद्वानों ने मूलकथा में परिवर्तन की संज्ञा दी है, वास्तव में भवभूति ने राम और सीता के पुनर्मिलन के अतिरिक्त रामायण की मूल में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया है जिससे कथा प्रवाह अपने निश्चित स्थान को छोड़कर इधर-उधर बहता दिखाई देता हो। भवभूति ने मुख्य कथावस्तु को नाटकीय रूप प्रदान करने के लिए जो उद्धावनाएं की है वे नदी की धारा पर बनाये गये नवीन घाटों के समान ही हैं। उन्हें कथा की मूल धारा में परिवर्तन नहीं कहा जा सकता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उत्तररामचरित के नाट्य को समझा सकेंगे तथा भारतीय नाट्य विद्या का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उत्तररामचरित की-

- कथावस्तु को समझ सकेंगे।
- कथावस्तु के स्रोत और कविकृत परिवर्तनों को जान सकेंगे।
- वस्तुविन्यास से अवगत हो सकेंगे।
- नाटकीय संवाद समझ सकेंगे।
- पात्रों के चरित्र से परिचित हो सकेंगे।
- प्रकृति-चित्रण का वैशिष्ट्य समझ सकेंगे।
- भाषा-शैली को समझ सकेंगे।
- रस योजना को जान सकेंगे।
- पताका स्थानक को पहचान पायेंगे।
- विष्कम्भक को परिभाषित कर सकेंगे।
- नाटकीय विशेषताएँ आत्मसात् कर सकेंगे।

2.3 उत्तररामचरित की कथावस्तु और नाट्य

2.3.1 कथावस्तु का स्रोत और उसमें परिवर्तन-

उत्तररामचरित की कथावस्तु रामायण पर आधारित है, किन्तु नाटकीय स्वरूप प्रदान करने के लिए भवभूति ने उसमें अनेक परिवर्तन किये है। निःसन्देह उनकी प्रतिभा के बल से उत्तररामचरित का कथानक एक नवीन रूप में अवतीर्ण हुआ हैं 'पù पुराण' में श्री रामकथा का यह प्रसंग उत्तररामचरित की घटनाओं से मिलता है। इसी आधार पर वेलवल्कर प्रभृति विद्वानों का विचार है कि भवभूति के उत्तररामचरित का स्रोत वहीं पुराण था, किन्तु पुराणों की निश्चित तिथि निर्धारित न होने तथा उनमें समय-समय पर अनेक प्रक्षेप होने के कारण यह विचार हृदयंगम प्रतीत नहीं होता। बहुत सम्भव है उत्तररामचरित की रचना के अनन्तर किसी ने उसके आधार पर वह प्रसंग पù पुराण में जोड़ दिया हो। भवभूति ने रामायण की कथा में निम्नलिखित परिवर्तन किये हैं-

1- रामायण की कथा दुःखान्त है। सीता पृथ्वी में समा जाती हैं और राम हाथ मलते रह जाते हैं, किन्तु संस्कृत नाट्यशास्त्र के नियमों का ध्यान रखते हुए भवभूति ने उसे सुखान्त चित्रित किया है। राम-सीता, लव-कुश आदि के सुखद मिलन के साथ नाटक समाप्त होता है।

2- प्रथम अंक में चित्रवीथी की कल्पना कवि के उर्वर मस्तिष्क की उपज है। मूलकथा में उसका उल्लेख नहीं है। इस प्रयोग से राम के उत्तर चरित के साथ पूर्वचरित भी संयोजित कर दिया गया है।

3- शम्बूक की कथा यद्यपि रामायण में भी मिलती है, परन्तु उत्तररामचरित के द्वितीय अंक में वह एक नये रूप में प्रस्तुत की गई है, जिससे राम पंचवटी में पहुँच सके।

4- तृतीय अंक में छाया सीता की कल्पना कवि की मौलिक सूझ है। छाया सीता की अवतारणा नाटकीय दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। पंचवटी में राम का वासन्ती से मिलना भी कवि की अपनी उद्भावना है। इस पात्र की सृष्टि करके कवि ने राम के हृदय का सच्चा

चित्र दर्शकों के सामने रखने में अपूर्व सफलता पाई है।

5- चतुर्थ अंक में वसिष्ठ, अरुन्धती, जनक आदि को वाल्मीकि आश्रम में एकत्रित करना भी कवि का ही कौशल है।

6- रामायण की कथा में यज्ञाश्व चुराने के प्रसंग में राम और लव-कुश का युद्ध वर्णित है और इसमें राम की पराजय भी दिखलाई गई है, परन्तु भवभूति ने बड़ी कुशलता से अपने नायक की मान रक्षा की है। उन्हें ऐसी असमंजसकारी परिस्थिति से बचाया है। युद्ध लव और चन्द्रकेतु में ही दिखाया

गया है, जो कि समन्वय आदि के कारण औचित्य पूर्ण है। युद्धवर्णन से राम के मंच पर आने में सहायता मिलती है।

7- सातवें अंक में 'गर्भांक' कवि का नूतन प्रयोग है। उत्तर राम चरित का प्रारम्भ भी नाटक से है और अन्त भी।

2.3.2 वस्तु विन्यास

उत्तर राम चरित में भवभूति का वस्तु विन्यास बड़ा ही कलापूर्ण है। कथावस्तु को अंकों में इस प्रकार विभाजित किया गया है कि आगामी घटनाचक्र पर उसका प्रभाव पड़ता चला जाता है।'चित्रदर्शन' नामक प्रथम अंक में ही हम नाटक के सुखान्त होने की सूचना पाते है- ''सर्वथा ऋषयों देवताश्चश्रेयो विधास्यन्ति''। सीता के पुत्रों को जृम्भकास्त्रों की प्राप्ति, गंगा और पृथ्वी के द्वारा सीता की आगामी सहायता- सबका बीज इसी अंक में मिल जाता है। पताका स्थानकों के सुन्दर प्रयोग कथा को और भी अधिक प्रभावशाली बना देते हैं। राम के 'किमस्या न प्रेयो यदि परम सह्यस्यु विरहः' कहने पर प्रतिहारी का यह कहना 'देव! उपस्थितः और राम का घबराकर यह पूछना- अयिकः? और प्रतिहारी का यह उत्तर देना - ''आसन्न परिचारको देवस्य दुर्मुखः'' पताकास्थानक के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रकार के प्रयोग अनेक स्थलों पर नाटक के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं।

दूसरे अंक की धटनाएँ बारह वर्ष के अनन्तर होती हैं। प्रजा पालन के लिए शम्बूक का वध करने के लिए राम दण्डकारण्य में आते हैं। कवि ने इन बारह वर्षों के बीतने का संकेत प्राकृतिक परिवर्तनों के आधार पर बडी कुशलता से किया है। नदियों कि धाराएँ बदल गई हैं, सीता के पालतू पशु पक्षी बड़े हो गये है। परन्तु राम के हृदय मे सीता काप्रेम ज्यों का त्यों है। वह प्रेम दण्डकारण्य में आकर एकदम प्रदीप्त हो उठता है। रामचन्द्र जी के चरित्र का विकास इस अंक में बडे ही मनोवैज्ञानिक ढंग से दिखाया गया है।

सीता के हृदय की शुद्धि के लिए तीसरा अंक अवतरित किया गया है। इस अंक का नाम छाया रखा गया है। पंचवटी के पूर्वानुभूत दृश्यों के देखकर राम का फूट-फूट कर रोना निस्सन्देह सीता के परित्याग शल्य को उखाड फेकता है और उनके हृदय में जो कुछ रोष था, दूर हो जाता है।'अहमेवैतस्य हृदयं जानामि ममैषः' कहकर वे अपने हृदय का परम विश्वास व्यक्त करती हैं। हिरण्य प्रतिमा का समाचार सुनकर तो उनका समस्त आक्रोश श्रद्धा और विश्वास में परिवर्तित हो जाता है। सीता का अदृश्य रूप में वर्णन कवि की मौलिक सूझ है। बहुत से आलोचकों ने इस अंक पर यह आरोप लगाया है कि इसके कारण नाटक की गतिशीलता में विघ्न उपस्थित होता है। परन्तु इस अंक में बाह्य गतिशीलता नहीं, आन्तरिक गतिशीलता है।

चतुर्थ अंक में कारुण्य की गहराई से निकलकर दर्शक कुछ विश्रान्ति का अनुभव करता है।

इस अंक की घटनाआं का सम्बन्ध दूसरे अंक की धटनाओं से है, वहाँ आत्रेयी और वासन्ती के वार्तालाप से अरुन्धती, कौसल्या और वसिष्ठ जी के वाल्मीकि आश्रम में गमन, लव-कुश, राम के अश्वमेध यज्ञ, यज्ञ के अश्व की रक्षा में संलग्न चन्द्रकेतु, वाल्मीकि के काव्यादि के सम्बन्ध मे चर्चा हुई थी। यहाँ उन तथ्यों का विस्तार दृष्टिगत होता है चतुर्थ अंक के अन्त से ही पाँचवे अंक की भूमिका प्रारम्भ हो जाती है और घटनाचक्र बडी तीव्रता से बढ़ता है।

छठे अंक की भूमिका दूसरे अंक से ही प्रारम्भ हो जाती है। शम्बूक वध करके राम विमान से अयोध्या लौटते समय वाल्मीकि आश्रम में भी जायेंगे, यह सम्भवना होती है। रगमंच पर उनके प्रवेश के लिए कवि ने समुचित भूमिका प्रस्तुत की है। लव-कुश से उनका मिलन बड़ी चातुरी से कराया गया है। नाटक के चरमावधि तक पहुँचने के लिए इस अंक की महत्ता स्वतःसिद्ध है। उपसंहार में सातवें अंक का गर्भांक बडा ही महत्वपूर्ण है। यह अंक समग्र नाटक की कथावस्तु का संक्षेप में परिचय प्रस्तुत कर देता है। तृतीय अंक का छाया चित्र सप्तम अंक में वास्तविक रूप धारण कर लेता है।

अंक की महत्ता स्वतःसिद्ध है। उपसंहार में सातवें अंक का गर्भांक बडा ही महत्वपूर्ण है। यह अंक समग्र नाटक की कथावस्तु का संक्षेप में परिचय प्रस्तुत कर देता है। तृतीय अंक का छाया चित्र सप्तम अंक में वास्तविक रूप धारण कर लेता है।

उत्तर रामचरित में विष्कम्भकों का प्रयोग भी कुशलता से हुआ है। उनमें सभी आवश्यक घटनाओं की सूचना दे दी गई है।

नाट्यशास्त्र की दृष्टि से इसकी कथावस्तु प्रख्यात है। नायकधीरोदात्त है। नायिका स्वकीया है। इसमें प्रतिनायक या प्रतिनायिका का अभाव है। अर्थ प्रकृतियों, अवस्थाओं, संन्धियों का यथास्थान चारुता से सन्निवेश किया गया है।

अभ्यास प्रश्न 1

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

- उत्तररामचरित्र में राम किस कोटि के नायक हैं?
- उत्तररामचरित्र की घटनाएँ किस पुराण मे मिलती है?
- लव कुश को प्रप्त अस्त्रों का क्या नम है?
- प्रथम और द्वितीय अंक की घटनाओं के मध्य कितने वर्ष का अन्तर है?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- उत्तररामचरित की कथावस्तु किस पर आधारित है?
- द्वितीय अंक में किसकी कथा नये रूप में चित्रित की गई है?
- तृतीय अंक में किसकी कल्पना कवि की मौलिक सूझ है?
- रामायण में किस प्रसंग में राम और लव कुश का युद्ध वर्णित है?

3- रिक्त स्थानों कि पूर्ति कीजिएः

- उत्तररामचरित .... बडा ही कलापूर्ण है।
- सातवें अंक में .... कवि का नूतन प्रयोग है।
- प्रजापालन के लिए .... राम दण्डकारण्य में आते है।
- दण्डकारण्य में आकर .... का प्रेम एकदम प्रदीप्त हो उठता है।

4- सत्य/असत्य बताइएः

- सीता के हृदय की शुद्धि के लिए तीसरा अंक अवतरित किया गया है।
- छठे अंक की भूमिका पहले अंक से ही प्रारम्भ हो जाती है।
- चतुर्थ अंक के अन्त से ही पांचवे अंक की भूमिका प्रारम्भ हो जाती है।
- उत्तररामचरित में विष्कम्भकों का प्रयोग भी कुशलता से हुआ है।

5- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

नाटक के सुखान्त होने की सूचना मिलती है-

क प्रथम अंक में ख द्वितीय अंक में

ग तृतीय अंक में घ चतुर्थ अंक में

2.4 उत्तररामचरित की नाटकीय विशेषताएं

2.4.1 नाटकीय संवाद

उत्तररामचरित में नाटकीय संवाद अधिकांशतः छोटे और सहज बोधगम्य है। कभी-कभी छोटे-छोटे वाक्य बड़े-बड़े अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। सीता का‘वत्स! इयमप्यपरा का?’ पूछना, लक्ष्मण का ‘आर्ये! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्’ यह कहना, वन देवता का ‘हन्त’ तर्हि पण्डितः संसारः’ कहना उनके सारगर्भित कथोपकथनों के उदाहरण हैं। भवभूति के संवाद इस नाटक में न तो ‘मालती

माधव' की तरह दीर्घसमासयुक्त है और न ही 'महावीर चरित' की भाँति उनमें शब्दों का अकाण्ड ताण्डव तथा श्लथत्व ही है। उत्तररामचरित में श्लोकों को विभक्त करके संवादोपयोगी रूप देने में भवभूति बहुत सफल हुए हैं।

2.4.2 चरित्र चित्रण

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'उत्तररामचरित' एक सफल नाटक है। राम प्रजा पालक हैं और प्रजाहित के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर सकते हैं। सीता 'करुणस्य मूर्तिः' अथवा शरीरिणी विरहव्यथा' होने पर भी अपने लोकोत्तर तेज से नाटक के प्रत्येक क्षेत्र कोआभासित कर रही हैं। लक्ष्मण आज्ञापालक कर्तव्य निष्ठ, गम्भीर और कुछ तेजस्वी स्वभाव के चित्रित किये गये हैं। कौशल्या विपत्ति की मारी हुई, जनक दुर्भाग्यग्रस्त होने पर भी क्षात्र धर्म से प्रदीप्त हैं। लव-कुश बाल-सुलभ चापल्य से युक्त होने पर भी वीरता से युक्त हैं, चन्द्रकेतु राजकुमार होने पर भी विनय और वीरता से युक्त हैं। तमसा, वासन्ती, आत्रेयी, नारी गुणों के साथ ही अपनी-अपनी भूमिकाएँ चित्रित करने में पूर्णतः सफल हुई हैं। अष्टावक्र, वाल्मीकि मितभाषी ऋषियों के रूप में चित्रित किये गये हैं। सुमन्त्र स्वामिभक्त, वात्सल्यपूर्ण और नीतिज्ञ हैं। दण्डायन और सौधातकि अनध्यायप्रिय छात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ऋषि पत्नी अरुन्धती परम साध्वी के रूप में हमारे सामने आती हैं। दुर्मुख तो दुर्मुख है ही।भवभूति की प्रतिभा की सशक्त तूलिका से ये सभी चित्र बडे ही प्राणवान् चित्रित किये गये हैं। यद्यपि उनके ये चित्र बहुत भड़कीले नहीं हैं; परन्तु इनमें जो गम्भीर-प्रभावोत्पादन क्षमता है वह किसी को मन्त्र-मुग्ध किये बिना नहीं रह सकती।

2.4.3 प्रकृति-चित्रण

उत्तररामचरित में प्रकृति का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया गया है। वहाँ के द्रुम और मृग भी सीता-राम के बन्धु-बान्धव हैं, मयूर भी सीता का स्मरण करता है। वृक्ष भी पुष्पों से राम को अर्ध्य प्रदान करते हैं और उनके रुदन पर पत्थर भी फूट-फूट कर रोने लगते हैं। प्रकृति वर्णन में भवभूति का कौशल इस बात से आंका जाना चाहिए कि उन्होंने पंचवटी में सभी पशु-पक्षी युगल रूप में चित्रित किये हैं, जबकि राम और सीता ही अकेले-अकेले हैं। राम के हृदय को रुला-रुला कर 'काव्य न्याय' दिखाने में कवि ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। विदूषक अभाव भी इस नाटक की अन्य विशेषता है।

2.4.4 भाषा शैली

भवभूति ने सरस्वती को अपनी अनुगामिनी कहा है, जो सर्वथा सत्य है। वास्तव में वे वाणी के ब्रह्मा है। भाषा उनकी अनुचरी है। वह उनके भावों के अनुरूप ढलकर स्वयम् आ उपस्थित होती है। शृंगार और करुण के प्रसंग में वे कोमल पदावली का प्रयोग करते हैं। वीर, भयानक, वीभत्स और रौद्र के अवसरों पर उनकी पदावली तदनुरूप कठोर प्रतीतहोने लगती है। बालकों के मुख से बालकों की, वृद्धों के मुख से वृद्धों की, ऋषियों के मुख से ऋषियों की भाषा का प्रयोग जैसा उत्तर रामचरित में

मिलता है, वह अन्यत्र नहीं है। भावातिरेक के कारण कभी कभी कवित्व नाटकत्व से बढ़ जाता है और नाटकीय गतिशीलता दबी हुई सी प्रतीत होती है।

2.4.5 रस योजना

उत्तररामचरित की रस योजना के सम्बन्ध में प्रायः सभी आलोचकों ने करुण रस को ही अंगीरस के रूप में ही स्वीकार किया है। उनकी मान्यता का आधार भवभूति का अपना ही श्लोक 'एको रसः करुण एव निमित्त भेदात्......' है। इन विद्वानों के मत में भवभूति करुण रस के ही समर्थक थे और नाट्य शास्त्र के नियमों को चुनौती देकर वीर और शृंगार के स्थान पर करुण को अंगीरस स्वीकार किया है।

यह विचार कि भवभूति एकमात्र करूण के ही समर्थक थे, उचित प्रतीत नहीं होता। यदि उन्हें केवल करुण रस ही अभीष्ट होता तो वे 'रसः करुण एव कहते, एकः विशेषण उन्होंने अपने नाटक के तृतीय अंक के लिए ही दिया है। अतः भवभूति अन्य रसों को स्वीकार न करते हों, यह बात नहीं है। उत्तररामचरित में उन्होंने 'जनितात्यद्भुतरसः' और 'वीरो रसः किमयम्' आदि रसान्तरों का स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः भवभूति को केवल 'करुण रस' का ही समर्थक मानना सत्य का अपलाप करना है। वे करुण के पक्षपाती हो सकते हैं, किन्तु रसान्तरों के विरोधी नहीं।

भवभूति ने व्यंजना से अपने नाटक की ओर संकेत किया है-'उत्तररामचरित' सदृश मंगलकारी नाटक कठिनता से ही (देखने या पढ़ने को) मिलता है। यह नाटक सभी अवस्थाओं में सुख दुःख का अनुपम अद्वैत है। इसमें सर्वत्र आनन्द और करुण की स्रोतस्विनी प्रवाहित होती रहती है। इस नाटक को देखने अथवा सुनने अथवा पढ़ने से हृदय अपार विश्राम का लाभ करता है। कहीं भी रस की धारा विच्छिन्न नहीं होती। हृदय में सत्वोद्रेक होने से तम का आवरण नष्ट हो जाने के कारण यह प्रेम तत्वमय प्रतीत होता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

- उत्तररामचरित में किस प्रकार के संवाद सहज बोधगम्य है।
- चरित-चित्रण की दृष्टि से उत्तररामचरित कैसा नाटक है?
- सीता नाटक के किस क्षेत्र को आभासित कर रही हैं?
- जनक किस धर्म से प्रदीप्त हैं?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- उत्तररामचरित में किस रस को अंगीरस स्वीकार किया है?
- श्रृंगार और करुण के प्रसंग में भवभूति किस पदावली का प्रयोग करते हैं?
- भावातिरेक के कारण कभी-कभी कवित्व किससे बढ़ जाता है?
- उत्तररामचरित में सर्वत्र किसकी स्रोतस्विनी प्रवाहित होती रहती है?

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

- लव-कुश बाल सुलभ चापल्य से युक्त होने पर भी .... से युक्त है।
- अष्टावक्र, वाल्मीकि .... ऋषियों के रूप में चित्रित किये गये हैं।
- ऋषि पत्नी .... परमसाध्वी के रूप में हमारे सामने आती हैं।
- सुमन्त्र स्वामिभक्त .... और नीतिज्ञ हैं।

4- सत्य/असत्य बताइएः

- उत्तररामचरित सभी अवस्थाओं में सुख दुःख का अनुपम अद्वैत है।
- भवभूति को केवल करुण रस का ही समर्थक मानना सत्य का अपलाप करना है।
- रौद्र के अवसर पर भवभूति की पदावली तदनुरूप कठोर प्रतीत नहीं होती है।
- उत्तररामचरित के द्रुम और मृग भी सीता-राम के बन्धु-बान्धव नहीं है।

5- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

वास्तव में वाणी के ब्रह्मा है।

क भास ख कालिदास

ग भवभूति घ कृष्ण मिश्र

2.5 सारांश

कथावस्तु का आधार रामायण, 2- नाटकीय स्वरूप प्रदान करने के लिए कथावस्तु में अनेकानेक परिवर्तन, 3- रामायण की दुःखान्त कथा का सुखान्त चित्रण, 4- चित्रवीथी की कल्पना द्वारा रामचन्द्र के उत्तरचरित के साथ पूर्वचरित का मेल, 5- छाया सीता तथा वासन्ती की कल्पना से राम के हृदय का सच्चा चित्र प्रस्तुत 6- वसिष्ट, अरुन्धती, जनक आदि का वाल्मीकि आश्रम में सम्मेलन, 7- लव और चन्द्रकेतु के मध्य युद्ध दिखाकर नायक के मान की रक्षा, 8- गर्भांक नाटक

द्वारा कथावस्तु का संक्षेप में परिचय, 10- छोटे, सहज और बोधगम्य संवाद, 11- राष्ट्र एवं समाज के लिए आदर्श चरित्र-चित्रण, 12- बहुत ही रमणीय एवं अद्भुत प्रकृति वर्णन, 13- देश, काल, पात्र एवं भावानुरूप भाषा शैली 14- करुण रस का पूर्ण परिपाक 15- सर्वत्र विदूषक का अभाव।

2.6 शब्दावली

नाटकीय - नाटक सम्बन्धी

प्रतिज्ञा - वादा

कथानक - छोटी कहानी

प0पुराण - अठारह पुराणों में एक पुराण

वेल्वल्कर - एक पाश्चात्य विद्वान्

नाट्यशास्त्र - नाट्य विज्ञान, नृत्य, गीत तथा अभिनय सम्बन्धी विद्या

चित्रवीथी - तस्वीर, एलबम

कल्पना - आविष्कार

शम्बूक - एक शूद्र तपस्वी

पंचवटी - दण्डकारण्य का एक भाग

मानरक्षा - सम्मान की रक्षा

चन्द्रकेतु - लक्ष्मण का पुत्र

पताका स्थानक - प्रासंगिक कथा की सूचना जो अप्रत्याशित रूप से प्रदर्शित की जाय

दुर्मुख - राम का गुप्तचर

गर्भांक - अंक के बीच मं विष्कम्भक जैसा, उ0रा0 के सातवे अंक में कुश और लव के जन्म का दृश्य

हृदयशुद्धि - हृदय की पवित्रता

आक्रोश - निन्दा, उच्च स्वर से रोना या शब्द करना।

रंगमंच	-	नाट्यशाला
प्रख्यात	-	प्रसिद्ध
स्वकीया -		अपनी
प्रतिनायक	-	खलनायक
विदूषक	-	हास्यपात्र
संवाद	-	वार्तालाप
अकाण्डताण्डव	-	क्रोध पाण्डित्यादि का अप्रासंगिक प्रदर्शन
श्लथत्व -		शिथिलता
चापल्य	-	चंचलता
विष्कम्भक	-	अर्थोपक्षेपक
तूलिका	-	कूंची
युगल	-	जोड़ा
बलिदान -		देवता को नैवेद्य अर्पण करना
अनुचरी	-	सेविका
अंगीरस -		प्रधान रस
स्रोतस्विनी	-	नदी

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- धीरोदात्त
- पद्मपुराण
- जृम्भकास्त्र
- बारह

2-

- उत्तररामचरित की कथावस्तु रामायण पर आधारित है।
- द्वितीय अंक में शम्बूक की कथा नये रूप में चित्रित की गई है।
- तृतीय अंक में छाया सीता की कल्पना कवि की मौलिक सूझ है।
- रामायण में यज्ञाश्व चुराने के प्रसंग में राम और लव-कुश का युद्ध वर्णित है।

3-

- वस्तुविन्यास
- गर्भांक
- शम्बूक का वध करने के लिए
- राम

4-

- सत्य
- असत्य
- सत्य
- सत्य

5- क प्रथम अंक में

अभ्यास प्रश्न 2

1-

- नाटकीय
- सफल
- प्रत्येक
- क्षात्र

2-

- उत्तररामचरित में करुणरस को अंगीरस स्वीकार किया है।
- श्रृंगार और करुण के प्रसंग में भवभूति कोमल पदावली का प्रयोग करते है।
- भावातिरेक में कवित्व नाटकत्व से बढ़ जाता है।
- उत्तररामचरित में सर्वत्र आनन्द और करुणा की स्रोतस्विनी प्रवाहित होती है।

3-

- वीरता
- मितभाषी
- अरुन्धती
- वात्सल्यपूर्ण

4-

- सत्य
- सत्य
- असत्य
- असत्य

5- ग भवभूति

2.8 सन्दर्भग्रन्थ

1.भवभूति, उत्तररामचरितम्; व्याख्या- डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल; (1986-87), साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

2. भवभूति, उत्तररामचरितम्; व्याख्या- आचार्य प्रभुदत्त स्वामी (1988), ज्ञान प्रकाशन मेरठ-2

2.9 सहायक पाठय सामग्री

1- डॉ0 दयाशंकर तिवारी, भवभूति के नाटकों की ध्वनि सिद्धान्त परक समीक्षा (2009) विद्यानिधि प्रकाशन, खजूरी खास, दिल्ली-94

2- भवभूति, मालती माधवम्, व्याख्या- डॉ0 गंगासागर राय (2002) चौखम्बा विद्या भवन,

वाराणसी-1

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- उत्तररामचरित की नाटकीय विशेषताएँ बताइए।

2- उत्तररामचरित की कथावस्तु के स्रोत एवं उसमें कवि द्वारा किये गये परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।

3- उत्तररामचरित के वस्तु विन्यास पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

4-सोदाहरण सिद्ध कीजिए कि उत्तररामचरित संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक है।

इकाई 3 उत्तररामचरितम् के प्रधान एवं गौण रसों की मीमांसा

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मुख्य भाग: खण्ड एक

उत्तररामचरित में प्रधान रस

खण्ड दो

उत्तररामचरित में गौण रस

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय नाट्य एवं नाट्यशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व इकाई में आप उत्तररामचरित में नाट्य का अध्ययन कर चुके है। इस इकाई में आप उत्तररामचरित के प्रधान एवं गौण रसों का अध्ययन करेंगे।

भारतीय काव्य शास्त्र के इतिहास में रस सिद्धान्त सर्वाधिक प्राचीन सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित है। इसका प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। इसका रस विषयक मूल सूत्र 'विभाभानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' है। उत्तरकाल में इस सूत्र की अनेक व्याख्याएँ होती रही हैं। इस सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।

उत्तररामचरित में रामायण के उत्तरकाण्ड की कथावस्तु को नाटकीयता प्रदान करके भवभूति ने शृंगार, करुण, वीर, अद्भुत आदि रसों का सुन्दर चित्रण किया है। इसमंे प्रधान रस करुण है तथा अन्य रसों का गौण रूप में परिपाक हुआ है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उत्तररामचरित के-

- अंगीरस करुण का विश्लेषण कर सकेंगें।
- गौणरसों की मीमांसा कर सकेंगे।
- करुण तथा करुण विप्रलम्भ का अन्तर स्पष्ट कर पायेंगे।
- आदर्शदाम्पत्य प्रेम से अवगत हो सकेंगे।
- सात्त्विक प्रेम की व्याख्या कर सकेगे।
- शृंगार के संभोग पक्ष का मर्यादित चित्र प्रस्तुत कर सकेंगे।
- रौद्र तथा वीर रस में अन्तर समझ सकेंगे।
- शिष्ट तथा गम्भीर हास को जान पायेंगे।
- ट्रेजेडी का मूल स्वरूप समझ सकेंगे।
- रसाभिव्यक्ति से परिचित हो सकगे।

3.3 उत्तररामचरित में प्रधान रस

उत्तररामचरित में प्रधान रस 'करुण' है अथवा 'करुण-विप्रलम्भ'? इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि उत्तररामचरित में करुणविप्रलम्भ अंगीरस है। उनके कथन का आशय है 'ए को रसः करुण एव'-इत्यादि (3.47) श्लोक में करुण शब्द को करुण विप्रलम्भपरक मानना चाहिए, क्योंकि करुण रस का स्थायिभाव शोक है। उसमें पुनर्मिलन की आशा नहीं रहती, किन्तु करुणविप्रलम्भ में पुनर्मिलन की आशा बनी रहती है। यहाँ नाटक में सीता को तमसा के - 'अस्तु देवता प्रसादात् पश्यन्ती प्रियं भूयाः' 'विधिस्तवानुकूलो भविष्यति' आदि वाक्यों से राम के पुनर्मिलन में विश्वास है तथा राम को भी लव-कुश को देखने के बाद सीता मिलन की आशा बलवती होती चली गई है और तदनुसार नाटक के अन्त में राम और सीता का पुनर्मिलन होता है। राम का 'क्रव्यादिभिरंगलतिका नियतं विलुप्ता (3.28) आदि विलाप बहुत कुछ सीता के अत्यय की संभावना पर आधारित है। उन्हें सीता-विनाश की कोई पक्की सूचना नहीं है। इन सब बातों को देखते हुए 'करुणविप्रलम्भ' इस नाटक में प्रधान रस मानना चाहिए।

दूसरी तरफ अन्य विद्वानों का मत है कि उत्तररामचरित में 'करुण' अंगी रस है। व्याख्याकार वीरराघव इसी विचार से सहमत हैं। 'एवं च रसान्तरा पेक्षया प्रकृतित्वमेव करुणस्य' इति। घनश्याम भी नाटक में शृंगार और वीर रस के अंगित्व को प्रायिक मानते हुए 'करुण भी नाटक में अंगीरस हो सकता है, अतः उत्तररामचरित करुण रस प्रधान होते हुए भी नाटक है-ऐसा कहते हैं। यह करुण करुणविप्रलम्भ से भिन्न है। करुण विप्रलम्भ शृंगार का एक भेद है, जिसमें रति स्थायिभाव होता है, किन्तु करुण रस स्वतन्त्र रस है जिसमें शोक स्थायिभाव रहता है। उत्तररामचरित में विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावों से अभिव्यक्त होकर शोक ही स्थायिभाव है, जो चर्वण दशा में करुण रस में परिणत हो जाता है। यों तो करुण रस का आरम्भ इस नाटक में प्रारम्भ से ही दिखलायी देता है, किन्तु तृतीय अंक में वह अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। वहाँ राम का करुण क्रन्दन, दीर्घोच्छ्वास, परिदेवन और मोहागम सीता के हृदय में ही नहीं, अपितु सामाजिकों के भी अन्तःकरण में रस के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति उत्पन्न कर देते हैं। उक्त भाव करुण रस के अभिनय में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

उत्तररामचरित करुण रस-प्रधान है- कवि ने अपने निम्नलिखित श्लोक से इसी बात की ओर संकेत किया है-

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्

भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।

आवर्त बुद्बुदतरंगमयान्विकारा-

नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्।।

जैसा कि करुण रस के विषय में आचार्यो का मत है कि राम को सीता समागम की बिल्कुल आशा नहीं रह गयी है। वे समझते हैं कि सीता नहीं रह गयी है, उसे मरे बारह वर्ष हो गये, अब उसका नाम भी नहीं रहा। रह गयी नाटक के सुखान्त वाली बात; इस विषय में इतना ही निवेदन है कि नाटक की कथा का आधार वाल्मीकि कृत रामायण है। रामायण में सीता के निधन में कथा का अवसान होता है। चूँकि नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की कथा का अवसान सुखद होना चाहिए; अतः इस नियम के निर्वाह के लिए तथा राम जैसे कर्तव्यनिष्ठ और धर्मप्रिय व्यक्ति के लिए दुःखद अवसान उचित नहीं। इसलिए भी कवि ने कथावस्तु में परिवर्तन कर राम सीता के मिलन में कथा का अवसान किया है; जिसका सारा श्रेय गंगा और पृथ्वी जैसी देवता, वाल्मीकि जैसे महर्षि, वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती जैसी सती शिरोमणि को है। इस विषय में माननीय डॉ0 विद्या निवास मिश्र का कथन भी ध्यान दिये जाने योग्य है- करुणरस का स्थायिभाव शोक, इष्टनाश से उत्पन्न हुआ होता है। यह इष्ट व्यक्ति, धारणा, धर्म आदि कुछ भी हो सकता है। पश्चिमी दृष्टि से ट्रेजेडी का मूल होता है- आशाभंग। उस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि राम के मन में यह आशा थी कि सीता का परित्याग करके हम लोक को प्रसन्न कर लेंगे और हमारे इस त्याग का महत्व समझा जायेगा। किन्तु होता यह है कि लोग भूल जाते हैं कि सीता का त्याग भी हुआ है और उन्हें यह आभास ही नहीं होता कि राजा (राम) ने सीता का त्याग करके अपने को कितना तोड़ लिया है। जिसे प्रसन्न करने के लिए त्याग किया गया, उसने राजा के दुःख को दुःख नहीं समझा, यही ट्रेजेडी का मूल है। यह ट्रेजेडी सीता के मिलने से भी दूर नहीं होती। राम लक्ष्मण से यही कहते हैं कि सीता की पवित्रता के विषय में गंगा और पृथ्वी की बात मुझे क्यों सुनाते हो? लोगों से कहो, वे सुनें। इससे स्पष्ट है कि लोगों के प्रति राम का अमर्ष जाता नहीं है, वह ज्यों का त्यों बना रह जाता है। राम का 'सर्वमिदमनुभवन्नपि न प्रत्येमि'- यह वाक्य इस स्थायी दुःख को और भी रेखांकित करता है।

इस प्रकार यह नाटक ऊपर से देखने में तो सुखान्त है, किन्तु भीतर से आदि से अन्त तक करुण बोध से आर्द्र है। ऊपर से देखने पर तो कथा का अवसान राम और सीता के मिलन में है, किन्तु वस्तुतः मिलन होता नहीं, क्योंकि सीता और राम दोनों टूट चुके हैं।लोगों को प्रताड़ित करने के लिए ही मिलन होता है। दैवी शक्तियों के सहयोग से लोगों की कुबुद्धि का मार्जन तो हो जाता है, किन्तु राम और सीता को अपने दुःख की समाप्ति पर विश्वास नहीं है। राम के मन में होता है कि सब कुछ घटित हो रहा है पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है और सीता के मन में यह शल्य है कि क्या आर्यपुत्र को मेरा दुःख दूर करने की कला अभी याद है। दोनों के द्वारा केवल लोकमंगल और लोकरंजन के लिए किया गया यह करुण बलिदान दोनों के हृदय में स्थायी वेदना के रूप में कीलित हो गया है।अतः उत्तररामचरित में करुण अंगीरस है- यही मानना समीचीन है।

अभ्यास प्रश्न-

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

- करुण रस का स्थायिभाव क्या है?
- उत्तररामचरित में कौन रस प्रधान है?
- करुण विप्रलम्भ का स्थायिभाव क्या है?
- उत्तररामचरित ऊपर से देखने में कैसा है?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- उत्तररामचरित नाटक के अन्त में किसका पुनर्मिलन होता है?
- तृतीय अंक में कौन सा रस अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचता है?
- करुण रस का स्थायिभाव किसके नाश से उत्पन्न हुआ होता है?
- पश्चिमी दृष्टि से ट्रेजेडी का मूल क्या होता है?

3- सत्य/असत्य बताइएः

- उत्तररामचरित शृंगार रस प्रधान है।
- लोग भूल जाते हैं कि सीता का त्याग भी हुआ है।
- राम और सीता को अपने दुःख की समाप्ति पर विश्वास नहीं है।
- इष्ट व्यक्ति, धारणा, धर्म आदि कुछ भी नहीं हो सकता है।

4- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

- उत्तररामचरित में लोगों की कुबुद्धि का मार्जन होता है।

  क मानव शक्तियों के सौजन्य से ख दैवी शक्तियों के सहयोग से

  ग भौतिक शक्तियों के सहयोग से घ दैहिक शक्तियों के सहयोग से

5- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

- उत्तररामचरित नाटक की कथा का आधार .... रामायण है।
- उत्तररामचरित में ट्रेजेडी सीता के मिलने से भी .... नहीं होती।
- तृतीय अंक में .... रस अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है।
- नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की कथा का अवसान .... होना चाहिए।

खण्ड दोः उत्तररामचरित में गौण रस

उत्तररामचरित में शृंगार, हास्य, रौद्र, वीर, अद्भुत आदि रसों की अंगरूप में सफल योजना है। करुण रस की पवित्र मन्दाकिनी प्रवाहित करने वाले महाकवि भवभूति को प्रस्तुत नाटक में यद्यपि शृंगार सरित्प्रवाह का प्रभूत अवसर नहीं मिला है। वस्तुतः वे सात्तिवक प्रेम के पक्षपाती हैं। इसमें उनके हृदय का गाम्भीर्य ही हेतु है। अतएव उसमें वासना का ज्वार नहीं और बाहरी कारणों की अपेक्षा भी नहीं। वह तो आन्तरिक हेतु पर निर्भर है जो उसे गहरी आत्तीयता में निमग्न कर सात्तिवक रूप प्रदान करता है-

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपिहेतु-

र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयःसंश्रयन्ते।' (उत्तर0 6.12)

भवभूति ने श्रृंगार के संभोग पक्ष का चित्र पूर्वस्मृति के रूप में खींचा है, किन्तु वहाँ भी इनकी गम्भीरता ने कामचेष्टाओं के छिछोरेपन को नहीं आने दिया है और आत्मीयताके गहरे रंग से रंजित कर मनमोहक बना दिया है-

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा

दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।

अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-

रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।। (उत्तर0 1.27)

आदर्श दाम्पत्य जीवन की झांकी उत्तररामचरित में दर्शनीय एवं स्पृहणीय है। सच्चरित्रता, निष्ठा और मर्यादापूर्ण जीवन जीने वाले तथा धर्म में गहरी आस्था रखने वाले भवभूति के मत में स्त्री भोग विलास की वस्तु नहीं अपितु घर की लक्ष्मी तथा नेत्रों के लिए अमृतशलाका की भाँति शान्ति-प्रदायिनी है, वह जीवन सहचरी है और पवित्रता की मूर्ति है। अतः उनके शृंगार के चित्रण सर्वत्र शिष्ट एवं मर्यादित हैं। यही बात कवि के हास्य रस के विषय में भी चरितार्थ होती है। नाटक में विदूषक की योजना न होने से इनके गम्भीर स्वभाव का पता चलता है। इनकी यह गम्भीरता हास-परिहास को भी

गम्भीर बनाकर ही प्रस्तुत करती है। चित्रवीथी में लक्ष्मण द्वारा चित्रों को दिखलाते समय उर्मिला को छोड़कर आगे बढ़ने पर सीता की-'वत्स! इयमप्यपरा का' इस उक्ति से लक्ष्मण लजा जाते है। यह परिहास अत्यन्त शिष्ट और मनोरम होते हुए भी कवि की गम्भीरता के कारण स्मिति तक की सीमित रह जाता है। नाटक के अन्त में सीता को मिलते समय लक्ष्मण प्रणाम करते हुए कहते हैं-'अयं निर्लज्जो लक्ष्मणः प्रणमति'। सीता आशीर्वाद देती हैं-'वत्स! ईदृशस्त्वं चिरंजीव।' सीता की यह उक्ति मधुर उपालम्भ के साथ ही विनोद से भी पूर्ण है, किन्तु कवि की गम्भीरता के कारण ही इसमें उच्छ्रंखलता की गन्ध नहीं है। वस्तुतः निर्मल हास का प्रस्तुतीकरण भी गम्भीरता की अपेक्षा रखता है। यही कारण कि भवभूति हास्य के क्षेत्र में भी अन्य कवियों से अनूठे ही दिखलायी पड़ते हैं। उतररामचरित में रौद्ररस का बड़ा ही मनोहर वर्णन है। पांचवे अंक में 'लव का राजा की सेनाओं के साथ युद्ध हो रहा है' यह सुनकर कुश का क्षात्र तेज प्रदीप्त हो उठा। क्रोध से उसका चेहरा तमतमा उठा। बस, वह संसार में सम्राट् शब्द का अन्त कर देने पर ही तुल गया। क्षत्रिय जाति के शस्त्रानल को सर्वदा के लिए बुझा देने को ही उद्यत हो गया-

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो-

र्दृप्तानां दहनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापग्निभिः।

आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैत्ततो

दीक्षास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः।। 6.18

इत्यादि श्लोक से युद्ध की घोषणा करता हुआ युद्धभूमि में पहुँच गया। कुश के उस स्वरूप को देखकर राम भी चकित हो गये।वीर रस के चित्रण में भवभूति का कौशल देखते ही बनता है। पांचवे अंक में हमें लव के वीर रूप का दर्शन होता है। वह क्षत्रियत्व के स्वाभिमानवश राम की भी वीरता को किसी प्रकार मान्यता देने के लिए तैयार नहीं होता है। उसकी मान्यता है कि किसी व्यक्ति विशेष में क्षात्र धर्म व्यवस्थित नहीं है। वह परशुराम जैसे ब्राह्मण के दमन में, ताड़का और बाली के वध में, खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटने में राम की अपकीर्ति ही समझता है। राम ने वैसा करके उसकी दृष्टि में वीरोचित आचरण नहीं किया। इस प्रकार लव के व्यक्तित्व में प्रखर क्षत्रियत्व, स्वाभिमान, अदम्य उत्साह और अगाध पराक्रम के दर्शन होते है। उदाहरण के लिए राम की विजयपताका छीन लेने को उद्यत उसका निम्न कथन अवलोकनीय है'

यदि ते सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका।

किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः।। 4.28

यहाँ निश्चय ही उत्साह की अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार कवि ने अधोलिखित पद्य में ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता आदि सभी वीररसोचित गुणों को एक साथ मुखरित कर दिया है-

ज्याजिह्वया बलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रमुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।

ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम्।।

प्रथम अंक के अन्त में कवि ने अद्भुत रस की अवतारणा की है। राम सीता के प्रति अपने हृदय का अतिशय प्रेम प्रकट करते हुए उनकी प्रत्येक वस्तु को अत्यन्त प्रिय बताकर केवल विरह को अपने लिए असह्य बताते हैं। तभी प्रविष्ट होकर प्रतिहारी कहती है-'महाराज! उपस्थित है'। यह सुनकर राम आश्चर्यचकित होकर पूछते है-'अयि कः?' तदनु दुर्मुख नामक राम का व्यक्तिगत गुप्तचर उपस्थित होता है। इसी प्रकार पंचम अंक में लव अपने जृम्भकास्त्र के प्रयोग से जब चन्द्रकेतु के सैनिकों को स्तब्ध कर देता है तो आश्चर्य चकित सुमन्त्र जृम्भकास्त्र का इतिहास प्रस्तुत करने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न1 -

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

- वस्तुतः सात्त्विक प्रेम के पक्षपाती कवि कौन हैं?
- सात्त्विक प्रेम किस हेतु पर निर्भर है?
- उत्तररामचरित में कैसे दाम्पत्य जीवन की झांकी दर्शनीय है?
- भवभूति के मत में कौन भोगविलास की वस्तु नहीं है?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- निर्मल हास का प्रस्तुतीकरण किसकी अपेक्षा रखता है?
- उत्तररामचरित में किस रस का बड़ा ही मनोहर वर्णन है?
- युद्ध को सुनकर किसका क्षात्र तेज प्रदीप्त हो उठा?
- कुश के स्वरूप को देखकर कौन चकित हो गये?

3- सत्य/असत्य बताइएः

- चौथे अंक में लव के वीर रूप का दर्शन होता है।
- लव राम की विजय पताका छीन लेने को उद्यत होता है।
- राम सीता के विरह को अपने लिए सह्य बताते हैं।
- लव के व्यक्तित्व में अगाध पराक्रम के दर्शन होते हैं।

4- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

भवभूति के मत में स्त्री है।

क विलास की वस्तु ख घर की लक्ष्मी

ग शान्ति की मूर्ति घ घर की सदस्य

5- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

- भवभूति ने संभोग शृंगार का चित्र .... में रूप में खींचा है।
- प्रविष्ट होकर प्रतिहारी कहती है-‘ ....! उपस्थित है।
- जृम्भकास्त्र के प्रयोग से लव चन्द्रकेतु के सैनिकों को .... कर देता है।
- कुश क्षत्रिय जाति के शास्त्रानल को .... के लिए बुझा देने को उद्यत हो गया।

3.4 सारांश

प्रायः सभी आलोचकों ने उत्तररामचरित में ‘करुण’ रस को ही अंगी रस के रूप में स्वीकार किया है। इन विद्वानों के मत में भवभूति करुणरस के ही समर्थक थे और नाट्य शास्त्र के नियमों को चुनौती देकर वीर और शृंगार के स्थान पर करुण को अंगीरस स्वीकार किया है। यह विचार कि भवभूति एक मात्र करुण के ही समर्थक थे, उचित प्रतीत नहीं होता। यदि उन्हें केवल करुण रस ही अभीष्ट होता तो वे ‘रसः करुण एव’ कहते, ‘एकः’ विशेषण उन्होंने अपने नाटक के तृतीय अंक के लिए ही दिया है। जहाँ तक ‘करुण’ निमित्त भेद से भिन्न-भिन्न पात्रों में विभिन्न रूप से प्रतिबिम्बित हो रहा है। भवभूति अन्य रसों को स्वीकार न करते हों, यह बात नहीं है, उत्तररामचरित में उन्होंने, ‘जनिताव्यद्भुतरसः’ और वीरो रसः किमयम्’ आदि रसान्तरों का स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः भवभूति को केवल ‘करुणरस’ का ही समर्थक मानना सत्य का अपलाप करना है, वे करुण के पक्षपाती हो सकते है, किन्तु रसान्तरों के विरोधी नहीं। उत्तररामचरित करुण रस प्रधान नाटक है। यह सभी अवस्थाओं में सुख-दुःख का अनुपम अद्वैत है। इसमें सर्वत्र आनन्द और करुणा की स्रोतस्विनी प्रवाहित होती रहती है। कहीं भी रस की धारा विच्छिन्न नहीं होती। इसमें शृंगार, वीर, अद्भुत आदि रस अंग है।

3.5 शब्दावली

विप्रलम्भ - शृंगार के दो मुख्य भेदों में से एक

विधि - भाग्य

अनुकूल - मनोवांछित

क्रव्य - कच्चा मांस खाने वाले, शेर, चीता आदि

अंगी - प्रधान

क्रन्दन - आर्तनाद, विलाप करना

दीर्घोच्छ्वास - लम्बी सांस

परिदेवन - शोकसन्तप्त, दुःखी

मोहागम - घबराहट, बेहोशी का होना

अन्तःकरण - मन

अभिनय - नाटकीय प्रदर्शन

घोषणा - सार्वजनिक एलान, प्रकथन

क्षत्रियत्व - क्षत्रिय होने का भाव

दमन - वश में करने वाला

ताड़का - एक राक्षसी, सुकेतु की पुत्री

बाली - एक प्रसिद्ध वानरराज का नाम

स्वाभिमान - गौरव

अगाध - अथाह

पराक्रम - साहस, बहादुरी

विजयपताका - विजय का झंडा

विभीषिका - त्रास, डराने के साधन

उद्यत - तैयार, तत्पर

गुप्तचर	- जासूस, छिपकर घूमने वाला
स्तब्ध	- संज्ञाहीन
सुमन्त्र	- चन्द्रकेतु का सारथि
ग्रास	- भोजन
घोर	- भयंकर, डरावना
यन्त्र	- कोई भी उपकरण या मशीन
चाप	- धनुष

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड-एक

1.

- शोक
- करुण
- रति
- सुखान्त

2.

- उत्तररामचरित नाटक के अन्त में राम सीता का मिलन होता है।
- तृतीय अंक में करुण रस अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचता है।
- करुण रस का स्थायिभाव इष्टनाश से उत्पन्न हुआ होता है।
- पश्चिमी दृष्टि से ट्रेजेडी का मूल आशाभंग होता है।

3.

- असत्य
- सत्य

- सत्य
- असत्य

4. दैवी शक्तियों के सहयोग से

5.

- वाल्मीकि कृत
- दूर
- करुण
- सुखद

खण्ड-दो

1.

- भवभूति
- आन्तरिक
- आदर्श
- स्त्री

2.

- निर्मल हास का प्रस्तुतीकरण गम्भीरता की अपेक्षा रखता है।
- उत्तररामचरित में रौद्र रस का बड़ा ही मनोहर वर्णन है।
- युद्ध को सुनकर कुश का क्षात्र तेज प्रदीप्त हो उठा।
- कुश के स्परुप को देखकर राम चकित हो गये।

3.

- असत्य
- सत्य
- असत्य

- सत्य

4. घर की लक्ष्मी

5. पूर्वस्मृति

- महाराज
- स्तब्ध
- सर्वदा

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.भवभूति, उत्तररामचरितम्- व्याख्या- डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी (2008) चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-1

2.भवभूति, उत्तररामचरितम्- व्याख्या- डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल; (1986-87) साहित्यभण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

3.8 सहायक ग्रन्थ सूची

1. भवभूति, उत्तररामचरितम्- व्याख्या- आचार्य प्रभुदत्त स्वामी (1988) ज्ञान बुक डिपो, सुभाष बाजार, मेरठ नगर-2

2.भरतमुनि, नाट्यशास्त्र- अनु0 डॉ0 रघुवंश (1964) मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 उत्तररामचरित में प्रधान रस करुण है' इस कथन की विवेचना कीजिए?

2. उत्तररामचरित में गौण रसों की मीमांसा कीजिए?

3. उत्तररामचरित में प्रधान एवं गौण रसों की व्याख्या कीजिए?

इकाई 4 उत्तररामचरित के पात्रों का चरित्र-चित्रण

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मुख्य भाग: खण्ड एक (पुरुष पात्र)

4.3.1 भगवान् राम

4.3.2 लव और कुश

4.3.3 अन्य पात्र

4.4 खण्ड दो (स्त्री पात्र)

4.4.1 सीता

4.4.2 कौशल्या

4.4.3 अरुन्धती

4.4.4 आत्रेयी

4.4.5 वासन्ती

4.4.6 अन्य पात्र

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

नाट्य एवं नाट्यशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है पूर्व इकाई में आप उत्तररामचरित के प्रधान एवं गौण रसों के विषय में जान चुके हैं। इस इकाई में आप उत्तररामचरित के पात्रों के चरित्र का अध्ययन करेंगे।पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रायः चार विशेषताओं का समावेश होता है-

1. आदर्श 2. जातिगत स्वभाव 3. व्यक्तिगत स्वभाव 4. सामान्य स्वभाव प्रतिभाशाली कवि इन विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही अपने पात्रों के चरित्र चित्रण में प्रवृत्त होता है।

उत्तररामचरित की कथावस्तु रामायण से गृहीत होने के कारण इसके पात्र लोकविश्रुत है; किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा, कल्पना और प्रौढ़, उक्तियों से इनमें नये जीवन का सन्निवेश किया है। कथावस्तु को उदात्त एवं व्यापक स्वरुप प्रदान करने के लिए कवि ने कुछ नये पात्रों की सृष्टि की है; जिनमें वनदेवी वासन्ती, तपस्विनी आत्रेयी, सौधातकि, दण्डायन, तमसा, मुरला, भागीरथी आदि पात्र हैं। भवभूति की प्रतिभा से ये सभी पात्र बड़े ही जीवन्त रूप में चित्रित किये गये हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उत्तररामचरित के-

- पात्रों के आदर्श स्वरूप को समझ सकेंगे।
- पात्रों के जातिगत स्वभाव को पहचान सकेंगे।
- पात्रों के व्यक्तिगत स्वभाव को समझ सकेंगे।
- नायक का चरित्र-चित्रण कर सकेंगे।
- पुरुष पात्रों के चरित्र का विश्लेषण कर सकेंगे।
- नायिका का चरित्र-चित्रण कर सकेगे।
- स्त्री पात्रों से परिचित हो सकेंगे।
- पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सकंेगे।
- धीरोदात्त नायक के गुणों को समझ सकेंगे।
- दाम्पत्य प्रेम से अवगत हो सकेंगे।
- अमूर्त पात्रों का औचित्य जान पायेंगे।

4.3 मुख्य भाग: खण्ड एक

उत्तररामचरित में पुरूष पात्र

4.3.1 भगवान् राम

श्री रामचन्द्र जी 'उत्तररामचरित' के दिव्यादिव्य धीरोदात्त नायक हैं। वे आदर्श पति, आदर्श पिता तथा आदर्श राजा के रूप में चित्रित किये गये हैं। एक पत्नीव्रत की वे साक्षात् मूर्ति है। सीता के निर्वासित होने के बाद अश्वमेध यज्ञ में वे उसकी हिरण्यमयी प्रतिमा को ही सहधर्मचारिणी के रूप में नियुक्त करते हैं। संसार में इससे अधिक उत्कृष्ट एक पत्नीव्रत का उदाहरण मिलना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। राम आदर्श राजा हैं, प्रजानुरंजन ही उनका महान् व्रत है। वे लोकरंजन के लिए स्नेह, दया, सौख्य और यहाँ तक कि जो उनके गृह ही लक्ष्मी थी, नयनों की अमृत शलाका थी, उनका जीवन थी और दूसरा हृदय भी, उस प्राणप्रिया जानकी को भी सर्वथा परिपूता जानते हुए भी वन में निर्वासित कर अपने जीवन के समस्त सुखों की तिलांजलि दे देते हैं। यहाँ वे आदर्श राजा के रूप में वज्र से भी कठोर बन जाते हैं, किन्तु उसके बाद ही अश्वमेध यज्ञ में सीता की हिरण्यमयी प्रतिभा को ही सहधर्मचारिणी नियुक्त कर आदर्श पति के रूप में कुसुम से भी अधिक मृदु बन जाते हैं। राम सीता निर्वासन रूप नृशंसकर्म के लिए बराबर अपने आपको धिक्कारते रहते है। सकरुण होकर भी राम लोकरंजन के लिए ही शम्बूक पर प्रहार करने में हिचकते हुए दाहिने हाथ को कोसते हैं-'रे दक्षिण हस्त! ब्राह्मण बालक को जिलाने के लिए शूद्र मुनि पर तलवार का प्रहार कर। इस विषय में हिचक क्यों करता है? अरे तू तो परिपूर्ण गर्भ से खिन्न प्रियतमा सीता का परित्याग करने में पटु राम का हाथ है। अतः तुझमें करुणा कहाँ से आयी? निर्दय व्यक्ति का अंग होने होने के कारण तू भी करुणाहीन हो कर शूद्र तापस पर प्रहार कर।'

राम के इस कथन में उनकी आत्मग्लानि स्पष्ट है। पंचवटी में पहँुचने पर उनकी यह आत्मग्लानि और अधिक तीव्र हो जाती है-'जहाँ मैने सीता के साथ अपने घर की भाँति वे सुखमय दिवस बिताये थे, जिसकी बड़ी-बड़ी चर्चाएँ करते हुए ही हम लोग अयोध्या में भी रहते थे, आज प्रियतमा का विनाश करने वाला पापी राम एकाकी इस पंचवटी को किस मुँह से देखे? राम ने लोकानुरंजन के लिए सीता निर्वासन तो करा दिया, किन्तु सीता के प्रति उनके स्नेह में तनिक भी मलिनता नहीं आयी, प्रत्युत वह उत्तरोत्तर प्रगाढ होता चला गया। सीता को भी छाया अंक में इस बात का स्पष्टतः ज्ञान हो जाता है।

वहाँ राम का मूचर्छत होना और सीता के करस्पर्श से चेतना प्राप्त करना सीता के लिए अपने प्रति राम के प्रगाढ स्नेह का स्पष्ट प्रमाण है, किन्तु राम का यह स्नेह सामान्य स्नेह की भाँति छिछला, उद्दण्ड एवं उच्छृंखल नहीं है। वह मर्यादा से बंधा हुआ है और पुटपाक के समान भीतर ही भीतर सुलगता रहता है, फिर भी कभी-कभी उमड़कर प्रलापों के माध्यम से व्यक्त हो ही जाता है। षष्ठ अंक में युद्ध

क्षेत्र में कुश और लव को देखकर उनके सीता पुत्र होने की सम्भावना से राम का हृदय वात्सल्य से भर जाता है। संक्षेप में भवभूति के राम आदर्श राजा, आदर्श पति तथा आदर्श पिता सभी कुछ हैं।

4.3.2 लव और कुश

ये दोनों यमज भ्राता राम के पुत्र हैं। ये अपने पिता के समान ही रूपवान् और समस्त गुणों के आश्रय हैं। स्वयं वाल्मीकि ने ही अपने आश्रम में इनका पालन-पोषण किया तथा क्षत्रियोचित संस्कार कर उन्हें सम्पूर्ण विद्याएँ प्रदान की। जृम्भकास्त्र इन्हें जन्मतः स्वतः सिद्ध हैं। वाल्मीकि ने रामायण के कुछ अन्तिम भाग को छोड़कर शेष पूरा का पूरा लव और कुश को याद कराया था। जन्मक्रम से कुश ज्येष्ठ था। वाल्मीकि के आश्रम में रहने के उद्देश्य से वसिष्ठ, अरुन्धती, कौसल्यादि रानियाँ और जनक आते हैं। उस समय उनके आगमन के उपलक्ष में आश्रम में अनध्याय हो जाने से आश्रम के वटुक खेलते-कूदते एवं कोलाहल करते हैं। उन्हीं में क्षत्रिय वटुकोचित वेशभूषा धारण किये हुए लव को भी जनक आदि ने देखा। उन्हें उसमें राम की छाया स्पष्ट दिखलायी पड़ी और वात्सल्यवश उन लोगों ने उसे अपने पास बुलाया। लव विनय के साथ उनके समीप जाकर 'एष तो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः' कहकर उन सब का अभिवादन करता है। पराक्रमी और तेजस्वी होने के साथ ही लव विनय सम्पन्न शिष्टाचार का पालन करने वाला भी है। वह क्षत्रियत्व के स्वाभिमानवश राम की वीरता की भी वीरता को किसी प्रकार मान्यता देने के लिए तैयार नहीं होता है। वह परशुराम जैसे ब्राह्मण के दमन में, ताड़का और बाली के वध में, खर के साथ युद्ध में तीन पग पीछे हटने में राम की अपकीर्ति समझता है। उसकी मान्यता है कि राम ने वैसा करके वीरोचित आचरण नहीं किया; किन्तु युद्धस्थल मं े राम के उपस्थित होने पर उन पुण्यानुभाव दर्शन महापुरुष को देखते ही लव का सारा विरोध विश्रान्त हो जाता है। वह अभिमानपूर्वक 'मृष्यन्त्विदानीं लवस्य बालिशतां तातपादः' कहकर अपनी धृष्टता के लिए क्षमायाचना करता है। इस प्रकार लव में भोलेपन के साथ ही प्रखर क्षत्रियत्व, स्वाभिमान, अदम्य उत्साह और अगाध पराक्रम में भी दर्शन होते हैं। विनय, शिष्टाचार आदि तो आश्रम में पले होने के कारण उसमें स्वभावतः ही थे।

कुश को वाल्मीकि ने स्वरचित सन्दर्भ के साथ भरतमुनि के पास भेजा था। वहाँ से लौटते ही उसने सुना कि लव का राजा की सेनाओं के साथ युद्ध हो रहा है। बस, वह संसार में सम्राट् शब्द का अन्त कर देने पर ही तुल गया। क्षत्रिय जाति के शस्त्रानल को सर्वदा के लिए बुझा देने को उद्यत हो गया। 'उतेन्द्राभयदक्षिणैः'-इत्यादि श्लोक से युद्ध की घोषणा करता हुआ युद्धभूमि में पहुँच गया। कुश का उस समय का स्वरूप देखकर राम भी चकित हो गये। वे कहने लगे-'इस क्षत्रिय बालक में सामर्थ्य का अनिर्वचनीय उत्कर्ष है। इसकी दृष्टि तीनों लोकों के बलोत्कर्ष को तृण के समान तिरस्कृत कर रही है। इसकी धीर और गर्वभरी चाल पृथ्वी को अवनमित सी कर रही है। बाल्यावस्था में भी पर्वत के समान यह गुरुता धारण किये हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मूर्तिमान् वीररस अथवा गर्व ही चला आ रहा हो।' लव ने कुश के समीप जाकर प्रणतिपूर्वक सारी स्थिति बतलायी और उसे शान्त

रहने के लिए कहा। कुश तो किसी क्षत्रिय के प्रति विनय निन्ध समझता था, किन्तु लव ने उसे समझाया कि राम हमारे धर्म पिता हैं, क्योंकि वे चन्द्रकेतु के ज्येष्ठ पिता हैं और चन्द्रकेतु मेरा प्रिय मित्र है। अतः कुश ने लव के साथ राम के पास पहुँचकर उनका अभिवादन किया तथा उनके दर्शन से स्वयं को कृतकृत्य किया। राम भी वात्सल्यवश उसका आलिंगन कर आनन्दित हुए।

4.3.3 अन्य पात्र

उत्तररामचरित में लक्ष्मण आज्ञापालक, कर्तव्यनिष्ठ, गम्भीर और कुछ तेजस्वी स्वभाव के हैं। शत्रुघ्न परम धैर्यशाली, स्वामिभक्त योद्धा हैं। जब लवणासुर से संत्रस्त यमुनातीरवासी ऋषियों का समूह राम की शरण में पहुँचकर रक्षार्थ प्रार्थना करता है तो राम का आदेश मिलते ही वे राक्षस लवण का संहार करने निकल पड़ते हैं तथा उसका वध करके ऋषिगणों को अभयदान करते हैं। जनक अवसादग्रस्त होकर भी क्षात्रतेज से प्रदीप्त हैं। सुमन्त्र स्वामिभक्त, वात्सल्यपूर्ण और नीतिज्ञ हैं। चन्द्रकेतु राजकुमार होने पर भी विनय और वीरता से सम्पन्न हैं। अष्टावक्र और वाल्मीकि दोनो मितभाषी हैं। दण्डायन और सौधातकि अनध्याय प्रिय छात्र हैं। दुर्मुख राम का आसन्नपरिचारक है।

अभ्यास प्रश्न-

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

- श्री रामचन्द्र जी किस प्रकृति के नायक हैं?
- श्री रामचन्द्र कैसे राजा हैं?
- कुश का स्वरूप देखकर कौन चकित हो गये?
- श्री रामचन्द्र जी का आसन्न परिचारक कौन है?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- कौन अपने दाहिने हाथ को कोसते हैं?
- यमज भ्राता लव और कुश किसके पुत्र हैं?
- लव को देखकर राम का हृदय किससे भर जाता है?
- कौन वटुक संसार से सम्राट् शब्द का अन्त करने पर ही तुल गया?

3- सत्य/असत्य बताइएः

- दण्डायन स्वाध्याय प्रिय छात्र है।

- शत्रुघ्न ऋषिगणों को अभयदान करते हैं।
- लक्ष्मण धैर्यशाली और स्वामिभक्त योद्धा हैं।
- श्री रामचन्द्र कुश का आलिंगन कर आनन्दित हुए।

4- सही विकलप छांटकर लिखिएः

- अष्टावक्र और वाल्मीकि दोनों ऋषि है।

क बहुभाषी ख मितभाषी

ग मधुरभाषी घ मृदुभाषी

5- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

- श्री रामचन्द्र आदर्श राजा .... तथा आदर्श पिता सभी कुछ है।
- श्री रामचन्द्र का स्नेह पुटपाक के समान .... सुलगता रहता है।
- लव ने कुश के पास जाकर .... सारी स्थिति बतलायी।
- सुमन्त्र स्वामिभक्त, वात्सल्पूर्ण और .... हैं।

4.4 खण्ड दो(उत्तररामचरित में स्त्री पात्र)

4.4.1 सीता

भगवती सीता प्रस्तुत नाटक की नायिका हैं। उनको विश्व का भरण पोषण करने वाली भगवती वसुन्धरा ने जन्म दिया है। ब्रह्मा के समान राजा जनक उनके पिता हैं। वे सूर्यकुल के राजाओं की बहू हैं। राम को सीता का सब कुछ प्रिय है। यदि कुछ अप्रिय है तो वह है उसका विरह। सीता के राम के प्रति कितना अगाध प्रेम तथा आदरभाव था, इसकी झलक ‘तस्मै कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि’- सीता के इस वचन से मिलती है; किन्तु विधि की विडम्बना ऐसी रही कि कुलीनता और आचार से साक्षात् देवी सीता को भी भगवान् राम की प्रजानुरंजन की प्रतिज्ञा में साधन बनना पड़ा। जहाँ राम, वसिष्ठ, अरुन्धती और कौशल्या आदि रानियों द्वारा गर्भभरालसा सीता के लिए पूर्ण सुख-सुविधा देने की बात सोची गयी थी, वहाँ उलटे उनको घोर अरण्य में नाना कष्ट झेलने के लिए छोड़ दिया गया।

अपने अकारण निर्वासन के लिए सीता के हृदय का, राम के स्नेह की पूर्णता में शंकालु होना स्वाभाविक है। फिर भी सीता की ओर से अपने स्नेह की पूर्णता में किसी प्रकार की मलिनता या

कभी नहीं आने पायी है। 'अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम्'- वासन्ती का यह कठोर उपालम्भ सुनकर सीता कहती है- सखि वासन्ति! त्वमेव दारुणा कठोर च, यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि'। सीता का यह वचन उनके स्नेह की निर्मलता का स्पष्ट प्रमाण है।

सीता वह मन्दभागिनी माता है कि जिसके पुत्र तो हुए, किन्तु उन पुत्रों की बाल्यावस्था का सुख न तो उसके प्रिय राम को प्राप्त हो सका और न ही पूर्णतः उसे। सीता को तो पता है कि मेरे दो पुत्र पैदा हुए हैं। वे वाल्मीकि के आश्रम में पल रहे हैं; किन्तु राम को इसका भी पता नहीं है। इस प्रकार से सीता का दुःख भी राम के ही दुःख की तरह ऐकान्तिक है। सीता अपने पुत्रों से बारह वर्ष बाद जब मिलती हैं, तो मानों वे दोनों उन्हें दूसरे जन्म में मिल रहे हां। वे कहती हैं-'चिरस्य परिष्वजेथां मां पुनर्जन्मान्तरगतां जननीम्।'

4.4.2 कौसल्या

उररामचरित में सीता विपत्ति की मारी नारी के रूप में चित्रित हैं। रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक के बाद वे द्वादश वर्ष तक चलने वाले यज्ञ के लिए अपने जामाता ऋष्यशृग के आश्रम में चली जाती हैं और वहाँ से अष्टावक्र के माध्यम से राम को सन्देश भेजती है कि रघुकुल की वधू सीता को जो भी गर्भदोहद हो उसकी पूर्ति अवश्य की जानी चाहिए। कौसल्या अपनी पुत्री के समान सीता के प्रति वात्सल्यभाव रखती हैं। यज्ञ समाप्त होने पर जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि राम ने सीता का बहिष्कार कर दिया है तो वे अत्यन्त दुःखी होती हैं और अयोध्या नहीं लौटना चाहतीं, अपितु वाल्मीकि आश्रम में निवास करने पर विचार करती हैं। वहाँ वसिष्ठ की आज्ञा से वे जनक से मिलती है। जनक के लिए कौसल्या का दर्शन घाव पर नमक के समान है। वे भी जनक को अपना मुँह नहीं दिखाना चाहतीं। जनक उपालम्भ के साथ गृष्टि से कौसल्या का कुशल वृतान्त पूछते है। गृष्टि उन्हें बताते हैं कि कौसल्या ने क्रुद्ध होकर रामचन्द्र जी का परित्याग कर दिया है। जनक के रोष के साथ वे मूचर््िछत हो जाती हैं, तब जनक अपने कमण्डलु के जल के छींटों से स्वस्थ करते है।

4.4.3 अरून्धती

महर्षि वसिष्ठ की पत्नी हैं। उत्तररामचरित की नाटकीय अवतारण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। उनकी तथा वसिष्ठ जी की देखरेख में ही राम की माताएँ ऋण्यशृंग के आश्रम में जाती हैं। वसिष्ठ के समान ही अरुन्धती विद्वमण्डली में प्रतिष्ठित हैं। अतः कौसल्या से मिलते समय जनक पहले उन्हें प्रणाम करते हैं। वे आशीर्वाद देती है। रामचन्द्र भी उनके सम्मानार्थ प्रस्तुत होते हैं। गंगा और पृथ्वी भी परम पवित्र आचरण वाली सीता को अरुन्धती को सौंपती हैं। वे सीता को रामचन्द्र के लिए जीवनदान की आज्ञा देती हैं तथा समस्त पुरवासियों और जनपदवासियों को सम्बोधन करती हैं। अनन्तर रामचन्द्र को आदेश देती हैं कि अब वे सोने की प्रतिभा के स्थान पर साक्षात् सीता को अश्वमेध यज्ञ में नियुक्त करें। तभी राम सीता को स्वीकार करते हैं।

4.4.4 आत्रेयी

उत्तररामचरित में आत्रेयी वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में अध्ययन करने वाली तापसी है। दण्डकारण्य में वनदेवता अर्घ्यदेकर उसका स्वागत करती हैं वनदेवी वासन्ती के पूछनेपर वह बताती है कि आश्रम में उपस्थित अध्ययन सम्बन्धी विघ्न के कारण वह अगस्त्य आदि ऋषियों से ब्रह्मविद्या का अध्ययन करने के लिए यहाँ दण्डकारण्य में आयी है। वाल्मीकि जी के यहाँ दो विघ्नों का उल्लेख करती हुई वह कहती है कि एक तो वाल्मीकि जी आज कल रामायण का प्रणयन कर रहे हैं। दूसरे गंगा देवी ने दो अत्यन्त मेधावी बालक लाकर महर्षि को सुपुर्द किये हैं जिनका नाम कुश और लव है। उन बालकों के साथ उसका अध्ययन सम्भव नहीं है। वे बहुत शीघ्र ही विद्या ग्रहण कर लेते हैं। वह अध्ययन में उनसे पिछड़ गयी है। इसलिए यहाँ चली आयी है।आत्रेयी यह जानकर कि यह पंचवटी है और यह जनस्थान है और उसका आतिथ्य करने वाली वनदेवता वासन्ती है। सीता को यादकर अश्रुमुखी हो जाती है और वासन्ती को सीता परित्याग तथा राम के अश्वमेध यज्ञ आदि सारी घटना से अवगत करा देती है।

4.4.5 वासन्ती

आत्रेयी को आतिथ्य प्रदान करने वाली वनदेवी है। दण्डकारण्य में वह अर्घ्य देकर आत्रेयी का स्वागत करती है। वह बताती है कि यह वन आपकी इच्छानुसार उपभोग करने योग्य है। वृक्षों की छाया, जल तथा तपस्या के लिए उपयुक्त भोजन, जो कुछ भी फल मूल आदि है, वह भी आपके लिए अप्राप्य नहीं है। वह आत्रेयी से उसका परिचय पूछती है तथा संकेत से उसे अगस्त्याश्रम का मार्ग बताती है। इसके चरित्र में भारतीय नारी के आतिथ्य की झलक दिखायी देती है।

4.4.6 अन्य पात्र

स्त्री पात्रों में तमसा, मुरला और भागीरथी नदियाँ है जो महाकवि भवभूति की उर्वर कल्पना की उपज हैं। पृथ्वी भगवती सीता की माता है। विद्याधरी विद्याधर की पत्नी है और प्रतिहारी ड्योढीवान है। भवभूति की प्रतिभा तूलिका से ये सभी पात्र बड़े ही प्राणवान् चित्रित किये गये हैं। इनमें जो गम्भीर प्रभावोत्पादन क्षमता है, वह किसी को भी मन्त्रमुग्ध किये बिना नहीं रह सकती।

अभ्यास प्रश्न-

1- एक शब्द में उत्तर दीजिए:

- उत्तररामचरित की नायिका कौन है?
- भगवती सीता की माता कौन है?
- आत्रेयी कौन है?

- अरुन्धती के पति कौन है?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- साध्वी सीता किसकी प्रियतमा है?
- श्रीरामचन्द्र की प्रतिज्ञा में किसे साधन बनना पड़ा?
- सीता अपने पुत्रों से कितने वर्ष बाद मिलती है?
- सीता को याद कर कौन अश्रुमुखी हो जाती है?

3- सत्य/असत्य बताइएः

- कौसल्या विपत्ति की मारी नारी है।
- जनक पहले कौसल्या को प्रणाम करते हैं।
- वासन्ती आतिथ्य प्रदान करने वाली वन देवी है।
- तमसा, मुरला और भागीरथी स्त्री पात्र नहीं हैं।

4- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

- जनक गृष्टि से कौशल्या का ....वृत्तान्त पूछते हैं।
- सीता का दुःख भी राम के ही दुःख की तरह .... है।
- गंगा और पृथ्वी भी सीता को .... सौंपती हैं।
- वाल्मीकि जी आजकल रामायण का .... कर रहें हैं।

5- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

- विद्याधर की पत्नी है।

  क तारा ख प्रतिहारी

  ग वासन्ती घ विद्याधरी

4.5 सारांश

चरित्र चित्रण की दृष्टि से उत्तररामचरित एक सफल नाटक है। रामचन्द्र प्रजापालक राजा है। प्रजा हित में अपना सर्वस्व बलिदान कर सकते हैं। लक्ष्मण आज्ञापालक, गम्भीर और तेजस्वी हैं। जनक क्षात्र धर्म से प्रदीप्त हैं। लव-कुश बाल सुलभ चापल्य से सम्पन्न बालक हैं। चन्द्रकेतु राज कुमार होने पर

भी विनय और वीरता से युक्त हैं। अष्टावक्र और वाल्मीकि मितभाषी ऋषि हैं। सुमन्त्र स्वामिभक्त, वात्सल्यपूर्ण और नीतिज्ञ हैं। दण्डायन तथा सौधातकि अनध्यायप्रिय छात्र हैं। सीता 'करुणस्य मूर्ति' अथवा शरीरिणी विहरव्यथा हैं। अपने अलोकसामान्य तेज से वे नाटक के प्रत्येक क्षेत्र को आभासित कर रही हैं। कौसल्या विपदा की मारी हैं। अरुन्धती ऋषि वसिष्ठ की धर्मपत्नी हैं; तमसा, मुरला, आत्रेयी, वासन्ती प्रभृति नारी पात्रानुरूप अपनी-अपनी भूमिकाएँ निर्वहन करने में अक्षरशः सफल है।

4.6 शब्दावली

एक पत्नीव्रत	-	एक पत्नी को अपनाने का नियम
यज्ञ	-	हवन
परिपूता	-	अत्यन्त पवित्र
लोकरंजन	-	प्रजा की प्रसन्नता
हिचक	-	संकोच
तापस	-	तपस्वी
प्राणप्रिया	-	प्राणों के समान प्रिय
अनध्याय	-	अध्ययन रहित
पुटपाक	-	औषधियाँ तैयार करने की विशेष पद्धति
छिछला	-	हलका
उद्दण्ड	-	भयानक
उच्छृंखल	-	निरंकुश, बेलगाम
प्रगाढ	-	तीव्र
अपकीर्ति	-	अपयश
आश्रय	-	ग्रहण करने वाला
प्रलाप	-	बालकलरव

वात्सल्य	-	(अपने बच्चों के प्रति) स्नेह
शिष्टाचार	-	विनम्र आचरण
स्वाभिमानवश	-	अहंकार के अधीन
वीरोचित	-	वीरों के योग्य
क्षात्रतेज	-	क्षत्रिय सम्बन्धी तेज
अवसादग्रस्त	-	दुःखी
नीतिज्ञ	-	नीति को जानने वाला
प्रेक्षमाण	-	देखता हुआ
पुरवासी	-	नगरवासी
जनपदवासी	-	गांववासी
तूलिका	-	कूँ ूची
गर्भदोहद	-	गर्भवती स्त्री की प्रबल रुचि
परित्याग	-	छोड़ना
आतिथ्य	-	अतिथि सत्कार
वासन्ती	-	वन की देवी
अरून्धती	-	ऋषि वसिष्ठ की पत्नी
पुटपाक	-	औषधियाँ तैयार करने की विशेष पद्धति
छिछला	-	हलका
उद्दण्ड	-	भयानक
उच्छृंखल	-	निरंकुश, बेलगाम
प्रगाढ	-	तीव्र

अपकीर्ति	-	अपयश
आश्रय	-	ग्रहण करने वाला
प्रलाप	-	बालकलरव
वात्सल्य	-	(अपने बच्चों के प्रति) स्नेह
शिष्टाचार	-	विनम्र आचरण
स्वाभिमानवश	-	अहंकार के अधीन
वीरोचित	-	वीरों के योग्य
क्षात्रतेज	-	क्षत्रिय सम्बन्धी तेज
अवसादग्रस्त	-	दुःखी
नीतिज्ञ	-	नीति को जानने वाला
प्रेक्षमाण	-	देखता हुआ
पुरवासी	-	नगरवासी
जनपदवासी	-	गांववासी
तूलिका	-	कूँची
गर्भदोहद	-	गर्भवती स्त्री की प्रबल रुचि
परित्याग	-	छोड़ना
आतिथ्य	-	अतिथि सत्कार
वासन्ती	-	वन की देवी
अरून्धती	-	ऋषि वसिष्ठ की पत्नी

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड-एक

1-

- धीरोदत्त
- आदर्श

- रामचन्द्र
- दुर्मुख

2-

- श्री रामचन्द्र अपने दाहिने हाथ को कोसते हैं।
- यमज भ्राता लव और कुश श्रीरामचन्द्र जी के पुत्र हैं।
- लव को देखकर श्रीरामचन्द्र जी का हृदय वात्सल्य से भर जाता है।
- कुश संसार से सम्राट् शब्द का अन्त करने पर ही तुल गया।

3-

- असत्य
- सत्य
- असत्य
- सत्य
- 4- मृदुभाषी

5-

- आदर्श पति
- भीतर ही भीतर
- प्रणतिपूर्वक
- नीतिज्ञ

खण्ड-दो

- सीता
- वसुन्धरा
- तापसी
- वसिष्ठ

2-साध्वी सीता श्री रामचन्द्र की प्रियतमा है।

- सीता को श्रीरामचन्द्र की प्रतिज्ञा में साधन बनना पड़ा।
- सीता अपने पुत्रों से बारह वर्ष बाद मिलती है।
- सीता को याद कर आत्रेयी अश्रुमुखी हो जाती है।

3-

- सत्य
- असत्य
- सत्य
- असत्य

4- कुशल

- एकान्तिक
- अरुन्धती
- प्रणयन

5- विद्याधरी

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1- भवभूति, उत्तररामचरितम्, व्याख्या-डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी (2008) चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-2- भवभूति, उत्तररामचरितम्, व्याख्या-आचार्य प्रभुदत्त स्वामी (1988) ज्ञान प्रकाशन मेरठ-2

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1- भवभूतिउत्तररामचरितम्, व्याख्या-डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल (1986-87) साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

2- भवभूति, उत्तररामचरितम्ः विचार और विश्लेषण, आचार्य प्रभुदत्त स्वामी, ज्ञान प्रकाशन मेरठ-2

3- भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु0डॉ0 रघुवंश (1964) मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तररामचरित के नायक भगवान् राम का चरित्र-चित्रण कीजिए?

2. उत्तररामचरित के आधार पर लव-कुश का चरित्र चित्रण कीजिए?

3. उत्तररामचरित की नायिका भगवती सीता का चरित्र चित्रण कीजिए?

4. उत्तररामचरित के स्त्री पात्रों का चरित्र चित्रण कीजिए?

इकाई 5 उत्तररामचरितम् की भाषा-शैली

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मुख्य भाग: खण्ड एक
उत्तररामचरित की भाषा
खण्ड दोः उत्तररामचरित की शैली
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
5.8 सहायक पाठ्य सामग्री
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

नाट्य एवं नाट्यशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह पंचम इकाई है। इससे पूर्व इकाई में आप उत्तररामचरित के पात्रों के चरित्र को समझ चुके हैं। इस इकाई में आप उत्तररामचरित की भाषा शैली का अध्ययन करेंगे।

भाषा की दृष्टि से उत्तररामचरित भवभूति के अन्य नाटकों की अपेक्षा सरल है। यद्यपि एक-आध स्थल पर हमें कठिनता के भी दर्शन होते हैं। भावातिरेक के कारण कभी-कभी कवित्व नाटकत्व से बढ़ जाता है और वहाँ नाटकीय गतिशीलता दबी हुई सी प्रतीत हाती है। उनकी भाषा विषयानुसारिणी है।

भवभूति की शैली में भाषा और भाव का अद्भुत सामंजस्य है। वे भयावह दृश्यों के वर्णन में समास संकुल ओजोगुण विशिष्ट पद्य भी लिख सकते है और कोमल प्रसंगों में असमस्त और सरल रचना भी कर सकते हैं। गौडी रीति के सम्राट् होने पर भी वे वैदर्भी के उपासक है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उत्तररामचरित की-

- भाषा को समझ सकेंगे।
- शब्द विन्यास की प्रांजलता को पहचान पायेंगे।
- पात्रानुरूप भाषा के प्रयोग की परख कर सकेंगे।
- विषयानुसारिणी भाषा को समझ सकेंगे।
- भाषा का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भाषा और भाव का सामंजस्य जान सकेंगे।
- शैली का स्वरूप समझ सकेंगे।
- गौडी रीति को समझ सकेंगे।
- वैदर्भी रीति को समझ सकेंगे।
- भाषा शैली का विवेचन कर सकेंगे।

5.3 खण्ड एकः उत्तररामचरित की भाषा

उत्तररामचरित नाटक के प्रणेता महाकवि भवभूति ने सरस्वती को अपनी अनुगामिनी कहा है; जो सर्वथा सत्य है। वास्तव में वे वाणी के ब्रह्मा हैं और वाणी उनकी वशवर्तिनी हैं उनके पास अपार शब्द भण्डार है। उनमें शब्द चयन की अपूर्व शक्ति है। भाषा उनकी अनुचरी है; वह उनके भावों के अनुरूप ढलकर स्वयम् आ उपस्थित होती है।श्रृंगार और करुण के प्रसंग में वे कोमल पदावली का प्रयोग करते हैं। वीर, भयानक, वीभत्स और रौद्र के अवसरों पर उनकी पदावली तदनुरूप कठोर होकर सुनने मात्र से ही उत्साह, भय, घृणा और क्रोध उत्पन्न करने लगती है। वीर, रौद्र आदि में उनकी पदावली संश्लिष्ट होकर समासबहुला हो जाती है और शृंगार तथा करुण के अवसर पर वह समास शैली का स्पर्श भी नहीं करती।निर्झर की कलकल में, वायु की सनसनाहट में, उल्लुओं और भालुओं की घर्राहट में, कबूतरों के गुटकने में उनकी भाषा स्वयं कलकल करती, सनसनाती, घर्राती और गुटकती जान पड़ती है। मेघों का गर्जन हो या बिजली का तर्जन, धनुष की टंकार हो या खड्ग की झंकार; आप शब्दों को सुनते ही, बिना अर्थ को जाने भी, वस्तु के स्वरूप का साक्षात्कार करने लगते हैं। भाषा पर ऐसा एकच्छत्र अधिकार किसी कवि का शायद ही दीख पड़े।

भवभूति उच्चकोटि के पण्डित भी हैं और उच्च कोटि के कवि भी। इनमें अपार शब्द ज्ञान भी है और अपूर्व प्रयोग सामर्थ्य भी। बालकों के मुँह से बालकों की, वृद्धों के मुँह से वृद्धों की, ऋषियों के मुँह से ऋषियों की और राजर्षियों के मुँह से राजर्षियों की भाषा का प्रयोग जैसा भवभूति की रचनाओं में मिलता है वह अन्यत्र नहीं है; उदाहरण के लिए-

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारस्तेषु मा संशयोऽभूत्।

भद्रा ह्येषावाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।।

को सुनकर क्या आप यह अनुमान नहीं कर लेंगे कि यहाँ कोई ऋषि पत्नी अपने सत्यवाक् पति की बात पर अविश्वास प्रकट करने वाली राज पत्नी को हलकी सी डांट पिला रही है। इसी प्रकार चतुर्थ, पंचम और पष्ठ अंकों में चाहे लव और चन्द्रकेतु संवाद हो, चाहे जनक और लव की बातचीत हो। लव की प्रत्येक उक्ति में आपको किसी अरण्यवासी, वेदाध्यासी, क्षत्रियवटु के बोलने का स्वयम् आभास मिल जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1- एक शब्द में उत्तर दीजिएः

- भवभूति ने सरस्वती को क्या कहा है?

- उच्चकोटि के पण्डित कौन हैं?
- भवभूति का भाषा पर कैसा अधिकार है?
- भवभूति की वशवर्तिनी कौन है?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- भवभूति किस कोटि के कवि हैं?
- किसमें अपार शब्द ज्ञान भी है?
- भवभूति की भाषा निर्झर की कलकल में कैसी जान पड़ती है?
- भवभूति की भाषा वीर और रौद्र आदि में कैसी हो जाती है?

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः

- भाषा उनके भावों के अनुरूप ढलकर .... आ उपस्थित होती है।
- वायु की सनसनाहट में उनकी भाषा .... जान पडती है।
- शृंगार और करुण के अवसर पर वह .... का स्पर्श भी नहीं करती।
- क्षत्रिय वटु के बोलने का स्वयम् .... मिल जाता है।

4- सत्य/असत्य बताइएः

- भवभूति के पास अपार शब्द भण्डार है।
- लव अरण्यवासी क्षत्रिय वटु नहीं है।
- भवभूति में अपूर्व प्रयोग समर्थ्य है।
- भवभूति में शब्द चयन की अपूर्व शक्ति नहीं है।

5- सही विकल्प छांटकर लिखिएः

- भवभूति की पदावली समासबहुला हो जाती है।

क वीर और रौद्र में   ख अद्भुत और वीभत्स में

ग शृंगार और करुण में   घ हास्य और भयानक में

अभ्यास प्रश्न-

1- एक शब्द में उत्तर दीजिए:

- संस्कृत साहित्य शास्त्र में कितनी रीतियों का उल्लेख है?
- कौन सी रीति ललित रचना कहलाती है?
- कौन सी रीति उद्धटरचना कहलाती है?
- उत्तररामचरित में कितनी रीतियों का प्रयोग मिलता है?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिए:

- वीर रस के वर्णन में किस रीति का प्रयोग किया जाता है?
- किस प्रसंग में वैदर्भी रीति का प्रयोग होता है?
- ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकता किस रसोचित गुण है?
- कुछ विद्वान् भवभूति को किस रीति का आचार्य स्वीकार करते हैं?

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

- भवभूति किसी भी भाषा शैली में .... दिखायी नहीं देते।
- भवभूति की भाषा शैली वास्तव में .... है।
- चन्द्रकेतु और लव .... आमने-सामने उद्यत है।
- भवभूति की शैली में .... अद्भुत सामंजस्य है।

4- सत्य/असत्य बताइए:

- वैदर्भी रीति माधुर्य के व्यंजक वर्णो से पूर्ण रचना होती है।
- भीषण दृश्यों के वर्णन में भवभूति ने वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है।
- प्रकृति के कोमल पहलू के चित्रण में भी भवभूति ने गौडी रीति का प्रयोग किया है।
- दोनों परस्पर विरुद्ध रीतियों पर भवभूति का समान अधिकार नहीं है।

5- सही विकल्प छांटकर लिखिए:

- गौडी रीति के प्रयोग में आवश्यक होता है-

क प्रसाद गुण ख माधुर्यगुण

ग कान्ति गुण घ ओजगुण

5.4 सारांश

- उत्तररामचरित में विषयानुसारिणी भाषा
- भयावह दृश्यों के वर्णन में समास संकुल ओजोगुण विशिष्ट
- कोमल प्रसंगों में असमस्त और सरल
- सर्वत्र रस, भाव एवं पात्रों के अनुरूप ;
- वैदर्भी एवं गौडी रीति का समुचित प्रयोग ;
- करुण रस के वर्णन में वैदर्भी ;
- वीर रस के वर्णन में गौडी रीति ;
- प्रकृति के विकट एवं भीषण दृश्यों के वर्णन में गौडी रीति ;
- कोमल पहलू के चित्रण में समास-गर्भित पदावली वाली गौडी रीति ;
- शैली में भाषा और भाव का बेजोड़ सामंजस्य।

5.5 शब्दावली

सरस्वती	-	वाणी और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवता
अनुगामिनी	-	सहचरी
वशवर्तिनी	-	आज्ञाकारिणी
अनुचरी	-	सेविका
पदावली	-	शब्दों का क्रम
संशिलष्ट	-	सम्यक् श्लेष से युक्त
कलकल	-	अस्पष्टध्वनि
सनसनाहट	-	हवा की ध्वनि

घर्राहट	-	उल्लुओं और भालु आदि पशुओं की ध्वनि
एकच्छत्र	-	प्रभुता को दर्शाने वाला
सत्यवाक्	-	सत्य बोलने वाला
उक्ति	-	कथन
अरण्यवासी	-	जंगल में निवास करने वाला
वेदाध्यायी	-	वेदों का अध्ययन करने वाला
अभिव्यक्ति	-	प्रदर्शन
वैदर्भी रीति	-	माधुर्य व्यंजक वर्णों से पूर्ण, स्वल्प समास युक्त रचना
गौडी रीति	-	ओज के प्रकाशक वर्णों से पूर्ण समास बहुल उद्धट रचना
ध्वन्यात्मकता	-	प्रतिध्वनि या कोलाहल से पूर्ण
चित्रात्मकता	-	शब्द चित्र तथा अर्थ चित्र से पूर्ण
भीषण	-	भयंकर
मुखरित	-	बजता हुआ
वास्तविकता	-	सच्चाई, यथार्थता
विशदता	-	पवित्रता, सुन्दरता
सामंजस्य	-	संगति
समासगर्भित	-	समस्त, समासों से युक्त
पहलू	-	पक्ष
स्नेहात्मकतन्तु	-	स्नेह से युक्त, सम्बन्धित
उद्धत	-	प्रचण्ड
चिन्ता	-	शोकपूर्ण विचार

वितर्क - युक्ति, विचार-विमर्श

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड-एक

1-

- अनुगामिनी
- भवभूति
- एकच्छत्र
- वाणी

2-

- भवभूति उच्च कोटि के कवि हैं।
- भवभूति में अपार शब्द ज्ञान भी है।
- कलकल करती जान पड़ती है।
- संश्लिष्ट होकर समास बहुला हो जाती है।

3-

- स्वयम्
- सनसनाती
- समास शैली
- आभास

4-

- सत्य
- असत्य
- सत्य
- असत्य

5- वीर और रौद्र में

खण्ड-दो

1-

- चार
- वैदर्भी
- गौडी
- दो

2-

- वीर रस के वर्णन में गौडी रीति का प्रयोग किया जाता है।
- कोमल प्रसंग में वैदर्भी रीति का प्रयोग होता है।
- ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकता वीररसोचित है।
- कुछ विद्वान् भवभूति को गौडी रीति का आचार्य स्वीकार करते है।

3-

- बँधे हुए
- भावानुसारिणी
- युद्ध के लिए
- भाषा और भाव का

4-

- सत्य
- असत्य
- सत्य
- असत्य

5- ओजगुण

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1- भवभूतिः उत्तररामचरितम्, व्याख्या-डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, (2008) चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-1

2- भवभूति, उत्तररामचरितम् (सम्पूर्ण), व्याख्या- आचार्य प्रभुदत्त स्वामी, (1988) ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

5.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1-भरतमुनि, उत्तररामचरितम्, व्याख्या- डॉ0 कृष्णकुमार शुक्ल (1986-87) साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''भवभूति का भाषा पर एकच्छत्र अधिकार है'' इस कथन को सिद्ध कीजिए?

2. उत्तररामचरित की भाषा शैली की विवेचना कीजिए?

3. 'भवभूति वैदर्भी तथा गौडी रीति के आचार्य हैं' इस कथन को उत्तररामचरित के आधार पर प्रमाणित कीजिए?इकाई

खण्ड दोः उत्तररामचरित की शैली

संस्कृत साहित्यशास्त्र में वैदर्भी, गौडी, पांचाली और लाटी- इन चार रीतियों का उल्लेख है, किन्तु काव्य साहित्य में प्रायः दो ही रीतियों-वैदर्भी और गौडी का प्रयोग मिलता है। वैदर्भी वह रीति है जिसे माधुर्य के अभिव्यंजक वर्णों से पूर्ण, समास रहित अथवा स्वल्प समास युक्त ललित रचना कहते है-

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका।

अवृत्तिरलवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।। सा.द. 9.2।।

वैदर्भी का प्रयोग शृंगार अथवा करुण रस में कोमल भावों की अभिव्यक्ति के समय होता है। गौडी वह रीति है जिसे ओजोगुण के अभिव्यंजक वर्णों से पूर्ण, समास बहुल उद्भट रचना कहते हैं-

ओजः प्रकाश कैर्वणै र्बन्ध आडम्बरः पुनः।।

समास बहुला गौडी ....। (सा.द. 9.3)

गौडी रीति का प्रयोग वीररस के वर्णन में अथवा प्राकृतिक विकट दृश्यों को प्रस्तुत करते समय किया जाता है। वहाँ ओजगुण का होना आवश्यक होता है। उत्तररामचरित में इन दोनों रीतियों का समुचित प्रयोग मिलता है। करुण रस के वर्णन में कोमल प्रसंग में वैदर्भी रीति का प्रयोग दर्शनीय है-

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तुन भिद्यते

वहति विकलः कायो मोहं न मुंजति चेतनाम्

ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्

प्रहरति विधि र्ममच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।। (3.31)

वीर रस के वर्णन में गौडी रीति का प्रयोग करते हुए कवि ने ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता आदि सभी वीर रसोचित गुणों को एक साथ मुखरित कर दिया है।

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रमुदगारिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।

ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम्।।

प्रकृति के विकट एवं भीषण दृश्यों के वर्णन में भवभूति द्वारा गौडी रीति का प्रयोग किया

गया है, जिसमें प्रकृति का यथार्थ चित्रण है। कृत्रिमता लेशमात्र भी नहीं है।वास्तविकता और विशदता का ऐसा अनुपम सामंजस्य अन्यत्र दुर्लभ है। कवि की विलक्षणता तो इस बात में है कि उन्होंने प्रकृति के कोमल पहलू के चित्रण में भी उसी समासगर्भित पदावली वाली गौडी रीति का सफल प्रयोग किया है। कुछ विद्वान् भवभूति को गौडी रीति का आचार्य कहकर उनकी रीति को समास बहुला प्रतिपादित करते है; परन्तु यह यथार्थता नहीं है। भवभूति कहीं भी किसी भी भाषा शैली में बँधे हुए दिखाई नहीं देते। उनकी भाषा शैली वास्तव में भावानुसारिणी है, जो कोमल भावों के साथ कोमल और कठोर भावों के साथ कठोर होती चली जाती है। कठोर और उद्धत प्रसंग में भी यदि भावों की मृदुता प्रदर्शित करनी होती है तो भवभूति की भाषा तुरन्त कोमल हो जाती है। चन्द्रकेतु और लव युद्ध के लिए आमने-सामने उद्यत हैं; पर दोनों के हृदय में जब अहेतुक पक्षपात उत्पन्न हो जाता है और स्नेहात्मक तन्तु उनके हृदय को सीने लगता है, तब वे दोनों एक दूसरे पर शस्त्र छोड़ने में चिन्ता और वितर्क करने लगते हैं। भवभूति इन दोनों के वितर्क को इन शब्दों में प्रकट करते हैं-

किंचाक्रान्त कठोर तेजसि गतिः का नाम शस्त्रं बिना

शस्त्रेणापि हि तेन किं न विषयो जायेत यस्येदृशः।

किं वक्ष्यत्ययमेव युद्धविमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे

वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं वाधते।। 5.19।।

इस प्रकार भवभूति की शैली में भाषा और भाव का अद्भुत सामंजस्य है। वैदर्भी तथा गौडी दोनों परस्पर विरुद्ध रीतियों पर उनका समान अधिकार है।

इकाई 1: उत्तर रामचरितम् - प्रथम अंक का पूर्वार्द्ध

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मुख्य भाग: खण्ड एक (श्लोक 1 से 13 तक)
मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी,
1.4 खण्ड दो (श्लोक 14 से 26 तक)
मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी,
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1-1प्रस्तावना

भारतीय नाट्य एवं नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। इसमें महाकवि भवभूति द्वारा रचित 'उत्तर रामचरित ' नाटक के प्रथम अंक के पूर्वार्द्ध की विषयवस्तु है । यहाँ आप नाटक की प्रस्तावना तथा चित्रवीथी के प्रारम्भिक भाग का अध्ययन करेंगे।

सूत्रधार अपनी नट मण्डली के साथ अयोध्या में प्रवेश करता है कि राज्याभिषेक उत्सव में अभिनय दिखाकर राम को प्रसन्न करेगा., परन्तु वहाँ आने पर उसे पता लगता है कि उत्सव समाप्त हो गया है। वह राजद्वार में जाकर राम को अभिनय दिखाने का विचार करता है। वहाँ पहुँचने पर उसे विदित होता है कि पिता जनक के चले जाने पर सीता जी बहुत उदास हैं और राम उन्हें सान्त्वना देने के लिए राजद्वार से उठकर अन्तःपुर में चले गये हैं ।

सीता को सान्त्वना देते हुए राम प्रवेश करते हैं । वहीं ऋष्यशृंग के आश्रम से आये हुए अष्टावक्र वसिष्ठादि गुरुजनों का सन्देश देते हैं । तभी लक्ष्मण एक चित्रवीथी लेकर उपस्थित होते हैं। राम और सीता चित्रों को देखते हैं।इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाटक की प्रस्तावना को समझा सकंेगे तथा चित्रवीथी के विविध प्रसंगों का सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगे ।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- नट तथा सूत्रधार की भूमिका सम्बन्धी जानकारी प्राप्त कर पाएंगे ।
- अनुष्ठान का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- ऋषि वसिष्ठ का सन्देश समझ सकंेगे ।
- राजकीय कर्तव्यों की पहचान कर सकेंगे ।
- सीता के प्रति राम की सान्त्वना को जान सकेंगे ।
- पारिवारिक शिष्टाचार की पहचान कर पाएंगे ।
- वनवासी तपस्वियों के जीवन को पहचान पाएंगे ।
- वानप्रस्थ धर्म को पहचान सकेंगे ।
- भगीरथ के राष्ट्रीय योगदान को जान सकेंगे ।
- गंगा का महत्व समझ सकेंगे ।
- गृहस्थ तपस्वियों के जीवन को पहचान पांएगे ।

1.3 मुख्य भाग खण्ड एक

-इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमो वाकं प्रशास्महे।

विन्देम देव तां वाचममृतामात्मनः कलाम् ।।1।।

अर्थ- राम चरित के पूर्व वक्ताओं को सर्वप्रथम नमस्कार कहकर हम (ईश्वर से) प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! आपकी अंशभूत अमृत तुल्य संसार को आह्लादित करने वाली उस वाणी को हम भी प्राप्त करें।

व्याख्या- लोकोत्तर चरित पर आधारित नाटक का शुभारम्भ करते हुए भवभूति अपने कार्य को निर्विघ्न पूर्ण करने के लिए सर्व प्रथम मंगलाचरण करते हैं। शास्त्रीय मान्यता है कि ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में मंगल करना चाहिए इसे शिरोधार्य करते हुए महाकवि भवभूति ने यह मंगल किया है। ऐसा गम्भीर और पूर्ण मंगलाचरण संस्कृत के अन्य किसी भी काव्य ग्रन्थ में नहीं है।

टिप्पणीः-

- पूर्वेभ्यः- यहाँ पूर्व शब्द अपने से प्रथम उत्पन्न होने वालों का बोधक है।
- इदं कविभ्यः- पूर्व कवि शब्द से कवि ने पुराने महाकवियों वाल्मीकि,व्यास कालिदास आदि का ही ग्रहण किया है।
- नमोवाकम्- यह एक ही पद है। नमस् पूर्वक वच् धातु से णमुल् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है।
- प्र शास्महे- ये दो स्वतन्त्र पद हैं। ‘ प्र ‘ त्वरा का बोधक है। ‘शास्महे’ शास् धातु से वर्तमान में लट् लकार, उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप है।
- विन्देम- विद्लृ धातु से प्रार्थना में लिङ् लकार, उ0,पु0, बहुवचन।
- देव!- संबोधन पद है।

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।

उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते ।।2।।

अर्थ- जो काव्य सृष्टि में स्वयं ब्रह्मा है। जिनका अनुसरण यह वाग्देवता सरस्वती उनकी वशवर्तिनी होकर करती है। उन्हीं भवभूति द्वारा रचित ‘उत्तर रामचरित’ का हम अभिनय प्रस्ततु कर रहे हैं।

व्याख्या- जो ब्रह्मा प्रजापति की अपेक्षा भी अद्भुत काव्यमयी सृष्टि करने वाले हं। सरस्वती जिनकी इच्छानुचरी हो गयी है। उन महाकवि भवभूति द्वारा रचित प्रजानुरंजन के लिए प्राणप्रिया सीता का भी निर्वासन रूप लोकोत्तर राम का चरित प्रस्तुत कर रहे हैं।

टिप्पणी-

ब्रह्माणम्-यहाँ सूत्रधार ने कवि को प्रथक् न कहकर ब्रह्म में ही उसका अध्यवसान कर दिया है।

वश्या इव- यहाँ वश् धातु से यत् प्रत्यय हुआ है; जिससे इसका अर्थ कवि की वशवर्तिनी होता है।

उतररामचरितम्-यहाँ कवि ने 'उत्तरम्' का 'चरितम्' से सीधा सम्बन्ध वोध कराने के लिए दोनो पदों को प्रथक् प्रथक् कहा है।

वशिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः।

अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम् ।।3।।

अर्थ- वसिष्ठ की देख रेख में राम की माताएँ अरुन्धती को आगे करके अपने जामाता ऋष्यशृंग के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए उनके आश्रम में गयी हैं।

व्याख्या- वसिष्ठ मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इनके संरक्षण में अरुन्धती के साथ राज माताओं का गमन यज्ञ की पूर्णता के उद्देश्य से था। यज्ञ में गुरु और गुरुपत्नी को लेकर पहुँचना राजमाताओं ने ऋष्यशृंग पर छोड़ दिया था। यज्ञ में जाना ही राजमाताओं का प्रधान लक्ष्य था।

टिप्पणी-

वसिष्ठाधिष्ठिताः- अतिशयेन वस्ता इति वसिष्ठः, तेन अधिष्ठिता कौशल्यादय इत्यर्थः।

देव्यः- रामस्य मातरः का विशेषण है।

कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।

अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ।। 4।।

अर्थ- महाराज दशरथ ने शान्ता नाम की कन्या को उत्पन्न किया था। उसे कृत्रिम पुत्री के रूप में राजा रोमपाद को दे दिया था।

व्याख्या- स्वर्ग पाताल आदि लोको में जिनके रथ की अप्रतिहत गति थी; ऐसे राजा दशरथ ने शान्ता नामक पुत्री को दिव्य उपाय से उत्पन्न किया था। वह उन्होंने गोद ली हुई सन्तान के रूप में अपने मित्र राजा रोमपाद को सौंप दी।

टिप्पणी - अपत्यकृतिकाम्- गोद ली हुई। दूसरे के लिए अपत्य को दूसरा दाय भाग में प्रतिपादित विधि के अनुसार अपना अपत्य बना लेता है, उसे कृतक अपत्य कहा जाता है।

सूत्रधारः- सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।

यथा स्त्रीणां तथा हि वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।।5।।

अर्थ- सूत्रधार- जैसी हो, वैसी व्यवहार में लानी चाहिए। निन्दा न हो, यह कब सम्भव है ? क्यों कि स्त्रियों की साधुता की तरह वाणी की साधुता के विषय में भी लोग दुर्जन होते हैं।

व्याख्या- निर्दोष या सदोष के फेर में न पड़कर जैसी जिस समय योग्य हो वैसी ही स्तुति पद्धति को व्यवहार में लाना चाहिए। जैसे स्त्रियों की साधुता के विषय में लोग कम दुर्जन नही होते, वैसे साधु वाणी भी दुर्जनों द्वारा निन्दित होती है।

टिप्पणी- सर्वथा व्यवहर्तव्यम्- सर्वेण प्रकारेण इति सर्वथा सर्व$थाल् ।

व्यवहर्तुं योग्यं व्यवहर्तव्यम्, वि$अवहृ$तव्य। सूत्रधार के रूप में कवि ने स्वयं अपने नाटक विज्ञान को प्रस्तुत करते हुए यहां अपनी निःशंकता व्यक्त की है। उन्हें दुर्जनों द्वारा किये जाने वाले दोषारोपण का कोई भय नही है ।

नटः- अति दुर्जन इति वक्तव्यम्।

देव्या अपि हि वैदेह्याः सापवादो यतो जनः।

रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः।।6।।

अर्थ- नट- अति दुर्जन होते हैं, यह कहिये ।

क्योंकि जब लोग देवी सीता के भी निन्दक हैं (तब उन्हें अति दुर्जन ही कहना चाहिए) राक्षस के घर में सीता का रहना निन्दा का निश्चित कारण है। अग्नि शुद्धि के विषय में लोगों का निश्चय नहीं है।

व्याख्या- सीता देहाभिमान शून्य ज्ञाननिधि जनक की पुत्री तथा अयोनिज होने से जन्म से ही पवित्र थीं। वे लंका में न कि रावण के घर में अनिच्छा से निरुद्ध थीं। दूसरे उनकी अग्नि शुद्धि को कर्णपरम्परा जानकर भी लोग निश्चय के लिए यत्न नहीं कर रहे थे। केवल निन्दा कर रहे थे। अत एव अति दुर्जन कहे जाने योग्य हैं। यहाँ वैदेही आदि साभिप्राय विशेषण प्रस्तुत होने के कारण परिकर अलंकार है।

टिप्पणी-'देव्या अपि हि वैदेह्या.....' इत्यदि वाक्य में ये दोनों अलग-अलग प्रयुक्त हुए हैं। इनमे से

कोई एक निरर्थक है या फिर उसका कोई दूसरा अभिप्राय है।

नटः- स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि

नीत्वोत्सवेन जनकोऽथ गतो विदेहान्।

देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय

धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः ।।7।।

अर्थ- अभिनन्दन के लिए स्नेहवश आकर और इतने दिन उत्सव के साथ बिताकर जनक आज अपने देश को गये हैं। इससे उदास मना देवी सीता को सान्त्वना देने के लिए महाराज राम धर्मासन छोड़कर अन्दर घर में चले गये हैं।

व्याख्या- अपनी पुत्री सीता के प्रति स्नेह के कारण जनक मिथिला से अयोध्या आये और उत्सव के आरम्भ से समाप्ति पर्यन्त निवास करके वापस गये। अपने पिता जनक के ताजे विछोह के कारण सीता उदास हो गयीं। उनके विषाद की चिन्ता से से चिन्तित होकर राम उन्हें सान्त्वना देने के लिए वासगृह में चले गये।

टिप्पणी- यह श्लोक प्रकृत नाटक का प्रस्तावना श्लोक है। इसका आरम्भ विमना सीता को सान्त्वना देते हुए राम की घटना से होता है। यह प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना है।

रामः- किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वात्रन्त्यमपकर्षति।

संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।।8।।

अर्थ- राम- किन्तु अनुष्ठान की अनिवार्यता स्वतन्त्रता को क्षीण करती है। कभी

न बुझने वाली एक ही अग्नि में सदा होम करने वालों का गृहस्थी होकर रहना वास्तव में बाधाओं से युक्त होता है

व्याख्या- श्रीराम सान्त्वना देते हुए सीता से कहते हैं कि विश्वास करो कि पिता (जनक) जी स्नेह की कमी के कारण हमें छोड़कर नहीं गये हैं। वास्तव में अनुष्ठान की नित्यता के कारण उनका जाना अनिवार्य था। उनकी इच्छा तो अभी न जाने की रही होगी। परन्तु अनुष्ठान की नित्यता स्वेच्छा को चलने नहीं देती।

टिप्पणी- आधान की हुई अग्नि में किये जाने वाले होम को अनुष्ठान कहते हैं। एक ही अग्नि

में नित्य होम करने वाले अहिताग्नि कहलाते है।

अष्टावक्र-(उपविश्य) अथ किम्? देवि, कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामि दमाह-

विश्वंभरा भगवती भवतीमसूत

राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।

तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां

येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ।। 9।।

तत्किमन्यदाशास्महे। केवलं वीरप्रसवा भूयाः।

अर्थ- अष्टावक्र -(बैठकर) भला क्यों नहीं? देवि! आपके कुलगुरु भगवान् वसिष्ठ ने आपके लिए कहा है कि-

'वेटी! भगवती जगद्धात्री पृथ्वी ने तुम्हें जन्म दिया है और प्रजापति के समान महाराज जनक तुम्हारे पिता हैं। उन राजाओं की तुम वधू हो कि जिनके कुल में सूर्य और हम गुरु हैं; तब तुम्हें और क्या आशीष दें (केवल यही आशीष देते हैं कि) तुम वीर पुत्रों को जन्म देने वानी बनो।'

व्याख्या- प्रस्तुत श्लोक वाक्य वसिष्ठ द्वारा दिये जाने वाले आशीर्वाद का पूर्वांश है। जब माता विश्वंभरा है तो पुत्री में विश्व के भरण की योग्यता स्वभावसिद्ध है । इसी प्रकार जब पिता प्रजापति के समान प्रजापालक हैं तो पुत्री में भी प्रजा के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है। जिस कुल का प्रादुर्भाव सविता से हुआ है ,जिसके कुलगुरु स्वयं वसिष्ठ हैं। उसके कुल की वधू को किस वस्तु का अभाव हो सकता है? अतः वसिष्ठ ने इस वाक्य को कहने के बाद 'किमन्यदाशास्महे...' कहा है।

टिप्पणी-यहाँ 'कुलेशु' इस बहुवचन का प्रयोग यह दिखाने के लिए है कि यद्यपि वैवस्वत, इक्ष्वाकु, रघु आदि के रूप में इस कुल की कई पीढ़ियां हो गयी हैं, परन्तु सबका मूल प्रवर्तक एक सूर्य ही है।

आषास्महे - आड पूर्वक षास् धातु का लट्,उ0 पु0 बहुवचन का रूप है।

रामः-अनुगृहीता स्मः।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।

ऋशीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ।।10।।

अर्थ- राम- हम अनुगृहीत हुए। क्यों कि -

लैकिक साधुओं की वाणी अर्थ के पीछे चलती है; किन्तु वैदिकऋशियों की वाणी के पीछे अर्थ

स्वयं दौड़ता है

व्याख्या- लोक में सामान्यतः सुलभ सज्जनों के वचन विद्यमान वस्तु या पदार्थ का अनुसरण करते हैं। वे जैसा देखते हैं वैसा कहते हैं, किन्तु प्राचीन मन्त्रद्रश्टा ऋशियों तथा वसिश्ठ आदि मुनियों की वाणी के पीछे अर्थ वेग से दौड़ता है।

टिप्पणी - हि-यह हेत्वर्थ अव्यय है। यह संस्कृत में हिन्दी के ‘क्यों कि‘ स्थान में प्रायः प्रयुक्त होता है ।

आद्यानाम्- आदौ भवा आद्याः तेशाम्- आद्यानाम्।

ऋशीणाम्-ऋशन्ति जानन्ति तपसा मन्त्रानिति ऋशयस्तेशाम्-ऋशीणाम्।

अश्टावक्रः- श्रूयताम्-

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।

युक्तःप्रजानामनुरंजने स्यास्तस्माद्यषो यत्परमं धनं वः।। 11।।

अर्थ- अश्टावक्र- सुनिये- हम ऋश्यषृंग के यज्ञ के कारण यहाँ घिरे हुए हैं, तुम बालक ही हो और राज्य नवीन है। प्रजा के अनुरंजन में तत्पर रहना। उससे तुम्हें वह यष प्राप्त होगा, जो तुम्हारा वास्तविक धन है।

व्याख्या- भगवान् वसिष्ठ ने राम को जो सन्देष भेजा है, उसे अश्टावक्र सुना रहे हैं कि कि- हम वसिश्ठ आदि ऋशि जामाता ऋश्यषृंग का यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए यहाँ ठहरने को विवष हैं। तुम(राम) स्वल्पवयस्क एवम् अनुभवहीन हो। नये राज्य में प्रजा विप्लव सम्भव है। अतः सर्वथा प्रजा को प्रसन्न करने में निरत रहना। इससे तुम्हें संसार में चिरस्थायी यश प्राप्त होगा। सम्पूर्ण राजकार्य की सफलता से उत्पन्न धन ही राजा का परम लाभ होता है ।

टिप्पणी -त्वं बाल एवासि- (तुम अभी बालक ही हो) यद्यपि राम इस समय बालक नहीं हैं तथापि वसिश्ठ स्नेहवष उन्हें बालक ही समझते हैं।

जामातृयज्ञेन- इत्यादि वाक्यों द्वारा वसिश्ठ ने राम को ‘बड़ों के मार्ग दर्षन से रहित, अनुभवहीन नया राजा कहा है। कुलगुरु के लिए यह आवष्यक है वे अपने नये राजा को उसके कर्तव्य का बोध करायें।।

रामः-यथा समादिषति भगवान् मैत्रावरुणिः

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा ।।12।।

अर्थ- राम-भगवान् वशिष्ठ का जैसा आदेष है (वैसा ही होगा)

'स्नेह, दया और सुख को, यहाँ तक कि जानकी को भी, लोकाराधन के लिए छोड़ते हुए मुझे कोई दुःख न होगा।'

व्याख्या-यहाँ कुलगुरु के आदेश से उत्साहित राम स्वजन सम्बन्धी स्नेह ,विपन्न बन्धु सम्बन्धी दया, और अपने सभी सांसारिक सुख लोकाराधन के लिए ढुकराने का उत्साह व्यक्त कर रहे हैं। राम के लिए स्नेह, दया और सौख्य का आलम्बन जानकी के सिवाय संसार में दूसरा नहीं है। जानकी उनकी सबसे अधिक स्नेहपात्र, दयापात्र और सौख्य साधन हैं; परन्तु वे लोकाराधन के लिए उन्हें भी छोड़ने के उद्यत हैं।

टिप्पणी- स्नेहं दयां च सौख्यं च- ये मन की सुखात्मक वृत्ति के तीन नाम हैं। हृदय की बाह्य द्रुति को स्नेह, आन्तरिक द्रुति को दया और केवल सुखितावस्था को सौख्य कहते हैं।

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।13।।

अर्थ-ये तो जन्म से ही शुद्ध हैं, दूसरे पदार्थ इन्हें क्या शुद्ध करेंगे? तीर्थ का जल और अग्नि भी कहीं दूसरी वस्तुओं द्वारा शुद्ध किये जाते हैं?

व्याख्या- अपने जन्म से ही पवित्र, देवयज्ञ से उत्पन्न अयोनिजा सीता को अन्य शोधकों से क्या? निसर्गशुद्ध वस्तु अन्य पदार्थों से शुद्ध करना उचित नहीं। जैसे- हरिद्वार आदि में 'गंगा जल और अग्नि ये दोनों अन्य किसी शोधक पदार्थ से शुद्धि योग्य नहीं हैं।

टिप्पणी- तीर्थोदकं च वह्निश्च- अयोनिजा सीता की शुद्धि तीर्थ जल और अग्नि के समान निर्मल है। अत एव यहाँ द्रष्टान्त अंलकार है।

अभ्यास प्रश्न-

1. एक वाक्य में उत्तर दीजिएः-

- उत्तर राम चरित नाटक राम के किस चरित पर आधारित है?
- वसिष्ठ की देख रेख में राम की माताएँ कहाँ गयीं?
- सूत्रधार ने भवभूति को काव्य सृष्टि में क्या कहा है?
- सीता को किसने जन्म दिया है?

2. एक शब्द में उत्तर दिजिए:-

- राजा धर्मासन छोड़ कर कहाँ गये?
- अनुष्ठान की अनिवार्यता किसे क्षीण करती है?
- प्रजापति के समान राजा कौन है?
- लौकिक साधुओं की वाणी किसके पीछे दौड़ती है?

3.सत्य/असत्य बताइएः-

ऽ 'हि' हेत्वर्थ अव्यय है।

ऽ शान्ता दशरथ की पुत्री थीं।

ऽ वसिष्ठ चन्द्रवंश के कुलगुरु थे।

ऽ सीता जन्म से शुद्ध नहीं हैं।

1.4 खण्ड दो

क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरंजनीय

स्तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।

नैसर्गिकीसुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा

मूर्ध्निस्थितिर्न चरणैरवताडनानि ।।14।।

अर्थ- दुःखी प्रियजन स्वजनों द्वारा दुःख बांटकार बहलाने योग्य होता है। सो जो कहा गया, वह अग्नि शुद्धि रूप वचन न हमारे लिए शुभ है और न ही तुम्हारे लिये योग्य है। सुगन्धित पुष्प की मस्तक पर की गई स्थापना स्वाभाविक है, पैरों से ठोकरें मारना स्वाभाविक नहीं है।

व्याख्या- अपना प्रियजन यदि किसी कारणवश दुःखी हो तो अपने लोगों का यह कर्तव्य है कि वे अनुकूल आचरण से उसे प्रसन्न रखने का प्रयास करें। इसलिए तुम्हारी अग्नि शुद्धि की बात जो लक्ष्मण के मुंह से निकल गयी है, वह हम लोगां के लिये शुभ नहीं है। हमारी दृष्टि में तुम एक सुगन्धित पुष्प जैसी हो, हम तुम्हें सदा मस्तक पर रखने योग्य समझते हैं। अतः तुम्हें ठुकराने की कभी कल्पना भी नहीं कर सकते।

टिप्पणी - अनुरंज् अनीयर्= अनुरंजनीय।

रामः - वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परःसहस्रं शरदां तपासि।

एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयनि ।।15।।

अर्थ - राम - देवि ! इन दिव्य अस्त्रों की वन्दना करो।

बह्म्रा आदि पूर्व गुरुओं ने वेद प्रतिपादित धर्म की रक्षा के लिए हजार

वर्ष से भी अधिक समय तक तप करके अपने तप के तेज जैसे इन दिव्य अस्त्रों के दर्शन किये।

टिप्पणी -प्रहार करने की गोपनीय विधियों के साथ जृम्भक नाम के दिव्यास्त्र शत्रु सेना को निगल जाते थे। ये कृशाश्व मुनि से विश्वामित्र को प्राप्त हुए थे। और उन्होंने राम को प्रदान किये थे। ये चेतन देवात्मा की तरह काम करते थे।

लक्ष्मणः - आर्ये ! पश्य पश्य।

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।

गौतमश्य शतानन्दो जनकानां पुरोहितः ।।16।।

अर्थ - लक्ष्मण - भाभी जी ! देखिये , देखिये -

ये आपके पिताजी वसिष्ठ आदि समधियों की पूजा कर रहे हैं और ये जनक पुरोहित गौतम पुत्र शतानन्द हैं।

व्याख्या - लक्ष्मण सीता को चित्र दिखाते हुए कहते हैं कि इसमें राजा जनक अपने समधियों का पूजन कर रहे हैं और उनके पुरोहित शतानन्द उनके समीप बैठे हुए हैं। इस चित्र में पुरोहित शतानन्द जी जनक के साथ दिखाये गये हैं।

टिप्पणी - वसिष्ठादीन्- वसिष्ठ आदिर्येषान्ते वसिष्ठादयस्तान् वसिष्ठप्रभृतीन्,

रामः - सुश्लिष्टमेतत्।

जनकानां च रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः।

यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः ।।17।।

अर्थ- राम - यह सुन्दर संयोग है।

जनकों और रघुओं का यह सम्बन्ध किसको प्रिय नहीं है, जिसमें विश्वामित्र ही स्वयं एक ओर से देने वाले और वही दूसरी ओर से लेने वाले हैं।

व्याख्या - जनकवंशियों और रघुवंशियों का वर पिता और कन्या पिता रूपी रिश्ता किसको प्रतीतिकर नहीं है अर्थात् सभी को प्रिय है। इसमें विश्वामित्र आप ही कन्या पक्ष की ओर से देने वाले और वर पक्ष की ओर से लेने वाले हैं।

टिप्पणी - यहाँ ‘न‘ शब्द निषेध अर्थ में होता हुआ भी ‘काकू‘ से विधि अर्थ में बदल जाता है, जिसका अर्थ - ‘सभी को प्रिय है‘ प्रकट होता है।

रामः- समयः स वर्तत इवैष यत्र मां

समनन्दयत्सुमुखि! गौतमार्पितः।

अयमागृहीतकमनीयकङ्कण-

स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः।।18।।

अर्थ - राम- हे सुमुखि! मानो यह वही समय है जिस समय गौतम द्वारा मुझे सौंपा गया आनन्द की साक्षात् मूर्ति, सुन्दर कंगना बंधा तुम्हारा यह हाथ मेरे लिये आनन्ददायी हुआ था।

व्याख्या - हे प्रसन्नमुखी सीते! इस चित्र को देखते हुए अनुभव हो रहा है मानो यह वही समय है जब कि तुम्हारा कंगना बंधा हुआ हाथ शतानन्द पुरोहित द्वारा मेरे हाथ में सौंपा गया था और मुझे आनन्ददायक हुआ था।

टिप्पणी - सुमुखि-शोभमानं मुखं यस्याः सा, तत् सम्बुद्धौ हे सुमुखि! अयमागृहीतकमनीयकंकणः- आगृहीतं कमनीयं कंकणं यस्मिन्।

जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।

मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः।।19।।

अर्थ - पिता जी जिन दिनों जीवित थे, नया हम लोगों का विवाह हुआ था। हमारी सब प्रकार की चिन्ता माताएँ ही किया करती थीं। हमारे वे दिन सर्वथा चले गये।

व्याख्या- पूज्य पिता जी के जीवित रहते हुए नई-नई बहुएँ आने के सुखद वातावरण में माताओं द्वारा ही जब हमारी हर बात की फिक्र रखी जाती थी। हमारे वे दिन अब सर्वथा बीत चुके हैं।

टिप्पणी - यहाँ पिता जी के जीवित रहने से राजकाज की ओर से निश्चिन्तता आदि। 'वे दिवस सर्वथा चले गये'-इससे विषाद की व्यंजना की गई है।

इयमपि तदा जानकी।

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै-

र्दशनकुसुमै र्मुग्धालोकं शिशु र्दधती मुखम्।

ललितललितै ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-

रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः।।20।।

अर्थ - यह जानकी भी उन दिनों -शिशु ही थीं। अपने छोटे और छीदे-छीदे चारो ओर बिखरे मनोहर केशों से युक्त, फूल की कली जैसे दांतों से सुशोभित भोली छवि वाले मुख को धारण करती हुई अपने सुन्दर-सुन्दर चांदनी जैसे गौरे, बनावट रहित हाव भावों वाले, बाल सुलभ कोमलता भरे

प्यारे-प्यारे अंगों से हमारी माताओं के मन में कुतूहल किया करती थीं।

व्याख्या - उन दिनों यह सीता भी शिशु ही थीं। हमारी सब माताएँ इनके छोटे छोटे दातों और केशों से युक्त भोले चेहरे को और इनके बालोचित प्यारे-प्यारे कोमल अंगो को उत्कण्ठावश देखती रहती थीं। सबका जानकी पर कितना दुलार था? कैसे थे हम सब के वे दिन? समय कितना परिवर्तनशील है? यह परिवर्तन भविष्य मे क्या रंग लाये? कौन जानता है।

टिप्पणी - शिशुः- भवभूति ने अल्पायु की दृष्टि से सीता को शिशु कहा है।

इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा।

निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागमः॥21॥

अर्थ - 'यह शृङ्गवेर पुर में वह हिंगोट का वृक्ष है जहाँ पहले (वनवास के दिनों में) स्नेही मित्र निषादराज से हमारी भेंट हुई थी।

व्याख्या - यह सामने (चित्र में) गुह नगर में पूर्वानुभूत हिंगोट नामक प्रसिद्ध तापस वृक्ष है जिसके समीप पहले प्रिय मित्र गुहराज से मिलन हुआ था।

टिप्पणी- यह कविकृत नाटकीय निर्देश है। पादप की ओर ध्यान आकृष्ट कर कवि ने कैकेयी वृतान्त से सीता का ध्यान हटाया है।

लक्ष्मणः- पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।

धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥22॥

अर्थ - लक्ष्मण- पुत्रों को राज काज सौंपकर इक्ष्वाकुवंश के बूढ़े राजा जिस वनवासी व्रत को धारण करते थे। वह पवित्र व्रत आर्य ने बाल्यावस्था में ही धारण कर लिया है।

व्याख्या - अपने पुत्रों को राज काज सौंप देने वाले बूढे इक्ष्वाकुओं द्वारा जो धारण किया गया था। वह पवित्र वानप्रस्थ व्रत राम ने बाल्यावस्था में ही धारण कर लिया है।

टिप्पणी - पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः- पुत्रेषु संक्रान्ता लक्ष्मी राज्यश्री येषां ते पुत्रसंक्रान्त लक्ष्मीकाः इक्ष्वाकवः तैः।

रामः- रघुकुलदेवते! नमस्ते।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदःसगराध्वरे

कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्।

अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपंसि भगीरथो

भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुददीधरत् ।।23।।

अर्थः- राम- रघुकुल की देवी! तुम्हें नमस्कार है।

'हे भगवती (गङ्गे)! सगर के यज्ञ में यज्ञीय अश्व को खोजने में व्यग्र, भमि को खोद कर पाताल में पहुँचे तथा वहाँ क्रुद्ध कपिल मुनि के तेज से दग्ध हुए, अपने पिता के भी पितामहों का भगीरथ ने शरीर के कष्टों की परवाह न कर भारी तप करके चिरकाल के अनन्तर आपके जल का स्पर्श कराकर उबारा था।

व्याख्या:- हे ऐश्वर्यशालिनि गंगे! हमारे पूर्वज सगर नाम के महाप्रतापी राजा कभी अयोध्या में राज्य करते थे। उनके अश्वमेध यज्ञ में छोड़े गये घोडे को इन्द्र ने चुराकर पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में रख दिया था। सगर के पुत्र वहाँ पहुँचे और मुनि को ही घोड़े का अपहरण कर्ता समझकर उन्हें अपमानित किया। क्रुद्ध कपिल मुनि ने उन्हें अपने तेज से भस्म कर दिया। सगर की पांचवी पीढ़ी में उत्पन्न भगीरथ ने घोर तप करके आप को पृथ्वी पर उतारा और आपके पवित्र जल से अपने पूर्वजों का उद्धार किया।

टिप्पणी - पितुश्च पितामहान्- यहाँ 'च' शब्द अपि शब्द के अर्थ में प्रयुक्त है। अतः इस वाक्य का अर्थ होगा-'पिता के भी पितामहों को' ।

रामः- अयि, कथं विस्मर्यते?

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा-

दशिथिलपरिरम्भै र्दत्तसंवाहनानि।

परिमृदितमृणाली दुर्बलान्यङ्गकानि

त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ।।24।।

अर्थः- राम-अरे!'वह स्थान' कैसे भुलाया जा सकता है?

जहाँ तुम रास्ते की थकान के कारण शिथिल हुए अपने उन सुन्दर सुकुमार अंगों को, जो कि मसली हुई कमलिनी जैसे दुर्बल हो गये थे , मेरे द्वारा गाढ़ आलिंगन देकर दबाए जाने पर मेरी छाती पर रखकर ही सो गई थीं ।

व्याख्या- राम सीता से कहते हैं कि वह स्थान भला कैसे भुलाया जा सकता है? जहाँ मार्ग में चलने के श्रम से अलसाये हुए, सुकुमार और सुन्दर, मसली हुई कमलिनी जैसे तुम्हारे दयनीय अंगों को मैंने गाढ़ आलिंगन करके दबाया था और मेरे वक्ष पर तुम्हें नींद आ गई थी।

टिप्पणी - परिमृदितमृणाली दुर्बलानि - परिमृदिता मृणाल्यः इव दुर्बलानि।

रामः- एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु

बैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।

येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते

नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ।।25।।

अर्थः- राम-'ये पर्वतीय नदियों के किनारे-किनारे, वानप्रस्थ जनों के आश्रयभूत वृक्षों वाले वे तपोवन हैं, जिनमें अतिथि-सत्कार को अपना परम कर्तव्य मानते हुए तथा यम नियमों का सेवन करते हुए, जंगली अनाजों को साबुत ही पकाकर खाने वाले गृहस्थ तपस्वी घर बनाकर वसे हुए हैं।

व्याख्या - राम कहते हैं कि 'ये चित्र में वर्तमान पर्वतीय नदियों के तटों पर वानप्रस्थों से सेवित वृक्षों वाले तपस्वियों के वन हैं; जिनमें अतिथि सेवा को परम धर्म मानने वाले, जंगली अनाजों को साबुत ही पकाकर खाने वाले, अंिहंसा आदि यमों का नियम से पालन करने वाले गृहस्थ तपस्वी घरों को आश्रय बनाकर वसते हैं।

टिप्पणी - वैखानसाः-विखानम् इति नामा वानप्रस्थधर्मप्रवक्ता ऋषिविशेषः तस्य इमे वैखानसाः। विखानस् ऋषि के अनुयायी तपस्वी।

रामः- स्मरसि सुतनु? तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन

प्रतिविहितसपर्यासुस्थय स्तान्यहानि।

स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा

स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयो र्वर्तनानि ।।26।।

अर्थः- राम-'हे कृशतनु सीते! उस पर्वत पर लक्ष्मण द्वारा प्रत्येक प्रकार से की गई सेवा से सुखपूर्वक निवास करते हुए हम दोनों के वे दिन तुम्हें याद हैं? वहाँ मधुरजल वाली गोदावरी तुम्हें याद है? उस के समीपवर्ती प्रदेशों में हम दोनों के विहार तुम्हें याद हैं?'

व्याख्या - राम सीता से कहते हैं कि -प्रिय सीते! तुम कृशतनु होती हुई भी उस पर्वत पर निवास

करने में कुछ कष्ट अनुभव न कर सकी थीं। क्यों कि भैया लक्ष्मण पर्वत प्रदेश में होने वाले सब दुःखों का प्रतिकार करते हुए हम दोनों की सेवा में प्रतिक्षण तत्पर रहते थे। वहाँ पर बहने वाली गोदावरी का स्वादिष्ट जल था। वह भी तुम्हारी स्मृति से न उतरी होगी। उस पर्वत के निकटवर्ती भूभागों मं े हम तुम जैसे सुख विहार करते थे, वे निश्चय ही तुम्हं े आज भी याद होंगे?

टिप्पणी - सुतनु! यह सीता के लिए सम्बोधन है। 'सु' और 'तनु' इन दो शब्दों के योग से बना है। अतः योगज है रूढ़ नहीं ।

अभ्यास प्रश्न

1- सही विकल्प छांटकर लिखिएः-

दुःखी प्रियजन बहलाने योग्य होता है।

(अ) परजनों द्वारा (ब) तटस्थों द्वारा

(स) स्वजनों द्वारा (द) वृद्धजनों द्वारा

2- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

दशनकुसुमै मुग्धालोकं ....दधती मुखम्।

धृतं बाल्ये .... पुण्यमारण्यकव्रतम्।

नीवारमुष्टिपचना......................गृहाणि।

अगणिततनूतापस्तप्त्वा.........................भगीरथः।

1.5 सारांश

आप जान चुके हैं कि महाकवि भवभूति ने सर्वप्रथम रामचरित के कवियों को नमस्कार किया है। नान्दी पाठ के पश्चात् नट और सूत्रधार के संवाद द्वारा अयोध्या में राजगृह के देश, काल और वातावरण की सुन्दर सृष्टि की है। 'साधु वाणी भी दुर्जनों द्वारा निन्दित होती है' यह बात आनुषङ्गिक रूप से कहकर सीता परित्याग रूप वस्तु और उसका यह बीज कि 'दुजन लोग साधु चरित वाली सीता को भी दोष लग रहे हैं' कवि ने सूत्रधार के शब्दों में सूचित कर दिया है। वसिष्ठ का सन्देश प्रस्तुत कर के राम को प्रजानुंजन में तत्पर दिखाया है। यहाँ भी कवि द्वारा सीता के निर्वासन की भूमिका तैयार की गई है। चित्रवीथी के माध्यम से राम और सीता के अयोध्या तथा वन वास के समय की अनेक घटनाओं को जीवन्त किया है। परशुराम प्रसंग, माताओं का वात्सल्य, मन्थरा वृतान्त,

शृंङ्गवेरपुर निवास, गंगा माहात्म्य, गृहस्थ तपस्वी जीवन आदि के दृश्य सहदय पाठको को आकर्षित करते हैं।

1.6 शब्दावली

देव ! ताम्- ये दो पद हैं। पूर्व 'देव' सम्बोधन पद है। दूसरा 'ताम्' पूर्व का परामर्शक और उतरवर्ती 'वाचम्' का विशेषण है।

वाचम् - इस पद का अर्थ वाणी या सरस्वती है।

अरुन्धतीम् - वसिष्ठ की पत्नी।

'रक्षोगृह' - का अर्थ 'राक्षसों का घर' है रावण का घर नहीं है; क्यों कि 'रक्षस'ः शब्द राक्षस जाति का वाचक है, रावण व्यक्ति का वाचक का नहीं है।

नरेन्द्रः - राज्य व्यवस्थापक राम।

वासगृहम् - पूर्व वनवास के दिनों सीता के निवास स्थान पंचवटी या दण्डकवन।

भगवती - ऐश्वर्यशालिनी

प्रजापतिसमः - वेदों के निधान एवं प्रजा के स्रष्टा ब्रह्मा जैसे राजा जनक।

सविता - तृण धान्यादि को उत्पन्न करने वाला कुल प्रवर्तक सूर्य।

वीर प्रसवा - वीर पुत्र को जन्म देने वाली।

अनुगृहीताः- 'अनुगृहीत' का बहुवचन। जिन पर अनुग्रह किया गया हो।

दयां च- विपन्न बन्धुजनों पर होने वाली दया को।

सुरभिणः- सुगन्धयुक्त।

नैसर्गिकी - स्वाभाविक।

ब्रह्महिताय- वैदिक मर्यादाओं की रक्षा के लिए।

परःसहस्रम्- हजार से अधिक संख्या वाली अवधि तक।

जनकानाम्- जनक वंशियों का

रघूणां च -	और रघुवंशियों का।
सुमुखि!-	हे सुन्दरमुखी सीते।
समनन्दयत्-	आनन्ददायी हुआ था।
तातपादेषु-	पूज्य पिता जी के
चिन्त्यमानानाम्-	जब हमारी हर बात की फिक्र रखी जाती थी।
ज्योत्स्नाप्रायैः-	चांदनी जैसे गोरे ।
इङ्गुदीपादयः-	हिंगोट का वृक्ष।
अगणिततनूतापः-	शरीर के कष्टों की परवाह न करते हुए।
कपिलमहसा-	कपिलमुनि के तेज से।
अलसललितमुग्धानि-	अलसाये हुए, सुकुमार, सुन्दर।
नीवारमुष्टिपचनाः-	जंगली अनाजों को साबुत ही पकाकर खाने वाले ।
प्रतिविहितसपर्या -	यहाँ प्रति' शब्द प्रतिकार अर्थ का बोधक है। अतः समस्त पद का अर्थ 'प्रत्येक दुःख के प्रतिकारार्थ विहित सेवा' है।
अविदितगतयामा-	न विदित हो सके बीते पहर जिसके ऐसी रात ।

1.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तरः

खण्ड-एक

1-उत्तररामचरित नाटक राम के लोकोत्तर चरित पर आधारित है।

- वसिष्ठ की देख रेख में राम की माताएँ अपने जामाता ऋष्यशृंग के आश्रम में गयीं।
- सूत्रधार ने भवभूति को काव्य सृष्टि में ब्रह्मा कहा है।
- सीता को दशरथ ने जन्म दिया है।

2-

- वासगृह
- स्वतन्त्रता
- जनक

- अर्थ

3-

- सत्य
- सत्य
- असत्य
- असत्य

खण्ड-दो

1- (स)

2-

- शिशुः
- तदार्येण
- गृहाणि
- तपांसि

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1- भवभूति, उत्तररामचरित (सम्पूर्ण), व्याख्या-आचार्य प्रभुदत्त स्वामी, (1988) ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

सहायक पाठ्य सामग्री

1- भवभूति, उत्तररामचरितम्: विचार और विश्लेषण, आचार्य प्रभुदत्त स्वामी, ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

2- भवभूति, उत्तररामचरितम्: व्याख्या-ब्रह्मानन्द शुक्ल, (1986-87) साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- श्री राम को भेजे गये वसिष्ठ के सन्देश का विश्लेषण कीजिए ?

2- उत्तर रामचरित के आधार पर राम का चरित्र चित्रण कीजिए ?

3- उत्तर रामचरित की कथावस्तु की विवेचना कीजिए ?

इकाई 2: उत्तर रामचरितम् - प्रथम अंक का उत्तरार्द्ध

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मुख्य भाग: खण्ड एक (श्लोक 27 से 39 तक)

ऽ मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी

2.4 खण्ड दो (श्लोक 40 से 51 तक)

ऽ मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

नाट्य एवं नाटयशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। पहली इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि सीताजी, चित्रबीथी में जृम्भका स्त्रों, गृहस्थतपोवनों, गंगा, परशुराम तथा गोदावरी से सम्बद्ध चित्रों को देखती हैं। इस इकाई में आप उत्तररामचरित के सीता निर्वासन का अध्ययन करेंगे।

सीताजी जनस्थान, पद्मसर आदि के चित्रदर्शन से पुनः वन बिहार की इच्छा प्रकट करती हैं। राम लक्ष्मण को शीघ्र रथ तैयार करने की आज्ञा देते हैं। लक्ष्मण चले जाते हैं और सीताजी राम की बायीं भुजा पर सिर रखकर सो जाती हैं। राम उनकी प्रत्येक वस्तु को अत्यन्त प्रिय बताकर केवल विरह को अपने लिए असह्य बताते हैं। तभी प्रतिहारी 'उपस्थित है' कहकर उन्हें दुर्मुख के आने की सूचना देती है। दुर्मुख उन्हें सीता सम्बन्धी लोकापवाद की सूचना देता है। राम उसे सुनकर दुःखी होते हैं। लवणासुर से त्रासित ऋषियों का समूह राम के दरबार में दुहाई देता है। राम उसके विनाश के लिए शत्रुघ्न को भेजते हैं और पृथ्वी से सीता की देख रेख करने की प्रार्थना करते हुए बाहर निकल जाते हैं। दुर्मुख लक्ष्मण की ओर से सीता से निवेदन करता है कि आपके वन विहार के लिए रथ तैयार है। सीता रथ में सवार हो जाती हैं। सब निकल जाते हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप चित्रदर्शन के महत्व को समझ सकेंगे तथा बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति की विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि एकरस, अविच्छिन्न दाम्पत्य प्रेम कैसा होता है।
- समझा सकेंगे कि प्रियजन के विरह का दुःख हृदय के घाव की तरह मन में वेदना उत्पन्न करता है।
- वनवास के जीवन की व्याख्या कर सकेंगे।
- पर्वतों, नदियों तथा सरोवरों के स्वरूप को पहचान सकेंगें।
- प्राकृतिक दृश्यों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मानवीय मूल्यों का विवेचन कर सकेंगे। श्रेष्ठ व्यक्तियों के कर्तव्य को समझ सकेंगे।
- मनोभावों की सही पहचान कर सकेंगे। कष्टसूत्र की समालोचना कर सकेंगे।
- रस, अलंकार तथा छन्दों से अवगत हो सकेंगे।

- नाटकीय घटनाओं को जान सकेंगे।
- महापुरुषों के चरित्र को समझ सकेंगे।

2.3 मुख्य भाग

खण्ड एक

किंच।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-

दविरलितकपोलं जल्पतोक्रमेण।

अशिथिल परिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-

रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।। 27।।

अर्थ -और भी, किअति समीपता होने के कारण कपोल से कपोल सटाये हुए, बिना सिलसिले के न जाने क्या-क्या बात धीरे-धीरे कहते हुए, एक-एक हाथ से एक दूसरे को गाढ़ आलिंगन में बांधे हुए, बीते हुए प्रहरों का ध्यान न रहने के कारण पूरी की पूरी रात ही हमारी वहॉं बीत गई थी।

व्याख्या - वनवास के कष्टमय को जीवन को एक साथ बिताने के कारण राम और सीता एक दूसरे के बहुत निकट आ गये थे। वे दोनों कपोल से कपोल सटाकर बिना क्रम के न जाने क्या-क्या बातें मन्द-मन्द कहते रहते, गाढ़ आलिंगन में उलझी हुई एक-एक भुजा वाले उन दोनों की पूरी रात ही बीत जाती थी।

टिप्पणी - किमपि किमपि- इस कथन से गाढ़ आलिंगन के अतिरिक्त समस्त विषयों की उपेक्षा व्यक्त होती है।

मन्दं-मन्दम् - इससे आनन्दमग्नता व्यंग्य है।

लक्ष्मणः -

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छùविधिना

तथा वृत्तं पापैव्यग्थयति यथा क्षालितमपि।

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै -

रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।। 28।।

अर्थः- लक्ष्मण -''इसके बाद यह सुनहरी मृग के छल-विधान में पापी राक्षसों का किया हुआ वह वृतान्त है, जिसका यद्यपि पूर्ण प्रतिकार किया जा चुका है तथापि वह उसी प्रकार व्यथित करता है। (इसके कारण) सूने जनस्थान में जड़ और चेतन सबको विकल करने वाले आर्य के चरितों से पाषाण भी रो पड़ते हैं और वज्र का हृदय भी टूक-टूक हो जाता है।''

व्याख्या - चित्रबीथी में चित्रित जनस्थान की घटना का वर्णन करते हुए लक्ष्मण सीता से कहते हैं कि पंचवटी में सूर्पणखा विवाद के बाद यह जनस्थान का दृश्य है। इसमें स्वर्ण मृग के छल की क्रिया द्वारा पापी राक्षसों ने वैसा किया जो धो दिया जाने पर भी पीड़ित करता है। इसके कारण इस सूने दण्डकारण्य के मध्यवर्ती वन प्रदेश में चराचर को बेचैन करने वाले भाई जी के चरित से पत्थर भी रोते हैं और वज्र का हृदय भी फटता है।

टिप्पणी - विकलकरणैः- विगतःकलो वस्तुविवेको येषां ते विकलाः। विकलानां करणानि प्रकृष्टकारणानि - विकलकरणानि तैः। अर्थात् 'सम्पूर्ण जगत् को विकल बनाने में असाधारण रूप से कारण बनने वाले'। यह आर्यचरितैः का विश्लेषण है।

लक्ष्मणः- (रामं निर्वण्य साकूतम्।) आर्य किमतेत् ?

अयं तावद्वाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो

विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।

निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुट तया

परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः।। 29।।

अर्थ - लक्ष्मण- (राम को देखकर अनुमान करने के अभिप्राय से) भाई जी! यह क्या ?

'आपके ये आंसू टूटी हुई माला के मोतियों की तरह अनेक धाराओं में फैले हुए, जमीन पर गिरकर चूर-चूर होकर बिखर रहे हैं ? देर तक हृदय को फुलाता हुआ, भीतर ही रोका गया दुःख का आवेग फड़कते हुए होंठों और नथुनों से दूसरों के लिए सहज अनुमेय हो रहा है।

व्याख्या - सीता हरण के पश्चात् राम के करुण चरितों का चित्र राम के सम्मुख उपस्थित हुआ, वे विह्वल हो गये। तब राम की यह दशा देखकर लक्ष्मण को विस्मय हआ। वे कहने लगे - 'आर्य ! यह मैं क्या देख रहा हॅू, आप तो धीर, गम्भीर और दुःखसहिष्णु हैं, फिर चित्रमात्र में उपस्थित पुरानी घटना को देखकर इतने क्लान्त क्यों हो रहे हैं, क्यों आपके नेत्रों से आंसुओं का प्रवाह बह चला है ?

यद्यपि आप दुःखावेग को भीतर ही भीतर दबा रहे हैं तो भी आपके फड़कते होठों ओर नथुनों से आपकी अधीरता स्पष्ट अनुमान की जा सकती है।

टिप्पणी - तावत् - यहाँ 'प्रथम' अर्थ में प्रयुक्त है। लक्ष्मण ने यहाँ दो युक्तियाँ उपस्थित की हैं और उनसे राम के भीतर का आवेग प्रमाणित किया है, जिसे राम न केवल बता नहीं रहे थे, छिपाने की कोशिश भी कर रहे थे।

रामः - वत्स!

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा

तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवांछया विसोढः।

दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो

हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति।। 30।।

अर्थ - राम-भाई !'असह्य होने पर भी प्रतिकार की आकांक्षा से उस समय तक सहन किया गया सीता के विरह का जलता हुआ दुःख प्रतिकार के पश्चात् फिर भीतर ही भीतर पकते हुए हृदय के घाव की तरह (आज तक) मन में वेदना उत्पन्न कर रहा है।'

व्याख्याः- भाई लक्ष्मण! तुम मुझे अधीर न समझो। वस्तुतः सीता हरण की घटना ने हृदय में ऐसा गहरा घाव बना दिया था कि उसकी दहकती हुई वेदना मुझे असह्य हो गयी थी। इसीलिए जनस्थान में अपनी धीरता हार गया था। इस समय इस चित्र के प्रसंग ने मेरे उस घाव को इतना कुरेद दिया है कि उसकी वेदना से मेरी छाती भर गयी और हृदय पिघलकर नेत्रों के माध्यम से बहने लगा। यह एक तात्कालिक कारण था।

टिप्पणी- तत्कालम्- जिस प्रतिकृति की इच्छा थी, उस प्रतिकृति के समय तक। अर्थात् सीताहरण के समय से लेकर रावण के सर्वनाश तक।

रामः-देवि! परं रमणीयमेतत्सरः।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-

व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।

वाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले

संदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः।। 31।।

अर्थ - राम - देवि! यह बड़ा रमणीय सरोवर है।

''इसमें, मद के कारण मधुर गुंजन करते हुए मल्लिकाक्ष नामक काली चोंच और पैरों वाले हंसों के पंखों से कम्पित नीचे तक हिलती हुई मोटी नली वाले श्वेत कमलों द्वारा चारों ओर से घिरे नीले कमलों के प्रदेशों को मैंने आंखों से आंसुओं के गिरने और दुबारा आंखों में उमड़ने के बीच के समय में देखा था।''

व्याख्या –पम्पासर के सौन्दर्य दर्शन के विषय में राम सीता से कहते हैं कि पम्पा नामक पûसर के कई भागों में खड़े हुए कमलों की स्थिति ऐसी थी कि मध्य में नीलकमलों के चारो ओर श्वेत कमलों का घेरा था। वे श्वेतकमल हंसों के पंखों से उलझकर ऊपर से नीचे तक हिल रहे थे। इस प्रकार वे काली पुतली से युक्त थिरकते नेत्र की समता धारण किये हुए थे। उन्हें देखकर राम को सीता के नेत्रों का स्मरण हो आया। वे दहाड़ मारकर रो पड़े। उनके नेत्रों से अश्रुप्रवाह उमड़ता और गिरता था। अतः वे नेत्रों से आंसू गिरने के बाद जब तक कि दुबारा उमड़ें, बस इसी बीच की अवधि में उन विभागों को देख सके।

टिप्पणी - कुवलयिनः - कुवलयानि बाहुल्येन सन्ति येषु ते कुवलयिनः - नील कमलवन्तः विभागाः।

रामः -दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरंजनानन्दवर्धनः।

यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च ।। 32।।

अर्थ - सौभाग्य से ये वही महाबाहु अंजनानन्दन हनुमान हैं, जिनकी वीरता से हम और सम्पूर्ण जगत् कृतकृत्य है।

व्याख्या - चित्र में हमारे सम्मुख स्थित ये बाहुवली हनुमान जी हैं। माता अंजना के आनन्द को बढ़ाने वाले इनके पराक्रम से हम रामादि और समग्र संसार कृतार्थ हुए।

टिप्पणी - दिष्ट्या- यह आनन्द का द्योतक अव्यय है।

लक्ष्मणः -

सोऽयं शैलः ककुभसुरभिर्माल्यवान्नामयस्मि -

न्नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः।

आर्येणास्मिन् ----------------

रामः -

----- विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि

प्रत्यावृत्तः स पुनरिव मे जानकीविप्रयोगः।। 33।।

अर्थ - लक्ष्मण -'अर्जुन के फूलों की सुगन्ध से व्याप्त यह पर्वत माल्यवान् कहलाता है, जिसके शिखर पर पानी से भरा हुआ काला नवीन बादल छाया हुआ है। भाई जी ने यहाँ -

राम - ठहरो, आगे मत कहो, लक्ष्मण ! इससे आगे मैं समर्थ नहीं हूँ। जानकी का वह वियोग जैसे फिर लौट आया है।

व्याख्या - लक्ष्मण कहते हैं कि यह अर्जुन वृक्षों से सुगन्धित माल्यवान् नाम का वह पर्वत है; जिस पर काले रंग वाला प्यारा नवीन मेघ शिखर को ढक रहा है। इस पर भाई जी ने ------ (लक्ष्मण को बीच में ही रोक कर राम कहते हैं) रुको, रुको लक्ष्मण! इससे आगे की बात को सुनने के लिए मैं समर्थ नहीं हूंँ। क्योंकि इसे सुनकर और देखकर ही वह, जिसकी तुम चर्चा करना चाहते हो; मेरा सीता से वियोग लौट सा आया है।

टिप्पणी - यहाँ सीता के विरह का पुनः लौटना कहकर कवि ने अपने पाठकों के लिए भावी सीता विरह की मनोभूमि तैयार कर दी है।

यहाँ भवभूति ने जिसे माल्यवान् के नाम से निर्दिष्ट किया है। वाल्मीकि रामायण में उसे प्रस्रवण गिरि कहा गया है।

रामः - तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामत्र शयनाय।

जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदविन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम्।

बाहुरैन्दव मयूखचुम्बित स्यन्दि चन्द्रमणिहार विभ्रमः।। 34।।

अर्थ - राम- तो बिल्कुल निकट होकर मेरा सहारा ले लो, सोने के लिए। 'और मुझे जीवन सा देने वाला अपना हाथ - जिस पर भय और श्रम के कारण पसीने की बूंदे उभर आई हैं, इसीलिए जो चांद की किरणों के स्पर्श से पसीजे हुए चन्द्रकान्त मणियों के हार की शोभा को धारण कर रहा है, (सहारे के लिए) मेरे गले में डाल लो।'

व्याख्या - सीता को नींद आने पर राम कहते हैं कि सोने के लिए मेरे एकदम समीप होकर मेरा आश्रय ले लीजिए तथा मुझमें प्राणों का संचार सा करने वाला, भय और थकान से उत्पन्न पसीने की बूंदों से युक्त, चांद की किरणों से चुम्बित, पसीजा हुआ, चन्द्रकान्त नामक मणियों से माला जैसा बना हुआ अपना हाथ मेरे गले में डाल लीजिए।

टिप्पणी - जीवयन्निव - राम ने सीता के कर स्पर्श को अपने लिए जीवन दाता कहा है। क्योंकि आगे पंचवटी के समीप राम के पुनः-पुनः मूर्च्छित होने पर छाया सीता के कर स्पर्श द्वारा राम को जीवन प्राप्त होता है।

(तथा कारयन् सानन्दं) प्रिये! किमेतत् ?

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा

प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।

तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो -

विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च।। 35।।

अर्थ - (वैसा ही कराते हुए आनन्द के साथ) प्रिये! यह क्या ?

’तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श में मेरी इन्द्रियों को जड़ बनाने वाला (एक) विकार मेरी चेतना को भी चक्कर कटाने लगता है और शून्य भी बना देता है। अतः यह निश्चय नहीं हो पाता कि यह विकार सुख है या दुःख है ? वेहोशी है या नींद है ? विषय का प्रसार है या नशा है ? (न जाने क्या वस्तु है यह ?)

व्याख्या - सीता के हाथ को अपने गले में डलवाते हुए राम कहते हैं कि प्रिये ! मैं जब-जब भी तुम्हारा स्पर्श करता हू तब-तब तुम्हारे अंग से मिलते ही मेरी ज्ञानेन्द्रियॉ सुन्न हो जाती हैं और एक ऐसा विचित्र भावोदय होता है जो मेरी आत्मा (अन्तःकरण) को चक्कर भी कटाने लगता है और उसे चारो ओर से बन्द भी कर देता है। अर्थात् एक विचित्र तादाम्य अनुभव कर मेरा अन्तःकरण नाचने लगता है और सब प्रकार से बाहरी ज्ञान से उसका सम्बन्ध कट जाने पर वह डब्बे में बन्द हुए के समान हो जाता है। अतः समझ नहीं पड़ता कि यह कोई सुखात्मक अनुभूति है या दुःखात्मक ? ऐसी स्थिति बेहोशी में भी होती है और निद्रा में भी। विष फैलने पर भी होती है और नशा चढ़ने पर भी। अतः नहीं समझ में आता कि तुम्हारा स्पर्श होने पर मुझे बेहोशी चढ़ती है या नींद ? विष चढ़ने लगता है या नशा ?

टिप्पणी - यहाँ राम ने सीता के कर स्पर्श को अनिर्वचनीय सुख उत्पन्न करने वाला कहा है।

रामः -म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि

सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहकानि।

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि !

कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ।। 36।।

अर्थः- राम -

’हे कमलाक्षि ! ये तुम्हारे सुन्दर वचन मेरे मुरझाये हुए प्राण पुष्प को खिलाने वाले, मुझे सम्पूर्ण तृप्ति देने वाले, मेरी ज्ञानेन्द्रियों को मोहित करने वाले, कानों के लिए अमृतमय तथा मन के लिए रसायन

रूप हैं।'

व्याख्या - हे कमल सी आंखों वाली सीते! तुम्हारे ये वचन मेरे लिए अमृत रूप हैं और मेरे हृदय को अनन्त शक्ति देने वाले हैं। मेरे प्राण इसी बात को सोचकर म्लान रहते थे कि यदि मुझे वास्तव में तुम्हें त्यागना पड़ा तो कहीं तुम इसे अपने प्रति क्रूरता के रूप में तो ग्रहण नहीं करोगी। तुमने मेरे प्रेम की गहराई को पहचान कर मुझे आश्वस्त कर दिया है, तुम्हारे इन शब्दों ने मुझे तृप्ति प्रदान कर दी है तथा मेरे कानों में अमृत डाल दिया है।

टिप्पणी - सीता ने राम के प्रेम की गहराई को स्वीकृति प्रदान की। इससे राम को अपार सन्तोष प्राप्त हुआ।

रामः - अयि! किमन्वेष्टव्यम्

आविवाहसमयाद् गृहे वने शैशवे तदनुयौवने पुनः।

स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया रामबाहुरूपधानमेषते।। 37।।

अर्थ - राम - अरी! खोजती क्या हो ?

'विवाह काल से लेकर घर में और वन में, शैशव में और यौवन में, दूसरी स्त्री के संसर्ग से अछूता, राम का यह हाथ ही तुम्हारा तकिया रहा है।'

व्याख्या - राम, सीता को चारो ओर दृष्टि डालती देखकर समझ जाते हैं कि इन्हें तकिये की तलाश है। वे अपने हाथ को उनके सहारे के लिए आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि 'अरी तकिये की खोज क्या करनी है। विवाह के दिन से लेकर आज तक बचपन में घर पर उसके पश्चात् यौवन के समय वन में, वन से लौटने के पश्चात् फिर घर में किसी अन्य स्त्री के द्वारा न सेवन किया गया यह राम का हाथ तुम्हारा तकिया रहा है।'

टिप्पणी - 'अन्यया अनुपाश्रितः,' इस वाक्य से राम का एक पत्नीव्रत लक्षित होता है।

रामः-कथं प्रियवचनैव मे वक्षसि प्रसुप्ता? (निर्वण्य सस्नेहम्)

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्यनयनयो -

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्यान प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।। 38।।

अर्थ - राम-क्या, मेरी छाती पर ही प्रियवचन कहती सो गई ? (देखकर, स्नेह के साथ)

'यह घर में लक्ष्मी है, नेत्रों में अमृत की सलाई है, इसका स्पर्श शरीर मे चन्दन का गाढ़ा लेप है, इसका यह हाथ गले में शीतल और चिकने स्पर्श वाला मोतियों का हार है। इसका क्या कुछ प्रिय नही है ? सभी कुछ प्रिय है-परन्तु असत्य है तो केवल इसका विरह है'।

व्याख्या - यह सीता आज चित्रदर्शन से इतनी थक गई कि नींद के वशीभूत होकर छाती की दिशा में ही बोलती-बोलती सो गई। यह घर में लक्ष्मी है और आंखों में अमृत की सलाई है। यह जो मुझे प्राप्त हो रहा है इसका स्पर्श शरीर पर गाढ़ा चन्दन का लेप है। यह इसका हाथ कण्ठ में ठण्डा और चिकना मोतियों का हार है। इसका क्या अतिप्रिय नहीं है ? परन्तु यदि विरह होता है तो वही असह्य है।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुमतं सर्वास्ववस्थासु य-

द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।

कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते।। 39।।

अर्थ - 'जो सुख और दुःख में एक सा बना रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में खण्डित नहीं होता, जिसमें हृदय को विश्राम मिलता है, बुढापा भी जिसके रस को क्षीण नहीं कर पाता, काल की लम्बी अवधि के द्वारा ऊपरी वासनात्मक आवरण (छिलका) हट जाने पर जो प्रेम के सार के रूप में स्थित रहता है, उस सुन्दर पति-पत्नी सम्बन्ध का कल्याण हो; क्यों कि वह किसी भी कीमत पर प्राप्त करने योग्य है।'

व्याख्या - जो दाम्पत्य सुख और दुःख में एक सा रहता है, जो सम्पत्ति और विपत्ति में साथ रहता है, हृदय जिसमें विश्राम प्राप्त करता है, जिसके मधुर आस्वाद को बुढ़ापे की अभोग क्षमता कम नहीं कर पाती, अपितु समय की लम्बी अवधि के प्रभाव से जिसमें प्रेम के ऊपर का वासना रूपी छिलका सूखकर झड़ जाने पर प्रेम की ठोस गिरी शेष रह जाती है। वह ऐसा दाम्पत्य ही सर्वोत्कृष्ट है। ऐसे उच्च कोटि के दाम्पत्य सुख को पाने की कामना किसे न होगी ? चाहे वह किसी भी कीमत पर क्यों न प्राप्त हो ?

टिप्पणी - भवभूति ने जिस कोटि के दाम्पत्य-प्रेम का यहॉं विश्लेषण किया है, उसका उदाहरण संसार भर के साहित्य में खोजने से भी नहीं मिलेगा।

अभ्यास प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए:-

- सूपर्णखा विवाद का स्थान कहॉं है ?
- राम के मन में क्या वेदना उत्पन्न कर रहा है ?
- पम्पा सरोवर का दूसरा नाम क्या है ?
- कौन सा पर्वत अर्जुन के फूलों की सुगन्ध से व्याप्त है ?

2. एक वाक्य में उत्तर दीजिए:-

- स्वर्णमृग के छल की क्रिया कहॉं का दृश्य है ?
- परस्पर वार्तालाप में किस की रात बीत गयी ?
- किसके आँसू मोतियों की तरह विखर रहे हैं ?
- दिष्ट्या कैसा अव्यय है ?

3. सत्य/असत्य बताइए:-

- सीता का हाथ राम को जीवन सा देने वाला है।
- हनुमान अंजनानन्दवर्धन हैं।
- माल्यवान् के शिखर पर शुभ्र बादल छाया है।
- सीता के सुन्दर वचन राम के मन के लिए रसायन रूप नहीं हैं।

4. सही विकल्प छांटकर लिखिए:-

- नींद आने पर सीता खोजती हैं।

(अ) उपधान (ब) बिस्तर

(स) हाथ (द) शयनकक्ष

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

- आविवाहसमयाद् -------शैशवे।
- अयं बाहुः कण्ठे ---------- मौक्तिकसरः।
- किमस्या न प्रेयो यदि ------- विरहः।

- भद्रं तस्य सुमानुषस्य --------हिततप्राथ्र्यते।

2.4. खण्ड दो

रामः - (आश्वस्य)

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं तद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।

एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्।। 40।।

अर्थ - राम- (धीरज रखकर)

'हाय, हाय कैसी दुःख की बात है कि दूसरे के घर रहने का जो सीता का दोष अद्भुत उपायों द्वारा परिमार्जित कर दिया था, यह फिर वही दुर्भाग्य से कुत्ता काटे के जहर की तरह सब ओर फैल गया है।'

व्याख्या - सीता के विषय में फैले लोक प्रवाद पर शोक व्यक्त करते हुए राम कहते हैं कि कुत्ते के काटने पर तेल, मिर्च आदि उपचार द्वारा उसे शान्त कर दिया जाता है, परन्तु वह कालान्तर में फैलकर मनुष्य को पागल बना देता है और तब मनुष्य कुछ भी बकने लगता है। सीता का रावण के घर रहना भी अग्नि परीक्षा रूपी दिव्य उपाय द्वारा निर्दोष प्रमाणित कर दिया गया था, परन्तु अब इतने दिनों बाद वह फिर प्रजाजनों में फैल गया और वे पागलों की भांति सीता की निन्दा करने लगे हैं।

टिप्पणी - सीता का दूसरे के घर में रहने का दोष प्रजाजनों में फैल गया है। जिससे वे सीता की निन्दा करने लगे हैं। अतः प्रजाजन शोचनीय हैं और मैं (राम) मन्द भाग्य हू' यह भाव है। यहां उपमा अलंकार और प्रहर्षिणी वृत्त है।

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम्।

तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुंचता।। 41।।

अर्थ - 'किसी भी कार्य द्वारा प्रजा को प्रसन्न करना ही श्रेष्ठ राजाओं का परम कर्तव्य है। पिता जी ने मुझको और अपने प्राणों को त्यागकर भी इसे प्रमाणित किया है।'

व्याख्या - पिता दशरथ ने मुझे त्यागकर और उसी के कारण अपने प्राणों को भी त्याग कर यह प्रमाणित किया है कि कुछ भी त्याग क्यों न करना पड़े। हर प्रकार के त्याग द्वारा प्रजा को प्रसन्न रखना ही श्रेष्ठ राजा का परम कर्तव्य है। इसी लिए मुझे भी सीता को त्यागकर उसी के कारण अपने प्राणों को भी त्यागकर प्रजाराधन करना चाहिए।

टिप्पणी - यहाँ पिता के मार्ग पर चलने का संकल्प प्रकट कर राम ने यह सिद्ध किया है कि मैं उसी पिता का प्रतिरूप हूं; जिसने प्रजाराधन के लिए अपने प्राण भी दे दिये थे।

संप्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम्। अपि च।

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैर्लोकश्रेष्ठैः साधुचित्रं चरित्रम्।

मत्सम्बन्धात्कश्मलाकिंवदन्तीस्याच्चेदस्मिन्हन्तधिङ्गामधन्यम्।।42।।

अर्थ - भगवान् वसिष्ठ ने भी तो अभी यही सन्देश दिया है। दूसरी बात यह भी है कि -

'भुवन मण्डल में श्रेष्ठ माने जाने वाले सूर्यवंशी राजाओं ने जिस अद्भुत चरित्र को भली प्रकार उज्ज्वल बनाया है, उसमें यदि मेरे कारण से कोई काली किंवदन्ती संयुक्त होती है तो मुझ अभागे को धिक्कार है।'

व्याख्या - संसार में प्रशंसनीय सूर्यवंशी राजाओं ने अपने जिस अद्भुत चरित्र को भली प्रकार उज्ज्वल बनाया। इसमें मेरे कारण यदि कोई जनश्रुति होती है तो मुझ अधम को धिक्कार है।

टिप्पणी - कुलगुरु के सन्देश के साथ 'अपि च' शब्द से राम का तात्पर्य यह है कि यदि गुरु जी सन्देश न भेजते तो भी मुझे ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे मेरे पूर्वजों की उज्ज्वल कीर्ति में कालिमा लग जाए।

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।

नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे।। 43।।

अर्थ - 'तुझसे जगत् पवित्र हो रहा है फिर भी तेरे विषय में लोगों की ओर से अपवित्र चर्चाएं चल रही हैं। तुझसे दुनिया सनाथ है और तू दुनिया में अनाथ होकर भटकेगी।'

व्याख्या - सीते! तुम्हारे पवित्र चरित्र से संसार पवित्र हो गया है, फिर भी यह संसार तुम्हें अपवित्र कहता है। तुमने संसार को सनाथ किया है पर तुम स्वयं अनाथ होकर अब न जाने क्या-क्या विपत्तियां सहन करोगी।

टिप्पणी - रावण के वध का कारण बनकर सीता इस अनाथ जगत् की नाथ बन गई। परन्तु संसार अग्निशुद्धि में भी विश्वास न कर सीता पर दोष मढ़ने लगा और सीता को अनाथ बनाकर भटकाने पर तुल गया है।

रामः-शान्तं पापं शान्तं पापम्। दुर्जना नाम पौरजानपदाः ?

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।

यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम्।। 44।।

अर्थ - राम- पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, पुर और जनपद के लोग कहीं दुर्जन हैं ? 'इक्ष्वाकुवंश प्रजा का सम्मान पात्र है, परन्तु दुर्भाग्य से उसमें निन्दा का कारण उत्पन्न हो गया है। विशुद्धि के समय जो अद्भुत कर्म (स्वयम् अग्निदेव द्वारा सीता की शुद्धि की गवाही) हुआ, वह यदि दूर पर हुआ तो उस पर कौन विश्वास करे ?'

व्याख्या - राम दुर्मुख से कहते हैं कि पाप शान्त हों अर्थात् पाप की आशंका जो तुम प्रजा को दुर्जन बताकर कर रहे हो, वह न करो, वह ठीक नहीं है। वह तो इक्ष्वाकुवंश का सदा से सम्मान करती आई है। हमारे कुल पर जो यह कलंक लगा है, इसमें हमारा दुर्भाग्य ही कारण है। अग्नि शुद्धि यद्यपि मेरे सम्मुख हुई है, पर प्रजा उस पर कैसे विश्वास करे, क्योंकि कि वह बहुत दूर पर हुई है।

टिप्पणी - दुर्जना नाम पौरजना ? यहाँ नाम शब्द कोमल आलाप में है। जिससे प्रजाजनों के व्यवहार पर राम के हृदय की कोमलता व्यक्त होती है उनके प्रति रोष व्यक्त नहीं होता। अतः इस वाक्य का 'काकू' द्वारा यह अर्थ है कि मेरी प्रजा दुर्जन नहीं है।

रामः- हा कष्टम्। अतिवीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः।

शैशवात्प्रभृतिपोषितां प्रियां सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।

छद्मना परिददामि मृत्यवे सौनिकेगृहशकुन्तिकामिव।। 45।।

अर्थ - राम - हाय,हाय। मैं अत्यन्त घृणित और क्रूर कर्म करने वाला हो गया हॅू। (क्योंकि)

'शैशवावस्था के लेकर जिसका पोषण किया, हार्दिक प्रेम के कारण जिसे क्षण भर को भी अपने से पृथक् नहीं किया, उसी प्राणप्रिया इस सीता को, छलपूर्वक मौत के सुपुर्द कर रहा हॅू, जैसे कोई अपनी पालतू चिड़िया को बधिक के सुपुर्द कर रहा हो'

व्याख्या - सीता परित्याग के विचार से खेद प्रकट करते हुए राम कहते हैं कि मैं अब अत्यन्त घृणित कर्म करने वाला बन गया हूँ। छोटी अवस्था से लेकर मैंने सीता का पालन किया था। सद्भाव के कारण उसे कभी अपने से अलग नहीं किया। इस प्यारी सीता को मैं उसी प्रकार छल से मौत के मुंह में धकेल रहा हूँ जिस प्रकार कोई अपनी पालतू चिड़िया को वधिक के लिए सौंप रहा हो।

टिप्पणी - सीता की उपमा गृह शकुन्त से की गयी है। अतः उपमा अलंकार है, रथोद्धता वृति है।

तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि ? (इति सीतायाः शिरः सुप्तमुन्न मय्य बाहुमाकृष्य।)

अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे! विमुंच माम्।

श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।। 46।।

अर्थ - तब, मैं अस्पृश्य पापी (राम) इस (पवित्र) देवी सीता को (अपने स्पर्श से) क्यों दूषित करूँ ? (यह कहकर, सीता के सोये हुए सिर को उठाकर, उसके नीचे से अपना हाथ खींच लेते हैं, फिर निम्न वाक्य बोलते हैं-

'अरी भोली! मुझ अपूर्व कर्मचाण्डाल को छोड़ो। तुम चन्दन का वृक्ष समझकर दुःखद विषवृक्ष का आश्रय ले रही हो।'

व्याख्या - हे यथार्थज्ञानरहित सीते! मैंने तुम्हारे विनाश का निश्चय किया है; किन्तु तुम मेरे प्रति दयितबुद्धि से अनुरक्त हो। अतः मैं अपूर्व महाचाण्डाल अस्पृश्य और पापी हूं। तुम पवित्र हो। अतः मैं तुम्हारे लिए अस्पृश्य हूं । जैसा क्रूर कर्म आज तक किसी ने नहीं किया, वैसा करने वाले मुझ चाण्डाल को छोड़ो। तुम चन्दन की भ्रान्ति से दुःखद परिणाम वाले विषवृक्ष का आश्रय ले रही हो।

टिप्पणी - किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि' इस पूर्वोक्त कथन का समर्थन किया गया है। अतः काव्यलिंग अलंकार है।

--- अशरणोऽस्मि। किं करोमि ? का गतिः ? अथवा -

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम्।

मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि।। 47।।

अर्थ - मैं अवलम्बहीन हूँ। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अथवा-

'दुख भोगने के लिए ही राम ने जीवन पाया है। मर्म पर प्रहार करने वाले प्राण भी तो हृदय में वज्र की कील बनकर गड़े हुए हैं।'

व्याख्या - सीता निर्वासन पर शोक प्रकट करते हुए राम कहते हैं कि मेरा तो जन्म ही दुःख भोगने के लिए हुआ है। वनवास, सीता हरण आदि दुःखों का तो मैं प्रतिकार कर सका; परन्तु सीता निर्वासन का कोई प्रतिकार सम्भव नहीं। अतः यह दुःख असह्य है। ऐसे में प्राणान्त होना स्वाभाविक है; परन्तु मेरे प्राण भी वज्र की कील की तरह हृदय में गड़कर चुभन ही पैदा कर रहे हैं, निकलते नहीं हैं।

टिप्पणी - अशरणः- असहाय। इससे राम का 'दैन्य' व्यंग्य है। किं करोमि ? का गतिः ? इन दोनों वाक्यों में राम की 'चिन्ता' व्यंग्य है।

----- अथवा को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने ?

ते हि मन्ये महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना।

मया गृहीतनामानः स्पृश्यन्त इव पाप्मना।। 48।।

अर्थ - अथवा उन सब (पवित्र आत्माओं और सीता की पवित्रता के साक्षियों) को पुकारने (इन सबकी दुहाई देने) का अब मुझे क्या अधिकार है ?

''निश्चय ही, ये सब पवित्र आत्माएं, मुझ कृतघ्न दुरात्मा द्वारा नाम ग्रहण किये जाने से, पाप का स्पर्श प्राप्त करते हुए से लगते हैं।''

व्याख्या - क्योंकि मैं समझता हूँ कि किये हुए पर पानी फेरने वाले दूषित आत्मा वाले मुझ राम के द्वारा नाम लेकर पुकारे हुए वे पूर्वोक्त अरुन्धती, वसिष्ठ आदि महान् आत्माएॅं पाप से लिप्त से किए जा रहे हैं। अरुन्धती आदि पवित्र आत्माओं का नाम लेकर भी मैं उन्हें पाप के स्पर्श से युक्त बना रहा हूँ; क्योंकि इन सबने सीता की पवित्रता को प्रमाणित किया है, और मैं इन सबको अप्रमाणित कर रहा हूॅ। अतः मैं इन महात्माओं के नाम लेने का भी अधिकारी नहीं हूँ।

योऽहम्-

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रामुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्।

आतड्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीक्रव्याद्भ्योबलिमिवदारुणःक्षिपामि। 49।

अर्थ - जो मैं कठोर मनवाला (राम)-

''विश्वासपूर्वक छाती पर लेटकर सोई हुई, चित्रदर्शन से उत्पन्न भय के कारण फुरफुराते गर्भ से बोझिल, घर की लक्ष्मी प्रिय पत्नी को बलि के समान राक्षसों के भोजन के लिए, अपने शरीर से अलग करके (राक्षसों के सम्मुख) फेंक रहा हॅू।''

व्याख्या- जो मैं कठोर बना हुआ, विश्वास पूर्वक वक्ष पर लेटकर निद्रा को प्राप्त हुई चित्रदर्शन के अवसर प्राप्त भय के कारण फुरफुराते हुए पूर्ण गर्भ से बोझिल, घर की लक्ष्मी प्यारी पत्नी को अपने शरीर से अलग करके राक्षसों के भोजन के लिए बलि के समान फेंक रहा हॅू। सो ऐसा क्रूरकर्मा मैं पूर्वोक्त महात्माओं का नाम लेने का अधिकारी नहीं हॅ।

टिप्पणी- यहॉ कवि ने 'योऽहम्' इस उत्तरवाक्योपात्त 'यत्' शब्द द्वारा निर्दिष्ट 'विस्रम्भात्' इत्यादि समस्त श्लोक वाक्य को अर्थतो लब्ध 'सोऽहम्' इस वाक्य से परामृश्यमान 'को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने' इस पूर्व वाक्य के साथ जोड़ दिया है।

(नेपथ्ये)अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्।

रामः- ज्ञायतां भो! किमेतत्?

(पुनर्नेपथ्ये)

ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम्।

लवणत्रासितःस्तोमस्त्रातारं त्वामुपस्थितः।।50।।

अर्थ- (नेपथ्य में)ब्राह्मण भयभीत हैं, ब्राह्मण भयभीत हैं, रक्षा करो, रक्षा करो।

राम- अरे! पता करो, यह क्या है ? (फिर नेपथ्य से सुनाई देता है) - ’लवणासुर के त्रास से पीड़ित, यमुना तटवासी उग्र तपस्वी ऋषियों का समूह, रक्षा पाने के लिए तुम्हारी शरण में आया है’। (उसे लवणासुर के त्रास से बचाओ)

व्याख्या - लवणासुर से डरा हुआ, यमुना तट के निवासी कठोर तप करने वाले ऋषियों का समुदाय रक्षा करने वाले आपके पास आया है। अतः आप लवणासुर से इनकी रक्षा करें।

टिप्पणी - अब्रह्मण्यम् - यह एक नाटकीय मुहावरा है, ’अब्रह्मण्यमध्योक्तौ’ इस कोश के अनुसार इस मुहावरे का प्रयोग ’ब्राह्मणों को वध का भय उपस्थित है, उस भय से उनकी रक्षा की जानी चाहिए’ इस अर्थ को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

नेपथ्य- ’कुशीलवकुटुम्बस्य स्थली नेपथ्यमिष्यते’ के अनुसार नाट्यमंच के पार्श्वभाग में निर्मित उस कक्ष को नेपथ्य कहा जाता है। जहाँ पात्रों के वेषभूषादि की रचना की जाती है तथा जहाँ से पात्र मंच पर आते हैं और जहाँ वापस चले जाते हैं।

रामः- कथमद्यापि राक्षसत्रासः ? -------भगवति वसुन्धरे!

सुश्लाध्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्।

जनकानां रघूणां च या कृत्स्नं गोत्रमङलम्।

यां देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजनः।। 51।।

अर्थ - क्या आज भी राक्षसों का त्रास बना हुआ है ? ---- भगवति वसुन्धरे!

अपनी इस प्रशंसा योग्य पुत्री जानकी की देखभाल करना -

'जो जनकवंशी और रघुवंशी राजाओं के कुल का सम्पूर्ण मंगल है और जिस पवित्र आचारवाली को तुमने देवयजन के अवसर पर जन्म दिया था।'

व्याख्या - जो सीता जनकवंशी और रघुवंशी राजाओं के वंश का सम्पूर्ण कल्याण रूप है; जिस पवित्र आचणरवाली को पवित्र यज्ञ के अवसर पर तुमने जन्म दिया था; उस प्रशंसनीय पुत्री की तुम रक्षा करना।

टिप्पणी - कथमद्यापि- राक्षस कुलों का नाश होने के पश्चात् भी राक्षसों का त्रास बना रहने पर राम को आश्चर्य हुआ। यह वाक्य उसी आश्चर्य का द्योतक है।

भगवति वसुन्धरे - राम द्वारा सीता को पृथ्वी को सुपुर्द करना नाटकीय कार्य की दृष्टि से 'बिन्दु' नामक अर्थ प्रकृति है। बिन्दु का लक्षण है - 'अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्', -सा.द.।

अभ्यास - प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए:

- श्रेष्ठ राजाओं का परम कर्तव्य है?
- भूमण्डल में सर्वश्रेष्ठ राजवंश माना जाता है?
- प्रजा का सम्मान पात्र वंश है?
- राम ने शैशवावस्था से किसका पोषण किया?

2. एक वाक्य में उत्तर दीजिए:

- सीता का दोष किन उपायों द्वारा परिमार्जित कर दिया था?
- किससे दुनिया सनाथ है?
- 'दुर्जना नाम पौरजना' वाक्य का काकु द्वारा क्या अर्थ है?
- किसके प्राण हृदय में वज्र की कील की तरह गढ़े हुए हैं?

3. सत्य/असत्य बताइए:

- राम ने पिता के मार्ग पर चलने का संकल्प प्रकट किया है
- सीता विशुद्धि कि समय अद्भुत कर्म हुआ।
- सीता चित्रदर्शन से भयभीत नहीं हुई।

- ब्राह्मणों को वध का भय नहीं है।

सही विकल्प छांटकर लिखिए:

- अलर्क विष की तरह सब ओर फैल गया है।

(अ) दोष (व) निंदा

(स) अपयश (द) घृत

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

ऽ तत्प्रतीतं हि तातेन मां च................मुंचता।

ऽ र्.....................दीपितं भूमिपालैर्लोकश्रेष्ठैःसाधुचित्रं चरित्रम्।

ऽ शैशवात् प्रभृति.................सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।

ऽ श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं...।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि यहॉ सच्चे एवं सुखी दाम्पत्य जीवन का स्वाभाविक तथा मर्यादित चित्र प्रस्तुत किया है। जनस्थान में सीता हरण के पश्चात् पत्थरों को भी रुला देने वाले रामचन्द्र जी के चरित्र का मार्मिक वर्णन है। पम्पा सरोवर, हनुमान् तथा माल्यवान् पर्वत का सजीव प्रदर्शन है। सीताजी के सम्पूर्ण साधनामय जीवन की झांकी है। हनुमान् जी की प्रशंसा में रामचन्द्र जी के हृदय की विशालता का परिचय है। लोकाराधक नूतन राजा राम द्वारा अपने पूर्वजों और वरिष्ठजनों की आज्ञा का स्मरण है। संसार को पवित्र बना देने वाली देवी सीता के परित्याग का निश्चय है। लवण त्रासित ऋषि समुदाय की सरुक्षा में श्री राम चन्द्र की सक्रियता है। अनन्तर सीताजी का वन यात्रा के लिए प्रस्थान है।

2.6 शब्दावली

आसत्तियोगात् - अतिनिकटता के कारण।

अक्रमेण जल्पतोः - क्रम की उपेक्षा करके बोलते हुए।

चिरमाध्यात्महृदयः - बहुत देर तक भरे हृदय वाला।

दिनकरकुलानन्दनः - सूर्यवंश को आनन्दित करने वाले (राम)।

प्रियजनविप्रयोगजन्मा - प्रियजन के विरह से उत्पन्न।

मल्लिकाक्ष - जिनके चोंच और पंजे मटमैले रंग के होते हैं, उन हंसो को मल्लिकाक्ष कहते हैं।

पुण्डरीक - श्वेतकमल।

अंजनानन्दवर्धनः - अंजना के आनन्द को बढ़ाने वाले (हनुमान्)।

रसायनम् - जरा, व्याधि की विध्वंसक औषध।

दैवदुर्विपाकात् - दुर्भाग्य की परिणति से।

सावित्रैः - सूर्यवंशियों के द्वारा।

किंवदन्ती - अपवाद।

बीभत्सकर्मा - घृणित कर्म करने वाला।

कर्मचण्डाल - चाण्डाल दो प्रकार के होते है। एक जन्म चाण्डाल दूसरे कर्म चाण्डाल।

मर्मोपघातिभिः - मर्म को बेधने वाले। प्राणैः का विशेषण है।

वज्रकीलायितम् - वज्र की कील की भंाति ठुके हुए।

कृतघ्नः - कृतं हन्तीति कृतघ्नः। किये उपकार को न मानने वाला।

आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी - उद्वेग के कारण फड़कते हुए गर्भ के भार वाली।

लवणः - मधु और रावण की बहिन ’कुम्भीनसी’ का पुत्र।

अजीजनः - उत्पन्न किया। जन्$णिच्$लुड्.$म.पु.एक 01

2.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

खण्ड एक

1.

- पंचवटी
- दुःखाग्नि
- पüसर
- माल्यवान्

2.

- स्वर्णमृग के छल की क्रिया जनस्थान का दृश्य है।
- परस्पर वार्तालाप में राम और सीता की रात बीत गयी।
- राम के आंसू मोतियों की तरह विखर रहे हैं।
- दिष्ट्या आनन्द द्योतक अव्यय है।

3.

- सत्य
- सत्य
- असत्य
- असत्य

4. (अ) उपधान

5.

- गृहे वने
- शिशिरमसृणो
- परमसह्मस्तु
- कथमप्येकं

खण्ड दो 1.

- लोकाराधन

- सूर्यवंश
- इक्ष्वाकुवंश
- सीता

2.

- सीता का दोष अद्भुत उपायों द्वारा परिमार्जित कर दिया था।
- सीता से दुनिया सनाथ है।
- प्रजा दुर्जन नहीं है।
- राम के प्राण हृदय में वज्र की कील की तरह गढ़े हुए हैं।

3.

- सत्य
- सत्य
- असत्य
- असत्य

4. (अ) दोष

5.

- प्राणांश्च
- यत्सावित्रै
- पोषितां प्रियां
- विषद्रुमम्

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भवभूति, उत्तर रामचरित (सम्पूर्ण), व्याख्या- आचार्य प्रभुदत्त स्वामी,(1988) ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

2. भवभूति, उत्तर रामचरितम्, व्याख्या-डॉ0 कृष्णकान्तशुक्ल, (1986-87) साहित्य भण्डार, सुभाष

बाजार, मेरठ-2

2.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. भवभूति, उत्तर रामचरितम्ः विचार और विश्लेषण, आचार्य प्रभुदत्त स्वामी ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

2. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु0 डॉ रघुवंश,(1964) मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तर राम चरित की कथा का मूल श्रोत और उसमें कवि द्वारा निजी कल्पनाओं का विवेचन कीजिए?

2. नाटक की उपयोगिता एवं स्वरूप को स्पष्ट कीजिए?

3. भवभूति द्वारा रचित नाटकों का परिचय दीजिए?

4. उत्तर रामचरित के प्रथम अंक की कथावस्तु का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 3 उत्तरराम चरितम्-द्वितीय अंक पूर्वार्द्ध

इकाई संरचना

3. 1 प्रस्तावना
3.2 अद्देश्य
3.3 मुख्यभाग: खण्ड एक (श्लोक 1 से 9 तक)
मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी
3.4 खण्ड दो (श्लोक 10 से 15 तक)
मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

नाट्य एवं नाट्यशास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। दूसरी इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि सीता वन विहार के लिए चली गई हैं। इस इकाई के अन्तर्गत आप पंचवटी प्रवेश के पूर्वार्द्ध का अध्ययन करेंगे।

राम के सीता विषयक प्रेम को उद्दीप्त करने के उद्देश्य से कवि ने राम को पंचवटी में प्रविष्ट कराया है। इससे रामचन्द्र जी के चरित्र का विकास दिखलाया गया है तथा नाटकीय प्रवाह की सृष्टि हुई है।

पंचवटी के विभिन्न स्थान जो वनवास के समय सीता के साथ किये गये विविध विलासों के साक्षी थे, अपने दर्शन से उद्दीपक बनकर, बारह वर्ष तक भीतर ही भीतर घुटन पैदा करते हुए राम के सीता विषयक प्रेम को प्रदीप्त कर, अत एव राम को एकान्त जंगल में रुलाकर उनके मन को कुछ हलका कर सकें। इन सब उद्देश्यों की सिद्धि के लिए कवि ने 'शम्बूक वध' रूप उपयुक्त उपाय निकाल लिया है। इससे रामचन्द्र की मर्यादा सुरक्षित रह जाती है। वे स्वार्थ के वशीभूत होकर नहीं, अपितु अपनी प्रजा के हित के लिए ब्राह्मण-पुत्र के पुनरुज्जीवन के लिए पंचवटी में पदार्पण करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- वनों का महत्व समझ सकेंगे।
- प्राकृतिक आतिथ्य को जान सकेंगे।
- सत्संगति की महिमा का वर्णन कर सकेंगे।
- सज्जनों के चरित्र का विवेचन कर पायेंगे।
- मेधावी तथा मन्दबुद्धि विद्यार्थियों की पहचान कर पाएंगे।
- आदि काव्य रामायण के कारण की व्याख्या कर सकेंगे।
- शम्बूक वध का औचित्य समझ सकेंगे।
- तप के प्रभाव को जान सकेंगे।
- वैराज लोकों का स्वरूप समझ सकेंगे।
- पंचवटी के प्राचीन भूभागों से परिचित हो सकेंगे।
- दिन की कठोरता को पहचान सकेगे।
- पशु-पक्षियों की क्रियाओं को जान सकेंगे।

3.3 मुख्य भाग (श्लोक 1 से 9 तक)

खण्ड एक

(नेपथ्ये) स्वागतं तपोधनायाः!

(ततः प्रतिशत्यध्वगवेषा तापसी)

तापसी-अये! वनदेवता फलकुसुमगर्भेण पल्लवार्घ्येण

दूरान्मामुपतिष्ठते। (प्रविश्य)

वनदेवता- (अर्घ्यं विकीर्य)

यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।

तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं

फलं व मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वा।।1।।

अर्थ- (नेपथ्य में)तपस्विनी जी का स्वागत है!

(तदनन्तर पथिक वेष में तापसी प्रवेश करती है)

तापसी- अरे! फल और फूल से युक्त पल्लव के अर्घ्य द्वारा दूर से ही वनदेवी मेरी पूजा कर रही है।

(प्रवेश कर)

वनदेवी- (अर्घ्य देकर)'आप इस वन में इच्छानुसार भोग प्राप्त कीजिए। आज का यह दिन मेरे लिए बड़ा शुभ है। सज्जनों का सज्जनों के साथ समागम किसी प्रकार पुण्य के प्रभाव से ही होता है। वृक्षों की छाया, जल और जो भी तपस्या के लिए उपयुक्त भोजन है-फल या 'मूल' वह सब यहॉ आपके लिए पराधीन नहीं है।'

व्याख्या- आरम्भ में एक तापसी, जिसका नाम आत्रेयी है, दण्डकारण्य में प्रवेश करती है। नेपत्थ में वनदेवी वासन्ती उसका स्वागत करती है। उसे देखकर तापसी कहती है कि -अरे! इस वन की देवी दूर से ही फल और फूलों से मिश्रित पल्लव निर्मित अर्घ्य से मेरी अर्चना कर रही है। वनदेवी पूजा पात्र से भूमि पर अर्घ्य देकर तापसी का स्वागत करती हुई कहती है कि यह वन आपकी इच्छानुसार

भोगने योग्य है। आज का दिन मेरे लिए बड़ा शुभ है; क्यों कि आप पधारी हैं। सच तो यह है कि सत्पुरुषों का सत्पुरुषों से सम्बनध बड़े पुण्यों से होता है। वृक्षों की छाया, शीतल एवं निर्मल जल तथा तपस्या के लिए उपयुक्त भोजन, जो कुछ भी फल-मूल आदि हैं, वे भी आपके लिए अप्राप्य नहीं हैं अर्थात् यह वन आपका ही है। चाहे यहॉ से फल-फूल ग्रहण करें। आप इस विषय में स्वतन्त्र हैं।

टिप्पणी- अध्वगवेषा-अध्वानं गच्छतीति अध्वगः।तस्य वेष इव वेषो यस्याःसा।

'स्वागतम्' यहाँ चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है। क्यों कि जवनिका के अन्दर से आत्रेयी के आगमन रूप अर्थ की सूचना दी गई है।

यथेच्छाभोग्यम्- यथेच्छं भोक्तुं योग्यम्। इच्छानुसार भोगने योग्य।

तापसी- किमत्रोच्यते?

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः

प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।

पुरोवा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं

रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते।।2।।

अर्थ- तापसी- इस विषय में क्या कहा जाय?

'अतिशय प्रेम का बरताव, वाणी में नम्रतापूर्ण मधुर संयम, स्वभावतः कल्याण की बुद्धि, दोषरहित परिचय, इस प्रकार का सामने और पीछे एक सा रहने बाला सज्जनों का विशुद्ध निश्छल गूढ़ चरित्र सभी से उत्कृष्ट है।'

व्याख्या- वनदेवी के सरस तथ्य, पथ्य और मधुर वचनों से प्रसन्न होकर तापसी कहती है कि-सज्जनों का परम शुद्ध चरित्र सदा विजयी होता है। उन का व्यवहार बड़ा प्रिय, उनकी वाणी में बड़ी मृदुता तथा संयम, बुद्धि स्वभाव से कल्याणकारिणी, अभिनन्दनीय परिचय तथा वे जो कुछ कहना चाहते हैं वह प्रत्यक्ष और परोक्ष में समान होता है। इसलिए उनका चरित्र सर्वोत्कृष्ट होता है।

टिप्पणी- प्रकृत्या कल्याणी मतिः- ''प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्'' इस नियम से तृतीया।

विजयते- सर्वोत्कर्षेण वर्तते। 'वि पराभ्यां जे' रित्यात्मनेपदम्।

आत्रेयी-अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि।।3।।

अर्थ- आत्रेयी- 'इस वन प्रदेश में अगस्त्य आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि निवास करते हैं। उनसे वेदान्त विद्या को जानने के लिए मैं यहाँ वाल्मीकि जी के पास से आ रही है।'

व्याख्या- दण्डकारव्य में प्रवेश का प्रयोजन पूछने पर आत्रेयी वनदेवी को सूचित करती है कि इस प्रदेश में अगस्त्य प्रभृति बहुत से ब्रह्मवेत्ता ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त विद्या प्राप्त करने के लिए (पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि जी के पास से यहाँ आ रही हूँ)

टिप्पणी- आत्रेयी- अत्रेर्गोत्रापत्यं स्त्री आत्रेयी, अत्रि के गोत्र में उत्पन्न होने से आत्रेयी नाम वाली।

वनदेवता-यदा तावदन्येऽपि मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते, तत्कोऽयमार्यायाः प्रयासः।

आत्रेयी-तस्मिन् हि महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङगीकृतः।

वनदेवता-कीदृशः?

आत्रेयी-तत्र भगवता केनापि देवताविशेषेण सर्वप्रकाराद्भुतं स्तन्यत्यागमात्रके वयसि वर्तमानं दारकद्वयमुपनीतम्।................न त्वेताभ्यामति दीप्तिप्रज्ञाभ्यामस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति। यतः-

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे

न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।

भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति, तद्यथा

प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।।4।।

अर्थ- वनदेवता- जब कि अन्य मुनिगण भी वेदाध्ययन के लिए उन्हीं पुराने बह्मवादी श्री वाल्मीकि जी के पास जाते हैं, तब उनके पास से आपका प्रवास क्यों?

आत्रेयी- वहाँ अध्ययन में बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया है। इसी लिए मुझे यह लम्बा प्रवास स्वीकार करना पड़ा।

वनदेवता- कैसा विघ्न हो गया?

आत्रेयी- वहाँ भगवान् वाल्मीकि को किसी देवता ने सर्वात्मना आश्चर्यकारी दुधमुंहे बच्चों का एक

जोड़ा समर्पित किया है।.........प्रखर प्रतिभाशाली उन दोनों के साथ हम जैसों का अध्ययन करना

सम्भव नहीं है। क्योंकि-

''गुरु जिस प्रकार बुद्धिमान् छात्र को विद्यादान करता है, उसी प्रकार मन्दबुद्धि को भी। वह न तो उन दोनो के ज्ञान में शक्ति बढ़ाता है और न घटाता है। परन्तु साथ-साथ पढ़ाये जाने पर भी परिणाम में बहुत भेद होता है। जैसे निर्मल मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होता है, मिट्टी आदि पदार्थ नहीं।

व्याख्या- अपने अध्ययन में विघ्न के हेतु को प्रकारान्तर से प्रस्तुत करती हुई आत्रेयी कहती है कि गुरु जिस प्रकार मेधावी छात्र को विद्या प्रदान करता है उसी प्रकार मूर्ख को भी करता है, किन्तु वह उनमें ज्ञान को ग्रहण करने का सामर्थ्य तो उत्पन्न या नष्ट नहीं करता। वह तो उनमें अपना ही होता है। गुरु द्वारा एक जैसा विद्यमान होने पर भी दोनों के विद्या ग्रहण करने के परिणाम में बहुत अन्तर होता है जैसे कि उज्ज्वल मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होता है, परन्तु मिट्टी आदि मलिन पदार्थ बिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते।

टिप्पणी- पुराणब्रह्मवादिनम्- पुराणश्चासौ ब्रह्मवादी तम्।

प्राचेतसम्- वाल्मीकि को।

आत्रेयी-अथ स ब्रह्मषिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः।

तत्र युग्मचारिणोः क्रौंचयोरेकं व्याधेन वध्यमानं ददर्श। आकस्मिक प्रत्यवभासां देवीं वाचमनुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्।

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।5।।

अर्थ- आत्रेयी- यह सब होने के बाद, वे ब्रह्मषि वाल्मीकि एक दिन माध्याह्नस्नान करने के लिए तमसा नदी पर गये। वहाँ सदा एक दूसरे के साथ विचरने वाले क्रौंच और क्रौंची के जोड़े में से एक को व्याध द्वारा मारे जाते हुए देखा। तब उन्होंने सहसा प्रादुर्भूत 'अनुष्टुप्' छन्दोबद्ध वाणी कही-

'अरे निषाद! तू शाश्वत वर्षों तक शान्ति मत प्राप्त कर; क्यों कि इस क्रौंच के जोड़े में से काम से मोहित एक पक्षी को तूने मार डाला है।'

व्याख्या- दूसरे विघ्न के विषय में आत्रेयी बताती है कि एक दिन महर्षि मध्याह्न कालिक स्नान के लिए तमसा नदी पर गये। वहाँ उन्होने परस्पर विहार करने वाले क्रौंच नाम के सारस पक्षियों के जोड़े में से एक को किसी बहेलिए के द्वारा मारे जाते हुए देखा । इस करुण दृश्य को देखकर उन्होंने सहसा

प्रकट हुए अनुष्टुप् छन्द में वाग्देवता का इन शब्दों में उच्चारण किया- अरे! पापी क्रूर निषाद! तू बहुत समय तक प्रतिष्ठा को प्राप्त न करे, क्यों कि तूने काम से मोहित, क्रौंची सहचर क्रौंच का वध कर दिया है।

टिप्पणी- माध्यन्दिनसवनाय- मध्याह्नकालिक स्नान एवं सन्ध्या के लिए।

तमसा- गंगा के समीप ही प्रवाहित होने वाली एक नदी।

आकस्मिकप्रत्यवभासाम्- आकस्मिकः प्रत्यवभासः यस्यास्ताम्। जो सहसा प्रकाशित हुई।

आत्रेयी-तेन हि पुनःसमयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दब्रह्म

प्रकाशमृषिमुपसंगम्य भगवान् भूतभावनः पयोन्ग्रिवोचत्-

'ऋषे! प्रबुद्धोऽसि वागात्मानि ब्रह्मणि। तेन ब्रूहि रामचरितम्।

(सा6म्)अप्येतत्तपोवनम्? अप्येवा पंचवटी? अपि सरिदियं गोदवरी? अप्ययं गिरिः प्रस्रवणः? अपि जनस्थानवनदेवता त्वं वासन्ती?

वनदेवता- तथैव तत्सर्वम्।

आत्रेयी- हा वत्से जानकि।

स एव ते वल्लभबन्धुवर्गः प्रासंगिकीनां विषयः कथानाम्।

त्वां नामशेषामपि दृश्यमानः प्रत्यक्षदृष्टामिव नः करोति।।6।।

अर्थ- आत्रेयी- उस समय, शब्दब्रह्म के नवीन प्रकाश से चमत्कृत हृदय वाले भगवान् वाल्मीकि के पास आकर जगत्स्रष्टा भगवान् ब्रह्मा ने कहा- 'ऋषिवर! आपको शब्द ब्रह्म का बोध हुआ है। इससे आप रामचरित का वर्णन करें।...............(आंसू भरकर) क्या यह तपोवन है? क्या यह पंचवटी है? क्या यह नदी गोदावरी है? क्या यह पर्वत प्रवण है? और क्या तुम जनस्थान की वनदेवता वासन्ती हो?

वासन्ती- यह सब कुछ वही है।

आत्रेयी- हा वत्से सीते!

(प्रायः प्रसंग आने पर जिसकी चर्चा रहती थी) 'वह अनेक प्रासंगिक कथाओं का विषय यह तुम्हारे प्रियबन्धुओं का समूह आंखो के सम्मुख उपस्थित होकर, नाम मात्र से अवशिष्ट भी तुम को प्रत्यक्ष सी दिखा रहा है।'

व्याख्या-वासन्ती के वचनों से पंचवटी को जानकर करुणा के साथ सीता का स्मरण करके आत्रेयी कहती है कि- वेटी सीते! तुम्हारे वनवास के साथी जिन पंचवटी गोदावरी, प्रवण गिरि और वनदेवी

वासन्ती आदि की चर्चा प्रत्येक अवसर पर मैं सुना करती थी, वे सब यहाँ मेरे सम्मुख उपस्थित हैं। इन्हें देखकर मुझे ऐसा लग रहा है मानो कि मैं तुम्हे अपने सामने देख रही हूँ , परन्तु तुम्हारा तो अब नाम ही केवल शेष रह गया है।

टिप्पणी- पंचवटीम्- पंचानां वटानां समाहारः पंचवटी ताम्। द्वि0स0।

वल्लभबधुवर्गः-बन्धूनां वर्गः बन्धुवर्गः। वल्लभो बन्धुवर्गः वल्लभबन्धुवर्गः।

प्रत्यक्षदृष्टाम्- साक्षादवलोकिताम् इवेति सम्भावनायाम्।

वासन्ती-हन्त भो!

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति।।7।।

अर्थ- अहो!''वज्र से भी कठोर और पुष्प से कोमल, लोकोत्तर पुरुषों के हृदयों को भला कौन समझ सकता है।''

व्याख्या- 'स्वर्णमयी सीता को धर्मपत्नी मान कर राम ने अश्वमेध आरम्भ किया है' यह सुनकर वासन्ती कहती है कि वस्तुतः अलौकिक महापुरुषों का हृदय कब कैसा हो जाता है। इसका किसी को पता नहीं। श्रीरामचन्द्रजी का हृदय जहाँ सीता परित्याग के समय अतिशय कठोर हो गया था वहाँ यज्ञ में सीता की प्रतिकृति से ही उसे सम्पन्न करना उनके हृदय की अलौकिक मृदुता को प्रकट करता है।

आत्रेयी- अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडमब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो' न राजापचारमन्तरेण प्रजानामकालमृत्युः संचरती'त्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्-

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।

शीर्षच्छेद्यः स ते राम! तं हत्वा जीवय द्विजम्।।8।।

अर्थ- आत्रेयी- इसी बीच एक ब्राह्मण ने अपने मरे हुए पुत्र को हाथ में उठाये हुए राजद्वार पर पहुॅच कर छाती पीट पीटकर ब्राह्मणों के अहित की चीख मचाई, तब 'राजा के दोष के विना प्रजा की अकाल मृत्यु नहीं होती' यह जानकर करुणामय श्रीराम ज्यों ही अपने दोष को मन में खोजने लगे, त्यों ही सहसा यह आकाशवाणी हुई-

, 'शम्बूक नाम का शूद्र पृथ्वी पर तप कर रहा है, उसका सिर तुम्हारे द्वारा काटा जान उचित है। हे राम! उसे मारकर ब्राह्मण को जीवित करो।'

व्याख्या- ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु के पश्चात् आकाशवाणी का उल्लेख करती हुई आत्रेयी कहती है कि राम के समक्ष देववाणी उच्चारित हुई कि शम्बूक नाम का शूद्र पृथ्वी पर तप कर रहा है। उसका शिरच्छेदन कर आप ब्राह्मण बालक को जीवित करें। इसके शिशु की प्राणप्राप्ति का यही एक उपाय है। सभी वर्णों की सेवा करना ही शूद्र का कार्य है। उसे छोड़कर तप करने से व्यवस्था भंग मृत्यु का कारण है। ब्राह्मण धर्म के आचार्य हैं। अन्यायपूर्ण आचरण होने से उनके पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं।

टिप्पणी- वृषलः शूद्रः। 'शूद्राश्चावरणाश्च वृ्षलाश्च जघन्यजाः'इत्यमरः।

शीर्षच्छेद्यः-शीर्षच्छेदं नित्यमर्हतीति शीर्षच्छेद्यः 'शीर्षच्छेदाद्यच्च'

वासन्ती- आर्ये आत्रेयी! एवमस्तु! कठोरश्च दिवसः। तथाहि-

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभि-

र्घर्मस्रंश्रितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।

छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः-

कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः।।9।।

अर्थ- वासन्ती- आत्रेयी जी! अच्छी बात है। दिन कठोर भी हो चला है।

देखिये-''गोदावरी तट के ये गर्मी से कुलकुलाते कबूतरों और जंगली मुर्गों वाले वृक्ष, जो अनेक घोंसलों के आश्रय हैं तथा जिनकी छाया में पक्षीगण पंजों से भूमि को कुरेद रहे हैं और चौंच से (वृक्षों की) त्वचा के भीतर से कीड़ों को खींचकर निकाल रहे हैं। खुजलाहट से युक्त हाथी द्वारा खोपड़ी को रगड़ने से उत्पन्न कम्पन के कारण झड़कर गिरते हुए गर्मी से ढीले डण्ढल वाले फूलों द्वारा गोदावरी की अर्चना कर रहे हैं।''

व्याख्या- विश्राम करके आत्रेयी जाना चाहती है तब दिन की कठोरता का वर्णन करती हुई वासन्ती कहती है कि आर्ये आत्रेयी! ऐसा ही हो! बहुत अच्छा! जाइए! क्योंकि दिन भी सूर्य की प्रखर किरणों से असह्य हो रहा है। नीचे छाया में पंजों से जमीन को कुरेदते हुए पक्षियों द्वारा अपनी चौंच से जिनकी त्वचा में से कीड़े खींचे गये हैं। ऊपर जो कुल-कुल शब्द करते हुए गर्मी से विकल कबूतरों और जंगली मुर्गों के समूह से युक्त हैं। ऐसे पक्षियों के घोंसलों वाले वृक्ष धूप के कारण शिथिल डण्ढलों

वाले और खुजलाहट युक्त हाथी द्वारा खोपड़ी को रगड़ने के कारण वृक्ष के हिल जाने से किनारे के ऊपर झड़कर गिरते हुए अपने फलों से गोदावरी नदी को पूज रहे हैं।

टिप्पणी- यह शुद्ध विष्कम्भक है। इसके द्वारा कवि ने संक्षेप में भूतकालिक सीता निर्वासन तथा कुशलवोत्पत्ति और आगामी शम्बूक वध के निमित्त राम का पुनः जनस्थान में प्रवेश निर्देशित किया है।

अभ्यास प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिए?

- पथिक वेष मे कौन प्रवेश करती है?
- तापसी को कौन अर्घ्य प्रदान करती है?
- 'स्वागतं तपोधनायाः में कौन सा अर्थोपक्षेपक है?
- वाल्मीकि के आश्रम से कौन आयी है?

2. एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- किसका चरित्र सर्वोत्कृष्ट होता है?
- सज्जनों का संग किसके प्रभाव से होता है?
- अगस्त्य आदि ऋषि कहाँ निवास करते हैं?
- भगवान् वाल्मीकि को किसने बच्चों का एक जोड़ा समर्पित किया है?

3. सत्य/असत्य बताइएः

- वाल्मीकि पुराणब्रह्मवादी ऋषि हैं।
- गुरु सभी शिष्यों को समान रूप से विद्यादान नहीं करते हैं।
- मिट्टी आदि पदार्थ बिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते हैं।
- राजदोष के विना प्रजा की अकाल मृत्यु नहीं होती।

4. सही विकल्प छांटकर लिखिएः

- सहसा प्रादुर्भूत 'अनुष्टुप्' छन्दोबद्ध वाणी कही

(अ) अगस्त्य ने (ब) ऋष्यशृड्.ग ने

(स) वशिष्ठ ने (द) वाल्मीकि ने

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

- वज्रादपि कठोराणि मृदूनि -------------।
- शम्बूको नाम वृषलः ---------- तप्यते तपः।
- मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः -------- समाः।
- स एव ते वल्लभबन्धुवर्गः -----विषयः कथानाम्।

3.4 मुख्यभाग (श्लोक संख्या 10 से 15 तक)

खण्ड दो

रामः - (सकृपाणं पाणिं पश्यन्)

हे हस्तदक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य

जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।

रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न -

सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ?।। 10।।

अर्थ - ''अरे दायें हाथ! ब्राह्मण के मरे हुए पुत्र को जिलाने के लिए शूद्र मुनि पर तलवार का प्रहार कर ! तू तो पूरे गर्भ के भार से खिन्न सीता को घर से निकाल देने में दक्ष राम का हाथ है, तुझे करुणा कहाँ ?''

व्याख्या - विष्कम्भक के पश्चात् सदय हाथ में तलवार लिए राम प्रवेश करते हैं। वे शूद्रमुनि पर प्रहार करने के लिए अपने दायें हाथ को प्रेरित करते हैं- हे दक्षिण हस्त! तू ब्राह्मण के मृत बालक के जीवन के लिए शूद्र तपस्वी पर कृपाण छोड़। इस विषय में हिचक क्यों करता है। तू तो परिपूर्ण गर्भ से खिन्न प्रियतमा सीता का परित्याग करने में पटु राम का हाथ है। अतः तुझ में करुणा कहाँ से आयी ?

टिप्पणी - रे दक्षिण हस्त ! यह राम का अपने दायें हाथ के प्रति सम्बोधन है। कृपाणम्-'कृपाम् आ समन्तान्नयति'- इस व्युत्पत्ति से यह प्रयोग 1- ब्राह्मण शिशु को जीवन दान तथा 2- शूद्रमुनि को उत्तम लाकों की प्राप्ति कराने से दो कार्यों का साधक है।

(प्रविश्य)दिव्य पुरुषः- जयतु देवः ।

दत्तभये त्वयि यमादपि दण्डधारे

संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः ।

शम्बूक एव शिरसा चरणौ नतस्ते

सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ।। 11।।

अर्थ - (प्रवेश करके)

दिव्य पुरुष- महाराज की जय हो।

''यम के भय से भी मुक्ति देने वाले आपके दण्ड धारण करने पर वह ब्राह्मण बालक जीवित हो उठा है और मेरी यह दिव्य समृद्धि हुई है। यह शम्बूक सिर झुकाकर आपके चरणों में प्रणाम करता है। सत्संग से उत्पन्न मृत्यु भी तारने वाली होती है।''

व्याख्या - दिव्य रूप को पाकर शम्बूक राम को प्रणाम करता हुआ कहता है कि देव ! आपकी सदा विजय हो महाराज! आप सबको अभय प्रदान करने वाले हैं। अनुचित कार्य करने पर यमराज को भी दण्डित करने वाले आपके अनुग्रह से यह ब्राह्मण शिशु जीवित हो उठा और मेरी यह प्रत्यक्षतः वर्तमान अलौकिक शोभा हो गयी। शम्बूक नामक यह आपका अनुगृहीत सेवक सविनय चरणों में प्रणत है। यह सच है कि सत्पुरुषों के संग से होने वाले निधन भी संसार सागर से प्राणियों का उद्धार कर देते हैं।

टिप्पणी - दत्ताभये - दत्तम् अभयं येन, तस्मिन्।

यमात् - ''भीत्रार्थानां भयहेतुः'' से पंचमी।।

रामः-द्वयमपि प्रियं नः, तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः परिपाकः।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च संपदः।

वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः।। 12।।

अर्थ - राम-दोनों ही बातें हमें प्रिय हैं, सो अपने उग्र तप का फल भोगो।

'जहाँ अनेक आनन्द, प्रसन्नताएँ और पवित्र सम्पत्तियाँ हैं, वे वैराज नाम के प्रकाशमय लोक तुम्हें अनन्तकाल तक कल्याणकारी हों।'

व्याख्या - शुभ समाचार सुनकर प्रसन्न हुए श्रीराम शम्बूक से कहते हैं कि ब्राह्मण पुत्र का जीवित होना और तुम्हारी समृद्धि ये दोनों ही बातें मेरे लिए प्रसन्नता की हैं। इसलिए अब तुम इस उग्र तपस्या के फल का अनुभव करो। तुमने अपने उग्र तप से जिन वैराज नामक तैजस लोकों को संचित किया है। वे तुम्हारे लिए कल्याणकारी हों। उन लोकों में तुम्हारे जैसे अनेक तपस्वी निवास करते हैं उनके साथ तुम आत्मिक सुख प्राप्त करोगे। वहाँ की पवित्र सम्पत्तियों का तुम स्वेच्छा से भोग करोगे।

टिप्पणी- यत्रानन्दाश्च मोदाश्च-''आनन्दा आत्मानुभवजन्या हर्षाः मोदाश्च दिव्यविषयानुभवजन्या हर्षाः।''

शम्बूकः-स्वामिन्! युष्मत्प्रसादादेवैषा महिमा। किमत्र तपसा ?

अथवा महदुपकृतं तपसा।

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथः शरण्यो,

मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।

क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां संप्रसादोऽन्यथा तु

क्वायोध्यायाः पुनरुपगमो दण्डकायां वने वः।।13।।

अर्थ - शम्बूक-प्रभो ! आपके अनुग्रह से ही मुझे यह महिमा प्राप्त हुई है। इसमें तपस्या का क्या प्रभाव है ? अथवा तप ने बहुत उपकार किया है, (क्योंकि)- 'जो कि संसार में (बड़ी-बड़ी तपस्याएँ कर मुनियों के द्वारा) अन्वेषणीय, लोकों के स्वामी तथा शरणागत वत्सल हैं; वही आप मुझ शूद्र को खोजते हए सैकड़ों योजन लांघकर यहाँ आये हैं- यह तप का ही प्रभाव है अन्यथा अयोध्या से दण्डक वन में आपका पुनः आगमन कहाँ सम्भव था ?'

व्याख्या - देव शरीर धारी शम्बूक सर्वैश्वर्य सम्पन्न राम को संबोधित करते हुए कहता है- स्वामिन् ! मुझे अलौकिक शोभा की प्राप्ति आपकी कृपा से ही हुई है, इसमें तपस्या का क्या प्रभाव है अथवा तप के द्वारा यह महान् उपकार किया गया है। आप लोकनाथ हैं। सारे मनुष्य लोक में आपका राज्य है। आप शरण्य हैं। सब विपन्नजन अपनी विपत्ति के निवारणार्थ आप ही की शरण में जाते हैं। भुवन भर में अन्वेषणीय होते हुए भी आप मुझ क्षुद्र वृषल को खोजते हुए सैंकड़ों योजन भूमि को लांघकर जो यहाँ स्वयम् आ उपस्थित हुए हैं। यह तप की ही तो कृपा है, नहीं तो अयोध्या से दण्डकवन में फिर आपका आगमन कैसे होता ?

टिप्पणी - स्वामिन्! यह शम्बूक का राम के लिए सम्बोधन है। यहाँ शम्बूक स्वयं को सेवक और राम को स्वामी के रूप में देख रहा है।

महिमा - महतो भावो महिमा।

शरण्यः - शरणे साधु इति शरण्यः।

रामः- किं नाम दण्डकेयम् ? (सर्वतोऽवलोक्य) हा, कथम् -

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः

स्थाने-स्थाने मुखरकुकुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।

एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः

संदृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः।। 14।।

अर्थ - राम- क्या यह दण्डकारण्य है ? (चारो ओर देखकर) हा! कैसे? ’कहीं सरस हरियाले, कहीं भयंकर विस्तार से रूखे, जगह-जगह झरनों की झंकार से झंकृत दिशाओं वाले तीर्थों, आश्रमों, पर्वतों, नदियों, गड्ढों और सघन वनों से युक्त ये पूर्व परिचित दण्डकारण्य के भूभाग सामने दिखाई दे रहे हैं।

व्याख्या - शम्बूक के मुख से दण्डक शब्द सुनते ही राम को बीती याद आती है और वे दण्डकवन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हन्त! इस दण्डकवन में ये हमारे पूर्व परिचित भू भाग कैसे प्रतीत हो रहे हैं ? यहाँ जिस प्रकार कहीं कठोर भूमि है और कहीं कोमल; उसी प्रकार यहाँ किसी स्थल को देखने से मृदु स्मृति आ रही है और किसी स्थल को देख-देखकर भयंकर। अतः ये भूभाग कोमल और कठोर दोनों प्रकार की अनुभूति करा रहे हैं।

टिप्पणी - मुखरककुभः- मुखराः ककुभः येषां ते मुखरककुभः। (बहु0 समास)

शम्बूकः- दण्डकैवैषा। अत्र किल पूर्वं निवसता देवेन-

चतुर्दश सहस्राणि चतुर्दश च राक्षसाः।

त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः।। 15।।

अर्थ - यह दण्डकारण्य ही है; जहाँ पहले निवास करते हुए आपने -

’चौदह हजार और चौदह राक्षसों तथा दूषण,खर और त्रिशिरा-इन तीनों को युद्ध में मारा था।’

व्याख्या - दण्डकवन के पूर्व वृतान्त का स्मरण कराता हुआ शम्बूक राम से कहता है कि यहाँ पहले

रहते हुए आपने चौदह हजार चौदह निशाचरों तथा प्रमुख राक्षसों के नामक खर,दूषण और त्रिशिरा

को युद्ध मे मार दिया था। अतः यह वही दण्डकारण्य है।

टिप्पणी - दण्डका- दण्डयति राक्षसैर्विहितेन दण्डनिपातेन नागराणां देहं नाशयतीति दण्डका।

देवेन- यहाँ शम्बूक ने राम के लिए 'देव' शब्द का प्रयोग किया है। जो राजा के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

3.7 अभ्यास प्रश्न

1- एक शब्द में उत्तर दीजिए:

- हाथ में तलवार लिए कौर प्रवेश करते हैं ?
- राम के दायें हाथ में क्या नहीं है ?
- शूद्र तपस्वी का क्या नाम है ?
- वैराज लोक कैसे हैं ?

2- एक वाक्य में उत्तर दीजिए:

- राम का हाथ किस कार्य में दक्ष है ?
- राम के अनुग्रह से कौन जीवित हो उठा ?
- सत्संग से उत्पन्न मृत्यु कैसी होती है ?
- राम के चरणों में किसने प्रणाम किया ?

3- सत्य/असत्य बताइए ?

- राम के प्रसाद से शम्बूक दिव्य स्वरूप प्राप्त करता है।
- वैराज लोकों में पवित्र सम्पत्तियाँ हैं।
- शम्बूक स्वयं को सेवक नहीं समझता है।
- राम ने पुनः दण्डकारण्य में प्रवेश नहीं किया।

4- सही विकल्प छांटकर लिखिए:

- दण्डकवन में राम का आगमन हुआ -

(अ) लंका से (ब) चित्रकूट से

(स) प्रयाग से (द) अयोध्या से

5- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

- वैराजा नाम ते लोकास् ---- सन्तु ते शिवाः।
- अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने -------शरण्यः।
- स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो -------- ।
- चतुर्दशसहस्राणि ---------राक्षसाः।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि आत्रेयी वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में अध्ययन करने वाली तपस्विनी है। वह उनके आश्रम को छोड़कर अगस्त्य आश्रम में जा रही है। वाल्मीकि के यहाँ अध्ययन में दो विघ्न उपस्थित हो रहे हैं। एक तो वाल्मीकिजी आजकल रामायण का प्रणयन कर रहे हैं। दूसरे गंगा देवी ने वाल्मीकि जी के पास कुश और लव नामक दो बालकों को छोड़ दिया है, जिनको जन्म से ही जृम्भकास्त्र सिद्ध हैं। जिनके साथ आत्रेयी का अध्ययन नहीं हो पाता है। वह वासन्ती से अगस्त्य आश्रम का मार्ग पूछती हैं दोनों के सीता विषयक वार्तालाप से सूचना मिलती है कि सीताजी शापवश निर्वासित कर दी गई हैं। ऋष्यशृंग का यज्ञ समाप्त हो गया है। रामचन्द्र जी ने अश्वमेध आरम्भ कर दिया है। राज्य में एक ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हुई है। वह तभी जीवित हो सकता है जब राम जनस्थान में तपस्या करने वाले शूद्रमुनि शम्बूक का वध करें। अतः राम का जनस्थान में उपस्थित होना निश्चित है। विष्कम्भक समाप्त होता है।रामचन्द्र जी जनस्थान में उपस्थित होकर शम्बूक का वध कर देते हैं। वह दिव्य पुरुष बनकर ब्राह्मण पुत्र के जीवित हो जाने की सूचना देता है और राम की स्तुति करता है। राम शम्बूक के तप की महिमा का वर्णन करते हैं। उसकी उक्तियों से रामचन्द्रजी समझ लेते हैं कि वे उस समय जनस्थान में हैं।

3.6 शब्दावली

अर्घ्यम्- अर्घः पूजाविधिः, अर्घाय हितम् अर्घ्यम्। फल, पुरुष आदि पदार्थों को जल सहित पूज्य जनों को दिया जाना अर्घ्यदान कहलाता है।

प्रियप्राया - प्रिया प्रायेणेति प्रियप्राया। सज्जनों का व्यवहार सभी के साथ प्रायः प्रिय होता है।

अविपर्यासितरसम् - विपर्यासितो रसो यस्य तद्विपर्यासिरसं, तथा न भवतीति अविपर्यासिरसम् तुल्य सुखम् इत्यर्थः।

दण्डकारण्योपवनप्रचारः - दण्डकारण्यस्योपवनमिति दण्डकारण्योपवनम्, पर्यटनम् इत्यर्थः।

त्रयीवर्जम् - त्रयीं वर्जयित्वा। त्रयी$वर्जि (चुरादि) $ णमुल्।

ब्रह्मर्षिः - ब्रह्मा चासौ ऋषिः ब्रह्मर्षिः। जो जन्मना ब्राह्मण होते हैं।

एकदा - एकस्मिन् काले एकदा।

वध्यमानम् - वध्यत इति वध्यमानस्तम्।

आविर्भूतशब्दब्रह्मप्रकाशम् - आविर्भूतः शब्दब्रह्मणः प्रकाशो यस्मिन्। वैयाकरणों के अनुसार शब्द ब्रह्मरूप है।

भूतभावनः - भावयति जनयतीति भावनः, भूतानां भावनः इति भूतभावनः संसारोत्पादक।

3.7अभ्यास प्रश्न

खण्ड एक 1-

- तापसी
- वनदेवता
- चूलिका
- आत्रेयी

2-

- सज्जनों का चरित्र सर्वोत्कृष्ट होता है।
- सज्जनों का संग किसी पुण्य के प्रभाव से होता हैं।
- अगस्त्य आदि ऋषि दण्डकारण्य में निवास करते हैं।

- किसी देवता ने भगवान् वाल्मीकि को बच्चों का एक जोड़ा सौंपा है।

3-

- सत्य
- असत्य
- सत्य
- सत्य

4- वाल्मीकि ने

5-

- कुसुमादपि
- पृथिव्यां
- शाश्वतीः
- प्रासङ्गिकीनाम्

खण्ड दो

1-

- राम
- करुणा
- शम्बूक
- तैजस

2-

- राम का हाथ सीता का परित्याग करने में दक्ष है।
- राम के अनुग्रह से ब्राह्मण पुत्र जीवित हो उठा।
- सत्संग से उत्पन्न मृत्यु भी तारने वाली होती है।
- राम के चरणों में शम्बूक ने प्रणाम किया।

3-

- सत्य
- सत्य
- असत्य
- असत्य

4- (स) अयोध्या से

5-

- तैजसाः
- लोकनाथः
- भीषणाभोगरूक्षाः
- चतुर्दश च

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1- भवभूति, उत्तर रामचरित (सम्पूर्ण), व्याख्या-आचार्य प्रभुदत्त स्वामी, (1988) ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

2- भवभूति, उत्तररामचरितम्, व्याख्या-डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल (1986-87)

साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1- भवभूति, उत्तर रामचरितम्, व्याख्या-डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, (2008) चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-221001

2- भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अनु0 डॉ0 रघुवंश, (1964) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- उत्तररामचरित की नाटकीय विशेषताएँ बताइए ?

2- भवभूति और कालिदास की तुलना कीजिए ?

3- ’कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते’ इस कथन की व्याख्या कीजिए ?

4- उत्तर रामचरित में प्रकृति-चित्रण के वैशिष्ट्य का निरूपण कीजिए ?

इकाई 4: उत्तररामचरितम् -द्वितीय अंक का उत्तरार्द्ध

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मुख्य भागः खण्ड एक (श्लोक 16 से 23 तक) मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी
4.4 खण्ड दो (श्लोक 24 से 30 तक) मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं टिप्पणी
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीय नाट्य एवं नाट्यशास्त्र से संबन्धित यह चौथी इकाई है। तीसरी इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके हैं कि शम्बूक वध के पश्चात् दिव्य पुरुष बनकर ब्राह्मण पुत्र के जीवित हो जाने की सूचना देता है तथा रामचन्द्रजी से आशीर्वाद प्राप्त करता है। इस इकाई के अन्तर्गत आप पंचवटी प्रवेश के उत्तरार्द्ध का अध्ययन करेंगे।

रामचन्द्रजी के सीता विषयक प्रेम की पुष्टि के लिये यह आवश्यक है कि वे जिन स्थानों पर उनके साथ रहे थे, उनका एक बार दर्शन अवश्य करें। अपनी प्रजा के हित के लिए, ब्राह्मण-पुत्र के उद्धार के लिए उनका इस स्थान में प्रवेश होता है; किन्तु पूर्वपरिचित स्थान में आकर वे सीता जी को भुला नहीं पाते। वे पति तथा राजा दोनों ही रूपों में लोकोत्तर हैं। बारह वर्ष तक अन्दर ही अन्दर सिसकता राम का सीता विषयक प्रेम वन में आकर प्रदीप्त हो उठता है। उनका प्रजानुरंजन का आदर्श उनके पत्नी प्रेम को अरण्यरोदन बना देता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि यहाँ बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से रामचन्द्र जी के चरित्र का विकास हुआ है, जो कवित्व, अनुभूति और सत्यता से ओत-प्रोत है।

4.2 उद्देश्य

इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुभूति कर सकेंगे।
- विशुद्ध प्रेम का प्रभाव समझ सकेंगे।
- देवयान मार्ग का विश्लेषण कर सकेंगे।
- संसार की परिवर्तनशीलता को जान पाएंगे।
- वन्य जीवों की चेष्टाएं पहचान सकेंगे।
- प्रकृति प्रेम का अनुभव कर सकेंगे।
- प्रियजन के विरह को समझ सकेंगे।
- महापुरुषों के जीवन की व्याख्या कर सकेंगे।

4.3 मुख्य भागःखण्ड एक

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः

स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।

सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं

तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते ।। १६।।

अर्थ - कहीं एकदम निस्तब्धता छायी है और कहीं हिंसक पशुओं का घोर गर्जन सुनाई पड़ रहा है। कहीं स्वेच्छा से सुखपूर्वक सोये हुए मोटे-मोटे सर्पों की फुङ्कारों से आग धधक उठी है। कहीं-कहीं गड्ढों में थोड़ा सा पानी पड़ा हुआ है और कहीं प्यास से व्याकुल गिरगिट अजगर के पसीने को पीकर अपनी प्यास बुझा रहे हैं।

व्याख्या- जनस्थान के वन प्रदेशों से परिचय कराता हुआ शम्बूक श्रीरामचन्द्र से कहता है कि इस भयंकर वन के सीमान्त प्रदेशों में कहीं पर तो पक्षियों का कूजन भी सुनाई नहीं दे रहा है और कहीं दूसरे भाग में भयंकर जंगली प्राणियों के शब्द सुनाई पड़ रहे हैं अन्यत्र सानन्द सोये हुए विशालकाय अजगर तीव्र श्वास छोड़ रहे हैं; जिससे सर्वत्र आग फैल रही है। कहीं पर्वतीय गड्ढों के मध्य भाग में थोड़ा सा पानी झिलमिला रहा है और कहीं प्यास से बेचैन गिरगिट पानी न मिलने के कारण अजगर के शरीर से निकले पसीने को पीकर अपनी प्यास शान्त कर रहे हैं।

टिप्पणी - प्रकृति के चतुर 'चित्रकार' भवभूति ने अपने नाटकों में प्रकृति का बहुत ही सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण किया है। यहाँ दण्डकारण्य की भीषणता का सच्चा चित्र देखने को मिलता है।

रामः- पश्यामि च जनस्थानं भूतपूर्वखरालयम्।

प्रत्यक्षानिव च वृत्तान्तान् पूर्वाननुभवामि च।।17।।

(सर्वतोऽवलोक्य) प्रियारामा हि वैदेह्यासीत्। एतानि नाम कान्ताराणि। किमतःपरं भयानकं स्यात्? (सास्रम्)

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु।

इतीवारमते हासौ स्नेहस्तस्याःस तादृशः।।18।।

न किंचिदपि कुर्वाणःसौख्यैर्दुःखान्यपोहति।

तत्तास्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।।19।।

अर्थ- राम- मैं खर के भूतपूर्व निवासालय 'जनस्थान' को देख रहा हूँ और बीते हुए वृत्तान्तों का वर्तमानवत् अनुभव कर रहा हूँ।

(चारो ओर देखकर) सीता को उपवन (बहुत) प्रिय थे। परन्तु ये महावन हैं। इससे अधिक और क्या भयानक बात होगी?

(आंखों में आंसू भरकर)

''मैं आपके साथ मधु के मधुर गन्ध से सुरभित वनों में रहूँगी'' इस प्रकार (कह कहकर) उसका मन यहाँ लगा रहता था। उसका यह कैसा (अद्भुत) प्रेम था?

जो जिसका प्रिय होता है, वह(उसके लिए) कुछ न करता हुआ भी सुखों से दुःख दूर कर देता है। प्रिय व्यक्ति प्रेमी के लिए कोई अनिर्वचनीय द्रव्य होता है।

व्याख्या- भगवान् राम ने भी जनस्थान के वृत्तान्त को स्मरण करके कहा कि पहले जहाँ खर का निवासस्थान था, मैं उस जनस्थान को देख रहा हूँ। साथ ही वहाँ बीते हुए वृत्तान्तों का प्रत्यक्षवत् अनुभव कर रहा हूँ। सीता को याद करके शोक प्रकट करते हुए राम कहते हैं कि वैदेही को उपवन प्रिय थे। यहाँ ये विशाल वन हैं। विधि की विडम्बना कितनी विचित्र होती है? अयोध्या से चलते समय सीता ने कहा था-''प्राणनाथ! मैं आपके साथ मधु सुगन्धित वनों में निवास करूँगी। मुझे वहाँ कोई कष्ट नहीं होगा।'' यह कह कहकर वह वहाँ क्रीडारत रही थी। ओह! उसका वह स्नेह कितना मधुर था। आज कैसे सब बदल गया? समय की गति को कौन जान सकता है?

यह कथन वस्तुतः सत्य है कि जो जिसका प्रिय जन होता है वह उसके लिए चाहे कुछ भी कार्य न करे; परन्तु 'यह मेरा प्रिय है' इस प्रकार के स्मरण मात्र से सुख तो प्रदान करता ही है साथ ही दुःखों को दूर कर देता है। अतः प्रिय जन कोई अनिर्वचनीय द्रव्य होता है। यही कारण है कि मैं सीता के स्मरण मात्र से किसी अलौकिक सुख का अनुभव कर रहा हूँ।

टिप्पणी- भूतपूर्वखरालयम्-पूर्वं भूतः भूतपूर्वः। भूतपूर्वः खरालयो यस्मिन् तम्।

प्रियारामा- आरमते यस्मिन्निति आरामः। प्रियः आरामः अस्याःइति प्रियारामा।

तत्तास्य किमपि द्रव्यम्-यहाँ द्रव्य का प्रयोग कर कवि ने अपनी शब्द प्रयोग चातुरी का परिचय दिया है। इस श्लोक में कवि ने विशुद्ध प्रेम का प्रभाव बताया है। द्रव्य शब्द के प्रयोग से कवि की सहृदयता तथा दार्शनिकता प्रकट होती है।

शम्बूक:-तदलमेभिर्दुरासदैः।.......................

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्त-

प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।

फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंज-

स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः।।20।।

अपि च

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-

मनुरसितगुरूणिस्त्यानमम्बूकृतानि।

शिशिरकटुकषायःस्त्यायते शल्लकीना-

मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः।।21।।

अर्थ - **शम्बूक** -इन दुर्गम वनों को रहने दीजिए।..................

यहाँ मस्त पक्षियों से आश्रित वेतस से गिरे हुए पुष्पों से सुगन्धित, शीतल और स्वच्छ जलवाली, फलसमूह के परिपाक से श्याम वर्णवाले घने जामुन कुंजों में गिरने से शब्दायमान अनेक प्रवाहों वाली नदियाँ बहती हैं।

यहाँ पहाड़ों की गुफाओं में रहने वाले तरुण रीछों के थूकने का शब्द प्रतिध्वनित होकर और अधिक बढ गया है। यहाँ हाथियों के द्वारा तोड़ी तथा इधर-उधर फैलाई हुई सल्लकी लताओं की ग्रन्थियों के रस का शीतल,तीक्ष्ण और कषैला गन्ध फैल रहा है।

व्याख्या - महावन के दर्शन से उत्कण्ठित राम का मनोविनोद करने के लिए शम्बूक राम से कहता है कि बीती हुई बातों की याद दिलाकर दुःख उत्पन्न करने वाले इन दुर्गम वनों के वर्णनों को रहने दीजिए। यहाँ मद के कारण किलोल करने वाले पक्षियों के बैठने से हिलने के कारण किनारों पर उगी हुई वेंत की लताओं के पुष्प जल में गिर रहे हैं; जिससे कि स्वभाव से ही मधुर और शीतल नदियों का जल सुगन्धित हो रहा है। उनकी धाराएँ फलों से लदे हुए काले-काले जामुन के कुंजों से टकराने पर अत्यन्त शब्द करती हुई अनेक धाराओं में बह रही हैं।

इस महावन की पर्वतीय गुफाओं में अनेक प्रौढ़ भालू रहते हैं। वे उच्च स्वर से थूकते हैं; जिस कारण स्वाभाविक होता हुआ भी उनका शब्द प्रतिध्वनित होकर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। दूसरे यहाँ हाथियों द्वारा खाने योग्य शल्लकी लता मसल दी जाती है। इधर-उधर गिरायी गई उसकी शीतल,कटु और सुरभित गन्ध वन में सर्वत्र फैल रही है।

टिप्पणी - कुहरभाजाम्-कुहरं भजन्ते इति कुहरभाजस्तेषाम्। अम्बूकृतानि-अनम्बु अम्बु कृतानि इति अम्बूकृतानि।

रामः -(सवाष्पस्तम्भम्) भद्र! शिवास्ते पन्थानो देवयानाः। प्रलीयस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः।

शम्बूकः -यावत्पुराणब्रह्मर्षिमगस्त्यमभिवाद्य शाश्वतं पदमनुप्रविशामि।

(इति निष्क्रान्तः)

रामः- **एतत्पुनर्वनमहो कथमद्य दृष्टं**

यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा वसन्तः।

आरण्यकाश्च गृहिणश्च रताः स्वधर्मे

सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः।।22।।

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-

स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।

आमंजुवंजुललतानि च तान्यमूनि

नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि।।23।।

अर्थ - राम - (उमड़ते हुए आंसुओं को रोककर) सौम्य! देवयान नामक (देवताओं के) मार्ग तुम्हारे लिए कल्याणकारी हों। पुण्यलोकों मे जाने के लिए तैयार हो जाओ।

शम्बूक- मैं पहले पुरातन ब्रह्मर्षि 'अगस्त्यजी' को प्रणाम कर (तदनन्तर) चिरन्तन लोकों में प्रवेश करता हूँ।

राम- 'ओह! यह वन आज फिर क्यों दीख गया? जिसमें हम लोग पूर्वकाल में बहुत समय तक एक साथ वानप्रस्थ और गृहस्थ के रूप में निवास करते हुए स्वधर्म में तत्पर रहकर सांसारिक सुखों का भी आनन्द प्राप्त करते रहे थे'।।**22**।।

'मोरों की ध्वनि से युक्त ये वे ही पर्वत हैं। ये वे ही मस्त हिरनों वाले वनस्थल हैं। सचमुच सुन्दर अशोक तरुओं के विस्तार वाले और सघन कदम्बों तथा वेतों वाले ये वे ही सरिता तट हैं'।।**23**।।

व्याख्या- किसी तरह आंसुओं को रोककर भगवान् राम ने शम्बूक से कहा- भद्र! देवलोक को जाने वाले तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों। तुम पवित्र लोकों को प्राप्त करने के लिए अन्तरिक्ष में लीन हो जाओ। यह सुनकर शम्बूक ने कहा कि मैं पहले वृद्ध ब्रह्मर्षि श्रीअगस्त्य को अभिवादन कर, पश्चात् अन्तरिक्ष में प्रवेश करूँगा।

शम्बूक के चले जाने पर दण्डकारण्य के भूभागों को देखकर राम कहते हैं कि यह वन क्यों दिखायी दे गया। पुरानी स्मृतियों को ताजा करने वाला यह वन मुझ सीता विरहित राम को दिखायी नहीं देता तो अच्छा था। यहाँ हम अपने वनवासी धर्म में तत्पर रहकर आरण्यक भी रहे और सांसारिक सुखों के प्रति रसज्ञ होकर गृहस्थ भी रहे। मुझे याद है कि ये सामने विद्यमान गिरि, वनस्थल और सरितायें सब वे ही हैं; जो पहले वनवास के दिनों में हमारे साथी रहे थे।

टिप्पणी- देवयानाः- ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग; जो साधक ज्ञानी को अनेक स्थानों से पार कराते हुए ब्रह्म तक ले जाते हैं; जहाँ से पुनरावर्तन नहीं होता।

शाश्वतं पदम्- जो देवयान मार्ग से जाता है वह फिर नहीं लौटता। अतः यहाँ शाश्वत पद कहा गया है।

अभ्यास प्रश्न

1.एक शब्द में उत्तर दीजिए:

क. कहीं निस्तब्धता और कहीं घोर गर्जन का स्थान है?
ख. सर्पों की फुंकारों से क्या धधक उठी है?
ग. प्यास से व्याकुल गिरगिट क्या पी रहे हैं?
घ. गड्ढों में थोड़ा सा क्या पड़ा है?

2. एक वाक्य में उत्तर दीजिए:

क. भवभूति ने अपने नाटकों में प्रकृति का कैसा चित्रण किया है?
ख. भवभूति प्रकृति के कैसे चित्रकार हैं?
ग. खर के भूतपूर्व निवास का क्या नाम है?
घ. उपवन किसे प्रिय थे?

3. सत्य/असत्य बताइए:

क. सीताजी राम के साथ सुरभित वनों में रहना चाहती थीं।
ख. दण्डकारण्य में सीता का मन नहीं लगता था।
ग. प्रिय जन दुःख दूर करता है।
घ. प्रिय व्यक्ति कोई अनिर्वचनीय द्रव्य नहीं होता है।

4. सही विकल्प छांटकर लिखिए:

प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षक हैं।

(अ) माघ (ब) भारवि

(स) सुबन्धु (द) भवभूति

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

क. तस्य किमपि...........यो हि यस्य..........जनः।त्ता
ख. एतत्पुनर्वनमहो..................दृष्टम्।
ग. शिवास्ते...........................देवयानाः।
घ. यस्मिन्नभूम चिरमेव.........वसन्तः।

4.4 खण्ड दो

मेघमालेव यश्चायमारादिव विभाव्यते।

गिरिःप्रस्रवणःसोऽयमत्र गोदावरी नदी।।24।।

अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास-

स्तस्याधस्ताद्वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु।

गोदावर्याः पयसि विततानोकहश्यामलश्री-

रन्तः कूजन्मुखरशकुनो यत्र रम्यो वनान्तः।।25।।

अर्थ- और यह जो मेघमाला की भांति निकटवर्ती सा जान पड़ता है,यह वही प्रस्रवण पर्वत है। यही वह गोदावरी नदी है। इसी की ऊँची चोटी पर गृध्रराज का निवास था। उसके नीचे वाले भूभाग में हम लोग भी पर्णशाला में सुख से रहते थे। जहाँ पर गोदावरी के जल में फैली हुई वनस्पतियों की श्यामल शोभा वाला, भीतर निरन्तर चहचहाते हुए पक्षियों की ध्वनि से गूंजता हुआ रमणीय वनभाग है।

व्याख्या- प्रस्रवण पर्वत और गोदावरी नदी को देखकर राम कहते हैं कि यह जो दूर होने पर भी समीप सा घटा के समान ज्ञात हो रहा है। यह वन हमारा पूर्वानुभूत प्रस्रवण नाम का पर्वत है। इस पर्वत प्रान्त में गोदावरी नाम की नदी है।

इस पर्वत के ही एक बडे शिखर पर गृध्रराज जटायु का निवास था। इस शिखर के नीचे की ओर अपने

हाथ से बनाये हुए पर्णकुटीरों में हम सब-मैं, सीता और लक्ष्मण आराम से रहते थे। यह ऐसा सुन्दर स्थान है कि जहाँ गोदावरी के जल में प्रतिबिम्बित वृक्षों की श्यामल कान्ति वाला, चहचहाते पक्षियों वाला; अत एव भीतर से गूंजता हुआ सुन्दर वन प्रदेश है।

टिप्पणी- गृध्रराजस्य वासः- गृध्राणां राजा गृध्रराजः। ''राजाहः सखिभश्टच्'' इति टच् समासान्तः।उष्यतेऽस्मिन्निति वासः। वस्$घञ् करणे।

अत्रैव सा पंचवटी, यत्र निवासेन विविधविस्रम्भातिसाक्षिणः प्रदेशाः,प्रियायाः प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता। किमिदमापतितमद्य रामस्य? संप्रति हि।

चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः

कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः।

व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः

पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव।।26।।

अर्थ- यहीं पर वह पंचवटी है, जिसमें निवासकाल के हमारे अनेक उन्मुक्त ऐकान्तिक विलासों के साक्षीभूत प्रदेश हैं और जहाँ प्रिया सीता की प्रियसखी वासन्ती नाम वाली वनदेवता रहती है। इस वियोगी राम के सम्मुख यह सब दृश्य आज क्यों उपस्थित हुआ? क्यों कि इस समय-

'चिरकाल के बाद सीता परित्याग का पुराना शोक, नया सा होकर मुझे बेचैन कर रहा है। लगता है जैसे चिरकाल के बाद जिसका वेग बढ़ना प्रारम्भ हुआ हो, वह तीव्र विष फैल गया है या भीतर चुभा हुआ बाण की नोंक का टुकड़ा किसी आघात से चलायमान हो उठा है या जिसकी ऊपरी सतह सूख गई थी- ऐसा हृदय के कोमल कोने में स्थित घाव मानों फिर चटक गया है।'

व्याख्या- पुराना होकर भी शोक नया सा होकर आज फिर दुःखी कर रहा है इस आशय से राम कहते हैं कि आज इस पंचवटी और वनवास काल में हमारे ऐकान्तिक तथा विलासों के साक्षी इन वन प्रदेशों को सामने देखकर बारह वर्ष पुराना वह शोक फिर से नवीन सा हो उठा है। जैसे किसी व्यक्ति को लम्बी अवधि के बाद असर करने वाला तीखा विष खिला दिया जाता है, वह उस विष को बहुत समय तक भीतर ही भीतर पचाए रहता है; परन्तु वह विष चिरकाल के पश्चात् अपने वेग को बढाना आरम्भ करके सारे शरीर में फैल जाता है; जैसे किसी योद्धा के शरीर में बाण की नोंक टूटकर भीतर ही चुभी रह जाती है और चिरकाल तक पड़ी रहती है; परन्तु किसी आकस्मिक आघात को पाकर अपनी जगह से हट जाती है फिर अपनी जगह बनाने के लिए मांस के भीतर चलती हुई अत्यन्त वेदना पैदा करती है। ठीक इसी तरह यह पंचवटी और इसके प्रदेश अकस्मात् आज मेरे सम्मुख आ पड़े हैं। इन्हें देखकर सीता का वह अगाध निश्छल स्नेह उद्बुद्ध हो गया है, जिसने बारह

वर्ष तक हृदय में छिपाकर रखे हुए सीता सम्बन्धी पुराने शोक को फिर ताजा कर दिया है, जिससे मेरे हृदय में विकलता बढ़ रही है।

टिप्पणी- शल्यस्य शकलः-शल्य (बाण के अग्रभाग) का टुकड़ा।

रूढग्रन्थिः- रूढो ग्रन्थि र्यस्मिन् तादृशः, जिस पर खुरण्ड आ गया है।

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां

विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।

बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं

निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति।।27।।

अर्थ- पहले जहाँ नदियों की धारा बहती थी वहाँ अब वालुकामय तट विद्यमान है। वृक्षों की सघनता और विरलता भी बदल गयी है। बहुत काल के पश्चात् देखे हुए इस वन को मैं अन्य वन की तरह समझ रहा हूँ। केवल पर्वतों की यथास्थान स्थिति 'यह वही वन है' इस बुद्धि को दृढ़ कर रही है।

व्याख्या- पूर्वकाल में जब कि राम सीता और लक्ष्मण के साथ पंचवटी में रहे थे, उस समय को बीते हुए अब कम से कम पच्चीस वर्ष हो चुके हैं। उन दिनों नदियों की धारा जिस स्थान पर बहती थी। अब वह अन्यत्र बहने लगी है और धारा के स्थान पर बालू की ढांग खड़ी हुई है। वन के वृक्ष जहाँ बहुत सघन थे, वहाँ छीदे हो गये हैं। इस प्रकार बहुत काल के बाद देखा गया यह वन पहले वन से भिन्न कोई दूसरा वन सा प्रतीत होता है; परन्तु पहाड़ों की स्थिति जहाँ की तहाँ है। उन्हें देखकर ही यह विश्वास दृढ़ होता है कि ये वे ही वन हैं जो पच्चीस तीस वर्ष पूर्व देखे थे।

टिप्पणी- यहाँ कवि ने संसार की अस्थिरता की एक झांकी दिखलायी है। समय के प्रभाव से कोई पदार्थ नहीं बच सका है। संसार परिवर्तनशील है। इस परिवर्तन के प्रवाह में लघुकाय पदार्थ अपनी सत्ता एकदम खो बैठते हैं; परन्तु महापुरुष पर्वत की भांति अचल रहकर अपनी कीर्ति कौमुदी का विस्तार करते रहते हैं।

हन्त! हन्त! पहिरन्तमपि मां पंचवटी स्नेहाद्बलादाकर्षतीव। (सकरुणम्)

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे

यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत।

एकः सम्प्रति नाशितप्रियतमस्तामद्य रामः कथं

पापः पंचवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य च।।28।।

अर्थ- हाय! हाय!(इस स्थान को) छोड़कर जाते हुए भी मुझे यह पंचवटी बलपूर्वक खींच सी रही है।(शोक पूर्वक)

‘जिस पंचवटी में मैंने सीता के साथ अपने घर की भांति वे सुखमय दिन बिताये थे। जिसकी लम्बी चर्चाएँ हम सदा करते रहते थे। उस पंचवटी को आज स्वयं अपनी प्रिय पत्नी को नष्ट कर देने वाला यह पापी राम अकेला भला कैसे देखे? अथवा कैसे उसकी उपेक्षा करके चला जाय?

व्याख्या- पंचवटी को सामने देखकर राम को सीता के साथ वहाँ बिताये दिन याद आते हैं। वे कहते हैं कि यह स्नेह से मुझे बलात् अपनी ओर खींच सी रही है। मैं सीता के साथ जिस पंचवटी में घर की तरह रहा हूँ और बाद में भी जिससे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं की ही सदा चर्चा करता रहा हूँ। अब, जब कि मैं पंचवटी के निवास की एकान्त संगिनी अपनी प्रिया को स्वयं अपने हाथ से गंवा चुका हूँ; यदि अकेला देखता हूँ तो हृदय फटता है और बिना देखे रहा भी नहीं जाता, कैसी दुःख की बात है? सूझता ही नहीं कि क्या करना चाहिए?

टिप्पणी- पापः- इस शब्द से रामचन्द्रजी की आत्मग्लानि प्रकट होती है। असम्भाव्य- बिना सत्कार किये।

(प्रविश्य)

शम्बूकः-जयतु देवः। भगवानगस्त्यो मत्त: श्रुतिसन्निधानस्त्वामाह - परिकल्पितावरणमङ्गला प्रतीक्षते वत्सला लोपामुद्रा, सर्वे महर्षयः। तदेहि सम्भावयास्मान्। अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगम्याश्वमेधसज्जो भव इति।

रामः-यथाज्ञापयति भगवान्।

शम्बूकः- इत इतो देवः।

रामः-(पुष्पकं प्रवर्तयन्) ‘भगवति पंचवटि! गुरुजनादेशोपरोधात्क्षणं क्षम्यतामतिक्रमो रामस्य।

शम्बूकः- देव! पश्य-

अर्थ- शम्बूक- महाराज की जय हो! मेरे द्वारा आपके शुभागमन का समाचार सुनकर भगवान् अगस्त्यजी ने आपके लिए कहा है- ‘‘पूजा का साज सजाकर वात्सल्यमयी लोपामुद्रा तथा सब महर्षिगण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतः आइए और हमारा मान बढ़ाइए। तदनन्तर तीव्रगामी पुष्पक विमान से अयोध्या में पहुँचकर अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित हो जाइए।

राम-जो भगवान् की आज्ञा।

शम्बूक-महाराज! इधर से (पधारिए) इधर से।

राम-(पुष्पक को घुमाते हुए) भगवति! पंचवटि! गुरुजनों की आज्ञा पालन करने के कारण थोड़ी देर के लिए राम के इस अतिक्रमण (लांघ कर जाने के अपराध) को क्षमा कीजिए।

शम्बूक- देव! देखिए-

व्याख्या- प्रवेश करके शम्बूक राम के समक्ष महर्षि अगस्त्य का संदेश देता है कि महाराज की जय हो। भगवान् अगस्त्य ने मेरे मुंह से आपकी यहाँ उपस्थिति को सुनकर आपके लिए कहा है कि ‘आपके प्रति अपत्य स्नेह रखने वाली लोपामुद्रा (अगस्त्य पत्नी) आरती संजोए आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। सभी महर्षि भी आपके आगमन की प्रतीक्षा में हैं। अतः आइए, हम लोगों का मान रखिए। उसके बाद अपने तीव्रगामी पुष्पक द्वारा स्वदेश पहुँचकर अश्वमेध यज्ञ में तत्पर होइए।

टिप्पणी- परिकल्पितावरणमंगला- परिकल्पितम् आवरणमंगलं यया सा।

गुरुजनोपरोधात्- गुरुजन+उप+रुध्+घञ्, पंचमी, एकवचन। इससे श्रीराम की मर्यादाप्रियता ध्वनित होती है।

- **गुंजत्कुंजकुटीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कीचक-**

स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौंचाभिधोऽयं गिरिः।

एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताःकूजितै-

रुद्वेलन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः।।29।।

अर्थ- यह सामने क्रौंच पर्वत है; जहाँ कुटीराकार कुंजों में उल्लुओं का समूह घुंघा रहा है। उसकी गूंजती हुई घुंघाहट से भयभीत होकर (समीपस्थ) बासों के झुरमुट में स्थित कौओं का समूह मौन धारण किये हुए है। यहाँ बड़ी संख्या में मोर पक्षी इधर-उधर विचरते हुए मस्ती में कूक रहे हैं। उनकी आवाज से डरे हुए सर्प पुराने चन्दन वृक्षों के तनों पर लिपटे हुए मचल रहे हैं।

व्याख्या- क्रौंच पर्वत की शोभा दिखाने के लिए शम्बूक राम से कहता है कि महाराज! यह क्रौंच नाम का पर्वत है। इसका अवलोकन भी आवश्यक प्रतीत होता है। इसके कुंज कुटीरों में स्थित उल्लुओं की घटा का घुत्कार हो रहा है; उससे युक्त सच्छिद्र बासों के सघन झुरमुट में भय से कौए मौन धारण किये हैं। इस पर्वत पर इधर उधर फिरते हुए मोरों के कूजन से भयभीत सर्प चन्दन के वृक्षों

की शाखाओं में लिपट रहे हैं।

टिप्पणी- यहाँ क्रौंच पर्वत के व्याज से संसार का स्वरूप निरूपण किया गया है। सभी प्राणी यहाँ भयभीत होकर निवास कर रहे हैं।

अपि च-

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद् गोदावरीवारयो

मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।

अन्योऽन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-

रुत्तालास्त इमे गभीरपयसःपुण्याःसरित्सङ्गमाः।।30।।

अर्थ- और भी-ये वे दक्षिणदिग्वर्ती पर्वत हैं; जिनकी गुफाओं में गोदावरी का जल गद्गद नाद कर रहा है। जिनके शिखरों के अग्रभाग मेघों से संश्लिष्ट हैं। अत एव नीले दिखायी दे रहे हैं। ये वे एक दूसरे से टकराकर कठिनाई से आगे बढ़ती हुई लहरों के शोर से युक्त, ऊपर से उछलते हुए गहरे जल वाले पवित्र नदी संगम हैं।

व्याख्या- फिर शम्बूक दक्षिण दिशा में विद्यमान पर्वतों और नदियों के संगमों का वर्णन करते हुए कहता है कि देव! ये दक्षिण दिशा में स्थित पर्वत अवलोकनीय हैं। इनके समीप कल-कल ध्वनि करती गोदावरी बड़े वेग से बह रही है। इन पर्वतों के ऊपरी भाग में नीले वादल सदा छाये रहते हैं। यहाँ नदियों के संगम भी दर्शकों को आकर्षित करते हैं। ये पवित्र संगम परस्पर कठिनाई से आगे बढ़ती हुई लहरों के शोर से युक्त एवम् उछलते हुए गहरे जल वाले हैं।

टिप्पणी- दाक्षिणाः- दक्षिणे भवा दाक्षिणाः, दक्षिणशब्दः स्वभावाद् दक्षिणदिग्वाची;अस्माद् भावार्थे शेषिकोऽण्।

अभ्यास प्रश्न

1. एक शब्द में उत्तर दीजिएः

- मेघमाला की भांति निकटवर्ती सा कौन सा पर्वत है?
- पर्वत प्रान्त में कौन सी नदी है?
- वनस्पतियों की श्यामल शोभा वाला कौन सा भाग है?
- गोदावरी के जल में क्या फैला है?

2. एक वाक्य में उत्तर दीजिएः

- पंचवटी में किसकी प्रियसखी वासन्ती रहती है?
- चिरकाल के बाद किसका शोक राम को बेचैन कर रहा है?
- ‘पुराभूतः’ किसका विशेषण है?
- पहले नदियों की धारा पर अब क्या विद्यमान है?

3. सत्य/असत्य बताइएः

- क्रौंच पर्वत की ऊँची चोटी पर गृध्रराज का निवास था।
- राम पंचवटी की लम्बी चर्चाएं सदा किया करते थे।
- बहुत काल के बाद पर्वतों की स्थिति बदलती है।
- नाशितप्रियतम राम का विशेषण है।

4. सही विकल्प छांटकर लिखिएः

- पुरातन ब्रह्मर्षि हैं।

  अ. वसिष्ठ ब. याज्ञवल्क्य

  स.वाजश्रवा द. अगस्त्य

5. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः**

- चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव............. विषरसः।
- पुरा यत्र स्रोतः............................तत्र सरिताम्।
- अस्यैवासीन्महति......................गृध्रराजस्य वासः।
- बहोर्दृष्टं कालादपरमिव..................वनमिदम्।।

4.5 सारांश

शम्बूक की उक्तियों से रामचन्द्र जी समझ लेते हैं कि वे जनस्थान में स्थित हैं। शम्बूक ब्रह्मषि अगस्त्य के दर्शन के लिए उनके आश्रम की ओर चला जाता है और रामचन्द्रजी अकेले रह जाते हैं। मयूरों के शब्दों से युक्त पर्वत, मयूरों से व्याप्त वनस्थलियाँ, विविध वृक्षों से ढके नदियों के किनारे,

प्रस्रवण पर्वत, गोदावरी नदी तथा पंचवटी आदि उनकी स्मृतियाँ जागृत कर उन्हें सीता का स्मरण करा देते हैं। पुराना शोक हृदय के मर्मस्थल में स्फुटित व्रण के समान नवीन सा होता हुआ उनको घेर लेता है। पंचवटी के प्रति राम का विशेष आकर्षण है; परन्तु सीता का अभाव उन्हें व्याकुल बनाये दे रहा है।इसी बीच शम्बूक अगस्त्य आश्रम से लौट आता है और भगवान् अगस्त्य का सन्देश रामचन्द्रजी को सुनाता है कि वे लोपामुद्रा तथा अन्य ऋषियों के साथ उनकी (रामचन्द्रजी) अपने आश्रम में प्रतीक्षा कर रहे हैं।अगस्त्य का आदेश सुनकर पंचवटी से क्षमा याचना करते हुए राम पुष्पक विमान द्वारा क्रौंच पर्वत एवं नदियों के संगम को देखते हुए चले जाते हैं।

4.6 शब्दावली

सीमानः- सिनोति बध्नाति इति सीमा।

मधुगन्धिषु- मधुनः गन्धः एषु इति मधुगन्धिनस्तेषु।

अलमेभिः- इन्हें रहने दीजिए।

दुरासदैः- दुःखद आसदो येषां तानि दुरासदानि, तैः।

भल्लूकयूनाम्- भल्लूकाश्च ते युवानस्तेषाम्ा्।

सल्लकी - गजलता-यह पहाड़ी जंगलों में मोटे तन्तुओं वालीएक बेल होती है।

शिशिरकटुकषायः- कटुश्चासौ कषायश्च कटुकषायः, शिशिरश्चासौ कटुकषाय इति शिशिरकटुकषायः।

प्रलीयस्व- प्र पूर्वक 'लीञ् श्लेषणे' धातु से लोट् म.पु. एकवचन ।

पुण्येभ्यो लोकेभ्यः- पुण्यान् लोकान् अनुभवितुमित्यर्थः। यहाँ अप्रयुज्यमान तुमुन् प्रत्ययान्त

नाशितप्रियतमः- नाशिता प्रियतमा येन सः।

प्रचलाकिनाम्- प्रचलाको बर्होऽस्यास्तीति प्रचलाकिन् मयूरस्तेषाम्।

पुराणरोहिणः- पुराने चन्दन के तनों पर।

कुम्भीनसाः- सर्पाः।

सरित्संगमाः- सरितां संगमः सरित्संगमस्ते। नदियों के संगम।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

खण्ड एक

1.

- जनस्थान
- आग
- पसीना
- पानी

2.

- भवभूति ने प्रकृति का बहुत ही सूक्ष्म एवं यथार्थ चित्रण किया है।
- भवभूति प्रकृति के चतुर चित्रकार हैं।
- खर के भूतपूर्व निवास का नाम जनस्थान है।
- सीता को उपवन बहुत प्रिय थे।

3.

- सत्य
- असत्य
- सत्य
- असत्य

4. (द)

5

- द्रव्यं, प्रियो
- कथमद्य
- पन्थानो
- पुरा

खण्ड दो

1

- प्रस्रवण
- गोदावरी
- वनभाग
- वनस्पतियाँ

2

- पंचवटी में सीता की प्रियसखी वासन्ती रहती है।
- चिरकाल के बाद सीता का शोक राम को बेचैन कर रहा है।
- ’पुराभूत’ शोक का विशेषण है।
- पहले नदियों की धारा के स्ािान पर अब बालुकामय तट विद्यमान है।

3

- असत्य
- सत्य
- असत्य
- सत्य

4 (द)

5

- तीव्रो
- पुलिनमधुना
- शिखरे
- मन्ये

4.8 सन्दर्भग्रन्थसूची

1. भवभूति, उत्तर रामचरित (सम्पूर्ण), व्याख्या- आचार्य प्रभुदत्त स्वामी,(1988) ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

2. भवभूति, उत्तर रामचरितम्, व्याख्या-डॉ0 कृष्णकान्तशुक्ल, (1986-87) साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ-2

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. भवभूति, उत्तर रामचरितम्: विचार और विश्लेषण, आचार्य प्रभुदत्त स्वामी ज्ञान प्रकाशन, मेरठ-2

2. भरतमुनि, नाट्यशास्त्रम्:व्याख्या- श्री बाबूलाल शुक्ल, शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-1

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तर राम चरित की नाटकीय विशेषताएँ बताइये।
2. उत्तर राम चरित के प्रधान एवं गौण रसों की मीमांसा कीजिए।
3. उत्तर राम चरित के पात्रों की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ लिखिये।

इकाई 1 - उत्तररामचरितम् तृतीय अंक का पूर्वार्द्ध

इकाई की रूपरेखा:

```
```

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 1 से 24 तक
(मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी)
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 सहायक ग्रन्थ
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

उत्तररामचरितम् से सम्बन्धित यह तृतीय खण्ड है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने प्रथम एवं द्वितीय अंक का अध्ययन किया। प्रथम अंक को कवि ने चित्रदर्शन नाम से नामांकित किया एवं द्वितीय अंक को कवि ने पंचवटी प्रवेश कहा है ।

इस ईकाई में उत्तररामचरितम् तृतीय अंक की सम्पूर्ण कथावस्तु के पूर्वार्द्ध को रखा गया है। उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक को महकवि भवभूति ने 'छाया' अंक नाम से नामांकित किया है। इसमें 'छाया' सीता की कल्पना कवि की मौलिक कल्पना है। जो नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राम का पंचवटी में वासन्ती से मिलन भी उनकी मौलिक उद्भावना है।तृतीय अंक के अन्तर्गत तमसा और मुरला नामक दो नदियों के वार्तालाप के माध्यम से ज्ञात होता है कि परित्यक्त होने के पश्चात् सीताजी प्राण विसर्जन हेतु गंगा जी में कूदती हैं और वहीं लव-कुश का जन्म होता है। गंगा जी उनके पुत्रों की रक्षा कर वाल्मीकि को सर्मिर्पत करती हैं। आज उनकी बारहवीं वर्षगांठ है इसलिए भगवती भागीरथी ने सीताजी को आज्ञा दी है कि वे अपने कुल उपास्य देव भगवान सूर्य की उपासना करें। उन्हें भागीरथी का वरदान है कि उन्हें पृथ्वी पर देवता भी नहीं देख सकते, पुरुषों की तो बात ही क्या है? इसके अनन्तर भगवान रामचन्द्र जी का प्रवेश होता है। वह पंचवटी प्रवेश में वनदेवी वासन्ती के साथ पूर्वानुभूत दृश्यों को देखकर सीता की स्मृति से अत्यन्त व्याकुल होते हैं। सीता अदृश्य रूप में उन्हें स्पर्श करके प्रबुद्ध करती हैं। इस प्रकार छाया नामक तृतीय अंक में सीता के हृदय की शुद्धि हो जाती है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि भागीरथी के वरदान के कारण सीता जी को पृथ्वी पर देवता भी नहीं देख सकते थे ! राम को अदृश्य रूप में स्पर्श कर उन्हें प्रबुद्ध कराया चूंकि पूरे अंक में सीता अदृश्य रूप में रही इसीलिए इस अंक का नाम छाया अंक पडा !

1. 2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

यह बता सकेगें कि इस अंक का नाम छाया अंक क्यों पड़ा।

- *प्रत्येक श्लोक तथा गद्य में आये हुए प्रमुख परिभाषिक शब्दों की व्युत्पत्ति परक व्याख्या भी समझा पायेगें।
- *अर्थ' बोध, 'पद' बोध की प्रक्रिया का ज्ञान भी प्राप्त कर पायेगें !
- *पद की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या के क्रम में व्याकरण का भी ज्ञान प्राप्त कर पायेगें।

1.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 1 से 24 तक (मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी

एका-सखि मुरले! किमसि सम्भ्रान्तेव ?

मुरला-सखि तमसे! प्रेषितास्मि भगवतोऽगस्त्यस्य पत्न्या लोपामुद्रया सरिद्वरां गोदावरीमभिधातुम्। जानास्येव यथा वधूपरित्यागात् प्रभृति -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।। 1 ।।

अन्वयः - गभीरत्वाद् अनिर्भिन्नः ;अत एव अन्तर्गूढघंनव्यथः, रामस्य करुणो रसः पुटपाकप्रतीकाशः ;अस्ति ।। 1 1।

अर्थ -(तदनन्तर दो नदियों 'तमसा' और 'मुरला' का प्रवेश)

एक-सखि मुरले! क्यों घबड़ाहट-वश उतावली-सी हो रही हो ?

मुरला-सखि तमसे! भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा के द्वारा मैं नदीश्रेष्ठ गोदावरी को ;यह कहने के लिए भेजी गयी हूँ - आप जानती ही हैं कि वधू ;सीता के परित्याग के समय से -

गाम्भीर्य के कारण बाहर अप्रकाशित, भीतर ही भीतर छिपी हुई गाढ व्यथा वाला राम का करुण रस ;सीतावियोगजन्य शोकावेग पुटपाक के समान है।। 1 ।।

प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार और अनुष्टुप छन्द ह

व्याख्या -पुटपाक-वैद्य लोग दो पात्रों ;शराव आदि के अन्दर कोई औषध अथवा सुवर्ण आदि रखकर उसपर से मिट्टी का लेप कर आग में रख देते हैं, जिससे भीतर ही भीतर उसका परिपाक होता है। उसके तैयार हो जाने पर उसे 'रस' की संज्ञा दी जाती है। ठीक यही दशा श्रीराम जी की भी है। सीता का वियोग उनके हृदय को भीतर ही भीतर जला रहा है। गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति होने के कारण अपनी व्यथा किसी के समक्ष अभिव्यक्त कर हृदय को हल्का भी नहीं कर पाते हैं।

करुणो रसः-यहाँ करुण रस की करुण शब्द से ही उक्ति होने के कारण 'रसस्योक्तिः स्वशब्देन' के अनुसार 'रसस्य स्वशब्दवाच्यता' दोष प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि यह दोष वहाँ होता है, जहाँ विभावादि से व्यंग्य रस का स्वशब्द से कथन किया जाय। यहाँ तो वह वस्तुरूप से ही स्थित है, अतः दोष की शंका नहीं की जानी चाहिए।

टिप्पणी -सम्भ्रान्ता - सम् +भ्रम +क्त ;(उपधा को दीर्घ)टाप्। प्रेषिता प्र + इष् + क्त;(कर्मणि)टाप्। अभिधातुम् -अभि +धा +तुमुन्। वधूपरित्यागात्प्रभृति - प्रभृति शब्द के योग में पंचमी होती है। भाष्य में कार्तिक्याः प्रभृति' ऐसा प्रयोग देखा जाता है।

तेन च तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना प्रकर्षगतेन दीर्घशोकसन्तापेन सम्प्रत्यतितरां परिक्षीणो रामभद्रः। तमवलोक्य कम्पितमिव मे सबन्धनं हृदयम्। अधुना च प्रतिनिवर्तमानेन रामभद्रेण नियतमेव पंचवटीवने वधूसहवासविस्रम्भसाक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्याः। तेषु च निसर्गधीरस्याप्येवंविधायामवस्थायामतिगम्भीराभोगशोकक्षोभसंवेगात् पदे पदे महान्ति प्रमादस्थानानि शंकनीयानि रामभद्रस्य। तद्भगवति गोदावरि! तत्र त्वया सावधानया भवितव्यम्।

वीचीवातैः शीकरक्षोदशीतैराकर्षद्भिः प़द्यकिंजल्कगन्धान्।

मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति।। 21।

अन्वयः - शीकरक्षोदशीतैः प़द्यकिंजल्कगन्धान् आकर्षद्भि स्वैरं स्वैरं प्रेरितैः वीचीवातैः

रामभद्रस्य जीवं मोहे मोहे तर्पय इति।। **2**।।

अर्थ -मुरला लोपामुद्रा के सन्देश के विषय में आगे कहती है वैसे प्रियजन ;सीता पर विपत्ति पड़ने से उत्पन्न एवं पराकाष्ठा को प्राप्त दीर्घकालव्यापी शोक की ज्वाला से इस समय रामभद्र बहुत अधिक कृश हो गये हैं। उनको देखकर मेरा ;लोपामुद्रा का बन्धनों के सहित हृदय काँप-सा गया। और अब ;अगस्त्याश्रम से अयोध्या को लौटते हुए रामभद्र पंचवटी वन में, वधू के साथ रहने के समय किये गये स्वच्छन्द विलासों के साक्षात् द्रष्टा उन प्रदेशों को अवश्य देखेंगे। और उन प्रदेशों में ऐसी अवस्था में स्वभावतः धैर्यशाली रामभद्र के लिए भी अत्यन्त प्रवृद्ध विस्तार वाले शोक के कारण क्षोभ के प्रबल हो उठने से पग-पग पर संज्ञाशून्यता के घोर अवसरों की संभावना है, अतः भगवति गोदावरि! वहाँ राम के विषय में तुम्हें सावधान रहना चाहिए।

मुरला, लोपामुद्रा के सन्देश का अवशिष्ट अंश कहती है - जलकणों के चूर्णों से शीतल, कमलकेसर के गन्ध को हरने वाले ;अतएव सुगन्धित तथा मन्द मन्द प्रेरित तरंगवायुओं से रामभद्र की चेतना को प्रत्येक मूर्च्छा में तृप्त करना - उन्हें होश में लाना।। **2**।।

प्रस्तुत पद्य में स्वभावोक्ति अलंकार तथा शालिनी छन्द है।

व्याख्या -सबन्धनम्-बन्धनों के सहित। यहाँ बन्धनों से स्नायुओं का अभिप्राय है, जो हृदय को सुदृढ़ रखने में सहायक होती हैं। हृदय के काँपने के साथ स्नायुओं का बन्धन भी शिथिल हो गया। अथवा हृदय को स्थिर रखने में मन और बुद्धि बन्धन का काम करती हैं, अतः बन्धन का अभिप्राय मन और बुद्धि से है अर्थात् हृदय आशंकाओं से भर गया और मन तथा बुद्धि उन आशंकाओं की पुष्टि करके भयभीत हो उठे।

टिप्पणी -इष्टः - इष् (इच्छायाम्) +क्त (कर्मणि)। अतितराम् - अति + तरप् + आम्। परिक्षीणः -परि +क्षि + क्त (कर्तरि)‘क्षि’ को दीर्घ, ‘क्त ’ के ‘त्’ को ‘न’। अवलोक्य - अव + लोक् + ल्यप्। कम्पितम् - कम्प्+क्त (कर्तरि) । प्रतिनिवर्तमानेन - प्रति + नि +वृत् +शानच् = प्रतिनिवर्तमानः, ततस्तृतीया। भवितव्यम् - भू +तव्य ;भावे ।

तमसा - उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। संजीवनोपायस्तु मौलिक इव रामभद्रस्याद्य सन्निहितः।

मुरला - कथमिव ?

तमसा - श्रूयताम्। पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात् परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतादेवी प्राप्तप्रसववेदनम् अतिदुःखसंवेगादात्मानं गंगाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं प्रसूता। भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्यामभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात् परेण च दारकद्वयं तस्याः प्राचेतसस्य महर्षेर्गंगादेवी स्वयमर्पितवती ।

मुरला ;(सविस्मयम्)-

ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः ।

यत्रोपकरणीभावामायात्येवंविधो जनः।। 3।।

अन्वयः - ईदृशानां विपाकोऽपि परमाद्भुतः जायते। यत्र एवंविधो जनः उपकरणीभावम् आयाति।। 3।

अर्थ - तमसा-(लोपामुद्रा की उदारता)उनके स्नेह के अनुरूप ही है, किन्तु होश में लाने का उपाय तो आज मौलिक रूप में रामचन्द्र के समीप स्थित है।

मुरला-;वह कैसे?

तमसा-सुनिए। कहा जाता है कि पूर्वकाल में ;सीता को छोड़कर, वाल्मीकि के आश्रम के समीप से लक्ष्मण के लौट जाने पर सीता देवी ने प्रसवपीडा से अभिभूत अपने को अत्यन्त दुःख के संवेग के कारण गंगा की धारा में फेंक दिया। तभी वहाँ ;उन्होंने दो शिशुओं को जन्म दिया। भगवती पृथ्वी और गंगा से अनुगृहीत ;सीता पाताल को पहुँचा दी गयीं। दूध छोड़ने के बाद उनके दोनों बच्चों को गंगा देवी ने स्वयं महर्षि वाल्मीकि को सौंप दिया।

मुरला ;विस्मय के साथ ऐसे ;महानुभाव लोगों का दशा-विपरिणाम भी अत्यन्त आश्चर्यजनक होता है, जिसमें इस प्रकार के लोग ;पृथ्वी-गंगा-वाल्मीकि सदृश उपकारक होते हैं।।3।।

इस पद्य में काव्यलिंग अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या - अभ्युपपन्ना-जिस पर दया की गयी, जिसे सान्त्वना दी गयी, जिसे कष्ट से मुक्त

किया गया। अभि+उप$+पद् का अर्थ होता है - दया करना, सान्त्वना देना, आराम पहुँचाना, तरस खाना, अनुग्रह करना, कष्ट से मुक्त करना आदि। श्लोक का तात्पर्य यह है कि असाधारण व्यक्तियों की सभी बातें असाधारण होती हैं, उन्हें बुरे समय में भी दैवी सहायता मिल जाती है। उनके लिए सर्वत्र सुखसाधनसम्पत्ति सुलभ होती है। भगवान् राम और सीता पर दारुण विपत्ति आयी तो वहाँ भी पृथ्वी, गंगा और वाल्मीकि जैसे लोग स्वयं उनकी सहायता के लिए पहुँच गये।

टिप्पणी- दाक्षिण्यम् - दक्षिणस्य भावः, दक्षिण +ष्यञ् । मौलिकः - मूलादागतः, मूल +ठक् (इक)। सन्निहितः - सम् + नि +ध +क्त (‘धा को ‘हि)। उपकण्ठात्-उपगतः कण्ठम् उपकण्ठः, तस्मात्, उपकण्ठ का अर्थ है-पार्श्ववर्त्ती स्थान, पड़ोस। निक्षिप्तवती-नि +क्षिप् +क्तवतु +स्त्रियां ङीप्। प्रसूता - प्र +सू + क्त+ टाप्।

तमसा - इदानीं तु शम्बूकवृत्तान्तेन सम्भावितजनस्थानागमनं रामभद्रं सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी यदेव भगवत्या लोपामुद्रया स्नेहादाशंकितं तदेवाशंकय सीतासमेता केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरीं विलोकयितुमागता।

मुरला - सुचिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या राजधानीस्थितस्यास्य खलु तैस्तैर्जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापतृस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः। अव्यग्रस्य पुनरस्य शोकमात्राद्वितीयस्य पंचवटीप्रवेशो महाननर्थ इति। तत्कथमिदानीं सीतादेव्या रामभद्र आश्वासनीयः स्यात?

तमसा - उक्तमत्र भगवत्या भागीरथ्या - ‘वत्से देवयजनसम्भवे सीते! अद्य खल्वायुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मसंवत्सरस्य सङ्ख्यामंगलग्रन्थिरभिवर्तते। तदात्मनः पुराण श्वशुरमेतावतो मानवस्य राजर्षिवंशस्य प्रसवितारं सवितारमपहतपाप्मानं देवं स्वहस्तावचितैः पुष्पैरुपतिष्ठस्व। न च त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद् वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति किं पुनर्मर्त्याः’ इति। अहमप्याज्ञापिता - ‘तमसे! त्वयिप्रकृष्टप्रेमैव वधूर्जानकी। अतस्त्वमेवास्याः प्रत्यनन्तरीभव’ इति। साऽहमधुना यथादिष्टमनुतिष्ठामि।

मुरला - अहमप्येतं वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै निवेदयामि। रामभद्रोऽप्यागत एवेति तर्कयामि।

तमसा - तदियं गोदावरीहृदान्निष्क्रम्य -

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं दधती विलोलकवरीकमाननम्।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।।4 ।।

अन्वयः - परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं विलोलकवरीकम् आननं दधती करुणस्य मूर्तिः अथवा शरीरिणी विरहव्यथेव जानकी वनमेति।।4 ।।

अर्थ- इस समय तो शम्बूक के(तपश्चरण रूप) वृत्तान्त के कारण (उसे मारने के लिए) जनस्थान में राम के आगमन की संभावना सरयू के मुख से सुनकर भगवती गंगा, लोपमुद्रा के द्वारा वात्सल्यवश जिस बात (राम के मोहादि) की आशंका थी, उसी बात की आशंका कर सीता के साथ, मानो किसी गृहकार्य के बहाने से गोदावरी के पास मिलने आयी हैं।

मुरला-भगवती भागीरथी ने बहुत अच्छा सोचा, क्योंकि राजधानी में रहते हुए लोगों के अभ्युदय के निमित्त किये जाने वाले कामों में व्यस्त रामभद्र के मन के क्षोभ नियन्त्रित रहते हैं, किन्तु इस समय (अयोध्या से जनस्थान में आने के कारण) वे कार्यों में अव्यापृत हैं और मात्र शोक उनका साथी है (ऐसी स्थिति में) उनका पंचवटी में प्रवेश महान् अनर्थकारी सिद्ध होगा। तो अब सीता देवी के द्वारा रामभद्र कैसे आश्वस्त किये जा सकेगें ?

तमसा-इस विषय में भगवती भागीरथी ने कहा - 'वत्से, यज्ञभूमि से उत्पन्न होने वाली सीते! आज चिरंजीवी कुश और लव की बारहवीं मांगलिक वर्षगाँठ का दिन है' अतः अपने पुरातन ससुर, वैवस्वत मनु से उत्पन्न इतने बड़े राजर्षियों के वंश के प्रवर्तक, सकलदुरितक्षयकारक सूर्यदेव की तुम अपने हाथ से चुने हुए पुष्पों से पूजा करो। और तुम्हें भूतल पर चलते समय मेरे प्रभाव से मनुष्य क्या, वनदेवता भी नहीं देखेंगे।' मुझे भी आज्ञा दी गयी है - तमसे! वधू जानकी का तुझमें अत्यधिक प्रेम है, अतः तू ही (उसकी सहायता के लिए) साथ रहो। वह मैं अब आदेशानुसार करती हूँ।

मुरला-मैं भी यह वृत्तान्त भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करती हूँ। रामभद्र भी आ ही गये हैं, ऐसा अनुमान करती हूँ।

तमसा-लो, गोदावरी के अगाध जलवाले भाग(''ह्रद्ध) से निकल कर-

(विरह से)पूर्णतया पीले एवं कृश कपोलों से उपलक्षित, फिर भी (निसर्गतः) सुन्दर कपोलों वाले, बिखरे केशों से युक्त मुख को धारण किये हुए यह जानकी मूर्तिमान् करुण रस अथवा मूर्तिमती विरहव्यथा-सी पंचवटी में प्रविष्ट हो रही है।**।4।।** प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार और मञ्जुभाषिणी छन्द है।

व्याख्या- शम्बूकवृत्तान्त-शम्बूक के तपश्चरण का वृत्तान्त, जो आकाशवाणी के द्वारा रामचन्द्र को बतलाया गया था (अंक 2, श्लोक 8)। भवभूति ने यहाँ इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन किया है कि मनुष्य जब विविध कार्यो में व्यस्त रहता है तो उसके शोकजन्य मनःक्षोभ नियन्त्रित रहते हैं, किन्तु जब वह निर्व्यापार रहता है, उस समय उसका शोक उद्दीप्त हो उठता है और चित्त-विक्षेप के बढ़ जाने से वह मानसिक सन्तुलन खो बैठता है। पंचवटी में प्रवेश करने पर राम की इसी स्थिति की संभावना की गयी है।

संख्यामंगलग्रन्थिः-संख्याबोधको मंगलार्थो ग्रन्थिः। यह बच्चों के प्रति जन्मदिवस पर मनाया जाने वाला एक उत्सव है। इस दिन स्त्रियाँ एक डोरे में उतनी ही गाँठें सफेद सरसों, दूर्वा और गोरोचन आदि मंगलवस्तुओं के सहित बाँध देती हैं। आज भी इस उत्सव को लोक में जन्मगाँठ या वर्षगाँठ कहते हैं। इसके सम्बन्ध में विद्यासागर कहते हैं - 'संख्याबोधको मंगलार्थो ग्रन्थिः, अतीतवर्षसमसङ्गयाकग्रन्थिमत् सूत्रमिति यावत्। जन्मतिथौ हस्ते सूत्रमभिबध्यते तच्च सूत्रं जन्मग्रन्थिरुच्यते।'

विलोलकवरीकम्-वियोगिनी सीता केशों को सँवारना और वेणीरूप में बाँधना नियम-विरुद्ध होने के कारण त्याग चुकी थीं, अतएव मुख पर बिखरे हुए केश चंचल हो रहे थे।

टिप्पणी- सम्भावितम् - सम् +भू + णिच् + क्त (कर्मणि)। सरयूमुखात् - 'आख्यातोपयोगे' (1/4/29) से पंचमी। उपश्रुत्य - उप +श्रु + ल्यप्, '''स्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक् का आगम। व्यपदेशः - वि +अप +दिश् + घञ्।

मुरला - इयं हि सा-

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं

हृदयकुसुमशोषी दारुणो दीर्घशोकः।

ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं

शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम्॥5 ॥

अन्वयः - हृदयकुसुमशोषी दारुणः दीर्घशोकः बन्धनाद् विप्रलूनं मुग्धं किसलयमिव अस्याः परिपाण्डु क्षामं शरीरं शरदिजः घर्मः केतकीगर्भपत्रमिव ग्लपयति॥5 ॥

अर्थ- मुरला-यही वह (सीता) है-

हृदयकुसुम को सुखाने वाला दारुण चिरस्थायी शोक, वृन्त से टूटकर अलग हुए सुन्दर कोमल नवपल्लव के समान समग्रतया पीतवर्ण तथा कृश इस (सीता) के शरीर को, शरत्कालिक धूप जैसे केतकीपुष्प की भीतरी पँखुड़ी को वैसे ही म्लान कर रहा है॥**5**॥

प्रस्तुत पद्य में उपमा, अलंकार तथा मालिनी छन्द है।

व्याख्या- इयं हि सा-यह वाक्य यहीं पर समाप्त हो जाता' परन्तु प्रोú काणे इस वाक्य का अन्वय अगले श्लोक के प्रथम चरण से कर अर्थ करते हैं - यह वह सीता है, जो अपने वृन्त से टूटे हुए किसलय के समान है। वे प्रथम चरण को 'शरीर' का विशेषण मानने में दूरान्वय दोष मानते हैं। परन्तु प्रोú काले प्रथम चरण 'किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनम्' को शरीर का ही विशेषण मानते हुए 'परिपाण्डु शरीर' की 'वृन्तच्युत किसलय' से तुलना को बहुत सुन्दर मानते हैं।

केतकीगर्भपत्रम्-केतकी के भीतर का पत्र अत्यन्त कोमल तथा पाण्डुवर्ण का होता है। सीता के परिपाण्डु तथा क्षाम शरीर का उपमान केतकीगर्भपत्र है तथा दीर्घशोक का उपमान शरदिज घर्म है। दीर्घशोक पहले भीतर हृदयकुसुम को ही सुखा रहा था, अब बाहर शरीर को भी सुखा रहा है।

टिप्पणी- मुग्धम् - मुह् + क्त। विप्रलूनम् - वि + प्र +लून् छेदने +क्त (कर्मणि)। शोषी - शुष् + णिच् +णिनि (ताच्छील्ये)। ग्लपयति - ग्लै (ग्ला) +णिच् +लट्, पुक् का आगमः, 'ग्लास्नावनुवमां च' से वैकल्पिक मित्त्व होने से पाक्षिक ह्रस्व, अतएव ग्लपयति और ग्लापयति दोनों रूप होते हैं। क्षामम् - क्षै + क्त;'क्षायो मः' से निष्ठा 'त' को म। शरदिजः- शरदि जातः, 'सप्तम्यां जनेर्डः' से ड प्रत्यय, 'जन्' के टि (अन् का लोप। 'प्रावृट्शरत्कालदिवां जे' से सप्तमी का अलुक्।)

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)**शुद्धविष्कम्भकः।**

(नेपथ्ये) प्रमादः प्रमादः।

(ततः प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा सकरुणौत्सुक्यमाकर्णयन्ती सीता)

सीता - अहो! जानामि प्रियसखी मे वासन्ती व्याहरतीति।

(पुनर्नेपथ्ये)

सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-

रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्।

सीता - किं तस्य

वध्वा सार्धं पयसि विहरन्सोऽयमन्येन दर्पा-

दुद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः ।।6 ।।

अन्वयः - पुरा सीतादेव्या यः अग्रे लोलः करिकलभकः स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रैः वर्धितोऽभूत्, सोऽयं वध्वा सार्धं पयसि विहरन् अन्येन उद्दामेन द्विरदपतिना दर्पात् सन्निपत्य अभियुक्तः।।6 ।।

अर्थ-(इस प्रकार घूमकर दोनों निकल गयीं)

शुद्ध विष्कम्भक समाप्त।

(नेपथ्य में)विपत्ति! विपत्ति!

(तदनन्तर फूल चुनने में लगी हुई, करुणा और उत्सुकता केसाथ सुनती हुई सीता का प्रवेश)

सीता-अरे, जान पड़ता है कि मेरी प्रियसखी वासन्ती बोल रही है।

(पुनः नेपथ्य में)

सीता देवी के द्वारा अपने हाथों से दिये गये सल्लकी वृक्ष के कोमल पत्तों के अग्रभागों से, जो (सीता देवी के)आगे (पल्लवों को लेने के लिए) चपल (बना हुआ) बेचारा गजशावक पहले (वनवास के समय में) पाला पोसा गया था।

सीता-क्या हुआ उसको?

वही यह (अपनी) वधू के साथ जल में विहार करता हुआ किसी दूसरे मत्त गजेन्द्र के द्वारा दर्प के कारण वेग से झपट कर आक्रान्त कर लिया गया है।।**6**।। प्रस्तुत पद्य में सहोक्ति अलंकार एवं मन्दाक्रान्ता छन्द है।

व्याख्या- शुद्धविष्कम्भक-संस्कृतात्मक विष्कम्भ। भूत तथा भावी घटनाओं की सूचना विष्कम्भक में दी जाती है। यहाँ मुरला तथा तमसा मध्यमपात्रों का संवाद केवल संस्कृत भाषा में है, अतः यह शुद्धविष्कम्भक है।

नेपथ्य-वह स्थान जहाँ रंगमंच के समीप पर्दे के पीछे नट लोग अपनी वेशभूषा धारण किया करते हैं। **'कुशीलवकुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते'**। कुशीलवाः नटाः, तेषां कुटुम्बस्य वृन्दस्य स्थलं वेषपरिग्रहस्थानं नेपथ्यम्।

अवचय-'हस्तादाने चेरस्तेये' सूत्र से घञ् होकर 'अवचायः' होना चाहिए।

स्वकरकलितैः-अपने हाथों से गृहीत अर्थात् अपने हाथों से दिये गये।

करिकलभकः-'कलभः करिशावकः' (अमरकोष)तदनुसार 'कलभ' शब्द से हाथी के ही बच्चे का बोध होता है, फिर भी 'करि' पद का यहाँ जो ग्रहण किया है, उससे 'कलभ' शब्द का सामान्य अर्थ शावक मात्र लिया जाना चाहिए।

टिप्पणी- अवचयः-अव + चि + अच् (एरच्' 3/3/56)। आकर्णयन्ती - आ +कर्ण (चुरादि)+णिच् + शतृ + ङीप्। कलितैः-कल् + क्त (कर्मणि)। करिकलभकः - करिकलभ + कन् (अनुकम्पायाम्)। वर्धितः- वृध् + णिच् + क्त (कर्मणि)। वध्वा-'सार्धं पद के योग में तृतीया। विहरन् - वि +हृ + शतृ। द्विरदपतिना - द्वौ रदौ दन्तौ येषां ते द्विरदाः गजास्तेषां पतिः, तेन 'पतिः समास एव' सूत्र से घिसंज्ञक होने के कारण तृतीया एकवचन 'टा' को 'ना' हो गया (आङो नाऽस्त्रियाम्'), केवल पति शब्द का तृतीया में 'पत्या' रूप होता है। सन्निपत्य - सम् + नि +पत् +ल्यप्। अभियुक्तः - अभि +युज् + क्त (कर्मणि)।

सीता – (ससम्भ्रमं कतिचित्पदानि गत्वा) आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व मम तं पुत्रकम्। (स्मृतिमभिनीय सवैक्लव्यम्)। हा धिक्! , हा धिक्! तान्येव

चिरपरिचितान्यक्षराणि पंचवटीदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबध्नन्ति। हा आर्यपुत्र (इति मूर्च्छति)।

(प्रविश्य)**तमसा -** वत्से! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये)विमानराज! अत्रैव स्थीयताम्।

सीता – (समाश्वस्य ससाध्वसोल्लासम्) अहो! जलभरभरितमेघमन्थरस्तनितगम्भीरमांसलः कुतो न्वेष भारतीनिर्घोषो भ्रियमाणकर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकयति?

सीता- (आश्वस्त होकर भय और हर्ष के साथ)जल भार से भरे मेघ के मन्दगर्जन के समान गम्भीर एवं स्फीत यह वाणी की ध्वनि ,भरे जाते हुए कर्णविवर वाली मुझ मन्दभागिनी को भी कहाँ से (आकर) तुरन्त उत्कण्ठित बना रही है।

तमसा – (सस्नेहास्रम्) अयि वत्से!

तमसा- (स्नेहाश्रु से युक्त होकर) अरी बेटी !

अपरिस्फुटनिस्वाने कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।

स्तनयित्नोर्मयूरीव चकितोत्कण्ठितं स्थिता।।7 ।।

अन्वयः - स्तनयिन्तोः अपरिस्फुटनिस्वाने मयूरी इव त्वं कुतस्त्येऽपि अपरिस्फुट निस्वाने त्वम् ईदृशी चकितोत्कण्ठितं स्थिता।।7 ।।

अर्थ - सीता-(घबड़ाहट के साथ कुछ पग चलकर) आर्यपुत्र! मेरे उस बेचारे पुत्र को बचाइए, बचाइए। (रामचन्द्र कृत परित्याग के स्मरण का अभिनय कर) छिः! छिः! वे ही (आर्यपुत्र शब्द रूप) चिरकाल तक बार-बार प्रयुक्त अक्षर आज भी पंचवटी के दर्शन से मुझ मन्दभागिनी का अनुसरण करते हैं (मुझ मन्दभागिनी के मुख से सहसा निकल आते हैं) हा आर्यपुत्र! ;ऐसा कहकर मूर्छित हो जाती है)

(प्रवेश करके)तमसा-वत्से! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो।

(नेपथ्य में)विमानराज! यहीं रुका जाय।

सीता-(आश्वस्त होकर, भय और हर्ष के साथ) जल-भार से भरे मेघ के मन्दगर्जन के समान गम्भीर एवं स्फीत यह वाणी की ध्वनि, भरे जाते हुए कर्णविवर वाली मुझ मन्दभागिनी को भी कहाँ से (आकर) तुरन्त उत्कण्ठित बना रही है ?

तमसा-(स्नेहाश्रु से युक्त होकर) अरी बेटी!

कहीं से भी उत्पन्न अस्पष्ट ध्वनि में तुम मेघ के शब्द में मयूरी के समान ऐसी चकित और उत्कण्ठित हो रही हो!।।7।। इस पद्य में उपमा अलंकार एवं अनुष्टुप छन्द है।

व्याख्या - पुत्रकम्-पुत्र शब्द से 'अनुकम्पा' अर्थ में कन्, अनुकम्पनीय बेचारे पुत्र को। पुत्र का अर्थ यहाँ कृत्रिम पुत्र भी हो सकता है, क्योंकि वह गजशावक सीता का कृत्रिम पुत्र ही तो था। तब 'इवे प्रतिकृतौ' (5/3/96) सूत्र से कन् प्रत्यय होगा।

आर्यपुत्र! परित्रायस्व-सीता जी घबड़ाहट में भूल गयीं कि रामचन्द्र उनका परित्याग कर चुके हैं और अपने हाथी के बच्चे की रक्षा के लिए इन्हीं को पुकारती हैं। परित्याग वाली बात का उन्हें बाद में स्मरण होता है।

ससाध्वसोल्लासम्-मुझ परित्यक्ता को देखकर राम क्या कहेंगे? मैं उनके सामने कैसे पड़ूँ? यह सोचकर सीताजी को एक तरफ भय हो रहा था और दूसरी तरफ बहुत समय (बारह वर्षों)के बाद होने वाले प्रिय के दर्शन की आशा से उल्लास भी हो रहा था।

सस्नेहास्रम्-सीता की दशा देखकर तमसा की आँखों में स्नेहवश आँसू छलक आये। 'सस्मितास्रम्' (पाठा0)-राम के शब्द को सुनकर सीता को जो उत्सुकता हुई, उसे देखकर तमसा मुस्करा उठी।

चकितोत्कण्ठितम्-सहसा राम के कण्ठ का स्वर सुनने से सीता चकित हो गयीं तथा उनके आगमन से चरणदर्शन की सम्भावनावश उन्हें उत्कण्ठा भी हुई। उत्कण्ठा का लक्षण है- 'रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या। संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधः।'

टिप्पणी - स्थीयताम्-स्था +लोट् (भावे)। समाश्वसिहि-सम् + आ +श्वस् + लोट् (सिप्=हि)। भरितः - भर + इतच्। स्तनितम्=स्तन् + क्त (भावे)। भ्रियमाणम् - भृ + कर्मणि लट् (शानच्)।

सीता - भगवति! किं भरणस्यपरिस्फुटेति। मया पुनः स्वरसंयोगेन प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्र एव व्याहरतीति।

तमसा - श्रूयते तपस्यतः किल शूद्रस्य दण्डधरणार्थमैक्ष्वाको राजा जनस्थानमागत इति।

सीता - दिष्टया अपरिहीनराजधर्म: खलु स राजा।

(नेपथ्ये)

यत्रा द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे

यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।

एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि

गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि।।8 ।।

अन्वय: **-** यत्रा द्रुमा: अपि मृगाः अपि मे बन्धव:यानि प्रियासहचरः चिरम् अध्यवात्सम्, तानि एतानि गोदावरीपरिसरस्य गिरै: बहुनिर्झरकन्दराणि तटानि (विद्यन्ते)।। 8 ।।

अर्थ- सीता-भगवति! 'अस्पष्ट' - ऐसा क्यों कहती हैं? (मेरे कानों से उस) स्वर का सम्बन्ध होने से - चिर परिचय होने से मैंने तो पहचान (ही) लिया है कि आर्यपुत्र ही बोल रहे हैं।

तमसा-ऐसी बात सुनी जाती है कि तपस्या करने वाले शूद्र (शम्बूक) के दण्डविधान के लिए इक्ष्वाकुवंशी राजा जनस्थान में आया है।

सीता-भाग्य से उस राजा ने राजधर्म छोड़ा नहीं है।

(नेपथ्य में)

जहाँ वृक्ष भी, मृग भी मेरे बन्धु (थे)जिनमें मैं प्रिया (जानकी) के साथ लम्बे समय तक रहा, वे ही ये गोदावरी के समीपवर्ती पर्वत के बहुत से झरनों और कन्दराओं वाले प्रदेश हैं।।8।। प्रस्तुत पद्य में अर्थापत्ति अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

व्याख्या-स्वरसंयोगेन-सीता के कहने का आशय है कि मेरे कान आर्यपुत्र के स्वर से चिरपरिचित हैं, अतः कान में उस स्वर के पड़ते ही मैंने निश्चित रूप से जान लिया कि यह स्वर आर्यपुत्र का ही है।

ऐक्ष्वाको राजा-राम के लिए राजा शब्द का प्रयोग कर सीतानिर्वासनजनित अपना क्षोभ तमसा व्यक्त कर रही है। यह वाक्य व्यंग्यपूर्ण है। व्यंग्य यह है कि एक बार तो उसने निरपराध पत्नी का निर्वासन कर अपने राजधर्म का प्रकर्ष दिखलाया, वह अब पुनः (शूद्र ही सही) तपस्या करने वाले व्यक्ति का वध करने को उद्यत है। ऐसा वह क्यों न करे? आखिर अपने पूर्वज इक्ष्वाकु का नाम कैसे उजागर करेगा?

दिष्टया-'दिष्टि' शब्द का तृतीयैकवचनान्त विभक्ति प्रतिरूपक अव्यय है। इसका प्रयोग इन अर्थों में होता है - भाग्य से, सौभाग्य से, ईश्वर का धन्यवाद।

परिसरः-तट, किनारा, सामीप्य, किसी नदी या पर्वत का पर्यावरण (मिली या जुड़ी हुई भूमि)।

तटानि-इसका अर्थ लक्षणा से 'प्रदेश' है।

टिप्पणी-प्रत्यभिज्ञातम् - प्रति +अभि +ज्ञा + क्त (कर्मणि)। व्याहरति-वि + आ + हृ + लट्। अध्यवात्सम् - अधि+वस् + लुङ् (मिप्)। 'उपान्वध्याङवसः' सूत्र के अनुसार आधार की कर्म संज्ञा और कर्म में द्वितीया विभक्ति (यानि तटानि)।

सीता – (दृष्टवा) – (इति तमसामाश्लिष्य मूर्च्छति हा कथं प्रभातचन्द्रमण्डला-पाण्डुरपरिक्षामदुर्बलेनाकारेणायं निजसौम्यगम्भीरानु- भावमात्रप्रत्यभिज्ञातव्य आर्यपुत्र एव। भगवति तमसे! धारय माम्।

तमसा - वत्से! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये) अनेन पंचवटीदर्शनेन -

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।

उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम्।।9 ।।

अन्वयः - अन्तर्लीनस्य अद्य उद्दामं ज्वलिष्यतः दुःखाग्नेः धूमस्य उत्पीड इव मोहः मां प्राक्आवृणोति।।9 ।।

अर्थ -सीता-(देखकर) हाय! क्यों? प्रभातकालीन चन्द्रमण्डल के समान विवर्ण, अत्यन्त क्षीण एवं दुर्बल आकार से उपलक्षित यह अपने सौम्य एवं गम्भीर प्रभाव मात्र से ही पहचाने जाने योग्य आर्यपुत्र ही हैं। भगवति तमसे! मुझे पकड़ो (सहारा दो)।

(इस प्रकार तमसा का आलिंगन कर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा-बेटी आश्वस्त हो, आश्वस्त हो।

(नेपथ्य में) पंचवटी के इस दर्शन से -

अन्तःकरण में छिपा शोकानल आज अनियन्त्रित भाव से भड़कने वाला है। उसके धूमसंघात के समान मोह (मूर्च्छा) मुझे पहिले ही आच्छादित (अभिभूत) कर रहा है।।9।।
इस पद्य में उपमा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या-निजसौम्यगम्भीरानुभवमात्रप्रत्यभिज्ञातव्यः-सीता के कहने का आशय है कि आर्य-पुत्र (राम) का शरीर इतना विवर्ण, कृश एवं दुर्बल हो गया है कि आकार से उन्हें पहचाना नहीं जा सकता। केवल उनके सौम्य एवं गम्भीर विशेष तेज को देखने पर ही यह निश्चय प्रतीति होती है कि ये वही (राम) हैं।

अनेन पंचवटीदर्शनेन-इसका अन्वय आगे के श्लोक के साथ करना चाहिए।

दुःखाग्नेः-'ज्वलिष्यतः' पद की संगति के लिए दुःखमेवाग्नि इति दुःखाग्निः, ऐसा रूपक समास होना चाहिए। किन्तु 'धूमस्य उत्पीड इव' इस वाक्यांश को देखते हुए 'दुःखमग्निरिवेति दुःखाग्निः' ऐसा उपमित समास मानना ही उचित प्रतीत होता है।

उत्पीड इव धूमस्य-आग के भड़कने के पहिले उसका धुआँ चारों ओर छा जाता है, उसी प्रकार राम के हृदय में छिपे हुए दुःख के बाहर प्रकट होने से पहिले मोह (मूर्च्छा) उन्हें आच्छादित कर रहा है।

टिप्पणी-परिक्षाम-परि +क्षै + क्त ('क्षायो मः' से मकारादेश)। आकारेण-यहाँ 'उपलक्षितः' परिशेषलभ्य है। अतः (इत्थम्भूतलक्षणे' ;2/3/21) से तृतीया हुई है।

अनुभावः-अनु +भू + णिच् + घञ् ।

हा प्रिये जानकि!

तमसा – (स्वगतम्) इदं तदाशंकितं गुरुजनेन।

सीता – (समाश्वस्य) हा कथमेतत् ?

(पुनर्नेपथ्ये)

हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि विदेहराजपुत्रि! (इति मूर्च्छति)

सीता – हा धिक् , हा धिक्! मां मन्दभागिनीं व्याहृत्यामीलन्नेत्रानीलोत्पलो मूर्च्छित: एवार्यपुत्राः। हा कथं धरणिपृष्ठे निरुद्ध निःश्वसनिःसहं विपर्यस्तः। भगवति तमसे! परित्रायस्व परित्रायस्व। जीवयार्यपुत्रम्।

तमसा - त्वमेव ननु कल्याणि सञ्जीवय जगत्पतिम्।

प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैष: निरतो जनः।। 10 ।।

अन्वयः - ननु कल्याणि! त्वमेव जगत्पति सञ्जीवय, हि ते पाणिः प्रियस्पर्शः तत्र एषः जनः निरतः।।10 ।।

अर्थ - हा प्रिये जानकि!

तमसा-(स्वगत) गुरुजन (लोपामुद्रा और गंगा) के द्वारा इसी बात की आशंका की गयी थी।

सीता-(आश्वस्त होकर) हाय, यह (शोकाभिभव और मूर्च्छा) कैसे?

(पुनः नेपथ्य में)

हा देवि दण्डकारण्य में साथ रहने वाली जानकि! (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)

सीता-हाय, हाय! मुझ अभागिनी को पुकार कर, नीलकमल के समान बन्द होते हुए नेत्रों वाले आर्यपुत्र मूर्च्छित ही हो गये हैं। हाय, रुकी हुई साँस वाले तथा अशक्त होकर भूतल पर कैसे अधोमुख गिरे पड़े हैं? भगवति तमसे! (मुझे) बचाओ, बचाओ। आर्यपुत्र को जीवित करो। (ऐसा कहकर पैरों पर गिरती है)।

तमसा-हे कल्याणि! तुम ही जगत के स्वामी (राम) को होश में लाओ। क्योंकि तुम्हारे ही हाथ का स्पर्श (उन्हें) प्रीतिकारक है, अतः उसी में वे (राम) अनुरक्त हैं।**।10।।** प्रस्तुत पद्य में काव्यलिंग अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या - निरुद्धनिःश्वासनिःसहम्-निरुद्ध निः श्वासम् तथा निःसहम् ये दोनों पद क्रियाविशेषण हैं, 'सुप्सुपा' से समास हुआ है। परित्रायस्व, परित्रायस्व-संभ्रम में द्विरुक्ति है।

कल्याणि सञ्जीवय जगत्पतिम्-यह वाक्य व्यंजना से भरा हुआ है। तमसा के कथन का आशय है कि मानती हूँ कि राम ने तुम्हें निर्वासित कर दिया है, उन्हें होश में लाने के लिए तुम अपने हाथ से उनका स्पर्श करने का साहस कैसे कर सकती हो? किन्तु यह भी सोचो कि तुम कल्याणी हो, लोक-कल्याण की दृष्टि से वैसा करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य हो जाता है। राम जगत् के स्वामी हैं, उनके जीवित होने पर ही जगत का जीवन सम्भव है। प्रियस्पर्शो...जनः। तमसा पुनः कहती है कि दूसरी बात यह है कि मैं परायी स्त्री राम का स्पर्श कैसे कर सकती हूँ?तुम्हारे हाथ का स्पर्श उन्हें सदा आनन्द देता रहा था, अतएव उनका अनुराग चिरकाल से उसी तुम्हारे करस्पर्श में बना हुआ है, अतः तुम्हीं राम को होश में लाने का स्वकर्त्तव्य पालन करो।

टिप्पणी- व्याहृत्य-वि + आ हृ + ल्यप्। आमीलत् - आ +मील् + शतृ। निरुद्ध -नि +रूध +क्त । निःसहम् - निस् +सह् +अच्। विपर्यस्तः वि + परि +अस् (क्षेपणे) +क्त । निरतः-नि +रम् + क्त।

सीता – (इति ससम्भ्रमं निष्क्रान्ता) यद् भवतु तद भवतु। यथा भगवत्याज्ञापयति।

(ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः स्रास्रायां सीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छवासो रामः।)

सीता – (किंचित् सहर्षम्) जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य।

रामः - हन्त! भोः किमेतत् -

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां

निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।

आतप्तजीवितपुनः परितर्पणोऽयं

सञ्जीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः।। 11 ।।

अन्वयः - हरिचन्दनपल्लवानामाश्च्योतनं नु ? निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः सेकः नु?अयम् आतप्तजीवितपुनः परितर्पणः सञ्जीवनौषधिरसः हृदि प्रसिक्त: नु ?।। 11 ।।

अर्थ - सीता-जो हो वह हो। भगवती की जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर घबराहट युक्त त्वरा के साथ निकल जाती है।)

(तब भूमि पर पड़े हुए, आँखों में आँसू भरे सीता के द्वारा सहलाये जाते हुए तथा

हर्ष और श्वाससंचारयुक्त राम का प्रवेश।)

सीता-;(कुछ हर्ष के साथ) मैं समझती हूँ कि तीनों लोकों का जीवन मानों फिर लौट आया है।

राम-अहा! अरे, यह क्या? क्या (मेरे) हृदय पर हरिचन्दन के किसलयों का रस छिड़क दिया गया?अथवा निचोड़े हुए चन्द्रकिरणरूप नवांकुरों के रस से सेचन किया गया? या सन्तप्त जीवन को पुनः परितृप्त करने वाला संजीवनी औषधि का रस छिड़क दिया गया है?।।11।। यहाँ सन्देह अलंकार और वसन्ततिलका छन्द है।

व्याख्या - यद् भवतु तद् भवतु-जो हो सो हो। सीता का अभिप्राय है कि निर्वासित मेरे हाथ के स्पर्श से आर्यपुत्र मुझ पर चाहे कुपित हों, चाहे प्रसन्न, यह मुझे नहीं सोचना है। भगवती तमसा के आज्ञानुसार मुझे उनके कल्याणकर कार्य में हिचकिचाहट छोड़कर लग जाना है।

त्रैलोक्यस्य जीवनम्-सकल जीवलोक के आधारभूत राम के ही जीवन पर तीनों लोकों का जीवन निर्भर है, अतः राम के होश में आ जाने पर सीता ने कहा कि मेरी समझ में मानो तीनों लोकों का जीवन फिर लौट आया है।

हरिचन्दन-हरिचन्दन एक देव वृक्ष है। एक विशेष प्रकार के चन्दन को हरिचन्दन कहते हैं।

यह काटने पर तो लाल रंग का दिखलायी देता है, किन्तु घिसने पर पीले रंग का होता है - 'छेदे रक्तं कषे पीतं हरिचन्दनमुच्यते'। सीता के कर-स्पर्श से रामचन्द्र जी को अनिर्वचनीय आनन्द हुआ, जिसके कारण का वे अनेक प्रकार से अनुमान करते हैं।

टिप्पणी-स्पृश्यमानः-स्पृश + लट् (कर्मणि) - शानच्। प्रत्यागतम्-प्रति - आ +गम् +क्त।

जीवितम्-जीव् + क्त (भावे)। त्रैलोक्यम्-त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, त्रिलोक्येव

त्रैलोक्यम्। स्वार्थे ष्यञ् । आश्च्योतनम्-आ +श्च्युत् +ल्युट्। सेकः-सिच् + घञ् । परितर्पणः-परि+तृप् + ल्यु (अन) ('नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः') अथवा 'कृत्यल्युटो बहुलम्' के अनुसार कर्ता में ल्युट् (अन) - परि +तृप् + णिच्+ल्युट् (अन) 'णेरनिटि' से णिच् का लोप, लघूपधगुण - परितर्पणः।

अपि च – **स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव**
संजीवनश्च मनसः परितोषणश्च
सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति।। 12 ।।

अन्वयः - पुरा परिचितः सञ्जीवनो मनसः परितोषणश्च नियतं स एव स्पर्शः। यः सन्तापजां मूर्च्छां परिहृत्य सपदि आनन्दनेन पुनर्जडताम् आतनोति।। 12 ।।

अर्थ - और भी-निश्चय ही समाश्वस्त करने वाला और मन को आह्लाद देने वाला यह वही पूर्व परिचित स्पर्श है, जो विरहसन्तापजनित मूर्च्छा को तत्काल दूर कर आनन्दविधान से पुनः जडता (विह्वलता)समुत्पन्न कर रहा है।**।12।।** इसमें विरोध अलंकार और वसन्ततिलका छन्द है।

व्याख्या -संजीवनः-सम्यक्, जीवन देने वाला। परितोषण-परितोष देने वाला। इस श्लोक में 'स्पर्श मूर्च्छा को दूर कर जड़ता फैला रहा है' यह कथन होने से विरोध अलंकार है। जड़ता का अर्थ 'आनन्दविह्वलता' होने से उसका परिहार हो जाता है।

टिप्पणी - सञ्जीवनः-सम् +जीव् + णिच् + ल्युट् (कर्तरि) 'कृत्यल्युटो बहुलम्'। इसी प्रकार परि +तुष् + णिच् +ल्युट् (कर्तरि)। परिहृत्य - परि +हृ +ल्यप्, तुगागम। आनन्दनम् - आ + नन्द् (टुनदि समृद्धौ + ल्युट् (भावे)।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए -

उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक का क्या नाम है ?

क. पञ्चवटी प्रवेश ख. कौशल्या- जनकयोग

ग. छाया अंक घ. चित्रदर्शन

1. तमसा और मुरला किसका नाम है ?

क. सीता की सखियाँ का ख. नदियों का

ग. मुनिपत्नी घ. वनदेवी का

3. अगस्तय ऋषि की पत्नी का क्या नाम है ?

क. तमसा ख. लोपामुद्रा

ग. मुरला घ. गोदावरी

4. 'दृष्टिया अपरिहीनराजधर्म: खलु स राजा ' यह कथन किसका है ?

क. सीता ख. गोदावरी

ग. राम घ. गंगा

5. लव-कुश का पालन-पोषण किसके आश्रम में हुआ था ?

क. अगस्तय ऋषि ख. अत्रि ऋषि

ग. वशिष्ठ ऋषि घ. बाल्मीकि ऋषि

सीता –(ससाध्वसोत्कम्पमपसृत्य) एतावदेवेदानीं मे बहुतरम्।

रामः – (उपविश्य) न खलु वत्सलया सीता देव्याऽभ्युपपन्नोऽस्मि ?

सीता – हा धिक्! हा धिक् ! किमिति ममार्यपुत्रो मार्गिष्यते ? रामः - भवतु, पश्यामि।

सीता - भगवति तमसे! अपसरावस्तावत्। मां प्रेक्ष्यानभ्यनुज्ञातेन सन्निधानेन राजाऽधिकं कोपिष्यति।

तमसा - अयि वत्से! भागीरथीप्रसादाद् वनदेवताऽप्यदृश्याऽसि संवृत्ता।

सीता - आम् अस्ति खल्वेतत्।

रामः - हा प्रिये जानकि!

सीता – (समन्युगद्गदम्) आर्यपुत्र! असदृशं खल्वेतद्वचनमस्य वृत्तान्तस्य(..........)अथवा किमिति वज्रमयी जन्मान्तरेष्वपि पुनरसम्भावितदुर्लभदर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्य वत्सलतयैवंवादिन आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि ? अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममाप्येषः।

रामः – (सर्वतोऽवलोक्य) हा! न किंचिदत्र।

सीता - भगवति तमसे! तथा निष्कारणपरित्यागिनोऽपि एतस्यैवंविधेन दर्शनेन कीदृश इव मे हृदयानुबन्ध् इति न जानामि।

तमसा - जानामि वत्से! जानामि

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा-

द्वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।

प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गाढकरुणं

द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।13

अन्वयः - तव हृदयम् अस्मिन् क्षणे नैराश्यात् तटस्थमिव, विप्रियवशात् कलुषमिव, दीर्घे अस्मिन् वियोगे झटिति घटनात् स्तम्भितमिव, दयितकरुणैः गाढकरुणम्, प्रेम्णा द्रवीभूतमिव।। 13 ।।

अर्थ - सीता-(भय और कम्पन के साथ हटकर) इतना ही इस समय मुझे बहुत अधिक है (अर्थात् इस निर्वासिता में अब भी स्नेह रखते हैं, मेरे कर स्पर्श को बहुत मानते हैं, आज की परिस्थिति में इतना ही मेरे लिए बहुत है - यह कम सौभाग्य की बात नहीं है)।

राम-(बैठकर) (कहीं)स्नेहशील सीता देवी के द्वारा तो मैं अनुगृहीत नहीं किया गया हूँ?

सीता-हा धिक्! हा धिक्! (कहीं) आर्यपुत्र मुझे ढूँढेगे क्या ?

राम-अच्छा, देखता हूँ।

सीता-भगवति तमसे! अब हम दोनों यहाँ से हट चलें। मुझे देखकर बिना अनुमति के, समीप स्थित होने से राजा अधिक क्रोध करेंगे।

तमसा-अरी बेटी, गंगा के अनुग्रह से वनदेवताओं के लिए भी तू अदृश्य हो चुकी है।

सीता-हाँ, वस्तुतः यही (बात) है।

राम-हा प्रिये जानकि!

सीता-(प्रणयकोप के कारण अस्पष्ट उच्चारण के साथ) आर्यपुत्र! निश्चय ही (आप का 'हा प्रिये जानकि') यह वचन इस(मेरे परित्यागरूप) वृत्तान्त के अनुरूप है। (आँसू भरकर) अथवा (ऐसा वचन कह कर) अत्यन्त कठोर (वज्रमयी) मैं, अन्य जन्मों में भी जिनका दर्शन असंभव अतएव दुर्लभ है तथा मुझ अभागिन को ही लक्ष्य करके

स्नेहशीलतावश (हा प्रिये जानकि!) ऐसा वचन बोलने वाले आर्यपुत्र के ऊपर क्यों निर्दय होऊँ ?मैं ही इनका हृदय जानती हूँ, और ये मेरा।

राम-(चारों ओर देखकर, खेद के साथ) यहाँ कुछ भी नहीं है।

सीता-भगवति तमसे! उस प्रकार अकारण ही निर्वासित करने वाले के भी इस प्रकार के दर्शन से मेरी मनोदशा कैसी हो रही है, यह जानती नहीं हूँ।

तमसा-जान रही हूँ बेटी, जान रही हूँ।

तुम्हारा हृदय इस समय पुनः समागम की आशा न होने से उदासीन, किन्तु (परित्याग-रूप) अप्रिय (वृत्तान्त) से रोषयुक्त-सा, इस लम्बे वियोग में अप्रत्याशित समागम से विस्मय के कारण स्तब्ध सा, (राम के)सौजन्य से प्रसन्न प्रिय की शोकाकुल दशा से अत्यन्त शोक युक्त, (प्रिय-विषयक) प्रेम से आर्द्र-सा है।।**13**।। प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार और शिखरिणी छन्द है।

व्याख्या - राजाऽधिकं कोपिष्यति-यहाँ राम के लिए सीता जी के द्वारा प्रयुक्त राजा शब्द ध्यान देने योग्य है। राम बड़ी कठोरता के साथ राजधर्म का पालन करने वाले राजा हैं, पत्नी तक का निर्वासन करने में राजधर्म ही उनका प्रेरक रहा है। अब सीता यदि उनकी अनुमति के बिना कहीं उनके समीप खड़ी मिल गयीं तो उन (सीता) को उनका

कोपभाजन अवश्य बनना पड़ेगा।

असदृशं...वृत्तान्तस्य-इस वाक्य से सीता ने अपना प्रणयकोप व्यक्त किया है। उनके कहने का भाव यह है कि पहले तो आपने मुझे निर्वासित कर दिया और अब स्नेह प्रदर्शित करते हुए विलाप भी कर रहे हैं। आपके दोनों कार्यों में अनुरूपता नहीं है। आपको मैं निष्ठुर समझूँ या स्नेहशील?

अहमेवैतस्य हृदयं जानामि ममाप्येषः-रामायण-सुन्दरकाण्ड (15/12) में भी कहा गया है - 'अस्या देव्या मनस्त¯स्मस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम्। तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति।।'

हृदयानुबन्ध्ः-अनुबन्ध् का अर्थ यहाँ अबाध परम्परा, सातत्य आदि है, जैसे वैरानुबन्ध प्रेमानुबन्ध आदि। हृदयानुबन्ध् का अर्थ हुआ - हृदय के भावों की परम्परा-विशेष का अबाध रूप से बना रहना। इस श्लोक से कवि का मनोविज्ञान-पाण्डित्य सूचित होता है।

कलुषं विप्रियवशात्-निष्कारण परित्याग रूप अहित के कारण कालुष्यपूर्ण-रोषयुक्त। राम ने सीता का अकारण परित्याग कर दिया था, जो विप्रिय कर्म ही कहा जा सकता है। उसके कारण सीता के मन में राम के प्रति रोष-क्षोभ होना स्वाभाविक था।

टिप्पणी - अपसृत्य - अप +सृ (गतौ) +ल्यप्, तुक्। अभ्युपपन्नः-अभि + उप +पद् (गतौ)+क्त । अनभ्यनुज्ञातः-नञ्(अन्)अभि + अनु +ज्ञा + क्त। संनिधान-सम् + नि +धा +ल्युट् (भावे)।

राम - देवि!

प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः।

अद्याप्यानन्दयति मां त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि।।14 ।।

अन्वयः - स्नेहार्द्रशीतलः ते स्पर्शः, मूर्त्तः प्रसाद इव अद्यापि माम् आनन्दयति। नन्दिनि त्वं पुनः क्वासि।।**14 ।।**

अर्थ -राम-हे देवि

स्नेह से आर्द्र (अतएव) शीतल तुम्हारा स्पर्श मूर्तिमान् अनुग्रह-सा इस समय भी मुझे

आनन्दित कर रहा है। हे आनन्ददायिनि! तुम कहाँ हो?।।14 ।। इस पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या -नन्दिनी-प्रायः सभी प्रतियों में ऐसा ही पाठ मिलता है। नन्दिनि शब्द का प्रयोग प्रायः पुत्री के अर्थ में मिलता है। अतः घनश्याम ने 'नन्दयितुं शीलमस्या इति नन्दिनी' ऐसा अर्थ मानना उचित समझ कर प्रथमैकवचनान्त 'नन्दिनी' 'त्वम्' का विशेषणरूप पाठ रखा है। उन्होंने कहा है - 'नन्दिनीति कवेरचातुर्यम्। तथापि नन्दयतीति धातुबलादवान्तरभेद उह्यः। नन्दिनी प्रथमैकवचनम्, नन्दिनी त्वं पुनः क्वासि इत्यर्थः।'

टिप्पणी -प्रसादः - प्र +सद् +घञ् । स्पर्शः-स्पृश +घञ् ।, आनन्दयति - आ + नन्द् (टुनदि समृद्धौ)+ लट्। नन्दिनी -नन्द + णिच् +णिनि। णिजन्त 'नन्दि' से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' से 'णिनि' प्रत्यय।

वासन्ती – (सम्भ्रान्ता) कथं देवो रघुनन्दनः?

सीता - हा कथं मे प्रियसखी वासन्ती?

वासन्ती - जयतु जयतु देवः।

रामः – (निरूप्य) कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती?

बासन्ती - देव! त्वर्यतां त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य दक्षिणेन सीता तीर्थेन गोदावरीमवतीर्य सम्भावयतु देव्याः पुत्राकं देवः।

सीता - हा तात जटायो! शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानाम्।
रामः - अहह!! हृदयमर्मच्छिदः खल्वमी कथोद्घाताः।
वासन्ती - इत इतो देवः।
सीता - भगवति! सत्यमेव वनदेवता अपि मां न प्रेक्षन्ते।
तमसा - अयि वत्से! सर्वदेवताभ्यः प्रकृष्टतममै श्भर्यं मन्दाकिनीदेव्यास्तत् किमित्याशघड्ढसे?

सीता - ततोऽनुसरावः। (इति परिक्रामति)
रामः - भगवति गोदावरि! नमस्ते।

वासन्ती – (निरूप्य) देव! मोदस्व विजयिना वधूद्वितीयेन देव्याः पुत्रकेणः।

रामः - विजयतामायुष्मान्।

सीता - अहो! ईदृशो मे पुत्राकः संवृत्तः।

रामः - हा देवि! दिष्टया वर्धसे।

येनोद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्ध्दन्ताघ्वुफरेण
व्याकृष्टस्ते सुतनु! लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।

सोऽयं पुत्रास्तव मदमुखां वारणानां विजेता
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः।।15 ।।

अन्वयः - सुतनु! उद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्ध्दन्ताघ्वुफरेण येन ते कर्णमूलात् लवलीपल्लवः व्याकृष्टः, मदमुचां वारणानां विजेता सो{यं तव पुत्राः तरुणे वयसि तत् कल्याणं तस्य भाजनं जातः।।15 ।।

अर्थ- सीता-ये अत्यन्त प्रदर्शित स्नेहप्राचुर्य वाले, आनन्दड्डावी, अमृतमय आर्यपुत्र केतीव्र विलाप हैं, जिनके ज्ञान अथवा विश्वास से अकारण निर्वासन रूप शल्य से युक्त होकर भी मेरा जन्म लेना श्लाघ्य है।

राम-अथवा (यहाँ) प्रियतमा (सीता) कहाँ से(आयी)? निश्चय ही यह रामभद्र का (अर्थात् मेरा) भ्रम है, जिसका उत्पत्ति कारण (मेरे) सी

सीता-हा, क्या मेरी प्रियसखी वासन्ती (है)?

वासन्ती-महाराज की जय हो, जय हो।

राम-(देखकर) क्या देवी (सीता) की प्रियसखी वासन्ती है?

वासन्ती-महाराज! शीघ्रता की जाय, शीघ्रता की जाय। यहाँ से जटायुशिखर के दक्षिण (स्थित) सीता घाट से गोदावरी में उतर कर देवी (सीता) के कृतकपुत्र को (बचा कर) सम्मान दें।

सीता-हा तात जटायो! तुम्हारे बिना यह जनस्थान सूना (लग रहा) है।

राम- अहह!! निश्चय ही ये कथाप्रसंग हृदय के मर्मस्थल को बेधने वाले हैं।

वासन्ती-महाराज! इस ओर से, इस ओर से (चलें)।

सीता-भगवति (तमसे)! सचमुच ही वनदेवताएँ भी मुझे नहीं देख रही हैं।

तमसा-अरी बेटी, गंगा जी का ऐश्वर्य सभी देवताओं से बढ़ा चढ़ा है, तो क्यों शंका करती हो?

सीता-तब हम (दोनों) अनुसरण करें।

(ऐसा कहकर घूमती है)

राम-भगवति गोदावरि! तुम्हें नमस्कार है।

वासन्ती-(देखकर) महाराज! सपत्नीक विजयी, देवी (सीता) के कृत्रिमपुत्र से आनन्दित हों।

राम-आयुष्मान्! सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त करे।

सीता-अहो! मेरा पुत्रक ऐसा (बलशाली और महाकाय) हो गया।

राम-हा देवि! भाग्य से तुम बढ़ रही हो (अर्थात् तुम्हें बधाई है)

(पूर्वकाल में) सुन्दरि! मृणालकिसलय के समान स्निग्ध निकलते हुए दाँतों वाले जिस (गजशावक) ने तुम्हारे कर्ण-प्रदेश से (अवतंसरूप से धारण किये गये लवली लता का पल्लव (अपनी सूँड से) खींच लिया था, वही यह तुम्हारा मत्तगजों का विजेता पुत्र (गजशावक) युवावस्था में जो कल्याण (अर्थात् समृद्धि) चाहिए, उसका पात्र हो चुका है।।15।। प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार एवं मन्दाक्रान्ता छन्द है।

व्याख्या - संकल्पाभ्यासपाटवोपादानो...भ्रमः-पहले रामचन्द्र ने समझा कि सीता जी ने ही उन्हें स्पर्श किया, किन्तु इधर-उधर खोजने पर भी जब उन्हें सीता जी नहीं दिखलायी पड़ी तब उन्होंने सोचा कि उन्हें ऐसा भ्रम इस कारण हुआ कि वे निरन्तर सीताजी का चिन्तन किया करते हैं। किसी पदार्थ का निरन्तर चिन्तन करते रहने से कभी-कभी ऐसा भ्रम हो जाता है कि वह पदार्थ सामने उपस्थित मालूम पड़ता है, जब कि वस्तुतः वह रहता नहीं।

यहाँ ध्यातव्य है कि वासन्ती और राम को न तो सीता दिखलायी पड़ रही है और न उसका संवाद ही उन्हें सुनायी दे रहा है, ऐसा गंगा जी के प्रभाव से हो रहा है।

जटायुशिखरस्य-उस शिखर पर जटायु के निवास करने के कारण उसे जटायुशिखर कहते थे। जटायु शब्द यहाँ कवि के द्वारा उकारान्त रूप में प्रयुक्त किया गया है। यह शब्द षान्त(जटायुष्) भी प्रयुक्त मिलता है।

तात जटायो-जटायु सीता के श्वसुर दशरथ का मित्र था। उसने रावण द्वारा सीता का हरण होते समय सीता को रावण के चंगुल से छुड़ाने में अपने प्राण दे दिये थे। अतः सीता ने उसे स्मरण करते हुए तात शब्द से सम्बोधित किया।

सीतातीर्थेन-नदी में उतरने का स्थान (घाट) तीर्थ कहलाता है। सीता जी जिस स्थान पर गोदावरी में स्नानार्थ उतरा करती थीं, उसका नाम 'सीता तीर्थ' पड़ गया।

यहाँ सीता और तमसा की उक्ति -प्रत्युक्ति से कथावस्तु में स्वाभाविकता लाने का प्रयत्न किया गया है। प्रेक्षकों को जब यह मालूम हो जाता है कि मन्दाकिनी के प्रभाव से रामचन्द्र तथा वासन्ती आदि सीता जी को देख नहीं रहे हैं, तब सीताजी की उपस्थिति में ही उनके नाम से राम का रोना-धोना प्रेक्षकों के लिए विचित्र नहीं रह जाता है।

यहाँ ध्यातव्य है कि इस गजशावक की कथा की अवतारणा में कवि का उद्देश्य लव-कुश की ओर संकेत करना है।

टिप्पणी- सम्भारः-सम् +भृ + घञ् । आनन्दनिष्यन्दिनः-आनन्दं निष्यन्दयन्तीति आनन्दनिष्यन्दिनः। नि +स्यन्द् + णिच् + णिनि (ताच्छील्ये)। उल्लापः -उद् +लप् + घञ्। बहुमतः - मन् + क्त(वर्तमाने) 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च'। पाटवम् - पटोर्भावः, पटु + अण्। उपादानः - उप + आ +दा +ल्युट्। हृदयमर्मच्छिदः-हृदयमर्माणि छिन्दन्ति ये ते तथोक्ताः। छिद् + क्विप्। उद्घातः-उद् +हन् +घञ्।

सीता – अवियुक्त इदानीमयं दीर्घायुरनया सौम्यदर्शनया भवतु।

रामः - सखि वासन्ति! पश्य पश्य कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसङ्क्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम।। 16 ।।

अन्वयः - यत् स्नेहात् लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसः गण्डूषसङ्क्रान्तयः सम्पादिताः, शीकरिणा करेण कामं सेकः विहितः, पुनः विरामे अनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।। 16 ।।

अर्थ -सीता-अब यह दीर्घायु (अपनी) इस प्रियदर्शना (भार्या) से अविरहित होवे - कभी वियुक्त न होवे।

राम-सखी वासन्ती! देखो, देखो, बच्चे ने प्रिया के चित्त को रंजित करने की कला भी सीख ली है। क्योंकि-स्नेहवश (पहले तो इसने) क्रीडा का रस लेने के निमित्त उखाड़े गये कमलदण्डों के ग्रासों के समाप्त हो जाने पर खिले हुए कमलों से सुवासित जल को (अपने) मुँह में भर कर (प्रिया के मुख में)छोड़ा (पिलाया)। तदनन्तर जलकणों से पूर्ण सूँड द्वारा उसे पर्याप्त सिक्त किया - नहलाया और फिर अन्त में, एक सीधी नाल वाले कमलपत्र रूप छत्र को (धूप के निवारणार्थ प्रिया के सिर पर) तान दिया।।**16**।। प्रस्तुत पद्य में स्वभावोक्ति एवं रूपक अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्या -अवियुक्त इदानीमयं...भवतु-सीता वियोग-वेदना का स्वयम् अनुभव कर चुकी हैं, अतः वे चाहती हैं कि संसार का कोई प्राणी वियोग का वह कष्ट न भोगे जो उन्हें अथवा राम को भुगतना पड़ रहा है।

टिप्पणी -अवियुक्तः-न वियुक्तः। वि +युज्+क्त । चातुर्यम्-चतुरस्य भावः, चतुर + ष्यञ् । उत्खातः उद् +खन् +क्त (कर्मणि)। सम्पादिताः-सम् +पद् +क्त(कर्मणि)। पुष्यत् - पुष् + शतृ। संक्रान्तिः-सम् +क्रम् + क्तिन्। सेकः-सिच् +घञ् । विहितः-वि +ध + क्त। शीकरिणा - शीकर + इनि (मतुबर्थक)।

सीता - भगवति तमसे! अयं तावदीदृशो जातः। तौ पुनर्न जानामि कुशलवावेतावता कालेन कीदृशौ संवृत्ताविति।

तमसा - यादृशोऽयं तादृशौ तावपि।

सीता - ईदृश्यहं मन्दभागिनी यस्या न केवलं निःसह आर्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि।तमसा - भवितव्यतेयमीदृशी।

सीता- किं वा मया प्रसूतया येन तादृशमपि मम पुत्रकयोरीषद्विरलकोमल-

धवलदशनोज्जवलकपोलमनुबद्धमुग्धकाकली विहसितं निबद्धकाकशिखण्डकम्

अमलमुखपुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण।

तमसा - अस्तु देवताप्रसादात्।

सीता - भगवति तमसे! एतेनापत्यसंस्मरेणोच्छवसितप्रस्नुतस्तनी इदानीं वत्सयोःपितुः सन्निधानेन क्षणमात्रां संसारिण्यस्मि संवृत्ता।

तमसा - किमत्रोच्यते? प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः।

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्

आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते।। 17 ।।

अन्वयः - दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् अन्तःकरणतत्त्वस्य 'अपत्यम्' इति अयम् एकः आनन्दग्रन्थिः बध्यते।। **17 ।।**

अर्थ -सीता-हे भगवति तमसे! यह (गजशावक) ऐसा (बड़ा तथा बलवान) हो गया है, नहीं मालूम कि इतने समय में वे कुश और लव कैसे (कितने बड़े) हुए होंगे?

तमसा-जैसा यह (हो चुका) है, वैसे ही वे भी (हुए होंगे)।

सीता-मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ, जिसको न केवल असह्य पति विरह ही हुआ है, (अपितु) पुत्र विरह भी।

तमसा-यह होनी ही ऐसी (थी)।

सीता-अथवा मुझ प्रसवकारिणी से क्या? जो मेरे उन दोनों अनुकम्पनीय पुत्रों के, ऐसे भी थोड़े-थोड़े विरल, कोमल एवं शुभ्र दाँतों से कान्तिमान् कपोलों से युक्त, सर्वदा सम्बद्ध मनमोहक तोतली बोली एवं मधुर हास वाले, नित्य प्रकाशमान् मुखकमलद्वय का आर्यपुत्र ने परिचुम्बन (ही)नहीं किया।

तमसा-देवताओं के अनुग्रह से (ऐसा ही) हो।

सीता-हे भगवति तमसे! सन्तानों के इस स्मरण से उच्छवसित एवं दुग्धस्राव करने वाले स्तनों वाली मैं, बच्चों के पिता की समीप उपस्थिति से इस समय क्षण भर के लिए संसारिणी (पति-पुत्रवती गृहिणी) हो गयी हूँ।

तमसा-इसमें क्या कहना है। निसंशय ही सन्तान वात्सल्य की पराकाष्ठा है और वह माता-पिता दोनों के परस्पर बन्धन का हेतु (भी) है।

दम्पती के स्नेह का आश्रय होने के कारण उनके अन्तःकरणरूप तत्त्व की 'अपत्य' इस प्रकार की अनुपम गाँठ (विधाता के द्वारा) बाँधी जाती है।।17।। प्रस्तुत पद्य में परिणाम अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या - न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण-पति को पुत्र का मुख चूमते देखकर पत्नी को जो आनन्द का अनुभव होता है, उससे वह अपने को धन्य समझती है तथा प्रसवकाल के सारे कष्टों को भूलकर पुत्रोत्पादन को सफल मानती है। सीताजी को यह अनुभव करने का शुभ अवसर नहीं मिला, अतएव वे पुत्रोत्पादन को निष्फल मान रही हैं।

प्रकर्षपर्यन्तः-अपत्य के प्रति जितना बड़ा स्नेह होता है, उतना अन्य किसी के प्रति नहीं

होता है। अतः अपत्य को स्नेह का प्रकर्षपर्यन्त (पराकाष्ठा) कहा गया है।

परं च-'परम' का अर्थ 'उत्कृष्ट' भी किया जा सकता है। तब यह शब्द 'संश्लेषण' का विशेषण होगा। संश्लेषण का अर्थ है - बाँधने का साधन।

स्नेहसंश्रयात्-पति और पत्नी का वात्सल्य अपत्य में केन्द्रित रहता है, अतः अपत्य उनके स्नेह का आश्रय होता है। उनका वह स्नेह सर्वथा वासना से अकलुषित रहता है।

आनन्दग्रन्थिः-पति-पत्नी का हृदय अपत्य से बँध हुआ नित्य अलौकिक आनन्द का अनुभव करता है, अतः अपत्य को आनन्दमयी गाँठ कहा गया। अपत्य पति-पत्नी के हृदय को बाँधें रहने वाली वह अनुपम गाँठ (बन्धन) है, जिससे अन्य बन्धनों की तरह दुःख का अनुभव नहीं होता है, बल्कि नित्य नूतन आनन्द मिलता है। भवभूति ने अपत्य की भारतीय संस्कृति के अनुरूप वह परिभाषा प्रस्तुत की है, जिससे कवि की अपत्य-विषयक उच्च एवं पवित्र भावना अभिव्यक्त हो रही है। 'न पतति वंशो येनेत्यपत्यम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'अपत्य' वैसी उच्च एवं पवित्र भावना का विषय होने का अधिकार भी रखता है। **टिप्पणी -** निःसहः - निस् +सह् + खल्। भवितव्यता - भवितव्य + तल् +

टाप्। उज्जवलः-उद् +ज्वल् +अच्। अनुबन्ध -अनु +बन्ध्+क्त । मुग्ध्ः-मुह् + क्त। विहसितम् -

वि +हस् + क्त(भावे)। उच्छवसितः - उद् +श्वस् + क्त। प्रस्नुतः - प्र +स्नु +क्त (कर्तरि)। प्रसवः - प्रसूयते इति प्रसवः (अपत्यम) प्र +सू +क्त (कर्मणि)। संश्लेषणम् - सम् +श्लिष् + ल्युट् (करणे)। पित्रौ: - माता च पिता च इति पितरौ, तयोः (एकशेषद्वन्द्व समास)। बध्यते - बन्ध् + लट् (कर्मणि)।

वासन्ती - इतोऽपि देवः पश्यतु-

अनुदिवसमवर्धयत् प्रिया ते यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्।

मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे नदति स एष वधूसखः शिखण्डी।। 18 ।।

सीता –(सकौतुकस्नेहास्रम्) एष स एष सः।

रामः - मोदस्व वत्स! मोदस्व

अन्वयः - अचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हं यं ते प्रिया अनुदिवसम् अवर्धयत, स एष शिखण्डी वधू सखः (सन्) कदम्बे उच्छिखः मणिमुकुट इव नदनि।। 18 ।।

अर्थ - वासन्ती-इधर भी महाराज देखें।

नयी निकली हुई सुन्दर एवं चंचल पूँछ वाले जिस (मयूर) को तुम्हारी प्रिया ने प्रतिदिन पाला पोसा था, वही यह उद्गत चूडा वाला मयूर उद्गत किरण युक्त मणिमुकुट के समान (लगता हुआ) कदम्ब वृक्ष पर अपनी वधू (मयूरी) के सहित बोल रहा है।**।18।**। इस पद्य में उपमा अलंकार एवं पुष्पिताग्रा छन्द है। **टिप्पणी-** शिखण्डी - शिखण्डः (शिखा) अस्त्यस्येति शिखण्डी: शिखण्ड+इनि। भ्रमिः –(स्त्री) भ्रम् + इ। आवृत्तिः - आ +भ्रम + इ। आवृत्तिः - आ +वृत् +क्तिन् (भावे)।

सीता - एवं भवतु।

रामः - भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृतिचक्षुः

प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या।

करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं

सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि।। 19 ।।

अन्वयः - भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः (कर्म) प्रचलितचटुलभ्रूलताताण्डवैः (करणैः) मण्डयन्त्या मुग्धया करकिसलयतालैः नर्त्यमानं त्वां सुतमिव वत्सलेन मनसा स्मरामि।। 19 ।।

अर्थ- सीता – ऐसा ही हो।

राम – (तेरे द्वारा किये गये) चक्राकार भ्रमणों में (उसका अनुवर्तन करने के कारण) पलको के भीतर किये गये मण्डलाकार आवर्तन वाले नेत्रों को चंचल एवं सुन्दर भौहों के नर्तन से अलेकृत करती हुई मुग्धा (भोली) सीता के द्वारा करपल्लव के तालों से नचायें जाते हुए पुत्र की तरह तुमको स्नेहपूर्ण मन से स्मरण करता हूँ **।। 19 ।।**

व्याख्या -कृतपुटान्तमण्डलावृत्तिचक्षः-मयूरों के नाचने की गति चक्राकार या मण्डलाकार होती है। सीता जी के नेत्र मयूर की चक्राकार गति पर टिके रहते थे। अतः उसके साथ ही सीता के नेत्र भी मण्डलाकार गति में घूमते जाते थे।

चटुल-इस शब्द का अर्थ चपल या चंचल भी होता है, किन्तु यहाँ 'सुन्दर' अर्थ ही ग्राह्य है, क्योंकि 'प्रचलित' शब्द से 'चंचल' अर्थ सूचित हो रहा है।

ताल-गीत, नृत्त और वाद्य में नियतमात्राओं पर ताली देना 'ताल' कहलाता है। 'तालः कालक्रियामानम्' इत्यमरः। 'ताल करतलेऽघ्गुष्ठमध्यमाभ्यां च सम्मिते। गीतकालक्रियामाने करास्फले द्रुमान्तरे।।' इति विश्व।

टिप्पणी -मण्डयन्त्या - चुरादि मण्ड+णिच् (स्वार्थे) +शतृ +ङीप्, तृúएúवú। नर्त्यमानम्

- नृत् + णिच् + शानच् (कर्मणि), द्विúएúवú

हन्त! तिर्यश्चोऽपि परिचयमनुरुन्ध्ते।

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः

प्रियतमया परिवर्धितोऽयमासीत्।

सीता – (निरूप्य सास्रम्)सुष्ठ् प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्रेण।

रामः - स्मरति गिरिमयूर इव एष देव्याः

स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति।। 20 ।।

अन्वय – अयं कदम्ब: प्रियतमा परिवर्धित: (सन्) कतिपयकुसुमोद्गम आसीत् ,एष: गिरिमयूर: देव्या स्मरति ,यत: अत्र स्वजने इव प्रमोदम् एति ।

अर्थ - राम-खेद है! पशु-पक्षी भी परिचय का लिहाज रखते हैं। यह थोड़े-से विकसित पुष्पों से युक्त कदम्ब प्रियतमा द्वारा (सीता के द्वारा) बड़ा किया गया था।

सीता-(भली-भाँति देखकर, अश्रुसहित) आर्यपुत्र ने खूब पहिचाना।

राम-यह पर्वतप्रिय मयूर देवी (सीता) का स्मरण करता है, क्योंकि (कदम्ब का भी परिवर्धन सीता के द्वारा ही होने से) इस (कदम्ब) में अपने बन्धु में जैसा हर्ष प्राप्त करता है।।**20**।। इसमें उपमा अलंकार और पुष्पिताग्रा छन्द है।

व्याख्या - हन्त! तिर्यश्चयोऽपिú-राम के कहने का आशय है कि परिचय का लिहाज करने वाले पशु-पक्षी भी अच्छे हैं किन्तु हम नहीं । जिसने परिचय का तनिक भी विचार न कर सीता को घर से निकाल दिया।

स्मरति गिरिमयूरः-मोर और कदम्बवृक्ष दोनों का परिवर्धन सीताजी ने किया था, अतः दोनों एक-दूसरे के भाई की तरह थे। यही कारण था कि मोर उस वृक्ष में स्वजन की-सी प्रीति रखता था और उसे देखते ही उस (मयूर) को सीताजी का स्मरण हो आता था।

टिप्पणी- प्रमोदः - प्र +मुद् +घञ् । परिवर्धित: - परि +वृध् +णिच् + क्त। उद्गमः - उद् + गम् +अप् (ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च्' 3/3/58)।

वासन्ती - अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः।

(राम उपविशति)

वासन्ती - एतत्तदेव कदलीवनमध्यवर्ति

कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।

अत्र स्थिता तृणमदाद् बहुशो यदेभ्यः

सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म।। 21 ।।

अन्वयः - कान्तासखस्य ते एतत् तदेव कदलीवनमध्यवर्ति शयनीयशिलातलम्। अत्र: स्थिता सीता यद् एभ्यः बहुशः तृणम् अदात्, ततः (इदं) हरिणकैः न विमुच्यते स्म।। 21 ।।

अर्थ - वासन्ती-यहीं महाराज आसन ग्रहण करें। (राम बैठते हैं)

वासन्ती-कान्ता (सीता) के साथ रहने वाले आपका यह वही कदली वन के बीच में विद्यमान शयनार्थ शिलातल है। क्योंकि इसी पर बैठी हुई सीता इन (मृगों) को प्रायः घास देती रहती थी, अतएव (यह) बेचारे मृगों से (आज भी) नहीं छोड़ा जाता है।।**21**।। प्रस्तुत पद्य में वसन्ततिलका छन्द एवं प्रसाद गुण तथा लाटीरीति है।

व्याख्या -एतत्तदेव कदलीवनमध्यवर्ति-नीरन्ध्रबाल0 (पाठान्तर) नीरन्ध्रराः (निर्गतं रन्ध्रं याभ्यस्ताः) छिद्रस्याप्यकाशाभावादत्यन्तनिबिडा इति भावः) ताश्च ता बालकदल्यः नवरम्भाः, तासां वनस्य मध्ये वर्तते तच्छीलम्।

न विमुच्यते स्म-इसे भूतकाल-बोधक मानने पर अर्थ होगा - सीता बेचारे हरिणों के द्वारा नहीं छोड़ी जाती थीं - उनसे घिरी रहती थीं।

टिप्पणी- बहुशः-बहु+शस्। विमुच्यते - वि + मुच् + लट् (कर्मणि)।

राम –इदं तावदशक्यमेव द्रष्टुम्। (इत्यन्यतो रुदन्नुपविशति)

सीता - सखि वासन्ति! किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद् दर्शयन्त्या। हा धिक् ! हा धिक् ! स एवार्यपुत्रः, सैव प्रियसखी वासन्ती, त एव विविधविस्रम्भसाक्षिणो गोदावरीकाननोद्देशाः, त एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिपादपाः, सैव चाहम्। म पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमवैतन्नास्तीति तदीदृशो जीवलोकस्य परिवर्तः।

वासन्ती - सखि सीते! कथं न पश्यसि रामभद्रस्यावस्थाम्?

नवकुवलयस्निग्धैरंगैर्ददन्नयनोत्सवं

सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव यः।

विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः

कथमपि स उन्नेव्यस्तथापि दृशोः प्रियः।। 22 ।।

अन्वयः – नववुफवलयस्निग्धै: अंगैः नयनोत्सवं ददत्, सततमपि नः स्वेच्छादृश्यः अपि यः नवो नव एव (आसीत), शुचा विकलकरणः पाण्डुच्छायः परिदुर्बलः, तथापि दृशोः प्रियः, सः कथमपि उन्नेतव्यः।। 22 ।।

अर्थ - राम-यह तो देखा ही नहीं जा सकता। (ऐसा कहकर रोते हुए दूसरी ओर बैठ जाते हैं)।

सीता-सखि वासन्ति! आर्यपुत्र को और मुझको यह (शयनशिलातल) दिखलाती हुई तूने (यह) क्या कर दिया (अर्थात् बहुत बुरा किया)। हा धिक् हा धिक् ! वही आर्यपुत्र हैं, वही पंच वटी वन है, वही प्रियसखी वासन्ती है, वे ही (हम दोनों के)विविध विश्वस्त व्यापारों के (अधिक रण होने के कारण) प्रत्यक्षदर्शी गोदावरी नदी के वनप्रदेश हैं, वे ही पुत्र से अभिन्न मृग, पक्षी और वृक्ष हैं, वही मैं हूँ, (किन्तु इस समय) यह सब कुछ दिखलायी देते हुए भी मुझ अभागिन के लिए मानो है ही नहीं (नहीं के बराबर है), (मेरे सम्बन्ध में) संसार का ऐसा परिवर्तन हो गया।

वासन्ती-हे सखि सीते! रामभद्र की अवस्था (दशा) कैसे नहीं देखती हो?

(पहले) जो नये नीलकमल के समान चिकने-कोमल अंगों से नेत्रों को आनन्द देते हुए, निरन्तर हमारे लिए यथेच्छ देखने योग्य (अर्थात् सुलभ दर्शन) होकर भी नये-नये ही (प्रतीत होते थे) (इस समय वे ही) शोक से विकलेन्द्रिय, धूसर कान्ति वाले तथा अत्यन्त दुर्बल होने पर भी नेत्रों के लिए प्रिय, किसी-किसी तरह 'वह' (हैं) ऐसा पहचान में आने योग्य है।।22।। इस पद्य में उपमा अलंकार तथा हरिणी छन्द है ।

व्याख्या – जीवलोकस्य परिवर्तः-सीताजी के लिए तत्तत्पदार्थ जो सुखकारक प्रतीत होते थे, वे ही अब दुःखोत्पादक बन गये हैं। वे स्वरूपतः सामने विद्यमान हैं, तथापि दुःखोत्पादक होने के कारण सीता के लिए नहीं के बराबर हैं। उनमें यही सब से बड़ा परिवर्तन हो गया है।

सखि सीते इत्यादि-वासन्ती की यह उक्ति स्नेहाधिक्य के कारण सीता को लक्ष्य करके कही गयी है, उन्हें देखकर नहीं क्योंकि गंगा के प्रभाव से सीता वासन्ती आदि के लिए उस समय अदृश्य थीं।

नवो नव एव-सौन्दर्य का महत्त्व इसी में है कि उसे जितनी बार भी देखा जाय, उसकी चिर नवीनता की अनुभूति होती रहे, ताकि उसे देखकर मन कभी न भरे, अन्यथा वह सुन्दर कैसे रह जायेगा?

टिप्पणी- द्रष्टुम् - दृश् + तुमुन्। अशक्यम् - नञ् +शक्+ यत्। दर्शयन्त्या दृश् + णिच् + शतृ+ङीप् (तृúएúवú)। जातः - जन् + क्त (कर्तरि)। परिवर्तः - परि + वृत् + घञ् (भावे)। ददत् - दा + शतृ। उन्नतव्यः - उन् +नी + तव्य।

सीता - प्रेक्षे, सखि! प्रेक्षे।

तमसा - पश्यन्ती प्रियं भूयाः।

सीता - हा दैव! एष मया विनाऽहमप्येतेन विनेति स्वप्नेऽपि केन सम्भावितमासीत्। तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादिव लब्धदर्शनं बाष्पसलिलान्तरेषु पश्यामि तावद् वत्सलमार्यपुत्रम्।

तमसा – (परिष्वज्य सास्रम्)

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक-

प्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा।

स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते

धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः।।23 ।।

अन्वयः - अतिपूरैः विलुलितम् आनन्दशोकप्रभवं बाष्पम् अवसृजन्ती, तृष्णया उत्तानदीर्घा, धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव ते दृष्टिः स्नेहनिष्यन्दिनी (सती) हृदयेशं स्नपयति।। 23 ।।

अर्थ - सीता-हे सखि! देख रही हूँ, देख रही हूँ।

तमसा-प्रिय को (यों ही) देखती रहो।

सीता-हाय विधाता! ये (राम) मेरे बिना और मैं भी इनके बिना (रह सकूँगी) ऐसा स्वप्न में भी किससे संभावना की गयी थी? तो मानो दूसरा जन्म पा करके जिनका दर्शन मिला है, उन स्नेही आर्यपुत्र को इस समय आँसुओं के (गिरने तथा पुनः निकलने के समय के) बीच के समयों में थोड़ी देर देख लूँ। (ऐसा कहकर देखती हुई स्थित रहती है)

तमसा-(आलिंगन करके, आँसू भरकर)

बड़े-बड़े प्रवाहों से विकीर्ण, आनन्द एवं शोक से उत्पन्न आँसू को डालती हुई, दर्शनोत्कण्ठा से ऊपर की ओर विस्तारित और (दूर तक डाली जाने के कारण) लम्बी अतिशुभ्र एवं मनोज्ञ (अतएव)दूध् की छोटी कृत्रिम नदी-सी तेरी दृष्टि स्नेह की वर्षा करती हुई हृदयेश्वर(राम) को नहला रही है।।23।। यहाँ पर शंकर अलंकार तथा मालिनी छन्द है। माधुर्यगुण तथा वैदर्भी रीति है

व्याख्या - जन्मान्तरादिव-जन्मान्तरात्=जन्मान्तरं प्राप्य ‘ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च’ वार्तिक से ल्यबन्त ‘प्राप्य’ के लोप होने पर कर्म (जन्मान्तर) से पंचमी हो गयी है(जन्मान्तरात्)। अर्थ है-दूसरा जन्म प्राप्त करके । सीता ने अपने इस जन्म में पुनः राम के दर्शन की आशा छोड़ ही दी थी। अतएव राम का दर्शन होने पर उन्होंने यही समझा कि मानो उनका दूसरा जन्म हो गया हो।

बाष्पसलिलान्तरेषु-‘अन्तरम् अवकाशावधिपरिधान0’ अमरकोशकार के इस वचन के अनुसार यहाँ अन्तर शब्द का ‘अवकाश’ (अर्थात् अन्तराल) अर्थ है। आँखों में आँसू भर जाने के कारण सीता जी को राम के दर्शन में बड़ी कठिनाई पड़ गयी। अतः आँसू गिरने के बाद पुनः जब तक वे आँखों में न आ जायें, उतना ही थोड़ा सा समय उन्हें राम के दर्शन के लिए मिल सकता था, उसी को ही उन्होंने अपने लिए बहुत समझा।

दुग्धकुल्येव-प्रोषितभर्तृका होने के कारण सीताजी नेत्र में काजल नहीं लगाती थीं, अतएव उनकी दृष्टि अत्यन्त शुभ्र थी। इसी से दृष्टि को दूध् की छोटी कृत्रिम नदी-सा कहा गया है। प्रोषितभर्तृका के लिए शरीर-संस्कार आदि वर्जित है - ‘क्रीडां शरीरसंस्कारं, समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं, त्यजेत् प्रोषितभर्तृका’। (याज्ञवल्क्यस्मृति 1/84)

टिप्पणी - पश्यन्ती - दृश् +शतृ + ङीप्, नुमागम। सम्भावितम् - सम् +भू +णिच् + क्त।

लब्ध्: - लभ् + क्त (कर्मणि)। परिष्वज्य - परि + स्वञ्ज् + ल्यप्। प्रभवः - प्र +भू + अप्। अवसृजन्ती - अव + सृज् + शतृ + ङीप्, नुमागम। स्नेहनिष्यन्दिनी-स्नेहं निष्यन्दयति तच्छीला स्नेह + नि + स्यन्द् + णिच् + णिनि + ङीप्।

वासन्ती - ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः

स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः।

कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः

पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः।। 24 ।।

अन्वयः - मधुश्च्युतः तरवः पुष्पैः फलैश्च अर्घ्यं ददतु, स्फुटितकमलामोदप्रायाः वनानिलाः प्रवान्तु: रज्यत्कण्ठाः शकुन्तयः अविरलं कलं क्वणन्तु। अयं देवो रामः स्वयम् इदं वनं पुनः आगतः।। 24 ।।

अर्थ – **वासन्ती**-मकरन्द बरसाने वाले वृक्ष पुष्पों और फलों से अर्घ्य दें, खिले हुए कमलों के सौरभ के आधिक्य से पूर्ण वनवायु बहें, राग युक्त कण्ठ वाले पक्षी सतत मधुर शब्द करें। यह महाराज राम स्वयं इस वन में पुनः पधारे हैं।।24।। इसमें काव्यलिंग अलंकार तथा हरिणी वृत्त है।

व्याख्या- क्वणन्तु-'गीतावाद्यभेदेन शब्दं कुर्वन्तु, अत एव कूजन्त्विति नोक्तम्' (वीरराघव)।

टिप्पणी' मधुश्च्युत: - मधु +श्चयुत् +क्विप्। अर्घ्य - अर्घाय हितम्, अर्थ् + यत्। रज्यत्कण्ठाः - रज्यन्तः ('रंज रागे' दिवादि से शतृ) कण्ठा येषां ते।

1.4 सारांश

इस इकाई में आपने तृतीय अंक के पूर्वार्द्ध भाग का अध्ययन किया और यह जाना कि रामचन्द्रजी के विचारों में सीताजी छाया के समान निरन्तर घूम रहीं हैं। सीताजी तो राम को देख सकती हैं किन्तु राम सीता को नहीं देख सकते हैं।

इस इकाई के अध्ययन से आप यह भी जान पाये कि उत्तररामचरितम् के तृतीय अंक को महकवि भवभूति ने ‘छाया’ अंक नाम से नामांकित किया है। इसमें ‘छाया’ सीता की कल्पना कवि की मौलिक कल्पना है। जो नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राम का पंचवटी में वासन्ती से मिलन भी उनकी मौलिक उद्धावना है।तृतीय अंक के अन्तर्गत तमसा और मुरला नामक दो नदियों के वार्तालाप के माध्यम से ज्ञात होता है कि परित्यक्त होने के पश्चात् सीताजी प्राण विसर्जन हेतु गंगा जी में कूदती हैं और वहीं लव-कुश का जन्म होता है। गंगा जी उनके पुत्रों की रक्षा कर वाल्मीकि को सर्मिर्पत करती हैं। आज उनकी बारहवीं वर्षगांठ है इसलिए भगवती भागीरथी ने सीताजी को आज्ञा दी है कि वे अपने कुल उपास्य देव भगवान सूर्य की उपासना करें। उन्हें भागीरथी का वरदान है कि उन्हें पृथ्वी पर देवता भी नहीं देख सकते, पुरुषों की तो बात ही क्या है? इसके अनन्तभगवान रामचन्द्र जी का प्रवेश होता है। वह पंचवटी प्रवेश में वनदेवी वासन्ती के साथ पूर्वानुभूत दृश्यों को देखकर सीता की स्मृति से अत्यन्त व्याकुल होते हैं। सीता अदृश्य रूप में उन्हें स्पर्श करके प्रबुद्ध करती हैं। इस प्रकार छाया नामक तृतीय अंक में सीता के हृदय की शुद्धि हो जाती है।

1.5 शब्दावली

पुटपाक	औषधि विशेष
रसातल	पाताल
करिकलभ	हाथी का बच्चा
द्ष्टिया	भाग्य से
जगतपति	संसार का स्वामी
हरिचन्दन	देववृक्ष

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.उत्तररामचरितम् (भवभूति), एमúआरú काले (वीरराघवकृत टीका)मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962

2.उत्तररामचरितम् (भवभूति), स्वरूप आनंद एवं जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977

3.उत्तररामचरितम् (भवभूति), ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1987

1.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्राी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

3.भवभूति के नाटक, ब्रज वल्लभ शर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1973

इकाई 2 - उत्तररामचरितम् तृतीय अंक का उत्तरार्द्ध

इकाई की रूपरेखा:

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 25 से 48 तक
(मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी)
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक ग्रन्थ
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

उत्तररामचरितम् के तृतीय खण्ड की यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने तृतीय अंक के पूर्वार्द्ध का अध्ययन किया। जिसमें आपने जाना कि भगवती भागीरथी के आर्शीवाद के कारण सीता जी को पृथ्वी पर कोई देख नहीं सकता है और इधर श्रीराम का पंचवटी में प्रवेश होता है।

इस इकाई में उत्तररामचरितम् तृतीय अंक के उत्तरार्द्ध की कथावस्तु को रखा गया है। राम की करूण दशा को देखकर तथा अपनी स्वर्णमयी मूर्ति की चर्चा राम के मुख से सुनकर सीताजी द्रवित होकर राम की ओर अभिमुख होती है। उनका राम के प्रति बारह वर्षों तक निरन्तर बना हुआ निर्वासन –जनित क्षोभ नष्ट हो जाता है और हृदय पूर्ववत् निर्मल ,निष्कलुष एवं आत्मीयता पूर्ण प्रेम से ओत प्रोत हो जाता है। इस कथा के अनन्तर कवि ने करुण रस के स्वरूप तथा भेद की चर्चा करते हुए तृतीय अंक का पर्यवसान किया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेगें कि करुण रस का स्वरूप क्या है और राम और सीता के प्रेम की उदात्तता का भी वर्णन कर पायेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेगें कि –

- सीता किस प्रकार अदृश्य रूप से राम का दर्शन करती हैं।
- करूण रस का स्वरूप क्या है।
- किसकी स्वर्णमयी मूर्ति की चर्चा की गई है।
- श्लोकों मे प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार को समझा पायेगें।

2.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 25 से 48 तक (मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी)

रामः - एहि सखि वासन्ति! नन्वितः स्थीयताम्।

वासन्ती – (उपविश्य, सास्रम्) महाराज! अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य।

रामः – (अश्रुतिमभिनीय) -

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-

स्तरुशकुनिकुरंगान्मैथिली यानपुष्यत्।

भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि

द्रव इव हृदयस्ये प्रस्तरोद्भेदयोग्यः।।25 ।।

अन्वयः - मैथिली यान् तरुशकुनिकुरंगान् करकमलवितीर्णैः अम्बुनीवारशष्पैः अपुष्यत्, तेषु दृष्टेषु, प्रस्तरोद्भेदयोग्यः हृदयस्य द्रव इव मम कोऽपि विकारः भवति।।25 ।।

अर्थ- राम-हे सखि वासन्ति! आओ, इधर बैठो।

वासन्ती-(बैठकर, अश्रुसहित) महाराज! कुमार लक्ष्मण का कुशल तो है?

राम-(न सुनने का अभिनय कर) सीता ने जिन वृक्षों, पक्षियों तथा मृगों को (अपने) करकमलों से दिये गये जल, नीवार तथा कोमल घासों से पाला-पोसा था, उनके देखे जाने पर पत्थर को विदीर्ण करने में समर्थ हृदय के द्रव-सा मेरे कोई (अनिर्वचनीय) विकार उत्पन्न हो रहा है।।25।। यहाँ यथासंख्य अलंकार एवं मालिनी छन्द है।

व्याख्या- द्रव इव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेदयोग्यः-सीता द्वारा पोषित तरु आदि को देखकर राम के हृदय में जो अनिर्वचनीय विकार का उदय हुआ, उसने उनके हृदय को द्रवीभूत कर दिया। राम ने उस विकार को पत्थर को भी विदीर्ण करने में समर्थ कहकर अपने हृदय की कठोरता ध्वनित की है।

मन्ये विदितसीतावृत्तान्ता-वासन्ती ने रामचन्द्र को महाराज शब्द से सम्बोधित किया,

जिससे राम के प्रति उसका उदासीन-भाव प्रकट हो रहा था। उसने केवल लक्ष्मण के विषय में कुशल-प्रश्न पूछा, सीता के विषय में नहीं और लक्ष्मण का नाम लेते ही उसके नेत्रों में आँसू आ गये, जिससे प्रश्नाक्षर भी अस्पष्ट थे। इन बातों से राम ने समझ लिया कि वासन्ती को सीता-निर्वासन की पूरी जानकारी है।

टिप्पणी- एहि - आ + इ (गतौ) +लोट् (सिप्)। स्थीयताम् - स्था + लोट् (भावे)। उपविश्य - उप + विश् + ल्यप्।

वासन्ती - महाराज! ननु पृच्छामि, अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्येति।

रामः – (आत्मगतम्) अये महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदं सौमित्रि मात्रे च बाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीतावृत्तान्तेयमिति। (प्रकाशम्) आं कुशलं कुमारस्य ।

वासन्ती – (रुदती) अयि देव! किं परं दारुणः खल्वसि?

सीता - सखि वासन्ति! किं त्वमेवंवादिनी भवसि? प्रियार्हः खलु सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्याः।

वासन्ती - **त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं**

त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमअंगे।

इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां

तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण।।26 ।

अन्वयः **-** त्वं जीवितं, त्वं मे द्वितीयं हृदयमसि, त्वं नयनयोः कौमुदी, त्वम् अंगे अमृतम् इत्यादिभिः प्रियशतैः मुग्धम् अनुरुध्य तामेव....अथवा शान्तम्, इह उत्तरेण किम्?।।26 ।

अर्थ - वासन्ती-महाराज! अरे, मैं कुमार लक्ष्मण का कुशल पूछ रही हूँ।

राम-(आत्मगत) अरे! 'महाराज! यह स्नेहशून्य सम्बोधन पद है। केवल लक्ष्मण के विषय में आँसू से अस्पष्ट अक्षर वाला कुशल प्रश्न है। इससे मैं समझता हूँ कि यह सीता

के वृत्तान्त को जान चुकी है। (प्रकाश) हाँ, कुमार (लक्ष्मण) कुशल है।

वासन्ती-(रोती हुई) हे देव! हे महाराज! क्यों आप अत्यन्त कठोर हैं?

सीता-हे सखी वासन्ती! तुम क्यों इस प्रकार बोलने वाली हो रही हो? आर्यपुत्र सबके, विशेष कर मेरी प्रियसखी केप्रियवचनों केयोग्य हैं।

वासन्ती-'तुम (मेरा) जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरे नेत्रों के लिए कौमुदी हो, तुम मेरे अंगों में अमृत हो' इत्यादि सैकड़ों चापलूसी-भरे वाक्यों से भोली-भाली (सीता) को फुसला कर आपने उसी को...अथवा बस रहने दो, अगले वाक्य से क्या लाभ?।।26।। इस पद्य में शंकर अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

व्याख्या- शान्तम्-बस, और कुछ नहीं करना चाहिए। वासन्ती आगे कहना चाहती थी कि 'तुमने घर से निकाल दिया' परन्तु सीता-निर्वासन की बात उसके लिए हृदयविदारक होने केकारण इतनी असह्य हो गयी कि मुख से निकल न सकी, अतः वाक्य पूरा किये बिना ही वह बीच में ही रुक गयी।

टिप्पणी- एवंवादिनी - एवं वदितुं शीलमस्याः एवम् + वद् +णिनि (ताच्छील्ये) +ङीप्।

(इति मुह्यति)**तमसा** - स्थाने वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च ।

रामः - सखि! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

वासन्ती – (समाश्वस्य) तत्किमिदकमकार्यमनुष्ठितं देवेन?

सीता - सखि वासन्ति! विरम विरम।

रामः - लोको न मृष्यति।

वासन्ती - कस्य हेतोः?

रामः - स एव जानाति किमपि।

तमसा - चिरादुपालम्भः।

वासन्ती -अयि कठोर यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम्।

किमभवद्विपिने हरिणीदृशः कथय नाथ कथं बत मन्यसे।।27 ।।

अन्वयः - अयि कठोर! ते यशः प्रियं किल, ननु अतः परं घोरम् अयशः किम् (स्यात्)? विपिने हरिणीदृशः किम् अभवत्? हे नाथ! कथय कथं बत मन्यसे?।।27 ।।

अर्थ- तमसा-वाणी का निरोध् और मूर्च्छा उचित ही है।

राम-सखि! समाश्वस्त हो, समाश्वस्त हो।

वासन्ती-(समाश्वस्त होकर) तो महाराज ने यह अनुचित कार्य कैसे किया?

सीता-सखि वासन्ति! रुको, रुको।

राम-लोग सहन नहीं करते।

वासन्ती-किस कारण से?

राम-वह (लोक) ही कुछ (कारण) जानता है।

तमसा-बहुत समय बाद उपालम्भ (दिया) है।

वासन्ती-हे कठोर! तुम्हें यश प्यारा है, ऐसी प्रसिद्धि हैंकिन्तु इससे बढ़कर घोर अपयश क्या (हो सकता)है? जंगल में मृगाक्षी का क्या हुआ? हे नाथ! कहिए, खेद है, कैसा समझते हैं**?।।27**।। यहाँ पर विषम अलंकार तथा द्रुतविलम्बित छन्द है।

व्याख्या- चिरादुपालम्भः-तमसा केकहने का आशय है कि श्रीरामचन्द्र के मुख से लोक के प्रति उपालम्भ पूर्ण वाक्य तो निकला किन्तु बहुत देर के बाद। अब इसकी क्या उपयोगिता है? लोक सीता को अकारण ही बदनाम कर रहा है - यह बात उन्हें पहिले ही समझनी चाहिए थी।

नाथ-यह सम्बोधन भी व्यंग्यपूर्ण है। वासन्ती का अभिप्राय है कि आप तो सीता के नाथ हैं। उसे निर्वासित कर देने पर भी उसके कुशल-क्षेम का उत्तरदायित्व आप पर आता है, किन्तु आज तक आप ने उसकी खोज-खबर भी नहीं ली, फिर आप कैसे नाथ हैं?

टिप्पणी- निवृत्तिः - नि + वित् +क्तिन् (स्त्रियां भावे)। मोहः - मुह् +घञ् ।

सीता - त्वमेव सखि वासन्ति! दारुणा कठोरा च यैवमार्यपुत्रां प्रदीप्तं प्रदीपयसि।

तमसा - प्रणय एवं व्याहरति शोकश्च ।

रामः - सखि! किमत्र मन्तव्यम्?

त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टे-

स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः।

ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा

क्रव्याद्भिरंगलतिका नियतं विलुप्ता।।28 ।।

अन्वयः - त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टेः, परिस्फुरितगर्भभरालसायाः तस्याः ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा अंगलतिका नियतं क्रव्याद्भिः विलुप्ता।।üø।।

अर्थ- सीता-हे सखि वासन्ति! तुम्हीं दारुण और कठोर हो जो इस प्रकार सन्तप्त आर्यपुत्र को सन्तप्त कर रही हो।

तमसा-स्नेह और शोक (ही) इस प्रकार कह रहा है।

राम-सखि! इसमें विचारना क्या है?

डरे हुए एक वर्ष वाले मृग की जैसी अतिचंच ल दृष्टि वाली, स्पन्दमान गर्भ केभार से अलसायी हुई उस (सीता) की चन्द्रिकामयी-सी, कोमल नवीन कमलदण्ड केसमान अंगलता को निश्चय ही मांसभक्षी जन्तुओं ने विलुप्त कर दिया होगा (खा डाला होगा)।।**28**।। इस पद्य में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

व्याख्या- सीता केअंग की लता, ज्योत्स्ना, मृदु-नूतनमृणाल से समता देकर कवि ने उसकी सौन्दर्यातिशयशीलता तो अभिव्यक्त ही की है, कवि का यह भी अभिप्राय है कि उसके शरीर को विनष्ट करने में हिंसकजन्तुओं को विलम्ब भी न लगा होगा। 'त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टेः' पद से सीता केनेत्रसौन्दर्य की अभिव्यक्ति केसाथ-साथ

उसकी कातरता और दैन्यावस्था की अभिव्यंजना की गयी है। ‘परिस्फुरितगर्भभरालसायाः’ पद से सीता की ऐसी विवशता अभिव्यक्त की गयी है कि वह अपनी रक्षा केलिए अन्यत्र भागने में भी असमर्थ थी।

सीता - आर्यपुत्र! घ्रिये एषा घ्रिये।

राम - हा प्रिये जानकि! क्वासि?

सीता – हाधिक्! हाधिक्! अन्य इवार्यपुत्राः प्रमुक्तकण्ठं रोदिति।

तमसा - वत्से! साम्प्रतिकमेवैतत् कर्त्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।

शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।।29 ।।

अन्वयः - तटाकस्य पूरोत्पीडे परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते।।29 ।।

अर्थ सीता-आर्यपुत्र! जी रही हूँ, यह मैं जी रही हूँ।

राम-हाय, प्रिये जानकि! (तुम) कहाँ हो?

सीता-हाय (मुझे) धिक्कार है, धिक्कार है। (जिसके कारण) अन्य (साधारण) जन की भाँति आर्यपुत्र मुक्तकण्ठ से रो रहे हैं।

तमसा-पुत्री! यह उचित ही है। दुःखी लोगों केद्वारा दुःख का उपशमन किया जाना ही चाहिए।

तडाग की जलवृद्धि अधिक हो जाने पर (नाली द्वारा) जल को निकाल देना (ही) प्रतीकार है। शोक से विक्षोभ होने पर प्रलापों (रोना-पीटना) केद्वारा ही हृदय धारण किया जाता है।।**29**।। यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या- दुःखनिर्वापणानि-निर्वापण का अर्थ ‘बुझाना’ होता है, दुःख की तुलना अग्नि से की जाती है, अतः उसके लिए निर्वापण शब्द का प्रयोग समीचीन है।

पूरोत्पीडे-पूर् शब्द का अर्थ है - जल का बढ़ना (पूरः स्यादम्भसां वृद्धौ' इति हैमः), उत्पीड का अर्थ है - आधिक्य।

टिप्पणी- साम्प्रतिकम् - साम्प्रतमेव साम्प्रतिकम् (स्वार्थे ठक्)। निर्वापणानि - निर् + वा

+ णिच्, पुक का आगम + ल्युट्।

विशेषतो रामभद्रस्य यस्य बहुतेरप्रकारकष्टो जीवलोकः।

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा

प्रियाशोको जीवं कुसुममिव धर्मो ग्लपयति।

स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ-

स्तदद्याप्युच्छवासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्।।30 ।।

अन्वयः - अभियुक्तेन मनसा इदं विश्वं विधिवत् परिपाल्यम् प्रियाशोकः धर्मः कुसुममिव जीवं ग्लपयति, स्वयं त्यागं कृत्वा विलपनविनोदः अपि असुलभः, तत् अद्यापि उच्छ्वासो भवति, ननु रुदितं लाभो हि।।30 ।।

अर्थ विशेष रूप से रामभद्र केलिए (रोना युक्त ही है), जिनका संसार (अर्थात् सांसारिक जीवन) बहुत प्रकार के कष्टों से युक्त है।

सावधन मन से इस संसार का विधिवत् पालन करना पड़ता है, प्रिया (सीता) का शोक पुष्प को आतप की तरह (उनके) जीवन को म्लान करता रहता है,(तुझ सीता का) स्वयं (स्वेच्छा से) त्याग कर विलापों द्वारा शोक का अपनोदन भी (उन्हें) दुर्लभ है फिर भी प्राण धारण किये हुए हैं, निश्चयही रोदन लाभप्रद है।।30।। इस पद्य में उपमा और परिणाम अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

टिप्पणी- पाल्यम् - पाल् +ण्यत् (ऋहलोर्ण्यत्)। अभियुक्तेन - अभि + युज् + क्त।

रामः - कष्टं भोः! कष्टम्।

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते

वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चयति चेतनाम्।

ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्

प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।31 ।।

अन्वयः - गाढोद्वेगं हृदयं दलति, द्विधा तु न भिद्यते। विकलः कायः मोहं वहति चेतनां न मुञ्चति। अन्दाहः तनूं ज्वलयति, भस्मसात् न करोति। मर्मच्छेदी विधि: प्रहरति, जीवितं न कृन्तति।।ýû।।

अर्थ- राम-अरे! कष्ट है, कष्ट है।

गाढ व्यथा-सम्पन्न हृदय फटता (तो) है, किन्तु दो खण्डों में विभक्त नहीं होता शोकविह्वल शरीर मूर्च्छा को धारण (तो) करता है, किन्तु चेतना को नहीं छोड़ता हृदय का सन्ताप शरीर को जलाता ;तोद्ध है, किन्तु भस्म नहीं करता, मर्मान्तक पीडा देने वाला दैव प्रहार ;तोद्ध करता है, किन्तु जीवन को काटता नहीं ;समाप्त नहीं करताद्ध।।31।। प्रस्तुत पद्य में विशेषोक्ति अलंकार तथा हरिणी छन्द है।

व्याख्या- इस श्लोक में दलनादि रूप कारण के होने पर भी द्विधभेदनादि रूप फल के न होने से विशेषोक्ति अलंकार है। कतिपय विद्वान् प्रत्येक चरण में विरोधभास अलंकार मानते हैं, कतिपय 'परिसंख्या' अलंकार मानते हैं।

टिप्पणी-उद्वेगः - उद् + विज् + घञ् । भिद्यते - कर्मकर्तरि लट्। ज्वलयति - ज्वल् +णिच् +लट् ,मितां ह्रस्व: से उपधा को ह्रस्व ।

सीता - एवं न्विदम्

रामः - हे भगवन्तः पौरजानपदाः!

न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।
चिरपरिचितास्ते ते भावाः परिद्रव्यन्ति मा-
मिदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते।।32 ।।

अन्वयः - देव्याः गृहे स्थानं भवतां न अभिमतं किल, ततः शून्ये वने तृणमिव त्यक्तवा, न चापि अनुशोचिता, चिरपरिचिताः ते ते भावाः मां परिद्रवयन्ति अशरणैः अस्माभिः इदं रुद्यते, प्रसीदत।।**32** ।।

अर्थ - सीता-यह बात ऐसी ही है।

राम-हे महानुभाव पुरवासियो और जनपदवासियो!

देवी (सीता)का (मेरे) घर में रहना आप लोगों को अभिमत नहीं है - ऐसा सुना गया, अतः वह तृण केसमान निर्जन वन में त्याग दी गयी और उसके लिए शोक भी नहीं किया गया, किन्तु चिरपरिचित वे-वे (सभी) पदार्थ (आज पुनः देखे जाने पर) मुझे द्रवित कर रहे हैं,(अतः) निरुपाय हम रो रहे हैं, अब प्रसन्नहोइए।।**32**।। इस पद्य में भी विशेषोक्ति अलंकार तथा हरिणी छन्द है।

व्याख्या-इस श्लोक में एक स्थान पर 'माम्' ऐसा एकवचनान्त और दूसरी जगह 'अस्माभिः' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग युक्त नहीं लगता, किन्तु ऐसे अयुक्त प्रयोग से राम का चित्त विक्षेप सूचित होता है, जो विप्रलम्भ श्रृंगार का पोषक है, अतः कोई दोष नहीं है।

टिप्पणी- अभिमतम् - अभि + मन् +क्त । त्यक्ता - त्यज् + क्त+टाप्। अनुशोचिता -

वासन्ती – (स्वगतम्) अतिगम्भीरमापूर्णं मन्युसम्भारस्य। (प्रकाशम्)
देव! अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।

रामः - सखि! किमुच्यते धैर्यमिति।

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति।।33 ।।

अन्वयः - देव्याशून्यस्य जगतः द्वादशः परिवत्सरः नामापि प्रनष्टमिव रामः च न जीवति।।**33** ।।

अर्थ- वासन्ती-(स्वगत) शोकसंघात की अतिगम्भीर पूर्णता है। (प्रकाश) महाराज! बीती बातों केविषय में धैर्य का अवलम्बन करें।

राम-क्या कह रही हो, धैर्य?

देवी से शून्य संसार का बारहवाँ वर्ष है, (उसका) नाम भी जैसे विलुप्त हो गया, राम नहीं जीवित है,(ऐसी बात) नहीं।।**33**।। प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या- न च रामो न जीवति-जहाँ दो 'न' का प्रयोग होता है, वहाँ स्वीकारोक्ति ही

होती है।

टिप्पणी- अतिक्रान्ते - अति + क्रम् +क्त (कर्तरि)। द्वादशः - द्वादशानां पूरणः 'तस्य पूरणे डट्' द्वादशन +डट् (अ),

सीता - मोहितास्म्येतैरार्यपुत्रवचनैः।

तमसा - एवमेव वत्से!

नैताः प्रियतमा वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः।

एतास्ता मधुनो धाराः श्च्योतन्ति सविषास्त्वयि।।34 ।।

अन्वयः -, तत्स्नेहार्द्राः शोकदारुणा एताःवाचःप्रियतमाः न ताःएताःसविषामधुनःधाराःत्वयि श्च्योतन्ति **।।34।।**

अर्थ- सीता-आर्यपुत्र के इन वचनों से मैं मोहित (विह्वल) हो रही हूँ।

तमसा-वत्से! ऐसा ही है।

प्रेम से सिक्त और शोक से निष्ठुर राम के ये वचन निरतिशय प्रीतिकारक नहीं हैं। वे ये (राम के वचन) विष से सम्पृक्त मधु की धारा (केरूप में) तुम्हारे ऊपर बरस रहे हैं**।।34।।** इस पद्य में अपह्नुति अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

टिप्पणी- श्च्योतन्ति - श्च्युत् (अथवा श्चुत्) +लट् - श्च्योतन्ति, श्चोतन्ति वा।

रामः - अयि वासन्ति! मया खलु -

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः।

तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः।।35 ।।

अन्वयः - अन्तः प्रत्युप्तम् तिरश्चीनम् अलातशल्यं सविषः दंशश्च यथा, तथैव तीव्रः हृदि शोकशंकु मर्माणि कृन्तन् अपि किं न सोढः।।35 ।।

अर्थ- राम-अरी वासन्ति! मैंने -

भीतर (हृदय में)गाड़ा हुआ तिरछा अंगारमय लोहकील और विष सहित (सर्पादि का) दन्तप्रवेश जिस प्रकार तीव्र (होता है)उसी प्रकार तीव्र, मर्मस्थलों को छेदता हुआ, हृदय में रहने वाला शोकशंकु˜ क्या नहीं सहा?।।35।। इस पद्य में उपमा और रूपक अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

टिप्पणी- प्रत्युप्तम् - प्रति + वप् +क्त (कर्मणि), 'वचिस्वपियजादीनां किति' सूत्र से सम्प्रसारण ।

सीता - एवमस्मि मन्दभागिनी पुनरप्यायासकारिण्यार्यपुत्रास्य।

रामः - एवमतिनिष्कम्पस्तम्भितान्तःकरणस्यापि मम संस्तुततत्तत्प्रियवस्तुदर्शनादुद्दामोऽय मावेगः। तथा हि - **लोलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थ**

यो यो यत्नः कथमपि मयाऽऽधीयते तं तमन्तः।

भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात् कोऽपि चेतोविकार-

स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः।।36 ।।

अन्वयः - लोलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणार्थं मया यो यो यत्नः कथमपि आधीयते तं तं कोऽपि चेतोविकारः तोयस्य अप्रितहतिरयः ओघः सैकतं सेतुमिव अन्तः बलात् भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति।। ।।

अर्थ- सीता-मैं ऐसी भी अभागिन हूँ, जो आर्यपुत्र के लिए पुनः क्लेशकारिणी हुई।

राम-इस प्रकार मुझ अतिनिश्छल रूप से रु(किये हुए अन्तःकरण वाले का भी, उन पूर्वपरिचित वस्तुओं के देखने से यह चित्त-विकार अनियन्त्रित भाव से बढ़ गया। जैसा कि-

चंचल महातरंग के समान क्षोभ को प्राप्त शोक की अभिवृद्धि को रोकने के लिए मुझसे

किसी प्रकार जो-जो यत्न किया जाता है, उस-उसको बीच में ही बलपूर्वक छिन्न-भिन्न कर अनिर्वचनीय हृदय-विकार इस प्रकार प्रसरित होता है, जैसे अप्रतिरुद्ध वेग वाला जलप्रवाह बालू से बने पुल को तोड़कर फैलता है।।36।। प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार

तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है।

व्याख्या- अतिनिष्कम्पस्तभ्भितú-'अतिनिष्कम्पम्' क्रिया-विशेषण हैऋ अन्यथा स्तम्भित पद व्यर्थ हो जायेगा।

टिप्पणी- संस्तुतः - सम् + स्तु + क्त। उज्जृम्भणः - उद् + जृम्भ + ल्युट्। आधीयते - आ + ध +लट् (कर्मणि)। भित्त्वा - भिद् + क्त्वा।

सीता - एतेनार्यपुत्रास्य दुर्वारदारुणारम्भेण दुःखसघ्क्षोभेण परिमुषितनिजदुःखं किमपि प्रमुग्ध्ं मे हृदयम्।

वासन्ती – (स्वगतम्)कष्टमभ्यापन्न देवः। तदन्यतः क्षिपामि तावत्। (प्रकाशम्) चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभागानवलोकनेन मानयतु देवः।

रामः - एवमस्तु (इत्युत्थाय परिक्रामति)

सीता - सन्दीपन एव दुःखस्य प्रियसख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि।

वासन्ती – (सकरुणम्) देव देव!

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया

कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्ध्ः प्रणामाअंजलिः।।37 ।।

अन्वयः - अस्मिन् एव लतागृहे त्वं तन्मार्गदत्तेक्षणः अभवः। सा गोदावरीसैकते हंसैः कृतकौतुका चिरम् अभूत्। आयान्त्या तया त्वां परिदुर्मनायितामिव वीक्ष्य कातर्यात् अरविन्दकुडमलनिभः मुग्ध्ः प्रणामाअंजलिः बद्ध **।।37 ।।**

अर्थ - सीता-आर्यपुत्र के इस दुर्निवार दारुण आरम्भ वाले शोक-वेग से मेरे हृदय का अपना दुःख हर उठा और वह कुछ-कुछ विमूढ हो रहा है।

वासन्ती-(स्वगत) महाराज कष्ट में पड़ गये हैं। अतः इन्हें दूसरे विषय की ओर प्रेरित करती हूँ। (प्रकाश) महाराज अब चिरपरिचित जनस्थान के भागों को देखने से सम्मानित

करें।

राम-ऐसा ही हो। (उठकर घूमते हैं)

सीता-प्रियसखी (वासन्ती) के विनोद का उपाय दुःख का उद्दीपक ही है, ऐसा समझती हूँ।

वासन्ती-(शोक के साथ) महाराज, महाराज!

इसी लतागृह (निकुंज) में उस (सीता) के मार्ग में दृष्टि रखने वाले आप थे (और)गोदावरी के रेतीले प्रदेश में हंसों के साथ क्रीडा कर चुकने वाली वह (सीता)देर तक थी आती हुई उसने आपको अप्रसन्नचित्त-सा देखकर कातरता से कमलकली के समान सुन्दर प्रणामाअंजलि बाँधी थी।।37।। इस पद्य में उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्या- दुःखसंक्षोभेण-पाठाú दुःखसंयोगेन=दुःख के संयोग से।

परिमुषितनिजदुःखम्-यह हृदय का विशेषण है। राम के दुःख को देखकर सीता जी को अपना दुःख भूल गया। कहीं ‘परिमुषित’ के स्थान पर ‘प्रस्फुटित’ तथा ‘परिस्फुरित’ पाठ मिलता है।

देव देव-संभ्रम में द्विवचन है।

टिप्पणी -दुर्वारः - दुर् + वृ + णिच् + खल् (कर्मणि)। परिमुषितः - परि + मुष् +क्त । प्रमुग्धः - प्र +मुह् +क्त।

सीता - दारुणासिवासन्ति! दारुणासि, या एतैहृदयमर्मगूढशल्यसंगट्टनैः पुनरपि मां मन्दभागिनीमार्यपुत्रं च सन्तापयसि।

रामः - अयि चण्डि जानकि! इतस्ततो दृश्यस इव न चानुकम्पसे।

हा हा देविस्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः

शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि।

सीदन्नधे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा

विष्वंगमोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।।38 ।।

अन्वयः - हा हा देवि! हृदयं स्फुटति, देहबन्ध्ः ध्वंसते, जगत् शून्यं मन्ये अविरतज्वालम् अन्तः ज्वलामि। सीदन् विधुरः अन्तरात्मा अन्धे तमसि मज्जतीव, मोहःविष्वंग स्थगयति, मन्दभाग्यः कथं करोमिः।।38 ।।

अर्थ- सीता-कठोर हो, वासन्ति! तुम कठोर हो, जो (तुम) हृदय के मर्मस्थलों में छिपे इन कीलों को बार-बार हिला-हिला कर (बार-बार पुराने प्रसंगोंको उभार-उभार कर) मुझे और आर्यपुत्र को सन्तप्त कर रही हो।

राम-अरी चण्डि जानकि! तुम मुझे (यहाँ कण-कण में बसी हुई-सी लगने के कारण) इधर-उधर दिखलायी-सी दे रही हो, किन्तु (संभाषण आदि से)मुझ पर दया नहीं कर रही हो।

हाय! हाय! देवि! हृदय फटा जा रहा है, देह का बन्ध्न विदीर्ण हो रहा है, संसार शून्य समझ रहा हूँ, निरन्तर ज्वालायुक्त भाव से भीतर-भीतर जल रहा हूँ, दुःखी होता हुआ विकल अन्तःकरण घोर अन्धकार में जैसे डूब रहा है, मूर्च्छा चारों ओर से घेर रही है, मैं अभागा क्या करूँ?(कुछ सूझ नहीं रहा है)।।38।। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है।

व्याख्या- चण्डि जानकि-वीरराघव के अनुसार 'जानकि' सम्बोधन पद से यह अर्थ अभिव्यक्त किया गया - तुम परमदयालु जनकराज की पुत्री हो, तुम्हारा इस प्रकार निर्दय होना उचित नहीं है।

टिप्पणी- सीदन् - सद् + शतृ। विष्वक् - वि + सु +अच् +क्विन्। स्थगयति - स्थग् (णिच्) +लट्।

(इति मूर्च्छति

सीता - हाधिक्! हाधिक्! पुनरपि प्रमूढ आर्यपुत्रः।

वासन्ती - देव! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

सीता - आर्यपुत्र! मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमंगलाधारस्य ते वारं वारं संशयितजीवितदारुणो दशापरिणाम इति हा हतास्मि।

तमसा - वत्से! समाश्वसिहि, समा श्भसिहि। **पुनस्त्वपाणिस्पर्श** एव संजीवनोपायोरामभद्रस्य।

वासन्ती - कथमद्यापि नोच्छवसिति। हा प्रियसखि सीते! क्वासि? सम्भावयात्मनो जीवितेश्वरम्।

(सीता ससम्भ्रममुपसृत्य हृदि ललाटे च स्पृशति)

वासन्ती - दिष्टड्ढा प्रत्यापन्नचेतनो रामभद्रः।

रामः - आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून।

संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मादानन्दादपरविधं तनोति मोहम्।।39 ।।

अन्वयः - अन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून् अमृतमयैः प्रलेपैः आलिम्पन् इव संस्पर्शः पुनरपि जीवयन् अकस्मात् आनन्दात् अपरविधं मोहं तनोति।।**39** ।।

अर्थ-(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)

सीता-हा (धिक्, हाधिक्! आर्यपुत्र पुनः मूर्च्छित हो गये।

वासन्ती-देव! आश्वस्त होइए, आश्वस्त होइए।

सीता-आर्यपुत्र! मुझ मन्दभागिनी को उद्देश करके सम्पूर्ण संसार के कल्याण के आधारभूत आपके बार-बार संशयपूर्ण जीवन के कारण भीषण (यह) दशा का परिणाम है। अतः हाय मैं मारी गयी हूँ। (इस प्रकार मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा-पुत्री! आश्वस्त हो, आश्वस्त हो। पुनः तुम्हारे पाणि का स्पर्श ही रामभद्र केजीवन का उपाय है।

वासन्ती-क्यों अभी तक चेतना को नहीं प्राप्त हो रहे हैं? हाय, प्रियसखी सीता! कहाँ हो? अपने प्राणेश्वर को सम्मानित करो।

(सीता घबड़ाहट केसाथ समीप जाकर हृदय और ललाट पर स्पर्श करती है)

वासन्ती-सौभाग्य से रामभद्र की चेतना पुनः लौट आयी।

राम-भीतर और बाहर स्थित शरीर की धातुओं को अमृतमय लेपों से आलिप्त करता हुआ-सा संस्पर्श, सहसा जीवित करता हुआ, आनन्द केकारण अन्य प्रकार की (सुखजन्य)मूर्च्छा (निश्चेष्टता) फैला रहा है।।**39**।। प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा प्रहर्षिणी छन्द है।

व्याख्या- शरीरधातून्-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र - ये शरीर के सात धातुएँ हैं। 'बहिरपि' कथन से त्वक् (चर्म)को भी धातु मानना चाहिए। कथन का अभिप्राय यह है कि स्पर्श शरीर को भीतर और बाहर दोनों ओर से सुख दे रहा है।

अपरविधम्-अधिक आनन्द की अनुभूति होने पर भी निश्चेयष्टता आ जाती है, अतः उसे भी एक भिन्न प्रकार का मोह कहा गया, जो दुःखानुभूति से उत्पन्न मोह से भिन्न है।

टिप्पणी- परिणामः - परि + नम् + घञ् । स्पर्शः - स्पृश + घञ् । संस्पर्शः - सम् + स्पृश् + घञ् ।(आनन्दनिमीलिताक्ष एव) सखि वासन्ति! दिष्टया वर्धसे।

वासन्ती - देव! कथमिव?

रामः - सखि! किमन्यत्। पुनः प्राप्ता जानकी।

वासन्ती - अयि देव रामभद्र! क्व सा?

रामः – (स्पर्शसुखमभिनीय) पश्य, नन्वियं पुरत एव।

वासन्ती - अयि देव! किमिति मर्मच्छेददारुणैरेभिः प्रलापैः प्रियसखीदुःखदग्धमपि मां पुनर्मन्दभाग्यां दहसि?

सीता - अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनः चिरप्रणयसम्भारसौम्यशीतलेनार्यपुत्रस्पर्शेन

दीर्घदारुणमपि झटिति सन्तापमुल्लाघयता वज्रलेपोपन(इव पर्यस्तव्यापार आसिञ्जत इव मेऽग्रहस्तः।

रामः - सखि! कुतः प्रलापाः?

गृहीतो यः पूर्वं परिणयविधौ कंकणधर-

श्चिरं स्वेच्छास्पर्शैर्मृतशिशिरैर्यः परिचितः।

सीता - आर्यपुत्र! स एवेदानीमसि त्वम्!

रामः - स एवायं तस्यास्तुहिननिकरौपम्यसुभगो।

मया लब्ध्ः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः।।40 ।।

अन्वय - पूर्वं परिणयविधौ कंकणधर:य:(पाणिगृहीत:,अमृतशिशिरै: स्वेच्छास्पर्शेय:चिरं परिचित:

तुहिननिकरौपम्यसुभग: ललितलवलीकन्दलनिभ:स एवायं तस्या: पाणि: लब्ध: **।।40।।**

अर्थ-(आनन्द से आँखें बन्द किये हुए) सखी वासन्ती! भाग्य से बढ़ रही हो।

वासन्ती-महाराज! वह कैसे?

राम-सखी और क्या, सीता फिर मिल गयी।

वासन्ती-अरे महाराज रामभद्र! वह कहाँ?

राम-;(स्पर्शसुख का अभिनय करके) देखो, यह सामने ही है।

वासन्ती-अरे महाराज! मर्मस्थानों को बाँधनें केकारण दुःसह इन अनर्थक वचनों से क्यों भला, प्रियसखी के दुःखों से सन्तप्त भी मुझ अभागिन को बार-बार सन्तप्त कर रहे हो?

सीता-दूर हट जाना चाहती हूँ। किन्तु बहुत समय के प्रेमाधिक्य से हर्ष करने वाला और शीतल, दीर्घ और दारुण सन्ताप को भी कम करने वाला जो आर्यपुत्र का स्पर्श है, उससे वज्रलेप से बँधे हुए की तरह निश्चेष्ट होकर मेरे हाथ का अग्रभाग मानो आर्यपुत्र में बुरी तरह चिपक गया है।

राम-सखि! प्रलाप कैसे?

पूर्व समय में विवाह-संस्कार के अवसर पर वैवाहिक मंगलसूत्र धारण किये हुए जो (पाणि) मेरे द्वारा ग्रहण किया गया था जो अपने अमृत के समान स्वच्छन्दता से प्राप्त होने वाले स्पर्शों से मेरा चिरपरिचित था।।40।। प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार शिखरिणी छन्द

है।

टिप्पणी- दग्धम् - दह् + क्त। प्रणयः - प्र + नी +अच्। लब्ध्ः - लभ् + क्त।

(इति गृह्णाति)

सीता - हाधिक्! हाधिक्! आर्यपुत्रास्पर्शमोहितायाः प्रमादः खलु मे संवृत्तः।

रामः - सखि वासन्ति! आनन्दनिमीलियतेन्द्रियः प्रियास्पर्शसध्वसेन परवानस्मि! तत् त्वं तावदेनां धारय।

वासन्ती - कष्टम् ! उन्माद एव

(सीता ससम्भ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति)

रामः - हाधिक्! प्रमादः।

करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो जडात्परिभ्रष्टः।

परिकम्पिनः प्रकम्पी करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन्।।41 ।।

अन्वयः - तस्याः सः जडः प्रकम्पी स्विद्यन् करपल्लवः मम जडात् परिकम्पिनः स्विद्यतः करात् परिभ्रष्टः।।**41 ।।**

अर्थ- सीता-आर्यपुत्र! अब भी आप वही हैं?

राम-हिमराशि के समान सुहावना तथा लवलीलता के कोमल अलंक`र के सदृश वही यह उसका हाथ मुझे प्राप्त हो गया है। (ऐसा कहकर पकड़ते हैं)

सीता-हाय! छिः! छिः! आर्यपुत्र के स्पर्श से विमुग्ध् होने केकारण मुझसे असावधनी हो गयी।

राम-हे सखी वासन्ति! आनन्द से मेरी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो गयी हैं। आनन्दजनित विक्षोभ से मैं परवश हो गया हूँ, अतः तुम इस (सीता)को पहले सँभालो।

वासन्ती-कष्ट है! ;महाराज को उन्माद ही है। (सीता शीघ्रता से हाथ खींचकर दूर हट

जाती है)

राम-हाय! धिक्कार है! असावधनी हो गयी।

उस (सीता)का स्तब्ध्, स्वेदयुक्त एवं काँपता हुआ किसलय-सदृश वह हाथ मेरे स्तब्ध्, स्वेदयुक्त एवं काँपते हाथ से सहसा ही छूट गया।।41।। प्रस्तुत पद्य में काव्यलिंग अलंकार एवं आर्या जाति छन्द है।

व्याख्या-साध्वसेन-साध्वस शब्द का सामान्य अर्थ 'भय' होता है।

करपल्लवः स तस्याः-यहाँ सीता और राम दोनों के स्तम्भ, वेपथु (कम्पन) और स्वेद इन तीन सात्त्विक भावों का वर्णन होने से रति नामक स्थायी भाव की पुष्टि होने के कारण विप्रलम्भ श्रृंगार रस है, जो नाटक केअंगीरस 'करुण' का पोषक है।

टिप्पणी- मोहितः - मुह + णिच् +क्त । करपल्लवः - करः पल्लव इव, उपमित समास।

परिभ्रष्टः - परि +भ्रंश + क्त।

सीता - हाधिक्! हाधिक्! अद्याप्यनुबद्धबहुघूर्णमानवेदनं न संस्थापयाम्यात्मानम्।

तमसा – (सस्नेहकौतुकस्मितं निर्वर्ण्य)

सस्वेदरोमांचितकम्पितांगी जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।

मरुन्नवाम्भःप्रविधूतसिक्ता कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव।।42 ।।

अन्वयः - वत्सा प्रियस्पर्शसुखेन मरुन्नवाम्भःप्रविधूतसिक्ता स्फुटकोरका कदम्बयष्टिः इव सस्वेदरोमांचित कम्पितांगी जाता।।**42 ।।**

अर्थ- सीता-छिः! छिः! अभी तक बहुत अधिक बार-बार उत्पन्न होने वाली वेदना से युक्त अपने को प्रकृतिस्थ नहीं कर पा रही हूँ।

तमसा-(स्नेह, कौतुक और मुस्कराहट केसाथ)

सीता प्रिय के स्पर्श के सुख से, वायु से कम्पित, नूतन जल से सिंचित, उद्गत कलियों से

युक्त कदम्ब की डाली की तरह स्वेद, रोमांच और कम्पन युक्त अंगों वाली हो गयी है।।42।। इस पद्य में उपमा और यथासंख्य अलंकार का सांकर्य तथा उपजाति छन्द है।

व्याख्या- वत्सा-पाठान्तर-'बाला'। 'वत्सा' पाठ अधिक युक्त है, क्योंकि स्नेहानुबन्ध् के कारण तमसा सीता को पुत्री के समान मानती है, अतः उसके मुख से 'वत्सा' ऐसा कथन संगत ही है। सीता केलिए सर्वत्र उसने वत्सा शब्द का प्रयोग किया है।

टिप्पणी- सिक्त: - सिच् + क्त(कर्मणि)।

सीता - अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया। किमिति किलैषा मंस्यते - 'एष परित्याग एषोऽभिषंग' इति।

रामः – (सर्वतोऽवलोक्य) हा! कथं नास्त्येव? नन्वकरुणे वैदेहि!

सीता - अकरुणास्मि, यैवंविधं् त्वां पश्यन्त्येव जीवामि।

रामः - क्वासि देवि! प्रसीद। न मामेवंविधं् परित्यक्तुमर्हसि।

सीता - आर्यपुत्र! विपरीतमेवैतत्।

वासन्ती - देव! प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भयातिभूमि गतमात्मानम्। कुत्र मे प्रियसखी?

रामः - व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि तां न पश्येत्। अपि खलु स्वप्न एष स्यात्। न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथा स एवैष भगवान् अनेकवारपरिकल्पनानिर्मितो विप्रलम्भः पुनः पुनरनुबध्नाति माम्।

सीता - मयैव दारुणया विप्रलब्ध् आर्यपुत्र:।

वासन्ती - देव! पश्य पश्य -

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ-

स्ते चैते पुरतः पिशाचवदनाः कंकालशेषाः खराः।

खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वह-

न्नन्तर्व्याकुलविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः।।43 ।।

अन्वयः - अयं जटायुषा विघटितः पौलस्त्यस्य कार्ष्णायसः रथः। पुरतः च ते एते पिशाचवदनाः कंकालशेषाः खराः। इतः खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिः अरिः चलन्तीं सीतां वहन् अन्तर्व्याकुलविद्युद् अम्बुद इव द्याम् अभ्युदस्थात्।।**43** ।।

अर्थ- सीता-(स्वगत) विवश इस देह केकारण भगवती तमसा के द्वारा मैं लज्जित की गयी हूँ। वह (अपने मन में) क्या समझेगी।(कहाँ) यह (पतिके द्वारा) तेरा परित्याग और (कहाँ) तेरी (पति में) यह आसक्ति।

राम-(सभी ओर देखकर)क्यों, है ही नहीं? अरे अकरुणे वैदेहि!

सीता-मैं सचमुच 'अकरुणा' हूँ, जो इस प्रकारके आपको देखती हुई भी जी रही हूँ।

राम-देवि! कहाँ हो? तुम्हें इस प्रकार के मुझ को छोड़ना उचित नहीं।

सीता-हे आर्यपुत्र! यह तो विपरीत-सा है (आपने मुझे छोड़ा है, मैंने तो आपको नहीं छोड़ा है)।

वासन्ती-महाराज! प्रसन्नहों, प्रसन्न हों। अपने ही लोकोत्तर धैर्य से सीमा लाँघ कर दूर चले गये अपने को स्थिर करो। मेरी प्रियसखी (यहाँ)कहाँ?

राम-स्पष्टतः नहीं ही है। अन्यथा कैसे वासन्ती भी न देखती। सम्भव है यह स्वप्न हो, किन्तु मैं सोया नहीं हूँ। भला राम को नींद कहाँ? सर्वथा वही यह बहुशः संकल्प-निर्मित सामर्थ्य-सम्पन्न भ्रम मुझे बाँध लेता है - मेरा अनुसरण करता है।

सीता-मुझ कठोर केद्वारा ही आर्यपुत्र प्रताड़ित किये गये हैं।

वासन्ती-महाराज! देखिए, देखिए-

यह जटायु के द्वारा भग्न किया हुआ रावण का कृष्णायस (फौलाद लोह) से बना रथ है, और आगे ये पिशाचों के मुख के समान मुख वाले वे(रावण केरथ को खींचने वाले) खच्चर हैं, जिनका अस्थिपंजर मात्रा अवशेष रह गया है, इसी स्थान से जटायु के पक्ष मूल

को तलवार से काटने वाला शत्रु(रावण) छटपटाती सीता को ले जाता हुआ, भीतर-भीतर चंचल विद्युत् वाले मेघ के समान आकाश की ओर उड़ गया था।**43**।। प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्या-अपि खलु स्वप्नः-'अपि' शब्द का प्रयोग 'संभावना' केअर्थ में हुआ है, 'अन्तर्व्याकुलú-पाठान्तर-अन्तर्व्यापृत। विशालकाय और कृष्णवर्ण होने के कारण रावण मेघ के समान तथा स्वभावतः गौरवर्ण और रावण के फन्दे में पड़ने से चंचल (छटपटाती हुई) होने के कारण सीता विद्युत् के समान है। अतः सीता से युक्त रावण को उस मेघ के समान कहा गया है, जिसके भीतर बिजली चमक रही हो।

टिप्पणी-

विप्रलब्ध्ः - वि + प्र + लभ् + क्त। पौलस्त्यः - पुलस्तेर्गोत्रापत्यं पुमान्। पुलस्ति+घञ् ।

सीता – (सभयम्) आर्यपुत्र! तातो व्यापाद्यते अहमप्यपह्वियें। तस्मात् परित्रायस्व परित्रायस्व।

रामः – (सवेगमुत्थाय) आः पाप! तातप्राणसीतापहारिन! क्व यासि?

वासन्ती - अयि देव! राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो! किमद्यापि ते मन्युविषयः?

सीता - अहो! अहमप्युद्भ्रान्तास्मि।

रामः - अन्य एवायमधुना विपर्ययो वर्तते।

उपायानां भावादविरतविनोदव्यतिकरै-

विमर्दैर्वीराणां जगति जनिताद्भुतरसः।

वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिभूत्

कथं तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं त्वप्रतिविध्ः।।44 ।।

अन्वयः - उपायानां भावात् अविरतविनोदव्यतिकरैः वीराणां विमर्दैः जगति जनिताद्भुतरसः मुग्धक्ष्याः सः वियोगः रिपुघातावधिः अभूत् खलु। अयं तु अप्रतिविध्ः निरवधिः कथं तूष्णीं सह्यः? ।।**44** ।।

अर्थ- सीता-(भय के साथ) आर्यपुत्र! तात (जटायु) मारे जा रहे हैं, मैं भी हरी जा रही हूँ,

अतः बचाइए, बचाइए।

राम-(वेग से उठकर) आः पापी! तात के प्राणों तथा सीता का अपहरण करने वाला (लंकापति) तू कहाँ जा रहा है?

वासन्ती-अयि महाराज! राक्षसकुल के प्रलय के लिए धूमकेतु! क्या आज भी (वह रावण) आपके कोप का भाजन है?

सीता-आश्चर्य है! मैं भी अत्यन्त भ्रान्त हो गयी थी।

राम-इस समय यह (सीता-वियोगरूप) दशा-विपर्यास दूसरे ही प्रकार का है।

उपायों के होने के कारण निरन्तर विनोद के सम्पर्कों वाले, वीरों के संग्रामों से जगत् में उत्पन्न किये गये अद्भुत रस से सम्पन्न, सुनयना (सीता)का वह वियोग शत्रु के विनाश तक ही था, किन्तु यह (वियोग) तो प्रतीकार शून्य और अवधि(अतएव) चुपचाप कैसे सहन किया जा सकता है?॥44॥ इसमें व्यतिरेक अलंकार एवं शिखरिणी छन्द है।

टिप्पणी- व्यापाद्यते - वि + आ +पद् + णिच् +लट् (कर्मणि)। अपहारिन् - अप + हृ + णिनि। **सीता -** निरवधिरिति हा हतास्मि मन्दभागिनी।

रामः - हा कष्टम्!

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे, वीर्यं हरीणां वृथा

प्रज्ञा जाम्बवतोऽपि यत्र न गतिः पुत्रास्य वायोरपि।

मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः

सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये! क्वासि मे?॥45 ॥

अन्वयः - 'यत्र मे कपीन्द्रसख्यपि व्यर्थम्, यत्र हरिणां वीर्यं वृथा, यत्रा जाम्बवतोऽपि प्रज्ञा वृथा, यत्र वायोरपि पुत्रस्य गतिः न, यत्रा विश्वकर्मतनयः नलःअपि मार्गं कर्तुं न क्षमः, सौमित्रोः अपि पत्रिणाम् अविषये तत्र मे प्रिये! क्व असि?॥45 ॥

अर्थ- सीता-'अवधिरहित' ऐसा है हाय मैं मन्दभागिनी विनष्ट हुई।

राम-हाय, दुःख है।

जहाँ मेरी सुग्रीव के साथ मैत्री भी व्यर्थ है, वानरों का पराक्रम भी व्यर्थ है, जहाँ जाम्बवान् की बुद्धि भी नहीं (काम कर सकती), पवनपुत्र (हनुमान) की भी जहाँ पहुँच नहीं है, जहाँ विश्वकर्मा के पुत्र नल भी मार्ग (पुल)बनाने में समर्थ नहीं है, लक्ष्मण के बाणों के लक्ष्य में न आने वाले उस प्रकार के मेरी प्रिया किस प्रदेश में हो?।।45।। इसमें समुच्चय अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्या-विश्वकर्मतनयो नलः-विश्वकर्मा देवशिल्पी के रूप में प्रसिद्ध ही है। यह कभी ऋतध्वज नामक मुनि के शाप से वानरयोनि को प्राप्त हो गया था। उस समय उसी के वीर्य से घृताची नामक अप्सरा में नल का जन्म हुआ था। इसी नल ने वह सेतु बनाया था, जिससे वानरसेना ने समुद्र को पार किया था।

टिप्पणी- सख्यम् - सख्युर्भावः सख्यम् । सखि +य ('सख्युर्यः' 5/1/126)। प्रज्ञा - प्र + ज्ञा +अघ् (भावे)। सौमित्रिः - सुमित्राया अपत्यं पुमान् सौमित्रिः अपत्यार्थ ।

सीता - बहुमानितास्मि पूर्वविरहे।

रामः - सखि वासन्ति! दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामस्य दर्शनम्। कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि तदनुजानीहि मां गमनाय।

सीता – (सोद्वेगमोहं तमसामाश्लिष्य) भगवति तमसे! कथं गच्छत्येवार्यपुत्रः।

तमसा - वत्से! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि। नन्वावामप्यायुष्मतोः कुललवयोर्वर्षवर्धनमंगलानि सम्पादयितुं भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छावः।

सीता - भगवति! प्रसीद क्षणमात्रमपि तावद् दुर्लभदर्शनं जनं प्रेक्षे।

रामः - अस्ति चेदानीमश्वमेधाय सहधर्मचारिणी मे।

सीता – (सोत्कम्पम्) आर्यपुत्र! का?

वासन्ती - परिणीतमपि किम्?

रामः - नहि नहि! हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।

सीता – (सोच्छवास्रम्) आर्यपुत्र! इदानीमसि त्वम्। अहो! उत्खातमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण।

रामः - तत्रापि तावद् बाष्पदिग्धं् चक्षुर्विनोदयामि।

सीता – धन्या खलु सा यैवमार्यपुत्रेण बहुमन्यते या चार्यपुत्रां विनोदयन्त्याशानिबन्धनं जाता जीवलोकस्य।

तमसा – (सस्मितस्नेहास्रं परिष्वज्य) अयि वत्से! एवमात्मा स्तूयते।

सीता – (सलज्जमधोमुखी स्वगतम्) परिहसितास्मि भगवत्या।

वासन्ती - महानयं व्यतिकरोऽस्माकं प्रसादः। मगनं पुनर्यथा कार्यहानिर्न भवतु तथास्ताम्।

रामः – तथास्तु

सीता - प्रतिकूलेदानीं मे वासन्ती संवृत्ता।

तमसा - वत्से! एहि गच्छावः।

सीता – (सकष्टम्) एवं करिष्यावः।

तमसा - कथं वा गम्यते? यस्यास्तव-

> **प्रत्युप्तस्येव दयिते तृष्णादीर्यस्य चक्षुषः।**
>
> **मर्मच्छेदपरैर्यत्नैराकर्षो न समाप्यते।।46 ।।**

अन्वयः - 'तृष्णादीर्घस्य (अत एव) दयिते प्रत्युप्तस्येव (यस्याः तव) चक्षुषः आकर्षः मर्मच्छेदपरैः यत्नैः न समाप्यते।।**46 ।।**

अर्थ- सीता-पहले के विरह में मैं बहुत सम्मानित हूँ।

राम-सखि वासन्ति! राम का दर्शन इस समय मित्रों के दुःख के लिए ही है। तुम्हें कितनी देर तक रुलाऊँगा। अतः मुझे जाने की अनुमति दो।

सीता-(उद्वेग और मोह के साथ तमसा का आलिंगन करके) हे भगवति तमसे! क्या

आर्यपुत्र जा ही रहे हैं? (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

तमसा-पुत्री! समाश्वस्त होओ, समाश्वस्त होओ। हम दोनों भी आयुष्मान् कुश तथा लव के (द्वादश)वर्षपूर्ण निमित्तक मंगलों के सम्पादन के लिए भागीरथी के चरणों के समीप ही चलें।

सीता-हे भगवति! प्रसन्न होओ, क्षणभर दुर्लभ दर्शन (प्रिय) जन (राम) को और देख लूँ।

राम-और इस समय अश्वमेध् यज्ञ के अनुष्ठान के लिए मेरी सहधर्मचारिणी है।

सीता-(काँप कर) आर्यपुत्र! कौन?

वासन्ती-विवाह भी कर लिया क्या?

राम-नहीं नहीं, सुवर्ण की बनी हुई सीता की प्रतिमूर्ति।

सीता-(उच्छवास और अश्रु के साथ) अब आप आर्यपुत्र (सच्चे पति) हैं। अहो, अब आर्यपुत्र ने परित्याग रूप कील को उखाड़ दिया।

राम-और तब तक उसी में आँसुओं से लिप्त नेत्रों को बहलाउँगा।

सीता-निश्चय वह (मेरी प्रतिकृति) धन्य है, जो इस प्रकार आर्यपुत्र के द्वारा सम्मानित है तथा जो आर्यपुत्र के दुःखों का अनुमोदन करती हुई संसार की आशा का हेतु हो गई है।

तमसा-(मुस्कराहट, स्नेह तथा आँसू के साथ आलिंगन करके) अरी पुत्री, इस प्रकार अपनी ही स्तुति हो रही है।

सीता-;(सलज्ज, अधोमुखी होकर, स्वगत) भगवती तमसा के द्वारा मेरा परिहास किया जा रहा है।

वासन्ती-यह समागम हम लोगों पर बड़ा अनुग्रह है। जिस प्रकार कर्त्तव्य की हानि न हो, उस प्रकार गमन किया जाय।

राम-वैसा ही हो।

सीता-वासन्ती इस समय मेरे प्रतिवूफल हो गयी है।

तमसा-पुत्री, आओ चलें।

सीता-(कष्ट के साथ) ऐसा (ही) करें।

तमसा-अथवा कैसे चला जा सकता है? जिस तुम्हारे (पतिदर्शन) की लालसा से दीर्घ (विस्फारित) अतएव प्रिय में गड़े हुए-से नेत्रों को (प्रिय की ओर से) खींचना मर्मस्थलों को भेदने वाले गमन प्रयत्नों द्वारा सम्पन्न नहीं हो पा रहा है।।46।। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या-सोच्छ्वास्रम्-उच्छ्वास के साथ इसलिए कि यज्ञ सम्पादनार्थ विवाह के आवश्यक होने पर भी राम ने वैसा नहीं किया और अश्रु के साथ इसलिए कि राम ने सभी तरह के सुखों को उसी (सीता) के कारण छोड़ दिया।

टिप्पणी- उत्खातम् - उद् + खन् +क्त । परिहसिता - परि + हस् + क्त + टाप्।

सीता - नमो नमोऽपूर्वपुण्यजनितदर्शनाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्।

तमसा - वत्से! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

सीता - कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णिमाचन्द्रस्य दर्शनम्।

तमसा - अहो संविधानकम्!

एको रसः करुण एव निमित्तभेउाद्भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।

आवर्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारानम्भो यथा सलिलमेवतु तत्समग्रम्।।47 ।।

अन्वयः - एक एव करुणः रसः निमित्तभेदाद् भिन्न सन् पृथक् पृथग् विवर्तान् आश्रयते इव, यथा अम्भः आवर्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारान् आश्रयते, तत्समग्रं तु सलिलमेव।।**47 ।।**

अर्थ - सीता-अपूर्व पुण्यों से जिनके दर्शन हुए, उन आर्यपुत्र के चरणकमलों को बार-बार प्रणाम है।(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

तमसा-पुत्री! आश्वस्त होओ, आश्वस्त होओ।

सीता-(आश्वस्त होकर) अथवा मेघ के अवकाश (थोड़ी देर केलिए हटने) से कितनी देर तक पूर्णिमा के चन्द्र का दर्शन (हो सकता है)?

तमसा-अहो! कैसा रचना वैचित्र्य है।

एक ही करुणरस निमित्त के भेद से भिन्न होता हुआ पृथक् पृथक् (श्रृंगारादि) विवर्तों

(परिणामों) का आश्रयण करता है, ऐसा मालूम पड़ता है। जैसे एक जल ही भँवर, बुद्बुद और तरंग रूप विकारों का आश्रयण करता है, किन्तु वह तत्त्वतः जल ही है।।47।। इसमें उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है। **व्याख्या-** पूर्णिमाचन्द्रस्य दर्शनम्-पाठाú-पूर्णचन्द्रदर्शनम्। सीता के कहने का अभिप्राय है - अथवा जिस प्रकार मेघों से आच्छादित पूर्णचन्द्र के दर्शन कभी-कभी क्षण भर के लिए मेघों के थोड़ी देर केलिए हट जाने पर हो जाते हैं, वैसे ही मेरे दुर्भाग्य रूप मेघ से छिपाये गये राम के दर्शन सौभाग्य वश कुछ क्षणों के लिए हो गये।

टिप्पणी-संविधानकम् - सम् +वि ध + ल्युट् + कन् (स्वार्थे)।

रामः - अयि विमानराज! इत इतः।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

तमसा-वासन्त्यो – (सीतारामौ प्रति)

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः

स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता।

स च मुनिरनपुयातारुन्धती को वसिष्ठ-

स्त्वयि वितरतु भद्रं भूयसे मंगलाय।।48 ।।

अन्वयः - अस्मद्विधभिः सार्धम् अवनिः, अमरसिन्धुः , स च कुलपतिः यः छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता, स च अनुयातारुन्धतीकः वसिष्ठो मुनिः भूयसे मंगलाय त्वयि भर्द्रं वितरतु।।48 ।।

अर्थ- राम-अयि व्योमयानश्रेष्ठ (पुष्पक)! इस तरफ, इस तरफ।(सब उठते हैं)

तमसा और वासन्ती-(सीता और राम के प्रति)

हम-जैसे लोगों के साथ ही पृथिवी, गंगा, वह कुलपति (वाल्मीकि) जो (वेद-प्रयुक्त छन्दों से भिन्न, लौकिक)छन्दों का प्रथम प्रयोक्ता है और अरुन्धती से अनुगत वसिष्ठ मुनि,

तुममें महान् मंगल के लिए कल्याण वितरित करें।।**48**।। प्रस्तुत पद्य में तुल्योगिता अलंकार तथा मालिनी छन्द है।

व्याख्या- छन्दसाम्-इसका तात्पर्य 'अनुष्टप्' आदि लौकिक छन्दों से है, वैदिक छन्दों से नहीं।

टिप्पणी- आद्यः - आदौ भवः आदि + यत्। प्रयोक्ता - प्र + युज् + तृच्।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति महाकवि-श्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते छाया नाम तृतीयोअंक: ।

(सभी चले गये)।

महाकवि भवभूतिविरचित उत्तररामचरित में छाया नामक तृतीय अंकसमाप्त।

अभ्यास-प्रश्न1.

निम्नलिखित पद्यों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए -

क. पूरोत्पीडे.......................धर्यते।।

ख. देव्या शून्यस्य................रामो न जीवति।।

अभ्यास प्रश्न 2.

निम्नलिखित पद्यों का अनुवाद कीजिए -

(क) त्वं जीवितं त्वमसि....................किमिहोत्तरेण।।

(ख) अयि कठोर यशः.......................कथं बत मन्यसे।।

(ग) दलति हृदयं..........................न कृन्तति जीवितम्।।

(घ) करवल्लवः स तस्याः....................स्विद्यतः स्विद्यन्।।

2.4 सारांश

इस इकाई में आपने उत्तररामचरितम् तृतीय अंक के उत्तरार्द्ध की कथावस्तु का अध्ययन किया। राम की करूण दशा को देखकर तथा अपनी स्वर्णमयी मूर्ति की चर्चा राम के मुख से सुनकर सीताजी द्रवित होकर राम की ओर अभिमुख होती है । उनका राम के प्रति बारह वर्षों तक निरन्तर बना हुआ निर्वासन –जनित क्षोभ नष्ट हो जाता है और हृदय पूर्ववत् निर्मल ,निष्कलुष एवं आत्मीयता पूर्ण प्रेम से ओत प्रोत हो जाता है। इस कथा के अनन्तर कवि ने करुण रस के स्वरूप तथा भेद की चर्चा करते हुए तृतीय अंक का पर्यवसान किया है।

2.5 शब्दावली

मैथिली सीता

उपालम्भ उलाहना

घर्म: आतप

सविष: गरलयुक्त

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 एवं 2 के उत्तर इकाई में देखिये।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.उत्तररामचरितम् (भवभूति), एमúआरú काले (वीरराघवकृत टीका)मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962

2.उत्तररामचरितम् (भवभूति), स्वरूप आनंद एवं जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977

3.उत्तररामचरितम् (भवभूति), ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1987

2.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्राी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

3.भवभूति के नाटक, ब्रज वल्लभ शर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1973

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एको रसः करुण एव इस उक्ति की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. पठित पाठ के आधार पर ‘आनन्दग्रन्थि’ को स्पष्ट कीजिए।

इकाई 3 - उत्तररामचरितम् चतुर्थ अंक का पूर्वार्द्ध

इकाई की रूपरेखा:

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 1 से 15 तक
(मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी)
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक ग्रन्थ
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1प्रस्तावना

उत्तररामचरितम् के तृतीय खण्ड की यह तृतीय इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने तृतीय अंक का अध्ययन किया। जिसमें आपने जाना कि भगवती भागीरथी के आर्शीवाद के कारण सीता जी को पृथ्वी पर कोई देख नहीं सकता है और इधर श्रीराम का पंचवटी में प्रवेश होता है।

प्रस्तुत इकाई में आप उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक कौशल्या -जनकयोग के पूर्वार्द्ध का अध्ययन करेगें। इसके नामकरण का कारण यह है कि द्वितीय अंक में आत्रेयी ने वासन्ती से जैसा कहा था कि सीता-निर्वासन को सुनकर दुःखित अरुन्धती ने अपना निश्चय बतलाया कि मैं सीता से शून्य अयोध्या में नहीं जाऊँगी। राम की माताओं ने भी अरुन्धती का ही समर्थन किया और उनके अनुरोध से वशिष्ठ ने यह निर्णय लिया कि हम सब वाल्मीकि के तपोवन में चलकर रहेंगे। तदनुसार सब वाल्मीकि के आश्रम में आते हैं। सीता-निर्वासन से अत्यन्त दुःखित राजर्षि जनक भी वाल्मीकि का दर्शन करने आते हैं। वशिष्ठ जी के आदेशानुसार कौशल्या स्वयं अरुन्धती और गृष्टि नामक कंचुकी के साथ जनक से भेंट करती हैं। इसलिए इस अंक का नाम 'कौसल्या-जनक योग' रखा गया।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेगें कि बाल्मीकि के आश्रम में कौशल्या अरून्धती और गृष्टि नामक कंचुकी के साथ जनक से भेंट करती हैं इसलिए इस अंक का नाम 'कौसल्या-जनक योग' रखा गया।

3.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- श्लोकों मे प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार को समझा पायेगें।
- राम की माताओं का सीता के प्रति अगाध प्रेम का वर्णन कर पायेगें।
- दु:खित पिता के मनोभावों का वर्णन कर पायेगें।
- करूण रस को उद्धरणों के द्वारा समझा पायेगें

3.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 1 से 15 तक

(मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी)

एकः - सौधातके! दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य समधिका-रम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य। तथा हि -

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यःप्रसूताप्रिया-
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ॥ 1 ॥

अन्वयः - तमोवनमृगः सद्यःप्रसूताप्रियापीताद् अभ्यधिकम् उष्णमधुरं नीवारौदनमण्डं पर्याप्तम् आचमति। सर्पिष्मतः भक्तस्य स्फुरता गन्धेन मनाकअनुसृतः कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते॥1 ॥

अर्थ- (कौसल्याजनकयोग)(तदनन्तर दो तपस्वी ;दाण्डायन और सौधातकि प्रवेश करते हैं)

एक-हे सौधातकि! इस समय अत्यधिक संख्या में समवेत अतिथियों वाले भगवान् वाल्मीकि के आश्रमस्थान की (अतिथि-सत्कारार्थ) प्रचुर आयोजन से होने वाली शोभा तो देखिए। वह इस प्रकार है-

आश्रम का मृग तत्काल प्रसूता प्रिया (मृगी) के पीने से बढ़े हुए(अवशिष्ट) गरम-गरम तथा मीठे-मीठे नीवार (तिन्नी) के भात के माँड़ को प्रचुर मात्रा में पी रहा है। घृत युक्तभात के उद्गत गन्ध् से कुछ अनुगत (युक्त) बेर के फलों से मिश्रित शाक के पकाने की सुगन्ध चारों ओर (हवा से) फैल रही है।।1।। प्रस्तुत पद्य में स्वभावोक्ति अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्या- सद्यःप्रसूताप्रियापीतात्-सद्यःप्रसूता चासौ प्रिया च तस्याःपीतात्(भावे)‘प्रसूताप्रिया’ में कर्मधारय समास है।

टिप्पणी- सौधातकिः - सुधातुरपत्यं पुमान् सुधात्+इञ्। आचामति - आ चम् + लट् (तिप्), धातु के अच् (अ) को दीर्घ।

सौधातकिः - स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामनध्यायकारणानां तपोधनानाम्।

प्रथमः – (विहस्य) अपूर्वः कोऽपि ते बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधातके!

सौधातकिः - भो दाण्डायन! किन्नामधेय एष महतः स्थविरसार्थस्य

धुरन्धरोऽद्यातिथिरागतः?

दाण्डायान: -धिक्! प्रहसनम् नन्वयमृष्य श्रृंगाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि?

सौधातकिः - हुँ वसिष्ठः?

दाण्डायन - अथ किम्?

सौधातकिः - मया पुनर्ज्ञातं व्याघ्रो वा वृको वैष इति।

दाण्डायनः - आः किमुक्तं भवति?

सौधातकिः - येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी मडमडायिता।

दाण्डायान: - 'समांसो मधुपर्क' इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा महाजं वा निर्वपन्ति गृहमेधिनः। तं हि धर्मं धर्मसूत्राकाराः समामनन्ति।

सौधातकिः - भो निगृहीतोऽसि।

दाण्डायनः - कथमिव?

सौधातकिः - येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वतितो मधुपर्कः। वत्सतरी पुनविसर्जिता।

दाण्डायनः - अनिवृत्तमांसानामेवं कल्पमृषयो मन्यन्ते। निवृर्त्तमांसस्तु तत्र भवाज्जनकः।

सौधातकिः - किं निमित्तम्?

दाण्डायनः - स तदैव देव्याः सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः संवृत्तः। तथाऽस्य कतिपये संवत्सराश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

सौधातकिः - ततः किमित्यागतः?

दाण्डायनः - चिरन्तनप्रियसुहृदं भगवन्तं प्राचेतसं द्रष्टुम्।

सौधातकिः - अप्यद्य सम्बन्धिनीभिः समं संवृत्तमस्य दर्शनं न वेति?

दाण्डायनः - सम्प्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्याः कौसल्यायाः सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता यत् स्वयमुपेत्य वैदेहो द्रष्टव्य इति।

सौधातकिः - यथैते स्थविराः परस्परं मिलितास्तथावामपि वटुभिः सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सवं खेलन्तौ सम्भावयावः।

दाण्डायनः - तदयं ब्रह्मवादी पुराणराजर्षिर्जनकः प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य सम्प्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति। य एष -

हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।

अन्तः प्रसृप्तदहनो जरन्निव वनस्पतिः।।2 ।।

अन्वयः - हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन अन्तःप्रसृप्तदहनः जरन् वनस्पतिरिव तप्यते।।2 ।। **अर्थ-**

सौधातकि-अत्यन्त पुरानी (पकी सफेद) दाढ़ी वाले अनध्याय के कारणभूत अनेक प्रकार के तपस्वियों का स्वागत है।

पहला-(हँसकर) हे सौधतके! गुरुजनों (पूज्य अतिथियों) के विषय में अत्यधिक सम्मान का कारण विलक्षण है।

सौधातकि-हे दाण्डायन! महान् वृद्ध समूह का अग्रणी किस नाम का यह अतिथि आज आया है?

दाण्डायन-प्रहसन को धिक्कार है। अरे, अरुन्धती को आगे कर, महाराज दशरथ की पत्नियों को अधिष्ठित कर (उनका अधिष्ठाता होकर) ऋष्य श्रृंगके आश्रम से यह भगवान् वसिष्ठ आये हैं। तो, क्यों इस प्रकार बेकार बातें करते हो?

सौधातकि-हूँ, वसिष्ठ?

दाण्डायन-और क्या?

सौधातकि-मैंने तो समझा था कि यह (कोई) व्याघ्र या भेड़िया है।

दाण्डायन-आः, क्या मतलब है?

सौधातकि-क्योंकि आते ही (इस वृद्धअतिथि से) वह बेचारी कपिला दो वर्ष की बछिया मडमडशब्दयुक्त की गयी (मार डाली गयी)।

दाण्डायन-'मांसयुक्त मधुपर्क (होना चाहिए)' इस वेद-वाक्य का अत्यन्त आदर करते हुए गृहस्थ लोग वेदज्ञ अतिथि को बछिया अथवा भारी बैल अथवा भारी बकरा (भोज्यार्थ)प्रदान करते हैं। इस धर्म का उपदेश (मन्वादि) धर्मसूत्रकार करते हैं।

सौधातकि-(तब तो)तुम पराजित हो गये।

दाण्डयान-वह कैसे?

सौधातकि-क्योंकि पूज्य वसिष्ठ के आने पर गवालम्भ किया गया। आज ही आये हुए राजर्षि जनक का मधुपर्क भगवान् वाल्मीकि के द्वारा (केवल) दही और मधु से ही निष्पन्न किया गया, बछिया तो मुक्त कर दी गयी (नहीं मारी गयी)।

दाण्डयान-मांस-भोजन का परित्याग न करने वालों के लिए ऋषि लोग ऐसी (समांस मधुपर्क) की विधि मानते हैं। पूज्य जनक जी तो मांस-भोजन से विरत हैं।

सौधातकि-क्या कारण है?

दाण्डायन-वे देवी सीता का उस प्रकार का भाग्य का दुष्परिणाम सुनकर उसी समय वानप्रस्थ हो गये और चन्द्रद्वीप तपोवन में तपस्या करते हुए इन्हें कतिपय वर्ष(हो गये हैं)।

सौधातकि-वहाँ से क्यों आये हैं?

दाण्डायन-चिरकालीन प्रियमित्र भगवान् प्राचेतस(वाल्मीकि) के दर्शनार्थ।

सौधातकि-क्या आज समधिनों (कौसल्या आदि)के साथ इन (जनक) का साक्षात्कार हुआ या नहीं?

दाण्डायन-अभी-अभी भगवान् वसिष्ठ के द्वारा देवी कौसल्या के पास भगवती अरुन्धती भेजी गयी हैं कि वे स्वयं पास जाकर जनक का साक्षात्कार करें।

सौधातकि-जिस तरह ये बड़े-बूढ़े परस्पर मिल गये हैं, उसी तरह हम-दोनों भी बालक ब्रह्मचारियों के साथ मिलकर खेलते हुए अनध्याय का महोत्सव मनायें।

(ऐसा कहकर दोनों घूमते हैं)

दाण्डायन-तो ये ब्रह्मोपदेष्टा वृद्ध राजर्षि जनक, वाल्मीकि और वसिष्ठ की आराधना करके बाहर आश्रम के वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। जो ये-

हृदय में निरन्तर विद्यमान सीता निमित्तक शोक से, भीतर फैली हुई आग वाले जीर्ण वृक्ष की तरह तप रहे हैं (जल रहे हैं)।।2।। इस श्लोक में उपमा अलंकार और अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या- इस अवतरण में आये हुए दो पात्रों में सौधातकि का स्वभाव परिहासप्रिय है, अतएव वसिष्ठादि के लिए उसने 'जीर्णकूचानाम्' का प्रयोग किया है, किन्तु उनके आने से 'शिष्टे च गृहमागते (अनध्यायः)' याज्ञवल्क्य की इस उक्ति के अनुसार उसे जो आज पढ़ने से छुट्टी मिल गयी, उसकी खुशी में उनका स्वागत भी करता है। किन्तु दाण्डायन गम्भीर स्वभाव का है अतः सौधातकि के परिहास का विरोध करता है।

टिप्पणी- उपास्य . उप + आस् + ल्यप्। तप्यते . तप् +लट् (यकर्मणि)। प्रसृप्त . प्र +सृप् +क्त यकर्तरि। वनस्पतिः . वनस्य पतिः सुट् का आगम यपारस्करादित्वात्द्ध।

(इति निष्क्रान्तौ)मिश्रविष्कम्भः

(ततः प्रविशति जनकः)

(तदनन्तर जनक प्रवेश करते हैं)

जनकः . अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत् तेन महता

विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।

पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे

निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति।।3 ।।

अन्वय- अपत्ये यत् तादृक् दुरितम् अभवत् महता तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्थयता तेन विवक्त: पटु: धारावाही चिरेणापि नव इव क्रकच इव मर्माणि निकृन्तन् मे मन्यु: न विरमति ।

अर्थ – जनक (मेरी) सन्तान (सीता) पर जो इस प्रकार का(निर्वासनरूप) व्यसन आ पड़ा उस महान दारूण हृदय को व्रणित कर देने वाले व्यसन से हृदय में उत्पन्न प्रबल निरन्तर संचरणशील इतने दीर्घकाल के बाद भी नया सा मेरा शोक आरे की तरह मर्मस्थान को चीरता हुआ सा शान्त नहीं होता है **।। 3 ।।**

टिप्पणी- दुरितम् – दुर +इ(गतौ) +क्त(नपुंसक भावे) ।निकृन्तन् – नि + कृत् (छेदने)+शतृ।

हा पुत्री !

अनियतरूदितस्मितं विराजत्कपयकोमलदन्तकुंगमलाग्रम् ।

वदनकमलकं शिशो: स्मरामि स्खलदसमञ्जसमञ्जुल्पितं ते ।।4।।

अन्वय- अनियतरूदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्त कुंगमलाग्रम् स्खलदसमञ्जसमञ्जुल्पितं शिशो: ते वदनकमलकं स्मरामि **।।4।।**

अर्थ- हा पुत्री अनिश्चित रोदन हास वाले कोमल कलियों के अग्रभाग के समान (छोटे-छोटे)

विरल दांतो से सुशोभित तथा बिना किसी क्रम के मनोहर एवं तोतले वचन वाले तुम्हारे शैशव के समय के मुख का स्मरण करता हूँ**।।4।।** इसमें उपमा और स्वभावोक्ति का संकर तथा पुष्पिताग्रा छन्द है।

टिप्पणी- विराजत- वि+राज्+शतृ। स्खलत् – स्खल् +शतृ ।

भगवति वसुन्धरे! सत्यमति दृढासि।

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गंगा च यस्या विदु.

र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः।

विद्यां वागिव यामसूत भवती तद्वत्तु या दैवतं

तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः।।5 ।।

अन्वयः . यस्याः माहात्म्यं त्वम् (वेद) वह्निः मुनयः वसिष्ठगृहिणी गंगा च विदुःयदि वा रघोः कुलगुरुः देवः भास्करः स्वयं (वेद) विद्यां वागिव यां भवती असूत, या तद्वत् तु दैवतम्, तस्याः त्वद्दुहितुः तथा विशनसनम्,दारुणे! किम् अमृष्यथाः?।।5 ।।

अर्थ-भगवती पृथिवी! तू निस्सन्देह अत्यन्त कठोर है। जिसके प्रभाव को तू जानती है,(वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि) मुनि लोग, अग्नि, वसिष्ठ की पत्नी (अरुन्धती) और गंगा जानती हैं, तथा रघुकुल के आदि.पुरुष सूर्यदेव स्वयं जानते हैं। विद्या को सरस्वती के समान, जिसे आपने जन्म दिया और जो स्वयं उन देवताओं के समान ही देवता है,उसी तुम्हारी पुत्री (सीता) का इस प्रकार अपघात! हे कठोरे, भला इसे तुमने कैसे सह लिया।।5।। प्रस्तुत पद्य में उपमा और दीपक की संसृष्टि तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(नेपथ्ये)इत इतो भगवतीमहादेव्यौ।

जनकः . (दृष्ट्वा) अये, गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती। (उत्थाय) कां पुनर्महादेवीत्याहघ् (निरूप्य) हा हा कथमियं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या। क एतां प्रत्येति सैवेयमिति।

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा।

कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विपाकः।।6 ।।

अन्वयः . इयं दशरथस्य गृहे श्रीः यथा आसीत्,अथवा श्रीः एव, उपमानपदेन किम् ?कष्टं बत सा एषा दैववशेन अन्यत् किमपि दुःखात्मकं भूतम् इव जाता, अहो! विपाकः।।6 ।।

अर्थ- (नेपथ्य में) भगवती (अरुन्धती) और महादेवी (कौसल्या) इधर से(इधर से चलें)।

जनक.(देखकर) अये भगवती अरुन्धती (हैं) इन्हें दृष्टि के द्वारा मार्ग.निर्देश किया जा रहा है। (उठकर)तो किसे (महादेवी) ऐसा कह रहा है। (भली.भाँति देखकर) हाय हाय ये कैसे महाराज दशरथ की धर्मपत्नी यह दशरथ घर में लक्ष्मी की तरह थींअथवा

उपमानपद (यथा)से क्या प्रयोजन, यह लक्ष्मी ही थीं। महान् कष्ट है,वही यह दैववश मानों दूसरा कोई दुःखात्मक जीव हो गयी हैं। आश्चर्य है (ऐसा)शोचनीय दशाविपर्यास (हो गया है)॥6॥ इसमें उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की संसृष्टि तथा वसन्ततिलका छन्द है।
व्याख्या- यथा श्रीः श्रीरेव.जनक भावप्रवाह में कौसल्याजी को -लक्ष्मी के समान कह तो गये किन्तुकौसल्या के प्रति अपने आदरभाव की अभिव्यक्ति के लिए उसे अपर्याप्त समझ कर सन्तुष्ट नहीं हो सके। तब उन्हें श्रीरेव साक्षात् लक्ष्मी ही इस रूपक का सहारा लेना पड़ा।
विपाकः.पाठाú.विकारः.विकृति अर्थात् दुष्परिणाम।

टिप्पणी-उपदिश्यमानः . उप +दिश् + शानच् (कर्मणि)। प्रत्येति . प्रति +इ +लट् (तिप्)। उपमानम् . उप +मा +ल्युट् (भावे)।

अयमपरः पापो दशाविपर्यासः।

य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः।
क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्यैव दर्शनम्॥7 ॥

अन्वयः . य एव जनः पूर्वं मे मूर्तो महोत्सवः आसीत् तस्यैव दर्शनं क्षते क्षारमिव असह्यं जातम्॥7 ॥

यह दूसरा पापी दशाविपर्यास हो गया.

जो ही व्यक्ति मेरे लिए मूर्तिमान् महोत्सव था उसी का दर्शन कटे हुए पर नमक की तरह असह्य हो गया है॥7॥ यहाँ पर भी रूपक और उपमा की संसृष्टि तथा अनुष्टुप् छन्द है।
व्याख्या- क्षते क्षारम् (कटे पर नमक). यह लोकोक्ति बन गया है। अर्थ होता है . पीडा को जो पहले से ही असह्य है और बढ़ा देना।

टिप्पणी- विपर्यासः . वि +परि + अस् (क्षेपे) +घञ् । मूर्तः . मूर्च्छ +क्त ।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती कौसल्या कंचुकी च)

अरुन्धती - ननु ब्रवीमि द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह इत्येष वः कुलगुरोरादेशः। अत एव चाहं प्रेषिता। तत्कोऽयं पदे पदे महाननध्यवसायः।

कंचुकी-देवी! संस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेशमिति विज्ञापयामि।

कौसल्या - ईदृशे काले मिथिलाधिपो मया द्रष्टव्य इति सममेव सर्वाणि दुःखानि समुद्भवन्ति। तस्मान्न शक्नोम्युद्वर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम्।

अरुन्धती- अत्र कः सन्देहः ?

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि।

दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रैरिव सम्प्लवन्ते।।8 ।।

अन्वयः . मानुषाणां सम्बन्धिवियोगजानि दुःखानि सन्तानवाहीन्यपि प्रेयसि जने दृष्टे दुःसहानि (सन्ति) स्रोतः सहस्रैरिव सम्प्लवन्ते।।**8** ।।

अर्थ -(तदनन्तर अरुन्धती, कौसल्या और कंचुकी प्रवेश करते हैं)

अरुन्धती.-अरे मैं कह रही हूँ स्वयं जाकर ही विदेहाधिपति जनक को देखना चाहिए ऐसा यह तुम्हारे कुलगुरु (वसिष्ठ)का आदेश है और इसीलिए मैं भेजी गयी हूँ तो पग.पग पर यह कैसा अनुत्साह (हिचकिचाहट)

कंचुकी-.हे देवि! अपने आपको व्यवस्थित करके भगवान् वसिष्ठ के आदेश का पालन करो यह मेरा निवेदन है।

कौसल्या-.ऐसे समय में मिथिलाधिपति (जनक) से मुझे मिलना है अतः एक ही साथ सभी दुःख उत्पन्न हो रहे हैं। इसलिए उखड़ते हुए मूलबन्धन वाले हृदय को प्रकृतिस्थ नहीं कर सकती।

अरुन्धती.-इसमें क्या सन्देह ।

लोगों के सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न दुःख सतत प्रवाहमान (अर्थात् अनुभूयमान) होते हुए भी प्रियजन के देखे जाने पर दुःसह होते हुए मानो हजारों धाराओं से उमड़ कर बहने लगते हैं।।8।। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।

व्याख्या-

महाननध्यवसायः.पाठाύ.महानध्यवसायः. रामचन्द्र द्वारा सीता.निर्वासन किये जाने से लज्जावश कौसल्या को जनक के सामने जाने में पगपग पर हिचकिचाहट हो रही है, जो स्वाभाविक ही है।

सन्तानवाहीन्यपि.अविच्छिन्न भाव से बहते रहने से दुःख का वेग शिथिल पड़ जाता है और वह चिरानुभूयमान दुःख सह्य हो जाता हैए फिर भी उसे दुःसह तथा सहस्रों प्रवाहों से बहने वाला कहा गया है,अतः विरोधभास अलंकार है।

टिप्पणी - पर्यवस्थापयितुम् . परि + अव + स्था +णिच् + तुमुन् (धातु के पुक् का आगम)। सन्तानवाहीनि . सन्तानेन वहन्ति,तच्छीलानि। ताच्छील्ये णिनिः।

कौसल्या - कथं नु खलु वत्साया वध्वा एवं गते तस्य राजर्षेर्मुखं दर्शयामः ?

अरुन्धती- . एष वः श्लाघ्यसम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मापरायणं जगौ।।9 ।।

अन्वयः . एषः वः श्लाघ्यसम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः, यस्मै मुनिः याज्ञवल्क्यः ब्रह्मपारायणं जगौ।।9 ।।

अर्थ- कौसल्या-.वात्सल्यभागिनी बहू (सीता) के ऐसा होने पर उन राजर्षि (जनक) को कैसे मुँह दिखावें।

अरुन्धती-.ये तुम्हारे प्रशंसनीय समधी जनकवंशियों के कुल में श्रेष्ठ हैं, जिन्हें याज्ञवल्क्य मुनि ने उपनिषत् सहित समग्र वेद का उपदेश दिया है।।9।। इस पद्य में स्मृति अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या-याज्ञवल्क्यः.याज्ञवल्क्य मुनि को बृहदारण्यकोपनिषद् में कई स्थलों पर जनक का उपदेष्टा कहा गया है। ये शुक्लयजुर्वेद के प्रधान ऋषि हैं। कहा जाता है कि याज्ञवल्क्यसंहिता इन्हीं का रचित धर्मग्रन्थ है।

ब्रह्मपारायण.यों तो पारायण का सामान्य अर्थ है . पार जाना ,पूरा पढ़ना, आद्योपान्त अध्ययन आदि। किन्तु पारायण शब्द का प्रयोग किसी वस्तु की समष्टि के अर्थ में भी होता है,यथा . मन्त्रापारायण। इस प्रकार ब्रह्मपारायण का वेदसमष्टि.समग्र वेद (ब्रह्मवेद) अर्थ मानना समीचीन है। उपनिषदों का भी वेद में अन्तर्भाव है।

टिप्पणी - गते . गम् + क्त (नपुसंक भावे)।दर्शयामः - दृश् +णिच् + लट् (मस्)।

श्लाघ्यः . श्लाघ् + ण्यत्।

कौसल्या - एष स महाराजस्य हृदयानन्दो वत्साया वध्वाः पिता राजर्षिः। स्मारितास्मि

अनिर्वेदरमणीयान् दिवसान्। हा दैव! सर्वं तन्नास्ति।

जनक – (उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति! वैदेहः सीरध्वजोऽभिवादयते।

यया पूतम्मन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः

पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः।

त्रिलोकीमंगल्यामवनितललीनेन शिरसा।

जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम्।।10 ।।

अन्वयः -पवित्रस्य महसः निधिरपि, पूर्वेषां गुरूणां गुरुतमोक्ष्पि ते पतिः यया पूतम्मन्यः खलु त्रिलोकीमंगल्यां जगद्वन्द्यां देवीम् उषसमिव भगवतीम् अवनितललीनेन शिरसा वन्दे।**।10 ।।**

अर्थ- कौसल्या-.ये वे (ही) महाराज (दशरथ) के हृदय को आनन्द देने वाले वत्सा वधू (सीता) के पिता राजर्षि (जनक) हैं। हाधिक्! हाधिक्! (इनके दर्शन से)मुझे उन अवसाद सहित रमणीय दिनों की याद करा दी गयी। हाय दैव! वह सब कुछ (अब) नहीं है।

जनक-(समीप जाकर) हे भगवति अरुन्धति! विदेहराज सीरध्वज अभिवादन करता है।

पवित्र तेज का आधार भी, पूर्व गुरुओं का पूज्यतम भी तुम्हारा पति जिससे अपने को पवित्र मानता है, उषा देवी के समान तीनों लोकों का मंगल करने वाली तथा जगत् की वन्दनीय तुझ भगवती को भूतल पर रखे हुए शिर से प्रणाम करता हूँ।**।10।।** यहाँ पर उमा अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

व्याख्या- सीरध्वजः.जनक के हल चलाने पर सीता जी उत्पन्न हुई थीं। अतः ये सीरध्वज कहलाते हैं। कुछ लोगों का मत है कि सीर (हल) जनकवंशी राजाओं का चिह्न था। उनके झण्डे पर सीर का चिह्न बना होता था।

देवीमुषसम्.यहाँ उषस् शब्द प्रातरध्ष्ठिातृदेवता के अर्थ में है, अतःस्त्रीलिंग है। उषः काल का बोधक होने पर नपुंसक लिंग होता है।

टिप्पणी- स्मारिता- स्मृ + णिच् +क्त (गौणे कर्मणि)+ टाप्। । त्रिलोकी - त्रयां लोकानां समाहारः त्रिलोकी।

अरुन्धती- . परं ते ज्योतिः प्रकाशताम्। अयं त्वां पुनातु देवः परोरजा य एष तपति।

जनकः - आर्य गृष्टे! अप्यनामयमस्याः प्रजापालकस्य मातुः ?

कंचुकी – (स्वगतम्) निरवशेषमतिनिष्ठुरमुपालब्धः स्मः। (प्रकाशम्)राजर्षे! अनेनैव मन्युना चिरपरित्यक्तरामभद्रमुखचन्ददर्शनां नार्हसि दुःखयितुमतिदुःखितां देवीम्। रामभद्रस्यापि दैवदुर्योगः कोऽपि यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौरजानपदा नाग्निशुद्धि मनल्पकाः प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन।

जनकः-(सरोषम्) आः! कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने। कष्टमेवं वादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि वयं पुनः परिभूयामहे।

अरुन्धती- . (निःश्वस्य) एवमेतत्। अग्निरति वत्सां प्रति परिलघून्यक्षराणि। सीतेत्येव पर्याप्तम्। हा वत्से!

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा

विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।

शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।।11 ।।

अन्वयः - मम शिशुर्वा शिष्या वा यदसि तत् यथा तिष्ठतु। विशुद्धे उत्कर्षः तु त्वयि मम भक्तिं द्रढयति। शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु, ननु जगतां वन्द्या असि। गुणिषु गुणाः पूजास्थानं न च लिंगं न च वयः।।11 ।।

अर्थ- अरुन्धती-.तुम्हें परमज्योति (ब्रह्म)अवभासित हो। यह रजोगुण से परे स्थित देव (सविता) तुम्हें पवित्र करे, जो यह तपता है (प्रकाश देता है)।

जनक-हे आर्य गृष्टि! प्रजापालक की इन माता का आरोग्य तो है ।

कंचुकी-(स्वगत) हम लोगों को पूरी तरह और अत्यन्त कठोरतापूर्वक उलाहना दिया गया। (प्रकाश) राजर्षे! इसी शोक के कारण महारानी ने बहुत समय से रामभद्र के मुख.चन्द्र का देखना छोड़ दिया है अति दुःखित उनको दुःखी करना आपके लिए उचित नहीं है। रामभद्र का भी निश्चय ही कोई भाग्य का बुरा संयोग था कि पुरवासियों और जनपदवासियों के द्वारा घृणित किंवदन्ती फैल गयी और उन तुच्छ हृदय वालों को अग्निशुद्धि पर भी विश्वास नहीं है, इसी कारण महाराज के द्वारा (ऐसा)भीषण कर्म किया गया।

जनक-(क्रोध् सहित) आः! हमारी सन्तान की परिशुद्धि के विषय में यह अग्नि नाम का कौन है। कष्ट की बात है, ऐसा कहने वाले व्यक्ति के द्वारा राम से अपमानित होकर भी हम पुनः अपमानित किये जा रहे हैं।

अरुन्धती- (लम्बी साँस लेकर)यही बात है। पुत्री (सीता) के सम्बन्ध में अग्नि ये अक्षर अत्यन्त स्वल्प हैं। (पावनता के विषय में) सीता यही पर्याप्त है। हा पुत्री!

तुम बालिका अथवा शिष्या जो भी तुम मेरी हो वह (सम्बन्ध) वैसा ही रहे। किन्तु निर्दोषता का जो आधिक्य है, वह तुममें मेरी भक्ति को दृढ़ करता है। तुममें बालभाव हो या स्त्रीभाव, तुम संसार की वन्दनीया हो। गुणियों में गुण ही पूजा के कारण होते हैं, स्त्रीत्व,पुंस्त्वादि और वृद्धत्वादि अवस्था नहीं।**।11।।** यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

व्याख्या-प्रजापालकस्य मातुः.यह जनक का ताना भरा शब्द है। राम प्रजापालक हैं,पत्नीपालक नहीं। ऐसे पुत्र की जन्मदात्री होने के नाते कौसल्या की भी निन्दा द्योतित हो रही है।

कोऽप्यमग्निपरिशोधनेजनक का अभिप्राय है कि सीता जी पवित्रतम हैं। उनके विषय में अग्निशुद्धि की बात करना यह उनका अपमान है।

टिप्पणी-उपालब्धः . उप +आ + लभ् +क्त ।परिभूताः -परि + भू + क्त (कर्मणि)। परिभूयामहे - परि +भू +कर्मणि लट् (महिङ्)। शिष्या - शास् + क्यप् + टाप्।

कौसल्या - (इति मूर्च्छन्ति) अहो! उन्मीलन्ति वेदनाः।

जनकः -हा कष्टं,किमेतत् ?

अरुन्धती-. राजर्षे! किमन्यत् ?

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः

स्मृताविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।

विपाके घोरेऽस्मिन्नथ खलु विमूढा तव सखी

पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।।12 ।।

अन्वयः-स राजा, तत् सौख्यम्, स च शिशुजनःएते च दिवसाः, सुहृदि त्वयि दृष्टे तत् अखिलम् आविभूर्तम्। अथ अस्मिन् घोरे विपाके तव सखी विमूढा खलु। पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमकुमारं भवति हि।।**12 ।।**

अर्थ- कौसल्या-अहो! वेदनाएँ पैदा हो रही हैं (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)।

जनक-हाय, शोक है। यह क्या हो गया ?

अरुन्धती- .हे राजर्षि! और क्या होता ?

वे राजा यदशरथ, वह सुख,वह बालसमुदाय और वे दिन,वह सभी तुझ प्रिय सुहृद् को देख कर स्मृतिपथ में आ गया। इसके बाद इस भयंकर दशाविपर्यास में तुम्हारी सखी मूर्च्छित हो गयी है, क्योंकि कुलांगनाओं का चित पुष्प के समान सुकुमार होता है।।12।। प्रस्तुत पद्य में समुच्चय और उपमा का संकर तथा शिखरिणी छन्द है।

व्याख्या- इस पद्य में कुलांगनाओं का चित्त पुष्प के समान कोमल होता है इस सामान्य अर्थ के द्वारा साधर्म्य के आधार पर कौसल्या के चित्त की पुष्पसुकुमारता रूप विशेष अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यासअलंकार है तथा कौसल्या के विमूढ़ होने में साधक रूप से राजा का स्मरण रूप एक कारण पर्याप्त होने पर भी खले कपोतिकान्यायेन सुखादि अन्य कारणों का भी साधक रूप में समावेश होने से समुच्चयअलंकार है और कुसुमसुकुमारम् के द्वारा कुसुम के साथ चित्त की समता का कथन होने से लुप्तोपमा अलंकार है। ये तीनों अलंकार परस्पर सापेक्ष हैं अतएव संकर हुआ।

टिप्पणी-विमूढा . वि + मुह् +क्त+ टाप्।

जनकः - हन्त! हन्त! सर्वथा नृशंसोऽस्मि। यश्चिरस्य दृष्टान् प्रियसुहृदः प्रियान् दारान्न स्निग्धं पश्यमि।

स सम्बन्धी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं
स चानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम्।
शरीरं जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं
महाराजः श्रीमान् किमिद मम नासीद् दशरथः।।13 ।।

अन्वयः - सः श्लाघ्यः सम्बन्धी, असौ प्रियसुहृद्,तच्च हृदयम्,स च साक्षादानन्दः,अपि च निखिलं जीवितफलम् शरीरं जीवः वा अतोक्ष्ध्कं प्रियतरं यत् अन्यत् (,तदपि),श्रीमान् महाराजः दशरथः मम किमिव न आसीत्।।13 ।।

अर्थ- जनक.-खेद! खेद! मैं सब प्रकार से क्रूर हूँए जो बहुत दिनों वेफ बाद दीख पड़ी प्रिय सुहृत् यदशरथद्ध की प्रिय पत्नी को स्नेह भाव से नहीं देखता हूँ।

वे मेरे प्रशस्य समधी थे, वे मेरे हृदय थे, वे मूर्तिमान् आनन्द थे, वे मेरे जीवन के फल थे, वे मेरे शरीर थे, जीवात्मा थे, इससे भी अधिक प्यारा जो कुछ और हो सकता है, वह भी थे। श्रीमान् महाराज दशरथ मेरे क्या नहीं थे **?।।13।।** इसमें काव्यलिंग, रूपक तथा अर्थापत्ति का संकर तथा शिखरिणी छन्द है।

व्याख्या- इस पद्य से जनक और दशरथ की घनिष्ठ मित्रता पर प्रकाश डाला गया है। इससे पता चलता है कि दोनों कितने अभिन्न हृदय थे।

टिप्पणी- सुहृद्- शोभनं हृदयं यस्य स सुहृद्, हृदय को हृद् आदेश। । जीवितम् . जीव्+क्त(नंपुसकभावे)।

कष्टमियमेव सा कौसल्या

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परमं दूषितमभू.

दभूवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः।

प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभू.

दलं वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम्।।14 ।।

अन्वयः - अस्याः पत्युः वा रहसि यत् परमं दूषितम् अभूत् (तत्रा) दम्पत्योः पृथक् उपालम्भविषयः (अहमेव) अभूवम्। तदनु प्रसादे कोपे वा विधि: मदधीन: अभूत्, वा तत्स्मृत्वा अलम्,यद् हृदयम् अवस्कन्द्य दहति।।**14** ।।

अर्थ-कष्ट है,यही वह कौसल्या है.

इसका अथवा इसके पति का एकान्त में जो भारी प्रणयापराध होता था (उसके विषय में)पति.पत्नी दोनों के अलग.अलग उपालम्भ का पात्र मैं ही होता था। उसके बाद प्रसन्न करने अथवा कुपित करने में व्यवस्था मेरे अधीन थी। अथवा उस बीती बात को याद करना बेकार है,जो हृदय को आक्रान्त कर जलाती है।।**14**।। इसमें असंगति अलंकार तथा शिखरिणी वृत्त है।

टिप्पणी-दम्पत्योः . जाया च पतिश्चेति दम्पती,तयोः। अवस्कन्द्य.अव + स्कन्द् +ल्यप्।

अरुन्धती-हा कष्टम्! अतिचिरनिरुद्धनिःश्वासनिष्पन्दं हृदयमस्याः।

जनकः - हा प्रियसखि! (इति कमण्डलूदकेन सिञ्चति)

कंचुकी- **सुहृदिव प्रकटव्य सुखप्रदः प्रथममेकरसामनुकूलताम्।**

पुनरकाण्डविवर्तनदारुणो विधिरहो विशिनष्टि मनोरुजम्।।15 ।।

अन्वयः -अहो विधि: प्रथमं सुहृदिव एकरसाम् अनुकूलतां प्रकटव्य सुखप्रदः (सन्) पुनः अकाण्डविवर्तनदारुणः (सन्) मनोरुजं विशिनष्टि।।15 ।।

अर्थ-अरुन्धती- .हाय कष्ट है। बहुत समय तक रुके हुए श्वास के कारण इसका हृदय निष्पन्द (निश्चल) है।

जनक.- हाय प्रियसखी! (ऐसा कहकर कमण्डलु के जल से सींचते हैं)

कंचुकी-अहो! विधाता मित्र के समान पहले एकरस अनुकूलता प्रकट कर सुखप्रद (होता हुआ) पुनः असमय में परिवर्तन के कारण कठोर (होता हुआ) मनोव्यथा को बढ़ाता है।।**15**।। यहाँ पर्याय एवं उपमा का संकर तथा द्रुतविलम्बित छन्द है।

टिप्पणी- प्रकटव्य- प्र +कट् +णिच् +ल्यप्। अनुकूलताम् . अनुकूलस्य भावः,अनुकूल +तल् + टाप्। विवर्तनम् . वि +वृत् +ल्युट्।

इति महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरिते कौशल्या.जनकयोगो नाम चतुर्थो अंकस्य। पूर्वार्ध ।।

अभ्यास प्रश्न 1.

निम्नलिखित पद्यों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

(क) शिशुर्वा शिष्या................न च लिंगंन च वयः।।

(ख) स राजा वत्सौख्यं...............कुसुमसुकुमारं हि भवति।।

अभ्यास प्रश्न 2.

निम्नलिखित पद्यों का अनुवाद कीजिए।

(क) सन्तानवाहीन्यपि...................सम्प्लवन्ते।।

(ख) अनियतरुदितस्मितं..........जल्पितं ते।।

(ग) यया पूतम्मन्यो.............वन्दे भगवतीम्।।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 एवं 2 के उत्तर इकाई में देखिये।

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.उत्तररामचरितम् (भवभूति), एमúआरú काले (वीरराघवकृत टीका)मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962

2.उत्तररामचरितम् (भवभूति), स्वरूप आनंद एवं जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977

3.उत्तररामचरितम् (भवभूति), ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1987

3.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

3.भवभूति के नाटक, ब्रज वल्लभ शर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1973

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक के पूर्वार्द्ध का सारांश लिखिये।

2. सीता निर्वासन से दुःखित जनक की दशा का वर्णन कीजिये।

इकाई 4 - उत्तररामचरितम् चतुर्थ अंक का उत्तरार्द्ध

इकाई की रूपरेखा:

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 16 से 29 तक
(मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी)
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक ग्रन्थ
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

उत्तररामचरितम् के तृतीय खण्ड की यह अन्तिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि बाल्मीकि के आश्रम में कौशल्या अरून्धती और गृष्टि नामक कंचुकी के साथ जनक से भेंट करती हैं इसलिए इस अंक का नाम 'कौसल्या-जनक योग' रखा गया।

प्रस्तुत इकाई में उत्तररामचरितम् के चतुर्थ अंक के उत्तरार्द्ध में वाल्मीकि के आश्रम परिसर में अश्वमेध् यज्ञ के घोड़े का आगमन होता है। लव को घोड़ा दिखलाने के लिए बच्चे खींच ले जाते हैं। लव-अश्वरक्षक वीरों की घोषणा न सहन कर पाने के कारण बच्चों से कहता है कि अश्व को ढेलों से मारते हुए आश्रम में ले चलो, यह बेचारा मृगों के बीच में चरेगा। अन्य बच्चे सैनिकों को देखकर भाग जाते हैं, परन्तु लव शस्त्र लेकर खड़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त अश्व की रक्षा में संलग्न चन्द्रकेतु तथा वाल्मीकि के काव्यादि की चर्चा की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेगें कि बाल्मीकि के आश्रम में जनक, वशिष्ठ और कौशल्यादि का आगमन होता है। लव को देखकर सभी को उसके सीता पुत्र होने की सम्भावना होती है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- बता पायेंगे कि इस अंक का नाम कौशल्या-जनक योग क्यों पड़ा।
- श्लोकों मे प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार को समझा पायेगें।
- राम की माताओं का बाल्मीकि के आश्रम में आने का कारण समझा पायेगें।
- राजा जनक के दु:ख का वर्णन कर सकेंगे।

4.3 उत्तररामचरितम् तृतीय अंक श्लोक संख्या 16 से 29 तक (मूलपाठ अर्थ व्याख्या एवं टिप्पणी)

कौसल्या - हा वत्से जानकि! कुत्रासि? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमण्डनं प्रस्फुरच्छुद्धविहसितं मुग्धमुखपुण्डरीकम्। आस्फुरच्चन्द्रचन्द्रिकासुन्दरैरङ्गैः पुनरपि मे जाते

उद्योतयोत्संगम्। सर्वदा महाराजो भणति एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूरस्माकं तु जनकसुता दुहितैव।

कंचुकी - यथाह देवी -

पंचप्रसूतेरपि तस्य राज्ञः प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रुः।

वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता, प्रियातनूजास्य तथैव सीता।।16 ।।

अन्वयः - पंचप्रसूतेः अपि तस्य राज्ञः सुबाहुशत्रुः विशेषेण प्रियः, वधूचतुष्केऽपि यथैव अस्य तनूजा शान्ता प्रिया तथैव सीता।।**16 ।।**

अर्थ-कौसल्या-(चेतना प्राप्त कर) हा पुत्रि जानकि! तुम कहाँ हो? तुम्हारे नये विवाह की शोभा का धारण रूप प्रधान भूषण वाले, खिलते हुए नैसर्गिक हास से युक्त, सुन्दर भोले-भाले मुखकमल को याद करती हूँ। हे पुत्रि! चारों ओर प्रकाशमान् चन्द्रमा की चाँदनी के समान सुन्दर अंगों से मेरी गोद को पुनः भी प्रकाशित करो। महाराज (दशरथ) सदा कहा करते थे कि यह जनकपुत्री रघुकुल के(अन्य) बड़े-बूढ़ों के लिए बहू है, किन्तु हमारी पुत्री ही है।

कंचुकी-देवी जैसा कहती हैं (वैसा ही है)।

पाँच सन्तानों वाले भी राजा (दशरथ) को सुबाहुशत्रु (राम) विशेष रूप से प्यारे (थे), चारों बहुओं में भी सीता उन्हें वैसी ही प्यारी (थी) जैसी पुत्री शान्ता।।**16**।। इसमें उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

व्याख्या-पंचप्रसूतेः-राजा दशरथ के रामादि चार पुत्रों केअतिरिक्त शान्ता नामक ज्येष्ठ कन्या भी थी, जिसे लोमपाद राजा ने गोद ले लिया था तथा जिनका विवाह ऋष्यश्रृंग से हुआ था। इसलिए वहाँ राजा दशरथ को पंचप्रसूति (पाँच सन्तानों वाला) कहा गया है।

टिप्पणी- परिग्रहः - परि +ग्रह् +अप्। प्रस्फुरत् - प्र +स्फुर + शतृ। उद्योतय - उद् +द्युत् + णिच् + लोट् (सिप्)। प्रसूतिः - प्र +सू (प्राणिगर्भविमोचने) +क्तिन्।

जनकः - हा प्रियसखा महाराज दशरथ! एवमसि सर्वप्रकारहृदयंगमः, कथं विस्मर्यसे?

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातु राप्तं जनं

सम्बन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि।

त्वं कालेन तथाविधेऽस्यपहृतः सम्बन्धबीजं च तद्

घोरेऽस्मिन् मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम् ।। 17।।

अन्वयः - कन्यायाः पितरः जामातुः आप्तं जनं पूजयन्ति, किल, सम्बन्धे मयि ते तत् आराधनं विपरीतमेव अभूत्। तथाविधः त्वं कालेन अपहृतः, तत् सम्बन्धबीजं च (अपहृतम्) घोरे अस्मिन् जीवलोकनरके पापस्य मम जीवितं धिक्।। **17** ।।

अर्थ-जनक-हा प्रियसुहृद् महाराज दशरथ! इस प्रकार आप सर्वात्मना मेरे हृदय में बसने वाले (प्रिय) हो गये हैं। आप कैसे भुलाये जा सकते हैं?

(सामान्यतः लोक की प्रसिद्ध रीति है) कन्या के पिता आदि लोग जामाता के आत्मीय जनों का सम्मान करते हैं, परन्तु हम दोनों का सम्बन्ध हो जाने पर मेरे विषय में आपका वह सम्मान (इस लोकव्यवहार के सर्वथा) विपरीत था (मैं आपका सम्मान करूँ, इसके स्थान में आप ही मेरा स्वागत-सत्कार करते थे) किन्तु ऐसे आप सज्जन काल के द्वारा (हमसे) छीन लिये गए और सम्बन्ध का मूल कारण (सीता) को भी छीन लिया गया। अब इस दारुण संसार रूपी नरक में मुझ पापी के जीवन को धिक्कार है।।17।। प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

टिप्पणी- विस्मर्यसे - वि + स्मृ + लट् (कर्मणि)।

कौसल्या - जाते जानकि! किं करोमि? दृढ़वज्रलेपघटितबन्धिनश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति।

अरुन्धती - आश्वसिहि राजपुत्रि! बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरे कर्तव्य एव। अन्यच्च किं न स्मरसि यदवोचदृष्यश्रृंगाश्रमे युष्माकं कुलगुरुर्भवतिव्यं तथेत्युपजातमेव किन्तु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति।

कौसल्या - कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत्?

अरुन्धती- तत्किं मन्यसे राजपत्नि! मृषोद्यं तदिति? न हीदं सुक्षत्रियेऽन्यथा मन्तव्यम्। भवितव्यमेव तेन।

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु संशयो मा भूत्।

भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।।18 ।।

अन्वयः - आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहाराः तेषु संशयो मा भूत्। हि एषां वाचि भद्रा लक्ष्मीः निषक्ता। एते विप्लुतार्थां वाचां न वदन्ति।।**18**।।

अर्थ- कौसल्या-हे बच्ची जानकी! क्या करूँ? कड़े वज्रलेप से रचित बन्धन वाला निश्चल (मेरा) निगोड़ा जीवन मुझ अभागिन को नहीं छोड़ रहा है।

अरुन्धती-हे राजपुत्री! धैर्य धारण करो। बीच में आँसुओं को रोकना भी चाहिए। और भी क्या स्मरण नहीं करती हो जो कि तुम्हारे कुलगुरु (वसिष्ठ) ने ऋष्यश्रृंग के आश्रम में कहा था - 'जो होना था, वैसा हो ही गया, किन्तु भविष्य में इसका परिणाम मंगलमय होगा।

कौशल्या-(सीता दर्शन रूप) मनोरथ के नष्ट हो जाने पर मेरे लिए यह कैसे सम्भव है?

अरुन्धती-हे राजपुत्नी! तो क्या यह मानती हो कि यह मिथ्यावचन है? हे सुक्षत्रिये! इसे झूठ न समझना चाहिए, उसे तो होना ही है (वह होकर ही रहेगा)।

जिन्हें ब्रह्म का प्रकाश प्रकट हो चुका है, ऐसे तत्त्वदर्शी ब्राह्मणों के जो वचन हैं, उनमें तुम (कौसल्या) को सन्देह नहीं करना चाहिए। इनके वचन में मंगलस्वरूपा सिद्धि(लक्ष्मी) नित्य सन्निहित होती है। ये अयथार्थ वचन नहीं बोलते हैं।।**18**।। इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा शालिनी छन्द है।

व्याख्या-विप्लुतार्थाम्-विप्लुत का अर्थ होता है - इधर-उधर बहा हुआ, डूबा हुआ, निमग्न, बाढ़-ग्रस्त। अतः यहाँ अर्थ है - मिथ्या, झूठ, अयथार्थ।

टिप्पणी- उदर्कः - उदर्क्यते, उदर्च्यते वा, उद्च्यते वा इति उदर्कः।

व्याहाराः - वि + आ +हृ+घञ्। संशयः - सम् +शी + अच्। निषक्त - नि +सञ्ज् +क्त।

विप्लुतः - वि +प्लु + क्त।

(नेपथ्ये कलकलः। सर्वे आकर्णयन्ति)

जनकः - अये! अद्य खलु शिष्टानध्यायः इत्युद्धतं खेलतां वटूनां कलकलः।

कौसल्या – (निरुप्य) सुलभसौख्यं तावद् बालत्वं भवति। अहो! एतेषां मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसदृशैः सावष्टम्भैर्मुग्धललितैरंगैरस्माकं लोचनानि शीतलयति।

अरुन्धती – (अपवार्य सहर्षबाष्पम्) इदं नाम तद् भागीरथीनिवेदितरहस्यं कर्णामृतम् । न त्वेवं विप्रः कतरोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोरिति। (प्रकाशम्) -

कुवलय दलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो

वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।

पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो

झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम्।।19 ।।

अन्वयः - कुबलयदलस्निग्धश्यामः, शिखण्डकमण्डनः, पुण्यश्रीकः, श्रिया वटुपरिषदं सभाजयन्निव, स मे वत्सः रघुनन्दनः पुनरपि शिशुर्भूतः (एवं प्रतीयमानः) अयं कः (यः) दृष्टः (सन्) झटिति दृशोः अमृताञ्जनं कुरुते।।**19 ।।**

अर्थ- (नेपथ्य में कोलाहल होता है सब सुनते हैं)

जनक-अरे! आज निश्चय ही शिष्टजनों के आ जाने से (आश्रम में) अनध्याय है, अतः अनियन्त्रित भाव से खेलते हुए ब्रह्मचारियों का कोलाहल हो रहा है।

कौसल्या-बचपन वास्तव में सुलभ सुखवाला होता है। (भली-भाँति देखकर)

आश्चर्य है, इनके बीच में यह कौन (बटु) है, जो रामभद्र के शैशवकालीन सुषमा के समान प्रतीत होने वाले, सुगठित, मनोज्ञ एवं सुकुमार अंगो से हमारे नेत्रों को शीतल करता है।

अरुन्धती-(छिपा कर, हर्षाश्रु के साथ) कानों के लिए अमृतरूप गंगा द्वारा कहा हुआ वह

रहस्य सभवतः यही है। किन्तु हम यह नहीं जानतीं कि चिरंजीव कुश और लव में यह कौन-सा है।

(प्रकाश) नीलकमलदल के समान कोमल और साँवला, काकपक्ष से भूषित, पवित्र शोभा वाला, शोभा से बटुओं की परिषद् को अलंकृत करता हुआ-सा तथा वह मेरा वत्स रघुनन्दन (राम) पुनः बालक हो गया है (ऐसा प्रतीत होता हुआ) यह कौन दिखलायी देता हुआ सहसा नेत्रों में अमृताञ्जन कर रहा है।।**19**।। यहाँ पर उपमा, उत्प्रेक्षा की संसृष्टि तथा हरिणी छन्द है।

व्याख्या-सावष्टम्भैः-अवष्टम्भ का अर्थ होता है - शरीर के अवयवों की विशेष ढंग से हुई संरचना ;'अवष्टम्भस्तु संस्थानविशेषे गर्वतोषयोः')। अवष्टम्भेन सह इति सावष्टम्भानि तैः, अर्थात् सुगठित, उत्कृष्ट, शानदार।

अपवार्य-किसी के प्रति गोपनीय समझ कर, उससे अन्यत्र हट कर उसकी ओर पीठ करके, दूसरे पात्र-विशेष के किसी रहस्य का प्रकाशन किया जाता है, उसे 'अपवारित' कहते हैं। दर्पणकार के शब्दों में - 'तद्भवेदपवारितम्। रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते'।। (6/138)।

निवेदितरहस्यम्-मालूम होता है कि गंगाजी ने अरुन्धती से सीताजी के जीवित रहने तथा कुश और लव के पैदा होने का वृत्तान्त बतला दिया था। यह वृत्तान्त केवल अरुन्धती को ही मालूम था, अतः इसे 'रहस्य' कहा गया है।

इस श्लोक में क्षत्रिय ब्रह्मचारी के लक्षणों का प्रतिपादन किया गया है, जिनका उल्लेख मनुस्मृति (2/40-45)में किया गया है।

टिप्पणी- उधृतम् - उद् +हन् +क्त । अवष्टम्भः - अव +स्तम्भ + घञ् । कौमारम् - कौमारस्य भावः, कुमार + अण्। शीतलयति - शीतलानि करोति, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्। अपवार्य - अप +वृ + णिच्, ल्यप्। रहस्यम् - रहसि भवम्, रहस् + यत्। विद्यः - विद् + लट्।

कंचुकी - नूनं क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये।

जनक: - एवमेतत्। अस्य हि -

चूडाचुम्बितकंकपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो

भस्मस्तोकपवित्रालाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।

मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं

पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः।।20 ।।

अन्वयः - पृष्ठतः अभितः चूडाचुम्बितकंकपत्रं तूणीद्वयं (वर्तते)भस्मस्तोकपवित्र-लाञ्छनम् उरः रौरवीं त्वचं ध्त्ते। अध्ः मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितं माञ्जिष्ठकं वासः, पाणौ कार्मुकम्, अक्षसूत्रवलयम्, अपरः पैपलः दण्डः।।**20 ।।**

कंचुकी-मैं समझता हूँ कि यह बालक निश्चय रूप से क्षत्रिय ब्रह्मचारी है।

जनक-यह बात ऐसी ही है, क्योंकि-

इसके पृष्ठभाग में दोनों बगल दो तरकस हैं, जिनके (बाण में लगे) कंकपक्षों को शिखाएँ चूम रही हैं (छू रही हैं), भस्म के अल्पांश से पवित्र चिह्न से इसका वक्षःस्थल सुशोभित है, जो रुरुमृग के चर्म को धारण कर रहा है। उससे नीचे मूर्वा के बने हुए कटिसूत्र से कसा हुआ, मँजीठ के रंग से रंगा वस्त्र है, हाथ में धनुष, वलयाकार रुद्राक्षमाला तथा धनुर्दण्ड के अतिरिक्त पीपल का दण्ड है।।**20**।। इस पद्य में तुल्योगिता अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्या-दण्डं तथा पैप्पलम् (पाठा)-इस पाठ के अनुसार ‘अयम्’ कर्ता, ‘धत्ते’ क्रिया तथा त्वक् से लेकर दण्ड तक सभी कर्म होंगे और इन सभी त्वगादि प्रस्तुत पदार्थों का ‘धत्ते’ इस एक क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार होगा।

अपरे (पाठाú)-अपरे पाणौ अर्थात् दूसरे हाथ में।

टिप्पणी- ब्रह्मचारी - ब्रह्म = वेदः, उपचारात् वेदाध्ययनव्रतमपि ब्रह्म, तच्चरितुं शीलमस्येति ब्रह्मचारी, ब्रह्मन् +चर् + णिनि (ताच्छील्ये)। पैप्पलः - पिप्पलस्य विकारः, पिप्पल + अण्।

जनकः - भगवत्यरुन्धति! किमुत्प्रेक्षसे कुतस्तयोऽयमिति।

अरुन्धती - अद्यैवागता वयम्।

जनकः - आर्य गृष्टे! अतीव मे कौतुकं वर्तते, तद् भगवन्तं वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इमं च बालकं - 'ब्रूहि वत्स! केऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षव' इति।

कंचुकी - यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

कौसल्या - किं मन्यध्व एवं भणित आगमिष्यतीति?

जनकः - भिद्येत वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य?

कौसल्या – (निरुप्य) कथं सविनयनिशामितगृष्टिवचनो विसर्जितर्षिदारक इतोभिमुखं प्रसृत एव स वत्सः।

जनकः – (चिरं निर्वर्ण्य) भोः! किमप्येतत्?

> **महिम्नामेतस्मिन्विनयशिशुतामौग्ध्यमसृणो**
>
> **विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः।**
>
> **मनो मे सम्मोहस्थिरमपि हरत्येष बलवा-**
>
> **नयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः।।21 ।।**

अन्वयः - एतस्मिन् विनयशिशुतामौग्ध्यमसृणः विदग्धैः, न पुनः अविदग्धै, निर्ग्राह्यः महिम्नाम् अतिशयः (वर्तते) यद्वत् परिलघुः अयस्कान्तशकलः अयोधतुम् तद्वत् बलवान् एषः सम्मोहस्थिरमपि मे मनः हरति।।21 ।।

जनक-भगवती अरुन्धती! 'यह कहाँ से आया है?' (यह किस माता-पिता से उत्पन्न हुआ?) इस विषय में आप क्या सम्भावना करती हैं?

अरुन्धती-हम लोग आज ही आये हैं (अतः कुछ कहा नहीं जा सकता)।

जनक-आर्य गृष्टि! मुझे अत्यन्त कुतूहल हो रहा है, अतः भगवान् वाल्मीकि के ही पास जाकर पूछो और इस बालक से कहो - 'वत्स! ये कुछ बूढ़े लोग तुमको देखना चाहते हैं'।

कंचुकी-महाराज की जो आज्ञा। (ऐसा कह कर चला गया)।

कौसल्या-क्या आप समझते हैं कि इस प्रकार से कहने पर (वह कुमार) आयेगा?

जनक-क्या इस प्रकार की आकृति का सदाचार टूट सकता है?

कौसल्या-(भली-भाँति देखकर) अहो! वह बच्चा विनयपूर्वक गृष्टि के वचन को सुनते (ही) मुनिकुमारों को त्याग कर, हम सब की ओर चल पड़ा।

जनक-(बहुत समय तक ध्यानपूर्वक देखकर) अरे! यह बड़ी विलक्षण बात है!

इस (बालक) में महिमाओं का (वह) उत्कर्ष है जो नम्रता, शिशुता तथा सरलता के कारण कोमल एवं मनोरम है तथा जो निपुण जनों द्वारा ही ज्ञेय है, न कि प्राकृत जनों के द्वारा। यह बलवान् (बालक) हर्षादि के अतिरेक में भी स्थिर रहने वाले मेरे मन को आकृष्ट करता है, जैसे अत्यन्त छोटा-सा चुम्बक का टुकड़ा लोहपिण्ड को (खींचता है)**।।21।।** इस पद्य में उपमा अलंकार तथा शिखारिणी छन्द है।

टिप्पणी-कुतस्त्यः - कुतस् + ल्यप्। कौतुकम् - कुतुकमेव कौतुकम्, स्वार्थे अण् कुतुक + अण् = कौतुकम्।

लवः –(प्रविश्य) अज्ञातनामक्रमाभिजनान् पूज्यानपि स्वतः कथमभिवादयिष्ये? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्ध: प्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते। (सविनयपुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः।

अरुन्धती-जनकौ - कल्याणिन्! आयुष्मान् भूयाः।

कौसल्या - जात चिरंजीव।

अरुन्धती - एहि वत्स! (लवमुत्संगे गृहीत्वात्मगतम्) दिष्टया न केवलमुत्संग श्चिरान्मनोरथोऽपि मे सम्पूर्णः।

कौसल्या – (उत्संगे गृहीत्वा)जात! इतोऽपि तावदेहि। अहो! न केवलं दरविकसन्नीलोत्पल- श्यामलोज्ज्वलेन देहबन्धेन कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकलहंसनिनाद- दीर्घदीर्घेण स्वरेण च रामभद्रमनुहरति। ननु

कठोरकमलगर्भपक्ष्मलः शरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव वत्सस्य। जात! प्रेक्षे तावत्ते मुखपुण्डरीकम्। राजर्षे! किं न प्रेक्षसे निपुणं निरूप्यमाणमस्य मुखं वत्साया वध्वा मुखचन्द्रेण संवदत्येव?

जनकः - पश्यामि सखि! पश्यामि।

कौसल्या - अहो! उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं किमपीतोमुखं विप्रलपति।

जनकः -वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते

सम्पूर्णप्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः।

सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ

हा हा दैव किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति।।22 ।।

अन्वयः - अस्मिन् शिशौ वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च सैव निखिला आकृतिः सा द्युतिः सम्पूर्णप्रतिबिम्बितेव अभिव्यज्ते सा वाणी, स एव सहजः, विनयः, पुण्यानुभावः अपि असौ, हा हा! दैव! मम पारिप्लवं मनः किम् उत्पथैः धवति?।।22 ।।

अर्थ- लव-(प्रवेश कर) जिनका नाम, प्रणामार्थ पूज्यानुक्रम तथा कुल अज्ञात है, ऐसे पूज्य जनों को भी अपनी बुद्धि से किस प्रकार प्रणाम करूँगा? (सोचकर) 'यह विरोध् रहित पद्धति है' - ऐसा बड़े-बूढ़ों से सुना जाता है। (विनयपूर्वक समीप जाकर) आप लोगों को लव के ये शिरसा प्रणाम हैं।

अरुन्धती और जनक-हे सौभाग्यशाली! आयुष्मान् होओ।

कौसल्या-हे पुत्र! बहुत समय तक जियो।

अरुन्धती-आओ बच्चा! (लव को गोद में लेकर, मन ही मन) भाग्य से न केवल गोद, मेरा (सीता के पुत्रों को अंक में लूँ – यह) मनोरथ भी(आज) बहुत समय के बाद पूरा हो गया।

कौसल्या-पुत्र! तनिक इधर भी आओ। (गोद में लेकर) अहो! न केवल कुछ खिले हुए नीलकमल के समान श्याम तथा सुन्दर शरीर की रचना से ही, अपितु कमलकेशर के खाने

से सुमधुर कण्ठस्वर वाले राजहंस के स्वर के समान दीर्घस्वर भी रामभद्र का अनुकरण करता है तथा पूर्ण विकसित कमल के भीतरी भाग के समान कोमल शरीर-स्पर्श भी वत्स का वैसा ही है। पुत्र! तेरे मुखकमल को तो देखूं। (ठुड्डी को ऊपर उठा कर, ध्यानपूर्वक देख कर आँसू और विशेष अभिप्राय के साथ) राजर्षि! क्या देख नहीं रहे हो कि ध्यानपूर्वक देखा जाता हुआ इसका मुख वत्सा वधू(सीता) के मुखचन्द्र से मिलता-जुलता है।

जनक-देखता हूँ, सखि, देखता हूँ।

कौसल्या-अहो! विक्षिप्त-सा हुआ मेरा मन इस बालक के विषय में इस प्रकार का असम्भाव्य प्रलाप (विविध तर्क) करता है।

जनक-इस बालक में बेटी (सीता) की तथा रघुश्रेष्ठ (राम) की वही समग्र आकृति, वही कान्ति पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित-सी स्पष्ट लक्षित हो रही है। वही वाणी है, वही नैसर्गिक विनय है, वही पावन प्रभाव भी है। हा! हा! दैव! मेरा चंचल मन क्यों विरुद्ध मार्गों से दौड़ रहा है**?।।22।।** प्रस्तुत पद्य में तुल्योगिता अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याख्या- हंसघोपघर्घरानुनादिना(पाठाú) - कलहंस के समान घर्घर अनुनाद करने वाला। 'घर्घर' यह अव्यक्तानुकरणात्मक शब्द है। वीरराघव ने इसका अर्थ 'कांस्यध्वनि' किया है।

उत्पथैः धावति-विरुद्ध मार्गो से दौड़ता है - सीता निस्सन्देह मर चुकी है, फिर भी इस बालक को सीता पुत्र होने की संभावना करता है।

टिप्पणी- पर्यायः - परि +इ (गतौ) +घञ् । कल्याणिन् - कल्याण + ईनि (मतुबर्थक)। सम्पूर्णः - सम् +पृ+ (पालनपूरणयोः) +क्त ।

कौसल्या - जात! अस्ति ते माता, स्मरसि वा तातम्?

लवः - नहि, नहि।

कौसल्या - ततः कस्य त्वम्?

लवः - भगवतो वाल्मीके:।

कौसल्या - अयि जात! कथयितव्यं कथय।

लव: - एतावदेव जानामि।(नेपथ्ये)

भो भोः सैनिकाः! एष खलु कुमार श्चन्द्रकेतुराज्ञापयति न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय आक्रमितव्या इति।

अरुन्धती-जनकौ - अये! मेध्याश्वरक्षाप्रसंगादुपागतो वत्सश्चचन्द्रकेतुरद्य द्रष्टव्य इत्यहो! सुदिवसः।

कौसल्या – वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रक आज्ञापयतीत्यमृबिन्दुसुन्दराणि अक्षराणि श्रूयन्ते।

लव: - आर्य! क एष चन्द्रकेतुर्नाम।

जनक: - जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी?

लव: - एतावेव रामायणकथापुरुषौ?

जनक: - अथ किम्?

लव: - तत्कथं न जानामि?

जनक: - तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः।

लव: - ऊर्मिलायाः पुत्रास्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेदौहित्राः।

अरुन्धती- (विहस्य) आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।

जनक: – (विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद् ब्रूहि तावत् पृच्छामस्तेषां दशरथात्मजानां कियन्ति किन्नामधेयान्यपत्यानि केषु केषु दारेषु प्रसूतानीति।

लव: - नायं कथाप्रविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः।

जनक: - किं न प्रणीत एव कविना?

लव: - प्रणीतो न प्रकाशितः। तस्यैव कोऽप्येकदेशः सन्दर्भान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः। तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान् व्यसृजद् भगवतो भरतस्य मुनेस्तौर्यत्रिकसूतकारस्य।

जनक: - किमर्थम्?

लव: - स किल भगवान् भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति।

जनक: - सर्वमिदमाकूततरमस्माकम्।

लवः - महती पुनरस्मिन् भगवतो वाल्मीकेरास्था। यतो येषामन्तेवासिनां हस्तेन तत्पुस्तकं भरताश्रमं प्रति प्रेषितं तेषामनुयात्रिक श्चापपाणिः प्रमादापनोदनार्थम् अस्मद्भ्राता प्रेषितः।

कौसल्या - जात! भ्राताऽपि तेऽस्ति?

लवः - अस्त्यार्यः कुशो नाम।

कौसल्या - ज्येष्ठ इति भणितं भवति।

लवः - एवमेतत्। प्रसवानुक्रमेण स ज्यायान्।

जनकः - किं यमजावायुष्मन्तौ?

लवः - अथ किम्?

जनकः - वत्स! कथय कथाप्रबन्धस्य कीदृशः पर्यन्तः?

लवः - अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवयजनसम्भवां सीतादेवीमासन्न-प्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये परित्यज्य लक्ष्मणः प्रतिनिवृत्त इति।

कौसल्या - हा वत्से मुग्धचन्द्रमुखि! क इदानीं ते शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतितः।

जनकः - हा वत्से!

नूनं त्वया परिभवं च वनं च घोरं

तां च व्यथा प्रसवकालकृतामवाप्य।

क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु

सन्त्रस्तया शरणमित्यसकृत् स्मृतोऽस्मि् ।।23 ।।

अन्वयः - परिभवं च घोरं वनं च प्रसवकालकृतां तां व्यथां च अवाप्य क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु, सन्त्रस्तया त्वया नूनं शरणम् इति असकृत् स्मृतःअस्मि।।23।।

कौसल्या-पुत्र, तुम्हारी माता है? अथवा पिता को याद करते हो?

लव-नहीं, नहीं।

कौसल्या-तो तुम किसके (पुत्र) हो?

लव-भगवान् वाल्मीकि के।

कौसल्या-अरे बेटा, कहने योग्य बात ही कहो।

लव-इतना ही जानता हूँ।(नेपथ्य में)

अरे अरे सैनिको! ये कुमार चन्द्रकेतु आज्ञा दे रहे हैं कि किसी के द्वारा आश्रम की समीपवर्ती भूमियाँ आक्रान्त (पीडित) न की जायँ।

अरुन्धती और जनक-अरे यज्ञीय अश्व की रक्षा के सिलसिले में आये हुए चन्द्रकेतु का आज दर्शन होगा। इसलिए अहो, आज का दिन शुभ है।

कौसल्या-'वत्स लक्ष्मण का प्रिय पुत्र आज्ञा देता है' - ये अमृतबिन्दु के समान सुमधुर अक्षर सुने जा रहे हैं।

लव-आर्य! ये चन्द्रकेतु कौन हैं?

जनक-दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को जानते हो?

लव-क्या रामायणकथा के प्रधान पुरुष ये ही (दोनों) हैं?

जनक-और क्या?

लव-तब क्यों नहीं जानता हूँ?

जनक-उन्हीं लक्ष्मण का, यह चन्द्रकेतु पुत्र है।

लव-तो ये (चन्द्रकेतु) ऊर्मिला के पुत्र और मिथिलापति राजर्षि जनक के दौहित्रा हैं।

अरुन्धती-(हँसकर) बच्चे ने कथा में (अपना) नैपुण्य प्रकट कर दिया।

जनक-(सोचकर) तुम यदि कथा में ऐसे कुशल हो तो कहो, हम पूछते हैं - उन दशरथ-पुत्रों के कितने और किस-किस नाम वाले पुत्र किन-किन स्त्रियों से उत्पन्न हुए हैं।

लव-कथा का यह भागविशेष हमने या अन्य किसी ने पहले नहीं सुना है।

जनक-क्या कवि (वाल्मीकि)ने (उसे) रचा ही नहीं?

लव-रचा तो गया है, किन्तु (किसी पर) प्रकट नहीं किया गया है। उसी का कोई एक अंश (श्रव्य प्रबन्ध् से) भिन्न प्रबन्ध् (दृश्यरूपक) से सरस और अभिनय योग्य कथावस्तु वाला रचा गया है। अपने हाथ से लिखे हुए उसको भगवान् मुनि (वाल्मीकि) ने नाट्यशास्त्र प्रणेता भगवान् भरत मुनि के पास भेजा है।

जनक-किसलिए?

लव-सुना जाता है कि ये भगवान् भरत मुनि अप्सराओं से उसे अभिनीत करायेंगे।

जनक-हमारे लिए तो यह सब अतिशय गूढार्थक है।

लव-और उसमें भगवान् वाल्मीकि की बड़ी आस्था है, क्योंकि जिन शिष्यों के हाथों से उस पुस्तक को भरत के आश्रम पर भेजा है, उनकी अनवधानता को दूर करने के लिए उनका अनुयायी बना कर धनुष हाथ में लिये हुए हमारा भाई भेजा गया है।

कौसल्या-वत्स! भाई भी तुम्हारे हैं?

लव-पूज्य कुश नाम वाले(भाई) हैं।

कौसल्या-कहने से ध्वनित होता है कि वह ज्येष्ठ है।

लव-हाँ, यही बात है, उत्पत्ति के क्रम से वे (मुझसे) बड़े हैं।

जनक-क्या तुम दोनों आयुष्मान् जुड़वाँ हो?

लव-और क्या?

जनक-बेटा, कहो, कथा-प्रबन्ध् का अवसान किस प्रकार का है?

लव-पुरवासियों के मिथ्या अपवाद से उद्विग्न महाराज (राम) के द्वारा निर्वासित, यज्ञ भूमि से प्रकट हुई, प्रसव-वेदना से पीड़ित देवी सीता को अरण्य में अकेली छोड़कर लक्ष्मण लौट गये, ऐसा (कथा-प्रबन्ध् का अवसान है)।

कौसल्या-हाय! वत्से! भोली-भाली! चन्द्र के समान मुख वाली! तुझ जैसी असहाया के कुसुम-सदृश शरीर पर सहसा भाग्य के स्वेच्छाचार का कैसा परिणाम प्रकट पड़ा!

जनक-हाय बेटी, (पति द्वारा किये गये)तिरस्कार को, भयंकर वन को तथा प्रसवकाल की उस वेदना को पाकर, चारों ओर से कच्चे मांस खाने वाले (¯हिंसक जन्तुओं) के समूहों के घेरते रहने पर अत्यन्त डरी हुई तुमसे 'मैं रक्षक हूँ' ऐसा निस्सन्देह मैं अनेक बार स्मृत हुआ हूँगा।।**23**।। इस पद्य में तुल्योगिता अलंकार तथा बसन्ततिलका छन्द है।

व्याख्या- 'वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रकः' इत्यादि कौसल्या के कथन और तदनन्तर लव के द्वारा किये गये प्रश्न 'क एष चन्द्रकेतुर्नाम' में संगति स्थापित करने के लिए कौसल्या के कथन को 'स्वगत' मानना पड़ेगा, अन्यथा लव का प्रश्न उपपन्न नहीं होगा।

अप्सरोभिः प्रयोजयिष्यति-सातवें अंक में कवि ने जो गर्भांक अथवा गर्भनाटक की योजना की है, जिसमें अप्सराएँ बाल्मीकि ऋषि रचित नाटक खेलेंगी, की सूचना यहाँ लव के मुख से सामाजिकों को दी गयी है।

टिप्पणी -कथयितव्यम् - प्रावीण्यम् - प्रवीणस्य भावः, प्रवीण + ष्यञ् । अभिनेयः - अभि +नी + यत् (अचो यत्')। शरीर-कुसुमस्य - शरीरं कुसुममिवेति शरीरकुसुमं तस्य, उपमित समास।

लवः – (अरुन्धतीं प्रति) आर्ये! कावेतौ?

अरुन्धती - इयं कौसल्या। अयं च जनकः।

लवः – (सबहुमानखेदकौतुकं पश्यति)

जनकः - अहो निद्रयता दुरात्मनां पौराणाम्! अहो रामस्य राज्ञः क्षिप्रकारिता!

एतद्वैशसवज्रघोरपतनं शाश्वन्ममोत्पश्यतः

क्रोधस्य ज्वलितुं ध्गित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

कौसल्या – (सभय-कम्पनम्) भगवति! परित्रायस्व परित्रायस्व परित्रायस्व, प्रसादय कुपितं राजर्षिम्।

लवः - एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम्।

अरुन्धती - राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणा जनाः।।24 ।।

अर्थ- लव-(अरुन्धती से) आर्ये! ये दोनों कौन हैं?

अरुन्धती-यह कौसल्या हैं। ये जनक हैं।

लव-(अत्यधिक सम्मान, खेद और कौतूहल के साथ देखता है।)

जनक-ओह! दुरात्मा पुरवासियों की निर्दयता! ओह! रामभद्र की क्षिप्रकारिता (जल्दबाजी)!

(सीता पर किये गये) इस हिंसा रूपी घोर वज्रपात को निरन्तर सोचते हुए अब मेरे क्रोध् का धनुर्ग्रहण के रूप में अथवा शाप के रूप में धिक् से भड़क उठने का अवसर है।

कौसल्या-(भय से काँप कर) हे भगवती! (अरुन्धती) रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। कुपित राजर्षि (जनक) को प्रसन्न कीजिए।

लव-अपमानित किये गये मनस्वी जनों का यही (कोप ही)प्रायश्चित्त (प्रतीकार) है। (अर्थात् अपमानित होकर मनस्वी जन ऐसा कोप करते ही हैं)।

अरुन्धती-राजन्! राम तो आप के पुत्र हैं और दीन प्रजानन रक्षणीय है**।।24।।** प्रस्तुत पद्य में अप्रस्तुत प्रशंसा, रूपक और काव्यलिंग की संसृष्टि तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या-धिगति-सुलगती हुई आग के सहसा भड़क उठने पर 'धक्' की आवाज उत्पन्न होती है, उसी 'धक् ' ध्वनि का यह अनुकरणात्मक शब्द है। जनक का भी कोपानल बहुत समय से भीतर ही भीतर सुलग रहा है, अब वह 'धक्' शब्द कर भड़कने ही वाला है।

टिप्पणी-वैशसम् - विशसः = घातकः,(वि +शस् +अच्) तस्य कर्म वैशसम् - विशस+अण्। मनस्विनाम्-प्रशस्तं मनो येषां ते मनस्विनः, तेषाम्। मनस् + विन् ;प्राशस्त्य अर्थ में

जनकः - शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं तत्पुत्रभाण्डं हि मे।

भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रौणश्च पौरो जनः।।25 ।।

अन्वयः - वा रघुनन्दने तद् उभपुत्रभाण्डम्,पौरोजनश्चभूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रौणः, **पौरो जनः।।25 ।।**

जनक-अथवा ये दोनों (चाप और शाप)राम के प्रति शान्त हो जायँ, क्योंकि वे मेरे पुत्र रूप मूलधन हैं और प्रजाजनों में बहुत से ब्राह्मण, बालक, बूढ़े, विकलांग तथा स्त्री-समूह हैं (अतः वे भी दया के पात्र हैं)**।।25।।** इसमें काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

टिप्पणी- भूयिष्ठः - बहु + इष्ठन्, बहु के स्थान में भू आदेश, 'इष्ठस्य यिट् च' (6/4/159) के अनुसार प्रत्यय के आद्यावयव इकार का लोप और यिट् का आगम।

सम्भ्रान्ता बटवः - कुमार, कुमार! अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूविशेषो जनपदेषु श्रूयते। सोऽयमधुनास्माभिः प्रत्यक्षीकृतः।

लवः – अश्व इति पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते। तद् ब्रूत कीदृशः?

बटवः - श्रूयताम् -

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं

दीर्घग्रीवः स भवतिखुरास्तस्य चत्वार एव।

शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्

किं वाऽऽख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः।।26 ।।

अन्वयः - पश्चात् विपुलं पुच्छं वहति, तच्च अजस्रं धूनोति। स दीर्घग्रीवः भवति। तस्य चत्वार एव खुराः। (सः) शष्पाणि अत्ति, आम्रमात्रात् शकृत्पिण्डकान् प्रकिरति। किं वा आख्यातैः, स पुनः दूरं व्रजति, एहि एहि यामः**।।26 ।।**

अर्थ- (प्रवेश करके)

घबड़ाये हुए बटु-कुमार, कुमार! घोड़ा है घोड़ा - इस प्रकार कोई प्राणीविशेष जनपदों में

सुना जाता है, वही यह आज हमसे प्रत्यक्ष देख लिया गया।

लव-‘अश्व ऐसा पशुसमाम्नाय(वेद का वह भाग जिसमें पशुयागों का वर्णन है) में तथा युद्धकाण्ड में भी पढ़ा जाता है। तो कहो - ‘वह कैसा है’?

बटु लोग-अरे, सुनिये-

वह (शरीर के) पीछे वाले भाग में पूँछ धारण करता है और उसे निरन्तर हिलाता रहता है। उसकी गर्दन लम्बी होती है और (अन्य पशुओं की ही तरह) उसके चार ही खुर होते हैं। वह घास खाता है और आम के फलों के बराबर लीद के गोले-गोले छोटे लोंदें गिराता है। बहुत कहने से क्या? वह िफर दूर चला जा रहा है, आओ आओ, हम सब (उसे देखने) चलें।**।26।।** इस पद्य में स्वभावोक्ति अलंकार तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है।

व्याख्या- पशुसमाम्नाये-विद्यासागर ने इसका अर्थ ‘पशुशास्त्रो’ किया है। आचार्य शेषराजशर्मा के अनुसार यह शब्द निघण्टु के उस अंश का बोध् कराता है, जिसमें पशुओं के नाम गिनाये गये हैं। वीरराघव कहते हैं - ‘पशुसमाम्नाये पशुद्रव्यकयागप्रतिपादकवेदभागे’। अर्थात् यह शब्द वेद के उस भाग का बोध् कराता है, जिसमें पशुयागों का वर्णन है। लव के कहने का आशय है कि हमने अश्व शब्द पशुयागशास्त्र और संग्रामशास्त्र में पढ़ा है। लव के इस कथन से प्रतीत होता है कि उसने भी कभी प्रत्यक्ष रूप से घोड़ा नहीं देखा था।

टिप्पणी- प्रत्यक्षीकृतः - अप्रत्यक्षः प्रत्यक्षः कृतः इति प्रत्यक्षीकृतः समाम्नायः - सम् +आ म्ना + घञ्, युक् का आगम।

(इत्युपसृत्याजिने हस्तयोश्च कर्षन्ति)

लवः – (सकौतुकोपरोध्विनयम्) आर्याः! पश्यत, पश्यत एभिर्नीतोऽस्मि। (इति त्वरितं पराक्रामति)।

अरुन्धतीजनकौ - पूरयतु कौतुकं वत्सः।

कौसल्या - भगवति! जानाम्येतमनालोकयन्ती न जीवामीव। अतोऽन्यतो भूत्वा प्रेक्षामहे तावद् गच्छन्तं दीर्घायुषम्।

अरुन्धती - अतिजवेन दूरमतिक्रान्तः स चपलः कथं दृश्यते?

कंचुकी – (प्रविश्य) भगवान् वाल्मीकिराह ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भिरिति।

जनकः - अतिगम्भीरमेतत्किमपि। भगवत्यरुन्धित! सखि कौसल्ये! आर्यगृष्टे! स्वयमेव गत्वा भगवन्तं प्राचेतसं पश्यामः।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवर्गः)

(प्रविश्य)

बटवः - पश्यतु कुमारस्तदाश्चर्यम्।

लवः - दृष्टमवगतं च। नूनमा श्वमेधिकोऽयमश्चः।

बटवः - कथं ज्ञायते?

लवः - ननु मूर्खाः! पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। किं न पश्यथ प्रत्येकं शतसंख्या कवचिनो दण्डिनो निषगिंणश्च रक्षितारः। तत्प्रायमेव बलमिदं दृश्यते। यदीह न प्रत्ययस्तद् गत्वा पृच्छत।

बटवः - भो भोः! किम्प्रयोजनोऽयमश्व: परिवृतः पर्यटति?

लवः – (सस्पृहमात्मगतम्) अये! अश्वमेध् इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रापरिभावी महानुत्कर्षनिष्कर्षः।

(नेपथ्ये)

योऽयमश्व: पताकेयमथवा वीरघोषणा।

सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः।।27 ।।

अन्वयः - अयं यः अश्वः, इयं सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः पताका अथवा वीरघोषणा अस्ति।।27 ।।

अर्थ- (ऐसा कह कर निकट जाकर मृगचर्म और हाथों को पकड़ कर लव को खींचते हैं।)

लव-(कौतूहल, आग्रह और विनय के साथ) हे पूज्यजनो! देखें देखें, ये सब मुझे ले जा रहे हैं। (ऐसा कह कर शीघ्र घूमता है)

अरुन्धती -और जनक-बेटा (अपना) कौतूहल पूर्ण करे।

कौसल्या-भगवति! मुझे (ऐसा) अनुभव हो रहा है कि इसे न देखती हुई मैं मानो जी नहीं रही हूँ। अतः अन्यत्र स्थित होकर अब हम जाते हुए आयुष्मान् (लव) को देखें।

अरुन्धती-अत्यन्त वेग से दूर निकल गया हुआ वह चपल कैसे दिखलायी देगा?

कंचुकी-(प्रवेश कर) भगवान् वाल्मीकि कहते हैं कि (बालक किसका है') यह बात आप लोगों को समय पर मालूम हो जायेगी।

जनक-यह कोई बड़ी गम्भीर (रहस्यपूर्ण) बात है। हे भगवती अरुन्धती, सखी कौसल्या, आर्य गृष्टि! हम स्वयं चल कर भगवान् वाल्मीकि से मिलें।

(ऐसा कहकर वृद्धवर्ग निकल जाता है)

(प्रवेश कर)

बटु लोग-कुमार उस आश्चर्य (अद्भुत वस्तु) को देखें।

लव-देख लिया और समझ भी गया। अवश्य यह अश्वमेध में प्रयुक्त होनेवाला घोड़ा है।

बटु लोग-कैसे ज्ञात होता है?

लव-अरे मूर्खो! तुम सबने वह (अश्वमेध वाला) प्रकरण पढ़ा ही है। क्या कवच वाले, दण्ड वाले तथा तरकस वाले रक्षकों को जिनमें प्रत्येक की संख्या सौ है, देख नहीं रहे हो, प्रायेण वैसा ही तो यह सेना दीख रही है। यदि इसमें विश्वास न हो तो जाकर पूछ लो।

बटु लोग-अरे अरे! किस प्रयोजन वाला यह घोड़ा (तुम सबसे) घिरा हुआ घूम रहा है।

लव-(स्पृहा के साथ, स्वगत) ओह! 'अश्वमेध्' यह नाम विश्वविजेता क्षत्रियों का

शक्तिशाली तथा समस्त क्षत्रियों का अनादर करने वाला, उत्कर्ष का महान् सार (पराकाष्ठा) है।

(नेपथ्य में)

यह जो अश्व है, यह सातों लोकों में अद्वितीय वीर, रावणकुल के शत्रु (भगवान् राम) की विजयवैजयन्ती अथवा उनके वीरत्व की घोषणा है।।**27**।। इस पद्य में अतिश्योक्ति अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या- एभिर्नीतोऽस्मि-लव के कहने का अभिप्राय है - आप लोगों की बिना अनुमति प्राप्त किये मैं आप लोगों के पास से सहसा चला जा रहा हूँ, मेरी इस अशिष्टता को क्षमा करेंक्योंकि मैं स्वयं अपनी इच्छा से नहीं जा रहा हूँ, ये मेरे साथी बलात् मुझे घसीट कर ले जा रहे हैं। इस प्रकार लव ने अपने वाककौशल से अपने को निर्दोष सिद्ध करते हुए सारा अपराध उन साथियों केसिर पर मढ़ दिया।

टिप्पणी- आश्वमेधिक: - अश्वमेध्ः प्रयोजनमस्य अश्वमेध् + ठन् ('प्रयोजनम्' 5/1/109)। वीरराघव के अनुसार - अश्वमेधय प्रभवति आश्वमेधिक:। सप्तलोकैकवीरस्य - सप्तसु लोकेषु एकः वीरः इति उत्तरपदद्विगुः ('तद्धितार्थोत्तर- पदसमाहारे च' - 2/1/51)।

लवः – (सगर्वमिव) अहो! सन्दीपनान्यक्षराणि।

बटवः **-** किमुच्यते? प्राज्ञः खलु कुमारः।

लवः **-** भो भोः! तत्किमक्षत्रिया पृथिवी, यदेवमुद्घोष्यते?

(नेपथ्ये) अरे रे! महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः?

लवः **-** धिग्जाल्मान्।

यदि ते सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका।

किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः।।28 ।।

अन्वयः **-** यदि ते सन्ति, सन्ति एव अद्य इयं विभीषिका का? एभिः उक्तैः अधुना किम्? वः तां पताकां हरामि।।**28** ।।

अर्थ- लव-(गर्व के साथ) अहो! ये अक्षर (क्रोध् और उत्साह के) उद्दीपक हैं।

बटु-क्या कहा जाय? कुमार (लव) निस्सन्देह बुद्धिमान् हैं।

लव-अरे, तो क्या पृथिवी क्षत्रिय-विहीन हो गयी जो इस तरह चिल्ला कर घोषणा की जा रही है?

(नेपथ्य में) अरे रे! महाराज (राम) के सामने क्षत्रिय कहाँ?

लव-बिना विचार किये बात कहने वाले (तुम) नीचों को धिक्कार है।

यदि वे (महाराज राम) हैं तो हैं ही, आज यह त्रासोत्पादन कैसा! (तुम लोगों के)इन वचनों से क्या? तुम्हारी उस विजयपताका को मैं अभी छीन लेता हूँ।।**28**।। इसमें अर्थापत्ति अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

व्याख्या -यदि नो सन्ति सन्त्येव (पाठाú) - यदि (तुम कहते हो) क्षत्रिय नहीं हैं, (तो मैं कहता हूँ) हैं ही।

शरसम्बाधम् (पाठाú) - पताका का विशेषण। शरैः सम्बाध्ः आच्छादनं यस्यास्ताम्, बाणों से आच्छादित पताका को।

टिप्पणी-प्राज्ञः - प्रज्ञः ;प्र +ज्ञा + क, (आतश्चयोपसर्गे') एव प्राज्ञः - प्रज्ञ +अण् (स्वार्थे)। अक्षत्रिया - न क्षत्रिया यस्यां तथाविध (नञ् बहुव्रीहि)।

भो भो बटवः! परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम्। एष रोहितानां मध्ये वराक श्चस्तु।

(प्रविश्य सक्रोधदर्पः)

पुरुषः - धिक्चापलं किमुक्तवानसि? तीक्ष्णनीरसा ह्यायुधीयश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्रकेतुररिमर्दनः सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो ना यावदायाति तावत् त्वरितमनेन तरुणगहेनानपसर्पत।

बटवः - कुमार! कृतमनेनाश्वेन, तर्जयन्ति विस्फुरितशस्त्राः कुमारमायुधीयश्रेणयः। दूरे चाश्रमपदमितस्तदेहि हरिणप्लुतैः पलायामहे।

लवः – (विहस्य) किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि? (इति धनुरारोपयन्)

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रमुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।

ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम्।।29 ।।

(इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे)

अन्वयः - ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम् उद्गारिघोरघनघर्घरघोषम् एतत् चापं ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु।।29 ।।

अर्थ-अजी बटु लोगो! इस घोड़े को घेर कर मिट्टी के ढेलों से पीटते हुए (आश्रम को) ले जाओ। यह बेचारा रोहित मृगों के बीच विचरण करे।

(प्रवेश करके, क्रोध और गर्व के साथ)

पुरुष-(तेरी) चपलता को धिक्कार! क्या कहा है तूने! प्रचण्ड और निर्दय शस्त्रजीवियों की पंक्तियाँ बच्चे की भी गर्वभरी बात को माफ नहीं करती हैं। राजकुमार चन्द्रकेतु शत्रुसंहारक है। उसका भी चित्त अपूर्व वन को देखने में आसक्त है, (इसलिए) जब तक वह आ नहीं रहा है, तब तक तुम सब (अपने प्राण बचाने के लिए) शीघ्र इन वृक्षों की झुरमुट से (होते हुए) भाग जाओ।

बटु लोग-कुमार! इस अश्व की आवश्यकता नहीं। चमकते शस्त्रों वाली शस्त्रजीवियों की पंक्तियाँ कुमार को डरा रही हैं। आश्रम भी यहाँ से दूर है। अतः आओ हरिण की चाल से भागें।

लव-(हँसकर) क्या शस्त्र चमक रहे हैं? (ऐसा कहकर धनुष पर डोरी चढ़ाता हुआ)

मौर्वी रूप जिह्वा से वेष्टित उग्र अग्रभाग रूप दाढ़ों वाला, उर्ध्वगामी भीषण मेघ के शब्द के समान घर्घर घोष करने वाला यह धनुष निगल लेने में लगा हुआ होने के कारण अट्टहास करता हुआ, यमराज के मुखयन्त्र की जम्हाई का अनुकरण करने के कारण भीषण उदर (अन्तराल) वाला होवे।।29।। प्रस्तुत पद्य में रूपक और उपमा का सांकर्य तथा वसन्ततिलका वृत्त है।

(यथोचित घूम कर सभी चले गये।)

इति महाकवि-भवभूतिविरचित उत्तररामचरितेकौसल्याजनकयोगो नाम चतुर्थो अंक:

महाकवि भवभूति विरचित उत्तररामचरित में 'कौसल्याजनकयोग' नामक चतुर्थ अंक समाप्त।

अभ्यास प्रश्न 1

1. पंचप्रसूति किसको और क्यों कहा गया है?
2. 'सकौतुकोपरोध्विनयम्' इस पद की व्याख्या पठित-पाठ्य केआधार पर कीजिए।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित पद्यों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए।

क. आविर्भूतज्योतिषां.....................विप्लुतार्थां वदन्ति।।

ख.योऽयमश्वः......................दशकण्ठकुलद्विषः।।

ग.कन्यायाः किल पूजयन्ति...................पापस्थ धिग्जीवितम्।।

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि वाल्मीकि के आश्रम परिसर में अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का आगमन होता है। लव को घोड़ा दिखलाने के लिए बच्चे खींच ले जाते हैं। लव-अश्वरक्षक वीरों की घोषणा न सहन कर पाने के कारण बच्चों से कहता है कि अश्व को ढेलों से मारते हुए आश्रम में ले चलो, यह बेचारा मृगों के बीच में चरेगा। अन्य बच्चे सैनिकों को देखकर भाग जाते हैं, परन्तु लव शस्त्र लेकर खड़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त अश्व की रक्षा में संलग्न चन्द्रकेतु तथा वाल्मीकि के काव्यादि की चर्चा की गई है।

4.5 शब्दावली

शरसम्बाधम्	बाणों से आच्छादित

पशुसमाम्नाय	वेद का वह भाग जिसमें पशुयागों का वर्णन है
धिगति	सुलगती हुई आग
विप्लुत	बहा हुआ, डूबा हुआ,

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 एवं 2 के उत्तर इकाई में देखें।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.उत्तररामचरितम् (भवभूति), एमúआरú काले (वीरराघवकृत टीका)मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962

2.उत्तररामचरितम् (भवभूति), स्वरूप आनंद एवं जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977

3.उत्तररामचरितम् (भवभूति), ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1987

4.8 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1.भवभूति और उनकी नाट्यकला, अयोध्या प्रसाद सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988

2.भवभूति ग्रन्थावली, राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

3.भवभूति के नाटक, ब्रज वल्लभ शर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1973

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चतुर्थ अंक के उत्तरार्द्ध का कथासार अपने शब्दों में लिखिये।

2. लव की चारित्रिक विशेषताओं को लिखिये।